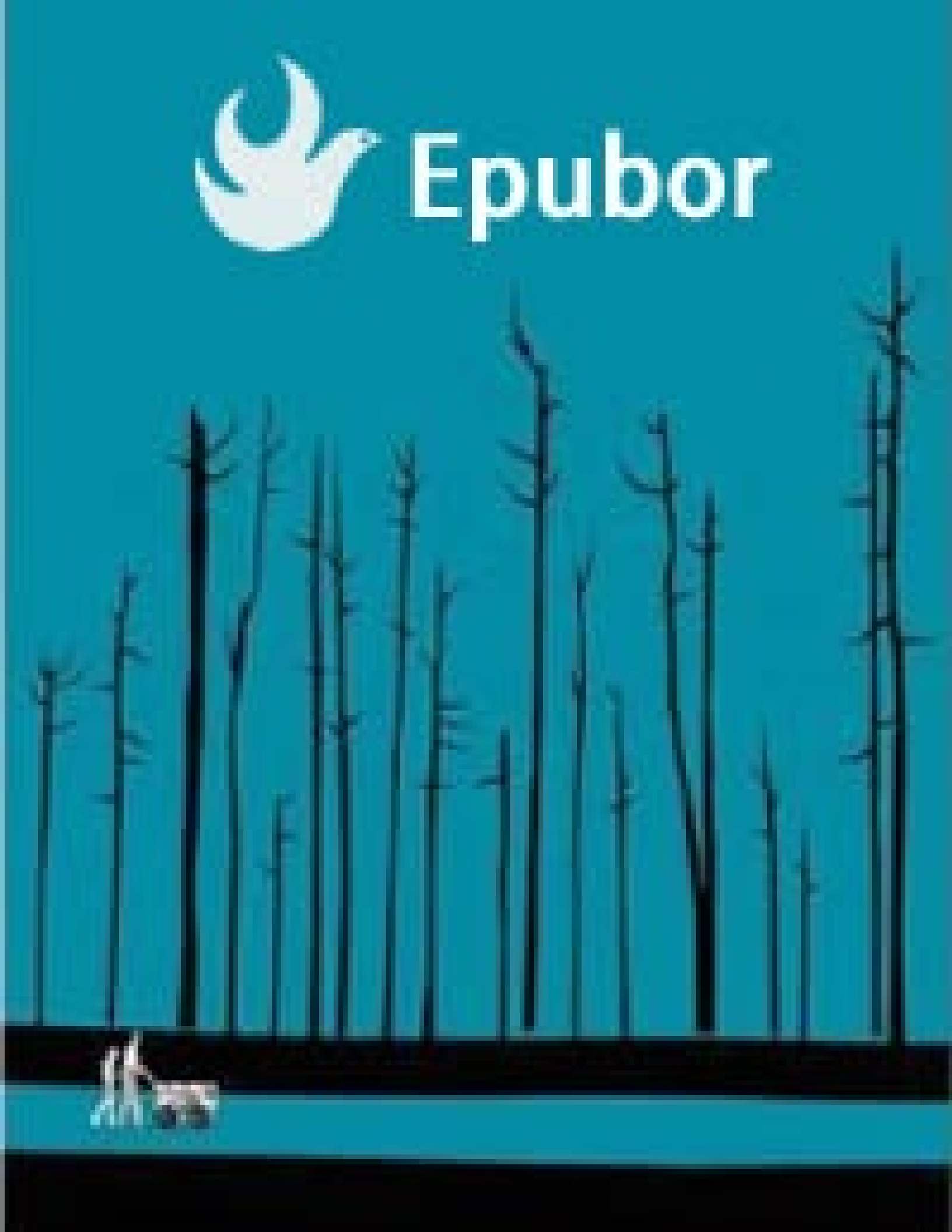
Epubor

धनपत राय श्रीवास्तव बनाम प्रेमचन्द (1880-1936) हिन्दी-उर्दू साहित्य के प्रकाशपुंज थे; यथार्थवाद लेखन आरम्भ करने का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है। उनका जन्म बनारस के पास लम्ही गाँव में हुआ था, जहाँ आज प्रेमचन्द स्मारक और प्रेमचन्द शोध एवं अध्ययन संस्थान है।

'रंगभूमि' को हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, द्वारा 10 नवम्बर, 1927 में पुरस्कृत किया गया। यह संग्रहणीय पुस्तक सभी अर्थों में भारतीय साहित्य की धरोहर है।

उल्लेखनीय है कि 'रंगभूमि' (उर्दू नाम चौगाने-हस्ती) लिखा पहले उर्दू में गया परन्तु प्रकाशित हुआ हिन्दी में।

'रंगभूमि एक क़ौम, एक मुल्क की बहबूदी (उन्नति) और बेहतरी की राह में एक कोशिश है जो एक तबके की इस्लाह (सुधार) से ज़्यादा मुफ़ीद (फ़ायदेमन्द), ज़्यादा बुलंद एक चीज़ है!'

रफी अहमद किदवई
अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ, द्वारा प्रकाशित
प्रथमावृति संस्करण के
कवर पृष्ठ की प्रतिकृति

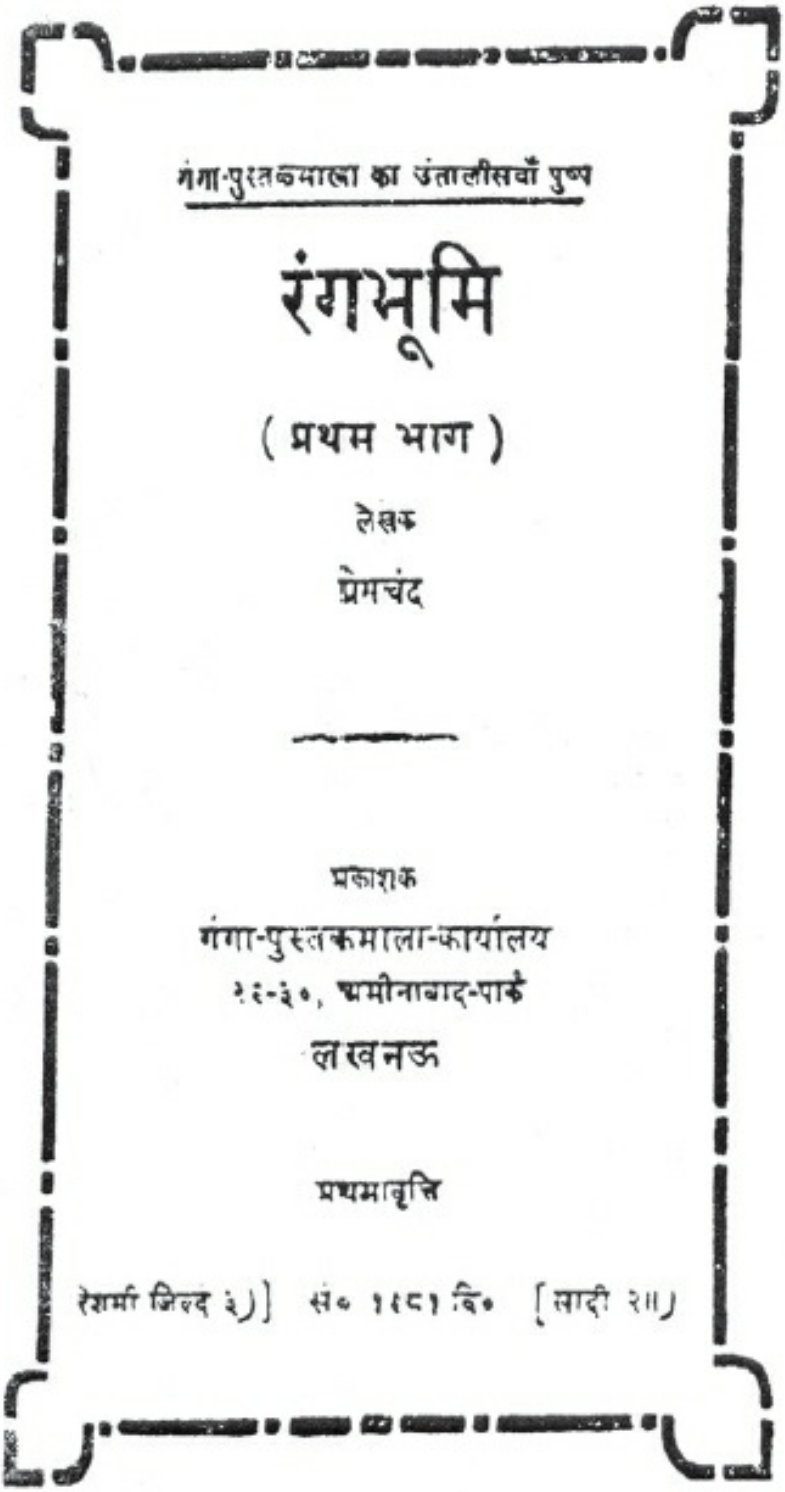
गंगा-पुस्तकमाला का उंतालीसवाँ पुष्प

रंगभूमि

(प्रथम भाग)

लेखक

प्रेमचंद

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२६-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

रेशमी जिल्द ३)] सं० १९८१ वि० [सादी २॥)

'आज हम हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध एवं सिद्धहस्त साहित्यसेवी सुहृद्वर प्रेमचन्द जी की रुचिर रचना 'रंगभूमि' लेकर सुहृदय साहित्यप्रेमियों के सम्मुख समुपस्थित हो रहे हैं। 'रंगभूमि' एक उत्कृष्ट उपन्यास है।'

दुलारे लाल भार्गव, प्रकाशक

1 फरवरी, 1925

रंगभूमि

प्रेमचन्द

प्रस्तावना

प्रोफेसर हरिमोहन

निदेशक, क. मुं. हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(पूर्ववर्ती आगरा विश्वविद्यालय) आगरा

ओरिएंट पब्लिशिंग

सर्वाधिकार सुरक्षित। यह पुस्तक, या इसका कोई भी भाग लेखक या प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना, इलैक्ट्रॉनिक या यान्त्रिक (जिसमें फोटोकॉपी, रिकार्डिंग भी सम्मिलित है) विधि से या सूचना संग्रह तथा पुन: प्राप्ति-पद्धति (रिट्रिवल) द्वारा किसी भी रूप में पुन: प्रकाशित, अनूदित या संचारित नहीं किया जा सकता।

— प्रकाशक

www.orientpaperbacks.com
Paperback ISBN: 978-81-222-0532-9
रंगभूमि
© ओरिएंट पब्लिशिंग
प्रकाशक
ओरिएंट पब्लिशिंग
(विजन बुक्स प्रा. लि. का संभाग)
5A/8 अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली.110 002
Rangbhoomi
by Premchand
Fiction

संसार की विशाल रंगभूमि पर जीवन का विराट् नाटक

प्रोफेसर हरिमोहन
निदेशक, क. मुं. हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(पूर्ववर्ती आगरा विश्वविद्यालय) आगरा

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने अपने लेखन के माध्यम से साहित्य और समाज दोनों को उज्ज्वल किया।

हिंदी में लिखने से पूर्व उन्होंने उर्दू में अनेक श्रेष्ठ रचनाएँ लिखीं। प्रेमचन्द द्वारा लिखा गया हिंदी का पहला उपन्यास 'प्रेमा' (1907) माना जाता है। परन्तु उपन्यासकार के रूप में सर्वप्रथम ख्याति उन्हें उनके उपन्यास 'सेवासदन' (1916) से मिली। प्रेमाश्रम, निर्मला, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान तथा अंत में मंगलसूत्र (जो अपूर्ण ही रहा) — प्रेमचंद जी के आठ अन्य हिंदी उपन्यास हैं, जिनमें से 'निर्मला', 'रंगभूमि' और 'गोदान' तो मानो साहित्य में प्रकाश-स्तम्भ हैं। उपन्यासों के साथ ही उन्होंने सैकड़ों श्रेष्ठ कहानियां भी लिखीं।

'रंगभूमि' प्रेमचंद का सबसे वृहत् उपन्यास है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ था। उल्लेखनीय है कि मूल उर्दू पाण्डुलिपि का लेखन-काल 1 अक्टूबर, 1922 से 1 अप्रैल, 1924 तक ठहरता है जो कि पाण्डुलिपि पर ही अंकित है। 1 फरवरी, 1925 को 'रंगभूमि' उपन्यास गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसकी पाण्डुलिपि पर मुंशी जी के अपने अक्षरों में यह भी लिखा हुआ है — Hindi finished dated August 12, 1924. इसके प्रथम संस्करण में सम्पादक के रूप में दुलारेलाल भार्गव का वक्तव्य भी छपा है, जिस पर 1 फरवरी, 1925 की तारीख अंकित है। प्रथम संस्करण में 5000 प्रतियां छपने की सूचना भी मिलती है। 'रंगभूमि' के उर्दू रूप 'चौगाने-हस्ती' का प्रथम संस्करण 1928 में दारुल इशाअत, लाहौर ने प्रकाशित किया।

प्रेमचन्द के लेखन का सबसे प्रधान गुण उनकी व्यापक सहानुभूति है जो समाज के प्रत्येक वर्ग के साथ है। उनकी रचनाओं में विविधता भरे व्यापक समाज का वास्तविक चित्रण है।

अगस्त, 1927 में मासिक पत्रिका 'सुधा' के प्रथम अंक में 'रंगभूमि' का विज्ञापन प्रकाशित हुआ था जिसमें 'रंगभूमि' को हिन्दी उपन्यासों का चक्रचूड़ामणि कहा गया। 'रंगभूमि' की व्याख्या कुछ इस तरह थी — लेखक ने समाज के किसी अंग को नहीं छोड़ा — ग्रामीण भी हैं, पूंजीपति भी हैं, देश-सेवक भी हैं; सभी अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षा के साथ रंगभूमि में आते और अपना-अपना खेल दिखा चले जाते हैं। विद्वान्, धनी, अनुभवी, सभी श्रेणी के खिलाड़ी आपके सामने आते हैं और सभी सुखी जीवन का रहस्य न जानने के कारण असफल होते हैं, सब ठोकरें खाते और कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं। केवल एक दीन, हीन, निर्बल, अंधा, दरिद्र प्राणी अंत तक आप को अपनी लीलाओं से मुग्ध करता है, और जब उसकी लीला समाप्त हो जाती है, तो आप मन में कह उठते हैं, यही सफल जीवन है, यही जीवन्मुक्त पुरुष है।

इसकी भाषा सरल और सरस है, वर्णन-शैली अत्यंत हृदयग्राहिणी है, भावव्यंजना बड़ी मर्मस्पर्शी है, और चरित्र-चित्रण, जो उपन्यास का सर्वप्रधान अंग माना गया है, इतनी सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है कि पढ़कर लेखक के मनोवैज्ञानिक अनुभव का कायल होना पड़ता है।

यह उपन्यास यथार्थवादी दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों एवं परिस्थितियों का सजीव चित्रण करते हुए बदलती हुई मान्यताओं की ओर भी संकेत करता है। गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित इस कालजयी रचना में प्रेमचन्द ने एक नये जीवन-दर्शन को स्थापित करने की चेष्टा की है। राष्ट्रीय भावना को उद्बुद्ध करते हुए समाज और देश को विकास के पथ पर अग्रसर होने की नई चेतना प्रदान की है।

कुछ विद्वान् 'रंगभूमि' के व्यापक कथानक, विशाल पात्र संख्या, वैविध्यपूर्ण चरित्रांकन और महान् लक्ष्य के कारण इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा देते हैं। इसका कथानक व्यापक अवश्य है, अनियंत्रित अथवा बिखरा हुआ नहीं है। इसमें एक क्रमबद्धता और गठन है, हाँ वह एक बैठक में तन्मय होकर पढ़ा जा सकने वाला लघु उपन्यास अवश्य नहीं है।

'रंगभूमि' नाम से स्पष्ट है कि स्वयं प्रेमचंद जी ने इस संसार को विशाल रंगभूमि माना है, जिस पर जीवन रूपी विराट् नाटक खेला जाता है। इस नाटक का सूत्रधार ईश्वर है और सांसारिक प्राणी उसके अभिनेता। अतः इस नाटक में हार-जीत, यश-अपयश, लाभ-हानि की चिंता किये बिना अपना-अपना कर्त्तव्य पूरा करने की प्रेरणा दी गई है।

उपन्यास का मुख्य मंच है काशी के पास पांडेपुर, जो एक छोटी-सी बस्ती है, किंतु उसके दृश्य बनारस, उदयपुर की रियासत और भीलों की एक बस्ती में भी घटित होते दर्शाये गए हैं।

'रंगभूमि' में कई परिवार हैं, जो भिन्न-भिन्न वर्गों के हैं। मुख्य रूप से ये पाँच गृहस्थियां इसका कथानक बुनती हैं:

1. कुंवर भरत सिंह और रानी जाह्नवी की।
2. राजा महेन्द्र कुमार और इन्दु की।

3. मिस्टर और मिसेज जॉन सेवक की।
4. ताहिर अली और कुल्सूम की।
5. भैंरों तथा सुभागी की।

इन परिवारों की अपनी-अपनी जीवन-शैली, समस्याएँ एवं चिंताएँ हैं। उपन्यास के कुछ परिवारों के सदस्य भले ही एक परिवार के हों परन्तु सभी भिन्न-भिन्न मान्यताओं, आस्थाओं तथा विचारधाराओं को मानते हैं।

प्रेमचन्द ने एक ओर ब्रिटिश शासित प्रदेशों में स्वायत्त शासन और विधान सभाओं की असहाय स्थिति, पुलिस और न्यायालयों की धांधली तथा रिश्वतखोरी, अधिकारी वर्ग की निरंकुशता, भ्रष्टाचार और अन्याय आदि के वास्तविक चित्र प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर देशी रियासतों में पोलिटिकल एजेन्ट के अधिकारों, राजाओं की भीरुता, प्रजा पर होने वाले अत्याचारों, जेलों में बन्दियों की दुरावस्था का वर्णन भी इस उपन्यास में मिलता है। पांडेपुर के मकानों के सम्बन्ध में तखमीने का अफसर रिश्वत लेकर मुआवज़े के मामले में खूब धाँधली करता है। गाँववालों से मकान खाली कराते समय पुलिस अफ़सर ताहिरअली और उसके सिपाहियों ने मारपीट करते हुए जो लूटमार मचाई, वह तत्कालीन अंग्रेज़ी शासन की क्रूरता एवं अव्यवस्था की परिचायक है। पुलिस सुपरिण्टेन्डेन्ट ब्राउन और क्लार्क निरीह जनता पर अनेक बार गोलियाँ चलाते हैं। क्लार्क की गोली से ही गरीब नेत्रविहीन सूरदास की मृत्यु होती है।

'रंगभूमि' में क्रांतिकारी, सुधारवादी, समाजसेवी और साम्यवादी विचारों के अनुयायियों और उनके मतों का दिग्दर्शन कराकर लेखक ने अपने युग को पूरी तरह प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया है। डाकू के रूप में ख्यात वीरपालसिंह के माध्यम से क्रान्तिकारी विचारधारा का परिचय दिया गया है। उदयपुर का राजा अकर्मण्य है। उसके राज में अधिकारी मनमानी करते हैं और विचार-स्वातंत्र्य के लिए कोई स्थान नहीं। वीरपाल सिंह सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा बुलंद करता है, राज्य के दुष्ट कर्मचारियों की नाक में दम करता है, रियासत का कोष लूटता है और पुलिस के लोगों की हत्या करता है। वह अतिवादी क्रांति का पोषक है। दूसरी ओर डॉ. गांगुली का चरित्र है। डॉ. गांगुली सुधारवादी हैं, उनका विश्वास है कि कौंसिल में जाकर वे देश और जनता का हित कर सकते हैं। इंदु से वह कहते हैं, हमको कोई कह दे कि 'मरकर तुम फिर इसी देश में आएगा और फिर कौंसिल में जा सकेगा, तो हम यमराज से बोलेगा-बाबा, जल्दी कर।' लेकिन अन्त में प्रेमचंद ने उनके इस विश्वास को डिगा हुआ दिखाकर यह बताया है कि डॉ. गांगुली के मार्ग से देश को स्वतन्त्रता नहीं मिल पायेगी, और ना ही देश की अवस्था सुधरेगी।

तमाम तरह के पात्रों के बीच समाजसेवा का व्रत लेने वालों के कई प्रतिनिधि पात्र हैं जैसे रानी जाह्नवी, विनय, इन्द्रदत्त और उनका सेवादल। इंद्रदत्त जनता को शांत करने की कोशिश में मारे गए तो विनय भी विद्रोह को रोकने की कोशिश में गोली का शिकार होकर शहीद हो गए। साम्यवाद की चर्चा कुंवर भरतसिंह के मुख से करवाई अवश्य गई है। किन्तु इस

विचारपद्धति के प्रति उनकी केवल मौखिक सहानुभूति है। वह स्वयं अन्त तक धन से चिपके रहते हैं और अपनी रियासतों को बचाने के लिए उसे कोर्ट ऑफ वार्ड्स के सुपुर्द कर देते हैं। ऐसा ही कुछ राजा महेन्द्रकुमार के साथ भी है। राजा महेन्द्रकुमार भी एक स्थान पर अपने को जनवादी कहते हैं, किन्तु उनका वह दिखावा मात्र है। वह केवल एक राजनीतिक चाल प्रतीत होती है, क्योंकि कर्म से वह अधिकारी वर्ग के संकेत पर नाचने वाले और प्रजा के साथ निष्ठुरतापूर्वक आचरण करने वाले अन्य तत्कालीन उच्चवर्गीय भारतीयों की ही तरह हैं। जब गरीब सूरदास उनका विरोध करता है, तो वह स्पष्ट कहते हैं कि यदि साम्यवाद का यही अर्थ है, तो ईश्वर हमें इससे बचाये। एक जगह मि. क्लार्क सोफ़िया पर बोलशेविकों की एजेन्ट होने का आरोप लगाते हैं। इसी तरह दीवान नीलकंठराव भी साम्यवाद के प्रचारकों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। मि. जानसेवक को भी सारा संसार जनवाद के आतंक से पीड़ित दिखाई देता है। इन पात्रों के कार्य-व्यापार को पढ़ते हुए लगता है कि ये सभी लोग, जिनके मुख से साम्यवाद की भर्त्सना कराई गई है, पूँजीपति, साम्राज्यवादी और सामन्तवादी हैं।

प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' में औद्योगीकरण की महत्त्वपूर्ण समस्या को भी उठाया है। उन्होंने पांडेपुर में फैक्टरी खुल जाने के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले औद्योगीकरण के दुष्परिणामों का जीवन्त चित्रण किया है, जैसे मिठुआ और घीसू का बिगड़ना — चोरी करना, कोठे पर जाना आदि; औरतों का घर से बाहर न निकल पाना, पुतली घर का बन जाना इत्यादि। बीच-बीच में ग्रामीण अंधविश्वासों, छोटे-मोटे झगड़ों और स्वार्थपरता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। एक व्यापक धरातल पर समाज में नारी की असहाय स्थिति का चित्र (सुभागी के द्वारा), भारतीय दाम्पत्य जीवन की विषमता पर विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रकाश, संयुक्त परिवार की आर्थिक समस्या (ताहिरअली के चित्रण द्वारा), भील जीवन की झाँकी आदि द्वारा लेखक ने जीवन को सम्पूर्ण आयामों में चित्रित किया है। यह चित्रण समूचे परिवेश को जीवंत बना देता है। इसमें उच्च, मध्य और निम्न तीनों वर्गों का, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू, सभी धर्मों के अनुयायियों का चित्र प्रस्तुत कर उपन्यास को परिपूर्ण बनाया गया है।

प्रश्न उठ सकता है कि क्या 'रंगभूमि' का सुदीर्घ कथानक अविश्वसनीय रूप से संगठित है? कुछ आलोचकों का कहना है कि सभी कथा-खण्डों में सम्बन्ध-सूत्र तो हैं, लेकिन कहीं-कहीं पर वे ऐसे नहीं जान पड़ते कि कथावस्तु की स्वाभाविक गति से अपने-आप जुड़ते जा रहे हों, लगता है जैसे लेखक जबर्दस्ती उन्हें जोड़ने का प्रयत्न कर रहा है। यह माना जा सकता है कि उदयपुर रियासत तथा पांडेपुर की कथा को जोड़ने वाली कड़ी-विनय-कुछ कमज़ोर है। विनय-सोफी की प्रणय-गाथा, शेष कथा से अलग-थलग प्रतीत होती है। भीलों की बस्ती का प्रसंग भी कटा-छंटा लगता है। ताहिरअली की कथा को अनुपात से अधिक विस्तार दिया गया है। इस दृष्टि से कई आलोचकों ने आरोप लगाया है कि सबल सम्बन्ध-सूत्रों के अभाव में, कथावस्तु में अनियंत्रित फैलाव और शैथिल्य के कारण इसका कथानक सुगठित नहीं हो पाया है।

इसका उत्तर भी कुछ अन्य आलोचकों ने दे दिया है। उनके अनुसार लेखक का लक्ष्य

सीधा-सरल, सुडौल, सुगठित कथानक देना न होकर समाज का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करना है। लेखक की दृष्टि कथावस्तु के गठन पर उतनी नहीं रही जितनी समाज के सम्पूर्ण चित्रण पर रही है। समाज की समग्रता ही इन सम्बन्ध सूत्रों की सीमा है और सम्बन्ध-सूत्रों का शैथिल्य ही इस उपन्यास की विशेषता। अन्ततः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि 'रंगभूमि' का वस्तु-विकास अनियंत्रित नहीं है।

'रंगभूमि' को एक महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा गया है। महाकाव्यात्मक उपन्यास में पात्रों की संख्या बहुत अधिक होती है, साथ ही उसके पात्र अत्यंत सजीव होते हैं। इस उपन्यास में पाँच परिवारों का चित्रण किया गया है जिससे विविधता भरे इस समाज के मानव-स्वभाव और जीवन का विश्वसनीय परिचय मिलता है। प्रेमचन्द ने नागरिक और ग्रामीण, आभिजात्य, मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग, क्रान्तिकारी और समाज सुधारक, देश और समाज के लिए उत्सर्ग करने वाले तथा देशभक्ति और समाज सेवा की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले दंभी, हिन्दू, मुसलमान और ईसाई, देशी रियासतों के शासक और अंग्रेज़ अधिकारी, सहिष्णु और असहिष्णु, उदार मना तथा कट्टर सभी प्रकार के पात्रों का चयन कर भारतीय समाज को उसकी समूची विविधता में यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास के बहुत-से पात्र अपनी छाप हमारे मन पर छोड़ते हैं। सूरदास भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, वह आत्मिक-शक्ति से ओतप्रोत है, उसमें दुर्बल शरीर में आत्मा की भास्वर दीप्ति छिपाए, सिद्धान्तों पर मिटने वाले व्यक्ति के दर्शन होते हैं। इसी तरह स्त्री पात्रों में जाह्नवी सर्वोपरि है। वह आदर्श वीर क्षत्राणी है। उसके जीवन का स्वप्न अपने पुत्र को शिवाजी या महाराणा प्रताप के रूप में देखना है। समय आने पर वह कर्त्तव्य की वेदी पर अपने एकमात्र पुत्र का बलिदान कर देती है। इसके विपरीत राजा महेन्द्रकुमार आभिजात्य वर्ग के उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मन से जनसेवी होते हुए भी अधिकार-लिप्सा, पदलोलुपता, मान और यश के लिए अपने सिद्धान्तों और आत्मा का गला घोंटते रहते हैं। ऐसा ही एक आकर्षक चरित्र कुंवर भरतसिंह का है। कुंवर भरतसिंह को बलपूर्वक देशभक्त एवं समाजसेवी बनाया तो जाता है, पर उनसे रियासत का मोह नहीं छूट पाता। एक अत्यंत आदर्श चरित्र डॉ. गाँगुली का है। डॉ. गाँगुली उस युग के उन उदारमना, सुधारवादी राजनीतिज्ञों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनकी प्रारम्भ में ब्रिटिश-नीति में आस्था थी और जिनका विश्वास था कि धीरे-धीरे ब्रिटिश-शासन भारतीयों को उनके अधिकार दे देगा। वे वैधानिक मार्ग को ही उचित मानते हैं। किन्तु उनका यह विश्वास डगमगा जाता है और अन्त तक आते-आते वे निराशावादी हो गए हैं। जॉनसेवक उद्योगपतियों और व्यावसायिक मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों के गुण-दोषों से समन्वित एक यथार्थवादी पात्र हैं और मिसेज सेवक उन ईसाई-महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जो धार्मिक विचारों में अनुदार ही नहीं, कट्टर हैं, जिसकी जीवनाकांक्षा है यूरोपीय समाज का अभिन्न अंग हो जाना और स्वयं यूरोपियन कहलाना। ईश्वर सेवक द्वारा प्रेमचंद ने ईसाई परिवार के प्रतिनिधि वृद्ध का चित्र अंकित किया है जिसकी अटूट धार्मिक आस्था और सनक उसके बार-बार बोले जाने वाले तकियाकलाम 'ईसू, मुझे अपने दामन में छुपा' से रह-रह कर प्रकट होती है। इसी परिवार के

सदस्य सोफी और प्रभुसेवक धार्मिक उदारता, मानवता और भ्रातृ-भाव के प्रतिनिधि चरित्र हैं। प्रेमचन्द ने व्यापक पृष्ठभूमि के रूप में ऐसे कई प्रसंग उपन्यास के आरम्भ में ही दिए हैं।

उपन्यास को पढ़ते हुए हम अनुभव करते हैं कि प्रेमचंद ग्रामीण जीवन के कुशल चितेरे हैं। उन्होंने ग्रामीण-जीवन की झाँकी देने के लिए 'रंगभूमि' में अनेक पात्रों-दयागिरि, जगधर, नायकराम पंडा, ठाकुरदीन, भैरो एवं उसकी माँ, बजरंगी, जमुनी, सुभागी, ताहिरअली, उसकी पत्नी कुल्सूम और विमाताओं-जैनब एवं रकिया बेगम की सृष्टि की है। इन सजीव पात्रों के माध्यम से उन्होंने मनुष्य मात्र के पारस्परिक संघर्ष, ईर्ष्या-द्वेष के भाव, स्वार्थपरता, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, सम्मिलित परिवार की दुरावस्था आदि के चित्र प्रस्तुत किए हैं। समग्रतः हम पाते हैं कि 'रंगभूमि' में भारतीय समाज के विविधा भरे जीवन के प्रतिनिधि पात्र चित्रित किए गए हैं। उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज के सम्पूर्ण चरित्रांकन की विविधता को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर भी प्रेमचंद कुछ विशिष्ट पात्रों यथा सूरदास, सोफी, विनय, नायकराम पंडा, इन्दु आदि की व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रभावपूर्ण उद्घाटन करने में अत्यन्त सफल हुए हैं। चरित्रांकन की यह सफलता ही प्रेमचंद को कालजयी कथाकारों में अप्रतिम स्थान देती है। यदि किसी परिवार को लिया गया है तो उसके एक-एक पात्र की कथा विस्तारपूर्वक एवं बड़े मनोयोग से कही गई है। लेखक ने इसमें छोटे-से-छोटे पात्र की चारित्रिक विशेषता और कार्यकलाप का ध्यान रखा है साथ ही उनके मनोभावों को भी उकेरा है। लेखक ने सबके साथ न्याय किया है। इस उपन्यास में इतनी बड़ी संख्या में और व्यापक भिन्नताओं से युक्त प्रवृत्तियों के पात्रों की सृष्टि की गई है कि वह सामान्य उपन्यासों से भिन्न एक अद्भुत कृति बन गयी है।

इस वृहदाकार उपन्यास को संक्षिप्त करना असंभव सा कार्य था। मुख्य चिन्ता यह थी कि लेखक का मूल उद्देश्य आहत न हो। उपन्यास की आत्मा को कैसे सुरक्षित रखा जाए। प्रयास यही रहा है कि इनकी रक्षा हो सके। प्रेमचंद की भाषा के साथ छेड़छाड़ किसी स्तर पर नहीं की गई है। हाँ, जो वर्णन अतिशय जान पड़े हैं, उनको ही हटाया गया है। किन्तु कथा-सूत्र भंग न हो इसका भी ध्यान रखा गया है।

रंगभूमि

विषय-सूची

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19

20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44

45
46
47
48
49
50
उर्दू-हिन्दी शब्दावली
प्रेमचन्दः उपन्यास-प्रकाशन की समय-रेखा

1

शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है। उसके मध्य भाग में उनके लड़कों की पाठशालाएँ और उनके मुकदमेबाजी के अखाड़े होते हैं, जहाँ न्याय के बहाने ग़रीबों का गला घोंटा जाता है। शहर के आस-पास ग़रीबों की बस्तियाँ होती हैं। बनारस में पाँड़ेपुर ऐसी ही बस्ती है। वहाँ न शहरी दीपकों की ज्योति पहुँचती है, न शहरी छिड़काव के छींटे, न शहरी जल-स्रोतों का प्रवाह। सड़क के किनारे छोटे-छोटे बनियों और हलवाइयों की दूकानें हैं, और उनके पीछे कई इक्केवाले, गाड़ीवान, ग्वाले और मज़दूर रहते हैं। दो-चार घर बिगड़े सफ़ेदपोशों के भी हैं, जिन्हें उनकी हीनावस्था ने शहर से निर्वासित कर दिया है। इन्हीं में एक ग़रीब और अंधा रहता है, जिसे लोग सूरदास कहते हैं। भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिये न नाम की ज़रूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना-बनाया नाम है, और भीख माँगना बना-बनाया काम है। उनके गुण और स्वभाव भी जगत्-प्रसिद्ध हैं—गाने-बजाने में विशेष रुचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, उनके स्वाभाविक लक्षण हैं। बाह्य दृष्टि बंद और अंतर्दृष्टि खुली हुई।

सूरदास एक बहुत ही क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति था। उसे दैव ने कदाचित् भीख माँगने ही के लिये बनाया था। वह नित्यप्रति लाठी टेकता हुआ पक्की सड़क पर आ बैठता और राहगीरों की जान की खैर मनाता। 'दाता! भगवान् तुम्हारा कल्यान करें—' यही उसकी टेक थी। पैदल चलनेवालों को वह अपनी जगह पर बैठे-बैठे दुआएँ देता था। लेकिन जब कोई इक्का आ निकलता, तो वह उसके पीछे दौड़ने लगता, और बग्घियों के साथ तो उसके पैरों में पर लग जाते थे। प्रातःकाल से संध्या तक उसका समय शुभ कामनाओं ही में कटता था।

कार्तिक का महीना था। वायु में सुखद शीतलता आ गयी थी। संध्या हो चुकी थी। सूरदास अपनी जगह पर बैठा हुआ किसी इक्के या बग्घी की आवाज़ पर कान लगाये था। सड़क के दोनों ओर पेड़ लगे हुए थे। गाड़ीवानों ने उनके नीचे गाड़ियाँ ढील दीं। उनके पछाईं बैल टाट के टुकड़ों पर खली और भूसा खाने लगे। बैलों के गले में बँधी हुई घंटियाँ मजीरों का काम दे रही थीं। गनेस गाड़ीवान ने सूरदास से पूछा—क्यों भगत, ब्याह करोगे?

सूरदास ने गरदन हिलाकर कहा—कहीं है डौल?

गनेस—हाँ, है क्यों नहीं। एक गाँव में एक सुरिया है, तुम्हारी ही जात-बिरादरी की है, कहो तो बातचीत पक्की करूँ? तुम्हारी बरात में दो दिन मज़े से बाटियाँ लगें।

सूरदास—कोई जगह बताते, जहाँ धन मिले, और इस भिखमंगी से पीछा छूटे। अभी अपने ही पेट की चिन्ता है, तब एक अंधी की और चिन्ता हो जायेगी। ऐसी बेड़ी पैर में नहीं डालता। बेड़ी ही है, तो सोने की तो हो।

गनेस—लाख रुपये की मेहरिया न पा जाओगे। रात को तुम्हारे पैर दबाएगी, सिर में तेल डालेगी, तो एक बार फिर जवान हो जाओगे। ये हड्डियाँ न दिखायी देंगी।

सूरदास—तब तो और भी दुर्गति होगी। ये हड्डियाँ देखकर ही तो लोगों को दया आ जाती है।

सहसा एक फ़िटन आती हुई सुनाई दी। सूरदास उठ खड़ा हुआ। यही कमाई का समय था। इसी समय शहर के रईस और महाजन हवा खाने आते थे। फ़िटन ज्यों ही सामने आयी, सूरदास उसके पीछे 'दाता! भगवान् तुम्हारा कल्यान करें' कहता हुआ दौड़ा।

फ़िटन में सामने की गद्दी पर मि. जॉन सेवक और उनकी पत्नी मिसेज़ जॉन सेवक बैठी हुई थीं। दूसरी गद्दी पर उनका जवान लड़का प्रभु सेवक और छोटी बहन सोफ़िया सेवक थी। जॉन सेवक दुहरे बदन के गोरे-चिट्टे आदमी थे। सिर और दाढ़ी के बाल खिचड़ी हो गये थे। पहनावा अँगरेज़ी था, जो उन पर खूब खिलता था। मुख आकृति से गरूर और आत्मविश्वास झलकता था। मिसेज़ सेवक के चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, जिसे सुनहरी ऐनक भी न छिपा सकती थी। प्रभु सेवक की मसें भीग रही थीं, छरहरा डील, इकहरा बदन, निस्तेज मुख, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर गम्भीरता और विचार का गाढ़ा रंग नज़र आता था। मिस सोफ़िया बड़ी-बड़ी रसीली आँखोंवाली, लज्जाशील युवती थी। सिर से पाँव तक चेतना ही चेतना थी, जड़ का कहीं आभास तक न था।

सूरदास फ़िटन के पीछे दौड़ता चला आता था। इतनी दूर तक और इतने वेग से कोई मँजा हुआ खिलाड़ी भी न दौड़ सकता था। मिसेज़ सेवक ने नाक सिकोड़कर कहा—इस दुष्ट की चीख ने तो कान के परदे फाड़ डाले। क्या यह दौड़ता ही चला जायेगा?

मि. जॉन सेवक बोले—इस देश के सिर से यह बला न-जाने कब टलेगी? जिस देश में भीख माँगना लज्जा की बात न हो, यहाँ तक कि सर्वश्रेष्ठ जातियाँ भी जिसे अपनी जीवन-वृत्ति बना लें, जहाँ महात्माओं का एकमात्र यही आधार हो, उसके उद्धार में अभी शताब्दियों की देर है।

प्रभु सेवक—यहाँ यह प्रथा प्राचीन काल से चली आती है। वैदिक काल में राजाओं के लड़के भी गुरुकुलों में विद्या-लाभ करते समय भीख माँगकर अपना और अपने गुरु का पालन करते थे।

मिसेज़ सेवक—साईस, इस अंधे से कह दो, भाग जाये, पैसे नहीं हैं।

सोफ़िया—नहीं मामा, पैसे हों तो दे दीजिए। बेचारा आधे मील से दौड़ा आ रहा है, निराश हो जायेगा। उसकी आत्मा को कितना दुःख होगा।

माँ—तो उससे किसने दौड़ने को कहा था? उसके पैरों में दर्द हो तो हो।

सोफ़िया—नहीं, अच्छी मामा, कुछ दे दीजिए, बेचारा कितना हाँफ रहा है।

प्रभु सेवक ने जेब से केस निकाला; किन्तु ताँबे या निकिल का कोई टुकड़ा न निकला, और चाँदी का कोई सिक्का देने में माँ के नाराज़ होने का भय था। बहन से बोले—सोफ़ी, खेद है, पैसे नहीं निकले। साईस, अंधे से कह दो, धीरे-धीरे गोदाम तक चला आये; वहाँ शायद पैसे मिल जायें।

किन्तु सूरदास को संतोष कहाँ? जानता था, गोदाम पर कोई भी मेरे लिये खड़ा न रहेगा; कहीं गाड़ी आगे बढ़ गयी, तो मेहनत बेकार हो जायेगी। गाड़ी का पीछा न छोड़ा, पूरे एक मील तक दौड़ता चला गया। यहाँ तक कि गोदाम आ गया और फ़िटन रुकी। सब लोग उतर पड़े। सूरदास भी एक किनारे खड़ा हो गया। हाँफते-हाँफते बेदम हो रहा था।

मि. जॉन सेवक ने यहाँ चमड़े की आढ़त खोल रखी थी। ताहिरअली नाम का व्यक्ति उसका गुमाश्ता था। बरामदे में बैठा हुआ था। साहब को देखते ही उसने सलाम किया।

जॉन सेवक ने पूछा—कहिए खाँ साहब, चमड़े की आमदनी कैसी है?

ताहिर—हुज़ूर, अभी जैसी होनी चाहिए, वैसी तो नहीं है; मगर उम्मीद है कि आगे अच्छी होगी।

जॉन सेवक—कुछ दौड़-धूप कीजिए, एक जगह बैठे रहने से काम न चलेगा। आस-पास के देहातों में चक्कर लगाया कीजिए। मेरा इरादा है कि म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब से मिलकर यहाँ एक शराब और ताड़ी की दूकान खुलवा दूँ। तब आस-पास के नीच जाति के लोग यहाँ रोज़ आयेंगे, और आपको उनसे मेल-जोल करने का मौका मिलेगा। आजकल इन छोटी-छोटी चालों के बग़ैर काम नहीं चलता। मुझी को देखिए, ऐसा शायद ही कोई दिन जाता होगा, जिस दिन शहर के दो-चार धनी-मानी पुरुषों से मेरी मुलाक़ात न होती हो। दस हज़ार की भी एक पालिसी मिल गयी, तो कई दिनों की दौड़धूप ठिकाने लग जाती है।

ताहिर—हुज़ूर, मुझे खुद फ़िक्र है। क्या जानता नहीं हूँ कि मालिक को चार पैसे का नफ़ा न होगा, तो वह यह काम करेगा ही क्यों? मगर हुज़ूर ने मेरी जो तनख्वाह मुक़र्रर की है, उसमें गुज़ारा नहीं होता।

जॉन सेवक—कुछ दिन काम कीजिए, तरक़्क़ी होगी न। कहाँ है हिसाब-किताब, देखूँ।

ताहिरअली ने हिसाब की बही सामने लाकर रख दी। दो-चार पन्ने उलट-पलटकर देखने के बाद नाक सिकोड़कर बोले—अभी आपको हिसाब-किताब लिखने का सलीक़ा नहीं है, उस पर आप कहते हैं, तरक़्क़ी कर दीजिए। खरीदार को प्रति खाता एक आना दस्तूरी मिलती है, वह कहीं दर्ज ही नहीं है!

ताहिर—क्या उसे भी दर्ज कर दूँ?

जॉन सेवक—क्यों, वह मेरी आमदनी नहीं है?

ताहिर—मैंने तो समझा कि वह मेरा हक़ है।

जॉन सेवक—हरगिज़ नहीं, मैं आप पर ग़बन का मामला चला सकता हूँ। (त्योरियाँ

बदलकर) मुलाज़िमों का हक़ है! खूब! आपका हक़ तनख्वाह, इसके सिवा आपको कोई हक़ नहीं है।

ताहिर—हुज़ूर, अब आइंदा ऐसी ग़लती न होगी।

जॉन सेवक—अब तक आपने इस मद में जो रक़म वसूल की है, वह आमदनी में दिखाइए। हिसाब-किताब के मामले में मैं ज़रा भी रिआयत नहीं करता।

ताहिर—हुज़ूर, बहुत छोटी रक़म होगी।

जॉन सेवक—कुछ मुज़ायक़ा नहीं, एक ही पाई सही; वह सब आपको भरनी पड़ेगी। अभी वह रक़म छोटी है, कुछ दिनों में उसकी तादाद सैकड़ों तक पहुँच जायेगी। अच्छा चलिए, वह ज़मीन कहाँ है जिसका आपने ज़िक्र किया था?

गोदाम के पीछे की ओर एक विस्तृत मैदान था। यहाँ आस-पास के जानवर चरने आया करते थे। जॉन सेवक यह ज़मीन लेकर यहाँ सिगरेट बनाने का एक कारखाना खोलना चाहते थे। प्रभु सेवक को इसी व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेजा था। जॉन सेवक के साथ प्रभु सेवक और उनकी माता भी ज़मीन देखने चलीं। कहाँ कारखाना होगा, कहाँ गोदाम, कहाँ दफ़्तर, कहाँ मैनेजर का बँगला, कहाँ श्रमजीवियों के कमरे, कहाँ कोयला रखने की जगह और कहाँ से पानी आयेगा, इन विषयों पर दोनों आदमियों में देर तक बातें होती रहीं। अंत में मिस्टर सेवक ने ताहिरअली से पूछा—यह किसकी ज़मीन है?

ताहिर—हुज़ूर, यह तो ठीक नहीं मालूम, अभी चलकर यहाँ किसी से पूछ लूँगा, शायद नायकराम पंडा की हो।

साहब—आप उससे यह ज़मीन कितने में दिला सकते हैं?

ताहिर—मुझे तो इसमें भी शक है कि वह इसे बेचेगा भी।

जॉन सेवक—अजी, बेचेगा उसका बाप भी। रुपये के सत्तरह आने दीजिए, और आसमान के तारे मँगवा लीजिए। आप उसे मेरे पास भेज दीजिए, मैं उससे बातें कर लूँगा।

ताहिर—बहुत खूब, उसे कहूँगा।

जॉन सेवक—कहूँगा नहीं, उसे भेज दीजिएगा। अगर आपसे इतना भी न हो सका, तो मैं समझूँगा, आपको सौदा पटाने का ज़रा भी ज्ञान नहीं।

मिसेज़ सेवक—(अँगरेज़ी में) तुम्हें इस जगह कोई अनुभवी आदमी रखना चाहिए था।

जान सेवक—(अँगरेज़ी में) नहीं, मैं अनुभवी आदमियों से डरता हूँ। वे अपने अनुभव से अपना फ़ायदा सोचते हैं, तुम्हें फ़ायदा नहीं पहुँचाते।

ये बातें करते हुए तीनों आदमी फ़िटन के पास गये। पीछे-पीछे ताहिरअली भी थे। यहाँ सोफ़िया खड़ी सूरदास से बातें कर रही थी। प्रभु सेवक को देखते ही बोली—'प्रभु, यह अंधा तो कोई ज्ञानी पुरुष जान पड़ता है, पूरा फ़िलॉसफ़र है।'

मिसेज़ सेवक—तू जहाँ जाती है, वहीं तुझे कोई-न-कोई ज्ञानी आदमी मिल जाता है। क्यों रे अंधे, तू भीख क्यों माँगता है? कोई काम क्यों नहीं करता?

सोफ़िया—(अँगरेज़ी में) मामा, यह अंधा निरा गँवार नहीं है।

सूरदास को सोफ़िया से सम्मान पाने के बाद ये अपमानपूर्ण शब्द बहुत बुरे मालूम हुए। सिर उठाकर बोला—भगवान् ने जन्म दिया है, भगवान् की चाकरी करता हूँ। किसी दूसरे की ताबेदारी नहीं हो सकती।

मिसेज़ सेवक—तेरे भगवान् ने तुझे अंधा क्यों बना दिया? इसलिए कि तू भीख माँगता फिरे? तेरा भगवान् बड़ा अन्यायी है।

सोफ़िया—(अँगरेज़ी में) मामा, इसका अनादर क्यों कर रही हैं, मुझे शर्म आती है।

सूरदास—भगवान् अन्यायी नहीं है, मेरे पूर्व-जन्म की कमाई ही ऐसी थी। जैसे कर्म किये हैं, वैसे फल भोग रहा हूँ। वह क्यों किसी पर अन्याय करने लगा?

सोफ़िया—मैं अगर अंधी होती, तो खुदा को कभी माफ न करती।

सूरदास—मिस साहब, अपने पाप सबको भोगने पड़ते हैं, भगवान का कोई दोष नहीं।

सोफ़िया—मामा, यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। अगर प्रभु ईसू ने अपने रुधिर से हमारे पापों का प्रायश्चित कर दिया, तो फिर सभी ईसाई समान दशा में क्यों नहीं हैं?

मिसेज़ सेवक—सोफ़ी, बड़े अफ़सोस की बात है कि इतनी मोटी-सी बात तेरी समझ में नहीं आती, हालांकि रेवरेंड पिम ने स्वयं कई बार तेरी शंका का समाधान किया है।

प्रभु सेवक—(सूरदास से) तुम्हारे विचार में लोगों को वैरागी हो जाना चाहिए। क्यों?

सूरदास—हाँ जब तक हम वैरागी न होंगे, दुःख से नहीं बच सकते।

जॉन सेवक—शरीर में भभूत मलकर भीख माँगना स्वयं सबसे बड़ा दुःख है; यह हमें दुःखों से क्योंकर मुक्त कर सकता है?

सूरदास—साहब, वैरागी होने के लिए भभूत लगाने और भीख माँगने की ज़रूरत नहीं। वैराग तो मन से होता है। संसार में रहे, पर संसार का होकर न रहे। इसे वैराग कहते हैं।

मिसेज़ सेवक—यह हो ही नहीं सकता कि आदमी पर दुःख-सुख का असर न पड़े। इसी अंधे को अगर इस वक़्त पैसे न मिलें, तो दिल में हज़ारों गालियाँ देगा।

जॉन सेवक—हाँ, इसे कुछ मत दो, देखो, क्या कहता है। अगर ज़रा भी भुन-भुनाया, तो हंटर से बातें करूँगा। सारा वैराग भूल जायेगा। (कोचवान से) गाड़ी फेरो, क्लब होते हुए बँगले चलो।

सोफ़िया—मामा, कुछ तो ज़रूर दे दो, बेचारा आशा लगाकर इतनी दूर दौड़ा आया था।

प्रभु सेवक—ओहो, मुझे तो पैसे भुनाने की याद ही न रही।

जॉन सेवक—हरगिज़ नहीं, कुछ मत दो, मैं इसे वैराग का सबक देना चाहता हूँ।

गाड़ी अभी धीरे-धीरे चल रही थी। इतने में ताहिरअली ने पुकारा—हुज़ूर, यह ज़मीन पण्डा की नहीं, सूरदास की है। यह कह रहे हैं।

साहब ने गाड़ी रुकवा दी, लज्जित नेत्रों से मिसेज़ सेवक को देखा, गाड़ी से उतरकर सूरदास के पास आये, और नम्र भाव से बोले—क्यों सूरदास, यह ज़मीन तुम्हारी है?

सूरदास—हाँ हुज़ूर, मेरी ही है। बाप-दादों की इतनी ही तो निशानी बच रही है।

जॉन सेवक—तब तो मेरा काम बन गया। मैं चिन्ता में था कि न-जाने कौन इसका

मालिक है। उससे सौदा पटेगा भी या नहीं। जब तुम्हारी है, तो फिर कोई चिन्ता नहीं। जब तुम्हारे पास इतनी ज़मीन है, तो तुमने यह भेष क्यों बना रखा है?

सूरदास—क्या करूँ हुज़ूर, भगवान् की जो इच्छा है, वह कर रहा हूँ।

जॉन सेवक—तो अब तुम्हारी विपत्ति कट जायेगी। बस, यह ज़मीन मुझे दे दो। मैं तुम्हें मुँह-माँगा दाम दूँगा।

सूरदास—सरकार, पुरुखों की यही निशानी है, बेचकर उन्हें कौन मुँह दिखाऊँगा?

जॉन सेवक—सड़क पर एक कुआँ बनवा दूँगा। तुम्हारे पुरुखों का नाम चलता रहेगा।

सूरदास—साहब, इस ज़मीन से मुहल्लेवालों का बड़ा उपकार होता है। आस-पास के सब ढोर यहीं चरने आते हैं। बेच दूँगा, तो ढोरों के लिए कोई ठिकाना न रह जायेगा।

जॉन सेवक—कितने रुपये साल चराई के पाते हो?

सूरदास—कुछ नहीं, भगवान् खाने को यों ही दे देते हैं, तो किसी से चराई क्यों लूँ?

जॉन सेवक—(आश्चर्य से) तुमने इतनी ज़मीन चराई के लिए छोड़ रखी है? सोफ़िया सत्य कहती थी कि तुम त्याग की मूर्ति हो। लेकिन जब पशुओं पर इतनी दया करते हो, तो मनुष्यों को कैसे निराश करोगे? मैं यह ज़मीन लिये बिना तुम्हारा गला न छोड़ूगा।

सूरदास—सरकार, यह ज़मीन मेरी है ज़रूर, लेकिन जब तक मुहल्लेवालों से पूछ न लूँ, कुछ कह नहीं सकता। आप इसे लेकर क्या करेंगे?

जॉन सेवक—यहाँ एक कारखाना खोलूँगा, जिससे देश और जाति की उन्नति होगी, ग़रीबों का उपकार होगा, हज़ारों आदमियों की रोटियाँ चलेंगी।

सूरदास—हुज़ूर, मुहल्लेवालों से पूछे बिना मैं कुछ नहीं कह सकता।

जॉन सेवक—अच्छी बात है, पूछ लो। यह लो (जेब से पाँच रुपये निकालकर), मैंने तुम्हें मामूली भिखारी समझ लिया था, उस अपमान को क्षमा करो।

सूरदास—हुज़ूर, मैं रुपये लेकर क्या करूँगा? धर्म के नाते दो-चार पैसे दे दीजिए, तो आपका कल्याण मनाऊँगा। और किसी नाते से मैं रुपये न लूँगा।

जॉन सेवक—तुम्हें दो-चार पैसे क्या दूँ? इसे ले लो, धर्मार्थ ही समझो।

सूरदास—नहीं साहब, धर्म में आपका स्वार्थ मिल गया है, अब यह धर्म नहीं रहा।

जॉन सेवक ने बहुत आग्रह किया, किन्तु सूरदास ने रुपये नहीं लिये। तब वह हारकर गाड़ी पर जा बैठे।

मिसेज़ सेवक ने पूछा—क्या बातें हुईं?

जॉन सेवक—है तो भिखारी, पर बड़ा घमंडी है। पाँच रुपये देता था, न लिये।

मिसेज़ सेवक—है कुछ आशा?

जॉन सेवक—जितना आसान समझता था, उतना आसान नहीं है।

गाड़ी तेज़ हो गयी।

2

सूरदास लाठी टेकता हुआ धीरे-धीरे घर चला। रास्ते में चलते-चलते सोचने लगा—यह है बड़े आदमियों की स्वार्थपरता! पहले कैसे हेकड़ी दिखाते थे, मुझे कुत्ते से भी नीचा समझा; लेकिन ज्यों ही मालूम हुआ कि ज़मीन मेरी है, कैसी लल्लो-चप्पो करने लगे। इन्हें मैं अपनी ज़मीन दिये देता हूँ। पाँच रुपये दिखाते थे, मानो मैंने रुपये देखे ही नहीं। पाँच तो क्या, पाँच सौ भी दें, तो भी ज़मीन न दूँगा।

यह सोचता हुआ वह अपने द्वार पर आया। बहुत ही सामान्य झोंपड़ी थी। कमर से पैसों की छोटी-सी पोटली निकाली, जो आज दिन-भर की कमाई थी। तब झोपड़ी की छान टटोलकर एक थैली निकाली, जो उसके जीवन का सर्वस्व थी। उसमें पैसों की पोटली बहुत धीरे से रखी कि किसी के कानों में भनक भी न पड़े। पेड़ों के नीचे कुछ सूखी टहनियाँ जमाकर रखी थीं, उनसे चूल्हा जलाया। एक कोने में मिट्टी का घड़ा था, चूल्हे के पास हाँडी थी। एक पुराना, चलनी की भाँति छिद्रों से भरा हुआ तवा, एक छोटी-सी कठौती और एक लोटा। बस, यही उस घर की सारी संपत्ति थी। सूरदास ने आज जितना नाज पाया था, वह ज्यों-का-त्यों हाँडी में डाल दिया। कुछ जौ थे, कुछ गेहूँ, कुछ मटर, कुछ चने, थोड़ी-सी जुआर और मुट्ठी भर चावल। ऊपर से थोड़ा-सा नमक डाल दिया। हाँडी को चूल्हे पर चढ़ाकर वह घर से निकला। सड़क पर जाकर एक बनिए की दूकान से थोड़ा-सा आटा और एक पैसे का गुड़ लाया। आटे को गूँधा और तब आध घंटे तक चूल्हे के सामने खिचड़ी का मधुर आलाप सुनता रहा।

हाँडी में कई उबाल आये, षटरस युक्त अवलेह तैयार हुआ। उसने उसे उतारकर नीचे रखा। तवा चढ़ाया और रोटियाँ बनाकर सेंकने लगा। जब रोटियाँ बन गईं तो उसने द्वार पर खड़े होकर पुकारा—'मिट्ठू, आओ बेटा, खाना तैयार है।' किन्तु जब मिट्ठू न आया, तो उसने फिर द्वार पर टट्टी लगायी, और नायकराम के बरामदे में जाकर 'मिट्ठू-मिट्ठू' पुकारने लगा। मिट्ठू वहीं पड़ा सो रहा था, आवाज़ सुनकर चौंका। बारह-तेरह वर्ष का सुन्दर बालक था। यह सूरदास के भाई का लड़का था। माँ-बाप दोनों प्लेग में मर चुके थे। मिट्ठू को सोते पाकर गोद में उठा लिया, और द्वार खोला, लड़के का मुँह धुलवाया, और उसके सामने गुड़ और रोटियाँ रख दीं। मिट्ठू ने रोटियाँ देखीं, तो ठुनककर बोला—मैं रोटी और गुड़ न खाऊँगा। यह कहकर

उठ खड़ा हुआ।

सूरदास—बेटा, बहुत अच्छा गुड़ है, खाओ तो। देखो, कैसी नरम-नरम रोटियाँ हैं।

मिट्ठू—मैं न खाऊँगा।

सूरदास—तो क्या खाओगे बेटा? इतनी रात गये और क्या मिलेगा?

मिट्ठू—मैं तो दूध-रोटी खाऊँगा।

सूरदास—बेटा, इस जून खा लो। सबेरे मैं दूध ला दूँगा।

मिट्ठू रोने लगा। सूरदास उसे बहलाकर हार गया, तो अपने भाग्य को रोता हुआ उठा, लकड़ी सँभाली और टटोलता हुआ बजरंगी अहीर के घर आया, जो उसके झोंपड़े के पास ही था। बजरंगी ने कहा—कैसे चले सूरे? आज बग्घी पर कौन लोग बैठे तुमसे बातें कर रहे थे?

सूरदास—वही गोदाम के साहब थे।

बजरंगी—तुम तो बहुत दूर तक गाड़ी के पीछे दौड़े, कुछ हाथ लगा?

सूरदास—पत्थर हाथ लगा। ईसाइयों में भी कहीं दया-धर्म होता है। मेरी वही ज़मीन लेने को कहते थे।

बजरंगी—गोदाम के पीछेवाली न?

सूरदास—हाँ वही, बहुत लालच देते रहे, पर मैंने हामी नहीं भरी।

सूरदास ने सोचा था, अभी किसी से यह बात न कहूँगा, पर इस समय दूध लेने के लिए खुशामद ज़रूरी थी।

बजरंगी—तुम हामी भरते, तो यहाँ कौन उसे छोड़े देता था। तीन-चार गाँवों के बीच में वही तो ज़मीन है। वह निकल जायेगी, तो हमारी गायें और भैंसें कहाँ जायेंगी?

बजरंगी की स्त्री जमुनी—मैं तो इन्हीं के द्वार पर सबको बाँध आती।

सूरदास—मेरी जान निकल जाये, तब तो बेचूँ ही नहीं, हज़ार-पाँच सौ की क्या गिनती। भौजी, एक घूँट दूध हो तो दे दो। मिठुआ खाने बैठा है। रोटी और गुड़ छूता ही नहीं, बस, दूध-दूध की रट लगाये हुए है।

बजरंगी—ले जाओ, दूध का कौन अकाल है। अभी दुहा है। घीसू की माँ, एक कुल्हिया दूध दे दे सूरे को।

जमुनी—जरा बैठ जाओ सूरे, हाथ खाली हो, तो दूँ।

बजरंगी—वहाँ मिठुआ खाने बैठा है, तैं कहती है, हाथ खाली हो तो दूँ। तुझसे न उठा जाये, तो मैं आऊँ।

जमुनी चटपट रसोई से निकल आयी। एक कुल्हिया में आधा पानी लिया, ऊपर से दूध डालकर सूरदास के पास आयी और विषाक्त हितैषिता से बोली—यह लो, लौंडे की जीभ तुमने ऐसी बिगाड़ दी है कि बिना दूध के कौर नहीं उठाता।

सूरदास ने इसका कुछ जवाब न दिया। दूध की कुल्हिया ली, और लाठी से टटोलता हुआ घर चला। मिट्ठू ज़मीन पर सो रहा था। उसे फिर उठाया, और दूध में रोटियाँ भिगोकर उसे अपने हाथ से खिलाने लगा। जब वह सारी रोटियाँ खा चुका, तो सूरदास ने उसे चटाई पर

लिटा दिया, और हाँडी से अपनी पँचमेल खिचड़ी निकालकर खायी। पेट न भरा, तो हाँड़ी धोकर पी गया। तब फिर मिट्ठू को गोद में उठाकर बाहर आया, द्वार पर टट्टी लगायी और मंदिर की ओर चला।

यह मंदिर ठाकुरजी का था, बस्ती के दूसरे सिरे पर। मंदिर के चारों तरफ़ तीन-चार ग़ज का चौड़ा चबूतरा था। यही मुहल्ले की चौपाल थी। एक पक्का कुआँ भी था, जिस पर जगधर नाम का एक खोमचेवाला बैठा करता था। मंदिर के पुजारी का नाम दयागिरि था, जो इसी मंदिर के समीप एक कुटिया में रहते थे। आठ-नौ बजे रात को, दिन भर के काम-धन्धे से निवृत्त होकर, कुछ भक्तजन जमा हो जाते थे, और घंटे-दो घंटे भजन गाकर चले जाते थे। ठाकुरदीन ढोलक बजाने में निपुण था, बजरंगी करताल बजाता था, जगधर को तँबूरे में कमाल था, नायकराम और दयागिरि सारंगी बजाते थे। जो और कुछ न कर सकता, वह मँजीरा ही बजाता था। सूरदास इस संगत का प्राण था। कबीर, मीरा, दादू, कमाल, पलटू आदि सन्तों के भजन गाता था। उस समय उसका नेत्रहीन मुख अति आनंद से प्रफुल्लित हो जाता था। सारी चिन्ताएँ, सारे क्लेश भक्ति-सागर में विलीन हो जाते थे।

सूरदास मिट्ठू को लिये पहुँचा, तो संगत बैठ चुकी थी। उसे देखते ही नायकराम ने कहा —तुमने बड़ी देर कर दी, आध घंटे से तुम्हारी राह देख रहे हैं।

दयागिरि—पहले रामायण की एक चौपाई हो जाये।

लोगों ने अपने-अपने साज सँभाले। सुर मिला और आध घंटे तक रामायण हुई।

नायकराम—वाह सूरदास वाह! अब तुम्हारे ही दम का जलूसा है।

बजरंगी—कोई दोनों आँखें ले ले, और यह हुनर दे दे, तो मैं खुशी से बदल लूँ।

जगधर—अभी भैरो नहीं आया, उसके बिना रंग नहीं जमता।

बजरंगी—ताड़ी बेचता होगा। पैसे का लोभ बुरा होता है।

जगधर—सूरे का दम उखड़ जाता है, उसका दम नहीं उखड़ता।

बजरंगी—तुम अपना खोंचा बेचो, तुम्हें क्या मालूम, दम किसे कहते हैं। सूरदास जितना दम बाँधते हैं, उतना दूसरा बाँधे, तो कलेजा फट जाये। हँसी-खेल नहीं है।

जगधर—सूरदास के बराबर दुनिया में कोई दम नहीं बाँध सकता। अब खुश हुए।

सूरदास—भैया, इसमें झगड़ा काहे का? मैं कब कहता हूँ कि मुझे गाना आता है। तुम लोगों का हुक्म पाकर, जैसा भला-बुरा बनता है, सुना देता हूँ।

इतने में भैरो भी आकर बैठ गया। बजरंगी ने व्यंग करके कहा—क्या अब कोई ताड़ी पीनेवाला नहीं था? इतनी जल्दी क्यों दूकान बढ़ा दी?

ठाकुरदीन—मालूम नहीं, हाथ-पैर भी धोये हैं या वहाँ से सीधे ठाकुरजी के मंदिर में चले आये। अब सफाई तो कहीं रह ही नहीं गयी।

भैरो—क्या मेरी देह में ताड़ी पुती हुई है?

ठाकुरदीन—भगवान् के दरबार में इस तरह न आना चाहिए। जात चाहे ऊँची हो या नीची; पर सफाई चाहिए ज़रूर।

भैरो—तुम यहाँ नित्य नहाकर आते हो?

ठाकुरदीन—पान बेचना कोई नीच काम नहीं है।

भैरो—जैसे पान, वैसे ताड़ी। पान बेचना कोई ऊँचा काम नहीं है।

ठाकुरदीन—पान भगवान् के भोग के साथ रखा जाता है। बड़े-बड़े जनेऊधारी, मेरे हाथ का पान खाते हैं। तुम्हारे हाथ का तो कोई पानी नहीं पीता।

नायकराम—ठाकुरदीन, यह बात तो तुमने बड़ी खरी कही। सच तो है, पासी से कोई घड़ा तक नहीं छुआता।

भैरो—हमारी दूकान पर एक दिन आकर बैठ जाओ, तो दिखा दूँ, कैसे-कैसे धर्मात्मा और तिलकधारी आते हैं।

नायकराम—ठाकुरदीन, अब इसका जवाब दो। भैरो पढ़ा-लिखा होता, तो वकीलों के कान काटता।

भैरो—मैं तो बात सच्ची कहता हूँ, जैसे ताड़ी वैसे पान, बल्कि परात की ताड़ी को तो लोग दवा की तरह पीते हैं।

जगधर—यारो, दो-एक भजन होने दो। मान क्यों नहीं जाते ठाकुरदीन? तुम्हीं हारे, भैरो जीता, चलो छुट्टी हुई।

नायकराम—वाह, हार क्यों मान लें। सासतरार्थ है कि दिल्लगी। हाँ, ठाकुरदीन कोई जवाब सोच निकालो।

ठाकुरदीन—मेरी दूकान पर खड़े हो जाओ, जी खुश हो जाता है। केवड़े और गुलाब की सुगंध उड़ती है। इसकी दूकान पर तो बदबू के मारे नाक फटने लगती है।

बजरंगी—मुझे जो घंटे-भर के लिए राज मिल जाता, तो सबसे पहले शहर-भर की ताड़ी की दूकानों में आग लगवा देता।

नायकराम—अब बताओ भैरो, इसका जवाब दो।

भैरो—जवाब एक नहीं, सैकड़ों हैं। पान सड़ जाता है, तो कोई मिट्टी के मोल भी नहीं पूछता। यहाँ ताड़ी जितनी ही सड़ती है, उतना ही उसका मोल बढ़ता है।

नायकराम—क्या बात कही है कि जी खुश हो गया। मेरा अख्तियार होता, तो इसी घड़ी तुमको वकालत की सनद दे देता। ठाकुरदीन, अब हार मान जाओ, भैरो से पेश न पा सकोगे।

जगधर—भैरो, तुम चुप क्यों नहीं हो जाते? पंडाजी को तो जानते हो, दूसरों को लड़ाकर तमाशा देखना इनका काम है।

भैरो—क्यों इतना कह दूँ? बात करने में किसी से कम हूँ क्या?

जगधर—तो ठाकुरदीन, तुम्हीं चुप हो जाओ।

ठाकुरदीन—हाँ जी, चुप न हो जाऊँगा, तो क्या करूँगा। यहाँ आये थे कि कुछ भजन-कीर्तन होगा, सो व्यर्थ का झगड़ा करने लगे।

जगधर—अबकी भगवान् से भेंट होगी, तो कहूँगा, किसी पंडे के घर जन्म देना।

नायकराम—भैया, मुझ पर हाथ न उठाओ, दुबला-पतला आदमी हूँ। मैं तो चाहता हूँ, जलपान के लिए तुम्हारे ही खोंचे से मिठाइयाँ लिया करूँ, मगर उस पर इतनी मक्खियाँ उड़ती हैं, ऊपर इतना मैल जमा रहता है कि खाने को जी नहीं चाहता।

जगधर—(चिढ़कर) तुम्हारे न लेने से मेरी मिठाइयाँ सड़ तो नहीं जातीं कि भूखों मरता हूँ? दिन-भर में रुपया-बीस आने पैसे बना ही लेता हूँ। जिसे सेंत-मेंत में रसगुल्ले मिल जायें, वह मेरी मिठाइयाँ क्यों लेगा?

ठाकुरदीन—पंडाजी की आमदनी का कोई ठिकाना नहीं है, जितना रोज मिल जाये, थोड़ा ही है; ऊपर से भोजन घाते में।

दयागिरि—कहीं नहीं ठाकुरदीन, अपनी मेहनत की कमाई सबसे अच्छी। पंडों को यात्रियों के पीछे दौड़ते नहीं देखा है।

नायकराम—बाबा, अगर कोई कमाई पसीने की है, तो वह हमारी कमाई है। हमारी कमाई का हाल बजरंगी से पूछो।

बजरंगी—औरों की कमाई पसीने की होती होगी, तुम्हारी कमाई तो खून की है। जो लोग खोंचा सामने रखकर दिन-भर मक्खी मारा करते हैं, वे क्या जानें, तुम्हारी कमाई कैसी होती है?

जगधर—चलो भी, आये हो मुँहदेखी कहने, सेर-भर दूध ढाई सेर बनाते हो, उस पर भगवान् के भगत हो।

बजरंगी—अगर कोई माई का लाल मेरे दूध में एक बूँद पानी निकाल दे, तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ।

जगधर—अच्छा भाई, तुम जीते, मैं हारा।

बजरंगी—मेरे मिज़ाज को तुम नहीं जानते, चेता देता हूँ। सच कहकर कोई सौ जूते मार ले, लेकिन झूठी बात सुनकर मेरे बदन में आग लग जाती है।

भैरो—बजरंगी, बढ़कर बातें न करो, अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनने से कुछ नहीं होता है। बस, मुँह न खुलवाओ, तुम्हारे दूध से तो मेरी ताड़ी ही अच्छी है।

ठाकुरदीन—भाई, मुँह से जो चाहे ईमानदार बन ले; पर अब दूध सपना हो गया। दूध जब मिलता था, तब मिलता था, एक आँच में अंगुल-भर मोटी मलाई पड़ जाती थी।

दयागिरि—बच्चा, अभी अच्छा-बुरा कुछ मिल तो जाता है। वे दिन आ रहे हैं कि दूध आँखों में आँजने को भी न मिलेगा।

भैरो—हाल तो यह है कि घरवाली सेर के तीन सेर बनाती है, उस पर दावा यह कि हम सच्चा माल बेचते हैं। सच्चा माल बेचो, तो दिवाला निकल जाये।

बजरंगी—पसीने की कमाई खानेवालों का दिवाला नहीं निकलता; दिवाला उनका निकलता है, जो दूसरों की कमाई खा-खाकर मोटे पड़ते हैं। सच्ची कमाई उन्हीं की है, जो छाती फाड़कर धरती से धन निकालते हैं।

बजरंगी ने बात तो कही, लेकिन लज्जित हुआ। इस लपेट में वहाँ के सभी आदमी आ

जाते थे।

नायकराम—तब तो भैया, तुम हमें भी ले बीते। एक पापी तो मैं ही हूँ कि सारे दिन मटरगस्ती करता हूँ, और वह भोजन करता हूँ कि बड़ों-बड़ों को मयस्सर न हो।

ठाकुरदीन—दूसरा पापी मैं हूँ कि शौक की चीज़ बेचकर रोटियाँ कमाता हूँ।

जगधर—तीसरा पापी मैं हूँ कि दिन-भर औन-पौन करता रहता हूँ।

भैरो—तुमसे बड़ा पापी मैं हूँ कि सबको नसा खिलाकर अपना पेट पालता हूँ।

दयागिरि—क्यों बजरंगी, साधु-संत तो सबसे बड़े पापी होंगे कि वे कुछ नहीं करते?

बजरंगी—नहीं बाबा, भगवान् के भजन से बढ़कर और कौन उद्यम होगा? राम-नाम की खेती सब कामों से बढ़कर है।

नायकराम—तो यहाँ अकेले बजरंगी पुन्यात्मा है, और सब-के-सब पापी हैं?

बजरंगी—सच पूछो, तो सबसे बड़ा पापी मैं हूँ कि गउओं का पेट काटकर, उनके बछड़ों को भूखा मारकर अपना पेट पालता हूँ।

सूरदास—भाई, खेती सबसे उत्तम है, बान उससे मद्धिम है; बस, इतना ही फरक है। अब तक तो तुम्हारे ऊपर भगवान् की दया है, अपना-अपना काम करते हो; मगर ऐसे बुरे दिन आ रहे हैं, जब तुम्हें सेवा और टहल करके पेट पालना पड़ेगा, जब तुम अपने नौकर नहीं, पराए के नौकर हो जाओगे, तब तुममें नीतिधरम का निशान भी न रहेगा।

ठाकुरदीन ने चिंतित होकर पूछा—क्यों सूरे, कोई विपत आने वाली है क्या? मुझे तो तुम्हारी बातें सुनकर डर लग रहा है। कोई नई मुसीबत तो नहीं आ रही है?

सूरदास—हाँ, लच्छन तो दिखायी देते हैं, चमड़े के गोदामवाला साहब यहाँ एक तमाकू का कारखाना खोलने जा रहा है। मेरी ज़मीन माँग रहा है। कारखाने का खुलना ही हमारे ऊपर विपत का आना है।

ठाकुरदीन—तो जब जानते ही हो, तो क्यों अपनी ज़मीन देते हो?

सूरदास—मेरे देने पर थोड़े ही है भाई। मैं दूँ, तो भी ज़मीन निकल जायेगी, न दूँ, तो निकल जायेगी। रुपयेवाले सब कुछ कर सकते हैं।

बजरंगी—साहब रुपयेवाले होंगे, अपने घर के होंगे। हमारी ज़मीन क्या खाकर ले लेंगे?

अभी ये ही बातें हो रही थीं कि सैयद ताहिरअली आकर खड़े हो गये, और नायकराम से बोले—पंडाजी, मुझे आपसे कुछ कहना है, ज़रा इधर चले आइए।

बजरंगी—उसी ज़मीन के बारे में कुछ बातचीत करनी है न? वह ज़मीन न बिकेगी।

ताहिर—मैं तुमसे थोड़े ही पूछता हूँ। तुम उस ज़मीन के मालिक-मुख्तार नहीं हो।

बजरंगी—कह तो दिया, वह ज़मीन न बिकेगी, मालिक-मुख्तार कोई हो।

ताहिर—आइए पंडाजी, आइए, इन्हें बकने दीजिए।

नायकराम—आपको जो कुछ कहना हो कहिए; ये सब लोग अपने ही हैं, किसी से परदा नहीं है। कहिए, क्या कहते हैं?

ताहिर—उसी ज़मीन के बारे में बातचीत करनी थी।

नायकराम—तो उस ज़मीन का मालिक तो आपके सामने बैठा हुआ है। जो कुछ कहना है, उसी से क्यों नहीं कहते? मुझे बीच में दलाली नहीं खानी है। जब सूरदास ने साहब के सामने इनकार कर दिया, तो फिर कौन-सी बात बाकी रह गयी?

बजरंगी—इन्होंने सोचा होगा कि पंडाजी को बीच में डालकर काम निकाल लेंगे। साहब से कह देना, यहाँ साहबी न चलेगी।

ताहिर—तुम अहीर हो न, तभी इतने गर्म हो रहे हो। अभी साहब को जानते नहीं हो, तभी बढ़-बढ़कर बातें कर रहे हो। जानते हो, शहर के हाकिमों से उनका कितना रब्त-जब्त है? सीधे से, रजामंदी के साथ दे दोगे, तो अच्छे दाम पा जाओगे; शरारत करोगे, तो ज़मीन भी निकल जायेगी, कौड़ी भी हाथ न लगेगी।

बजरंगी—तुम्हें कुछ तय-कराई मिलनेवाली होगी, तभी इतनी खैरख्वाही कर रहे हो।

जगधर—उनसे जो कुछ मिलनेवाला हो, वह हमीं से ले लीजिए, और उनसे कह दीजिए, ज़मीन न मिलेगी।

ताहिर—खैरख्वाही रुपये के लालच से नहीं है। अपने मालिक की आँख बचाकर एक कौड़ी भी लेना हराम समझता हूँ। खैरख्वाही इसलिए करता हूँ कि उनका नमक खाता हूँ।

जगधर—अच्छा, भूल हुई, माफ कीजिए। मैंने तो संसार के चलन की बात कही थी।

ताहिर—तो सूरदास, मैं साहब से जाकर क्या कह दूँ?

सूरदास—बस, यही कह दीजिए कि ज़मीन न बिकेगी।

ताहिर—मैं फिर कहता हूँ, धोखा खाओगे। साहब ज़मीन लेकर ही छोड़ेंगे।

सूरदास—मेरे जीते-जी तो ज़मीन न मिलेगी। हाँ, मर जाऊँ तो भले ही मिल जाये।

ताहिरअली चले गए, तो भैरो बोला—दुनिया अपना ही फ़ायदा देखती है। बजरंगी, तुम्हारी तो गायें चरती हैं, इसलिए तुम्हारी भलाई तो इसी में है कि ज़मीन बनी रहे। मेरी कौन गाय चरती है? कारखाना खुला, तो मेरी बिक्री चौगुनी हो जायेगी। यह बात तुम्हारे ध्यान में क्यों नहीं आयी? तुम सबकी तरफ़ से वकालत करनेवाले कौन हो? सूरे की ज़मीन है, वह बेचे या रखे, तुम कौन होते हो, बीच में कूदनेवाले?

नायकराम—हाँ बजरंगी, जब तुमसे कोई वास्ता-सरोकार नहीं, तो तुम कौन होते हो बीच में कूदनेवाले? बोलो, भैरो को जवाब दो।

बजरंगी—वास्ता-सरोकार कैसे नहीं? दस गाँवों के जानवर चरने आते हैं। वे कहाँ जायेंगे? इन्हें तो अपनी दूकान की पड़ी हुई है। किसी के घर सेंध क्यों नहीं मारते?

भैरो—सेंध मारो तुम; यहाँ दूध में पानी नहीं मिलाते।

दयागिरि—भैरो, तुम सचमुच बड़े झगड़ालू हो। जब तुम्हें प्रियवचन बोलना नहीं आता, तो चुप क्यों नहीं रहते?

भैरो—ठाकुरजी के बहाने रोज छाछ पा जाते हो न? बजरंगी की जय क्यों न मनाओगे!

नायकराम—पट्ठा बात बेलाग कहता है कि एक बार सुनकर फिर किसी की जबान नहीं खुलती।

ठाकुरदीन—अब भजन-भाव हो चुका। ढोल-मँजीरा उठाकर रख दो।

दयागिरि—तुम कल से यहाँ न आया करो, भैरो।

भैरो—क्यों न आया करें? मंदिर तुम्हारा बनवाया नहीं है। मंदिर भगवान् का है।

बजरंगी—ले अब चुप ही रहना भैरो, बहुत हो चुका। छोटा मुँह, बड़ी बात।

नायकराम—तो भैरो को धमकाते क्या हो? क्या कोई भगोड़ा समझ लिया है? तुमने जब दंगल मारे थे, तब मारे थे, आजकल भैरो की दुहाई है।

भैरो नायकराम के व्यंग्य-हास्य पर झल्लाया नहीं, हँस पड़ा। व्यंग्य में भी रस था।

भैरो का हँसना था कि लोगों ने अपने-अपने साज सँभाले, और भजन होने लगा। सूरदास की सुरीली तान आकाश-मंडल में यों नृत्य करती हुई मालूम होती थी, जैसे प्रकाश-ज्योति जल के अंतस्तल में नृत्य करती है—

"झीनी-झीनी बीनी चदरिया।

काहे कै ताना, काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया?

इँगला-पिंगला ताना-भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।

आठ कँवल-दस-चरखा डोले, पाँच तत्त, गुन तीनी चदरिया;

साईं को सियत मास दस लागै, ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया।

सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़ैं, ओढ़िकै मैली कीनी चदरिया;

दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया।"

बातों में रात अधिक जा चुकी थी। ग्यारह का घंटा सुनाई दिया। लोगों ने ढोलक-मँजीरे समेट दिए। सभा विसर्जित हुई। सूरदास ने मिट्ठू को फिर गोद में उठाया, और अपनी झोंपड़ी में लाकर टाट पर सुला दिया। आप ज़मीन पर लेट रहा।

3

मि. जॉन सेवक का बँगला सिगरा में था। उनके पिता मि. ईश्वर सेवक ने सेना-विभाग में पेंशन पाने के बाद वहीं मकान बनवा लिया था, और अब तक उसके स्वामी थे। यह बँगला उस जमाने में बना था, जब सिगरा में भूमि का इतना आदर न था। अहाते में फूल-पत्तियों की जगह शाक-भाजी और फलों के वृक्ष थे। जिनसे बँगले की शोभा होती थी और फल भी मिलता था। एक किनारे खपरैल का बरामदा था, जिसमें गाय-भैंस पली हुई थीं। दूसरी ओर अस्तबल था। मोटर का शौक न बाप को था, न बेटे को। फ़िटन रखने में किफायत भी थी और आराम भी। उनकी आराम-कुर्सी बँगले के सायबान में पड़ी रहती थी। उस पर वह सुबह से शाम तक बैठे जॉन सेवक की फिजूलखर्ची और घर की बरबादी का रोना रोया करते थे। वह अब भी नियमित रूप से पुत्र को घंटे-दो-घंटे उपदेश दिया करते थे, और शायद इसी उपदेश का फल था कि जॉन सेवक का धन और मान दिनोंदिन बढ़ता जाता था। 'किफायत' उनके जीवन का मूल तत्त्व था। धर्मानुरागी इतने थे कि बिना नागा दोनों वक़्त गिरजाघर जाते। उनकी अपनी अलग सवारी थी। एक आदमी इस तामजान को खींचकर गिरजाघर के द्वार तक पहुँचा आया करता था। पादरी उनका बहुत सम्मान करता था।

प्रातःकाल था। लोग जलपान करके या छोटी हाजिरी खाकर, मेज़ पर से उठे थे। मिजॉन सेवक ने गाड़ी तैयार करने का हुक्म दिया। ईश्वर सेवक ने अपनी कुरसी पर बैठे-बैठे चाय का एक प्याला पिया था, और झुँझला रहे थे कि इसमें शकर क्यों इतनी झोंक दी गयी है। शकर कोई पेट भरने की चीज़ नहीं है। सैकड़ों बार कह चुका हूँ, पर मेरी कौन सुनता है।

मिसेज़ सेवक ने धर्मानुराग और मितव्ययिता का पाठ भलीभाँति अभ्यस्त किया था। लज्जित होकर बोली—पापा, क्षमा कीजिए। आज सोफ़ी ने शकर ज़्यादा डाल दी थी। कल से आपको यह शिकायत न रहेगी।

ईश्वर सेवक ने उदासीन भाव से कहा—मुझे क्या करना है, कुछ कयामत तक तो बैठा रहूँगा नहीं, मगर घर के बरबाद होने के ये ही लक्षण हैं। ईसू, मुझे अपने दामन में छुपा।

मिसेज़ सेवक—मैं अपनी भूल स्वीकार करती हूँ। मुझे अंदाज़ से शकर निकाल देनी चाहिए थी।

ईश्वर सेवक—अरे, तो आज यह कोई नई बात थोड़े ही है! रोज़ तो यही रोना रहता है।

धन कमाना एक बात है, उसका सद्व्यय करना दूसरी बात। होशियार आदमी उसे कहते हैं, जो धन का उचित उपयोग करे। इधर से लाकर उधर खर्च कर दिया, तो क्या फ़ायदा? मगर मेरी कौन सुनता है? ईसू, मुझे अपने दामन में छुपा। सोफ़ी, यहाँ आ बेटी, कलामेपाक सुना।

सोफ़िया प्रभु सेवक के कमरे में बैठी हुई ईसा मसीह के इस कथन पर शंका कर रही थी कि गरीबों के लिए आसमान की बादशाहत है, और अमीरों का स्वर्ग जाना उतना ही असंभव है जितना ऊंट का सुई की नोक में जाना। सोफ़िया सत्यासत्य के निरूपण में सदैव रत रहती थी। धर्मतत्त्वों को बुद्धि की कसौटी पर कसना उसका स्वाभाविक गुण था, और जब तक तर्क-बुद्धि स्वीकार न करे, वह केवल धर्म-ग्रंथों के आधार पर किसी सिद्धांत को न मान सकती थी।

सोफ़िया—मैं इस विषय पर बड़ी देर से गौर कर रही हूँ कि प्रभु मसीह ने दरिद्रता को इतना महत्त्व क्यों दिया और धन-वैभव को क्यों निषिद्ध बतलाया?

प्रभु सेवक—जाकर मसीह से पूछा।

सोफ़िया—तुम क्या समझते हो?

प्रभु सेवक—मैं कुछ नहीं समझता, और न कुछ समझना ही चाहता हूँ। मैं धर्म को बुद्धि से बिलकुल अलग समझता हूँ। धर्म को तोलने के लिए बुद्धि उतनी ही अनुपयुक्त है, जितना बैंगन तोलने के लिए सुनार का काँटा। धर्म, धर्म है, बुद्धि, बुद्धि। इन झगड़ों में व्यर्थ सिर खपाती हो। सुना, आज पापा चलते-चलते क्या कह गये!

सोफ़िया—नहीं, मेरा ध्यान उधर न था।

प्रभु सेवक—यही कि मशीनों के लिए शीघ्र आर्डर दे दो। उस ज़मीन को लेने का इन्होंने निश्चय कर लिया। चाहते हैं कि जल्द-से-जल्द बुनियाद पड़ जाये, लेकिन मेरा जी इस काम से घबराता है। मैंने यह व्यवसाय सीखा तो; पर सच पूछो, तो मेरा दिल वहाँ न लगता था। अपना समय दर्शन, साहित्य, काव्य की सैर में काटता था। सच पूछो, तो मैं इसीलिए वहाँ गया ही था। अब घोर संकट में पड़ा हुआ हूँ। अगर इस काम में हाथ नहीं लगाता, तो पापा को दुःख होगा, वह समझेंगे कि मेरे हज़ारों रुपये पानी में गिर गये! काम शुरू करता हूँ तो यह भय होता है कि कहीं मेरी बेदिली से लाभ के बदले हानि न हो। यह लो, दादा को तुम्हारी याद आ गयी।

सोफ़िया—यह विपत्ति मेरे सिर बुरी पड़ी है। जहाँ पढ़ने कुछ बैठी कि इनका बुलावा पहुँचा। आजकल 'उत्पत्ति' की कथा पढ़वा रहे हैं। बिलकुल बेगार करनी पड़ती है।

मिसेज़ सेवक बेटी को बुलाने आ रही थीं। अंतिम शब्द उनके कानों में पड़ गये। तिलमिला गईं। आकर बोलीं—बेशक, ईश्वर-ग्रंथ पढ़ना बेगार है, मसीह का नाम लेना पाप है, तुझे तो उस भिखारी अंधे की बातों में आनन्द आता है, हिंदुओं के गपोड़े पढ़ने में तेरा जी लगता है; ईश्वर-वाक्य तो तेरे लिए जहर है। खुदा तेरे हाल पर रहम करे।

सोफ़िया—महात्मा ईसा के प्रति कभी मेरे मुँह से कोई अनुचित शब्द नहीं निकला। मैं उन्हें धर्म, त्याग और सद्विचार का अवतार समझती हूँ! लेकिन उनके प्रति श्रद्धा रखने का यह आशय नहीं है कि भक्तों ने उनके उपदेशों में जो असंगत बातें भर दी हैं या उनके नाम से

जो विभूतियाँ प्रसिद्ध कर रखी हैं, उन पर भी ईमान लाऊँ!

मिसेज़ सेवक—तुझे ईश्वर-ग्रंथ के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना पड़ेगा, वरना तू अपनी गणना प्रभु मसीह के भक्तों में नहीं कर सकती।

सोफ़िया—तो मैं मजबूर होकर अपने को उनकी उम्मत से बाहर समझूँगी; क्योंकि बाइबिल के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना मेरे लिए असम्भव है!

मिसेज़ सेवक—तू विधर्मिणी और भ्रष्टा है। प्रभु मसीह तुझे कभी क्षमा न करेंगे!

सोफ़िया—अगर धार्मिक संकीर्णता से दूर रहने के कारण ये नाम दिए जाते हैं, तो मुझे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

प्रभु सेवक—मामा, आप घोर अन्याय कर रही हैं। सोफ़िया यह कब कहती है, कि मुझे प्रभु मसीह पर विश्वास नहीं है?

मिसेज़ सेवक—हाँ, वह यही कह रही है, तुम्हारी समझ का फेर है। ईश्वर-ग्रंथ पर ईमान न लाने का और क्या अर्थ हो सकता है?

प्रभु सेवक—मैंने इसे मसीह के आदेशों का उल्लंघन करते कभी नहीं देखा।

सोफ़िया—धार्मिक विषयों में मैं अपनी विवेक-बुद्धि के सिवा और किसी के आदेशों को नहीं मानती।

मिसेज़ सेवक—मैं तुझे अपनी संतान नहीं समझती, और तेरी सूरत नहीं देखना चाहती।

यह कहकर सोफ़िया के कमरे में घुस गईं, और उसकी मेज़ पर से बौद्ध-धर्म और वेदांत के कई ग्रंथ उठाकर बाहर बरामदे में फेंक दिए! उसी आवेश में उन्हें पैरों से कुचला और जाकर ईश्वर सेवक से बोलीं—पापा, आप सोफ़ी को नाहक बुला रहे हैं, वह प्रभु मसीह की निंदा कर रही है।

मि. ईश्वर सेवक ऐसे चौंके, मानो देह पर आग की चिनगारी गिर पड़ी हो, और अपनी ज्योति-विहीन आँखों को फाड़कर बोले—क्या कहा, सोफ़ी प्रभु मसीह की निंदा कर रही है! सोफ़ी?

मिसेज़ सेवक—हाँ-हाँ, सोफ़ी। कहती है, मुझे उनकी विभूतियों पर, उनके उपदेशों और आदेशों पर, विश्वास नहीं है।

ईश्वर सेवक—(ठंडी साँस खींचकर) प्रभु मसीह, मुझे अपने दामन में छुपा, अपनी भटकती हुई भेड़ों को सच्चे मार्ग पर ला। कहाँ है सोफ़ी? मुझे उसके पास ले चलो, मेरे हाथ पकड़कर उठाओ। खुदा, मेरी बेटी के हृदय को अपनी ज्योति से जगा।

मिसेज़ सेवक—मैं सब कुछ करके हार गयी। उस पर खुदा की लानत है। मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहती।

ईश्वर सेवक—ऐसी बातें न करो। वह मेरे खून का खून, मेरी जान की जान है। मैं उसे कलेजे से लगाऊँगा। प्रभु मसीह ने विधर्मियों को छाती से लगाया था, कुकर्मियों को अपने दामन में शरण दी थी, वह मेरी सोफ़िया पर अवश्य दया करेंगे।

जब मिसेज़ सेवक ने अब भी सहारा न दिया, तो ईश्वर सेवक लकड़ी के सहारे उठे और

लाठी टेकते हुए सोफ़िया के कमरे में द्वार पर आकर बोले—बेटी सोफ़ी, कहाँ है? इधर आ बेटी, तुझे गले से लगाऊँ। मेरा मसीह खुदा का दुलारा बेटा था, दीनों का सहायक, निर्बलों का रक्षक, दरिद्रों का मित्र, डूबतों का सहारा, पापियों का उद्धारक, दुखियों को पार लगानेवाला! बेटी, ऐसा और कौन-सा नबी है, जिसका दामन इतना चौड़ा हो, जिसकी गोद में संसार के सारे पापों, सारी बुराइयों के लिए स्थान हो?

यह कहकर उन्होंने सोफ़ी को हृदय से लगा लिया। माता के कठोर शब्दों ने उसके निर्बल क्रोध को जागृत कर दिया था। अपने कमरे में आकर रो रही थी, बार-बार मन उद्विग्न हो उठता था। सोचती थी, अभी, इसी क्षण, इस घर से निकल जाऊँ। प्रभु सेवक को अपनी बहन से सहानुभूति थी। धर्म पर उन्हें उससे कहीं कम श्रद्धा थी। किन्तु वह अपने स्वतंत्र विचारों को अपने मन ही में संचित रखते थे। प्रभु सेवक ने पहले अपने कमरे से झाँककर देखा कि कहीं मामा तो नहीं देख रही हैं; नहीं तो मुझ पर वज्र-प्रहार होने लगेंगे। तब चुपके से सोफ़िया के पास आये और बोले—सोफ़ी, क्यों, नादान बनती हो? साँप के मुँह में उँगली डालना कौन-सी बुद्धिमानी है? अपने मन में जो विचार रख, जिन बातों को जी चाहे, मानो; पर इस तरह ढिंढोरा पीटने से क्या फ़ायदा?

सोफ़िया ने भाई को अवहेलना की दृष्टि से देखकर कहा—मर्म के विषय में मैं कर्म को वचन के अनुरूप ही रखना चाहती हूँ। धर्म का स्वाँग भरना मेरी क्षमता से बाहर है। अगर मेरे लिए इस घर में स्थान नहीं है, तो ईश्वर का बनाया हुआ विस्तृत संसार तो है! कहीं भी अपना निर्वाह कर सकती हूँ। मैं सारी विडम्बनाएँ सह लूँगी, लोक-निंदा की मुझे चिन्ता नहीं है; मगर अपनी ही नज़रों में गिरकर मैं ज़िंदा नहीं रह सकती।

सहसा ईश्वर सेवक ने जाकर उसे छाती से लगा लिया, और अपने भक्ति-गद्‌गद नेत्र-जल से उसके संतप्त हृदय को शांत करने लगे। सोफ़िया को उनकी श्रद्धालुता पर दया आ गयी। कौन ऐसा निर्दय प्राणी है, जो भोले-भाले बालक के कठघोड़े का उपहास करके उसका दिल दुःखाए, उसके मधुर स्वप्न को विश्रृंखल कर दे?

सोफ़िया ने कहा—दादा, आप आकर इस कुर्सी पर बैठ जायें, खड़े-खड़े आपको तकलीफ होती है।

ईश्वर सेवक—जब तक तू अपने मुख से न कहेगी कि मैं प्रभु मसीह पर विश्वास करती हूँ, तब तक मैं तेरे द्वार पर, यों ही, भिखारियों की भाँति खड़ा रहूँगा।

सोफ़िया—दादा, मैंने यह कभी नहीं कहा कि मैं प्रभु ईसू पर ईमान नहीं रखती, या मुझे उन पर श्रद्धा नहीं है। मैं उन्हें महान् आदर्श पुरुष और क्षमा तथा दया का अवतार समझती हूँ, और समझती रहूँगी।

ईश्वर सेवक ने सोफ़िया के कपोलों का चुम्बन करके कहा—बस, मेरा चित्त शांत हो गया। ईसू तुझे अपने दामन में लें। मैं बैठता हूँ, मुझे ईश्वर-वाक्य सुना, कानों को प्रभु मसीह की वाणी से पवित्र कर।

सोफ़िया इनकार न कर सकी। 'उत्पत्ति' का एक परिच्छेद खोलकर पढ़ने लगी। ईश्वर सेवक आँखें बंद करके कुर्सी पर बैठ गये और तन्मय होकर सुनने लगे। मिसेज़ सेवक ने यह

दृश्य देखा और विजयगर्व से मुस्कराती हुई चली गईं।

यह समस्या तो हल हो गयी; पर ईश्वर सेवक के मरहम से उसके अंतःकरण का नासूर न अच्छा हो सकता था। आये-दिन उसके मन में धार्मिक शंकाएँ उठती रहती थीं और दिन-प्रतिदिन उसे अपने घर में रहना दुस्सह होता जाता था। शनैः-शनैः प्रभु सेवक की सहानुभूति भी क्षीण होने लगी। मि. जॉन सेवक को अपने व्यावसायिक कामों से इतना अवकाश ही न मिलता था कि उसके मानसिक विप्लव का निवारण करते। उसे बार-बार प्रबल अंतःप्रेरणा होती कि घर छोड़कर कहीं चली जाऊँ और स्वाधीन होकर सत्यासत्य की विवेचना करूँ; पर इच्छा व्यवहार-क्षेत्र में पैर रखते हुए संकोच से विवश हो जाती थी।

एक दिन जब घर से सब प्राणी गिरजाघर जाने लगे, तो सोफ़िया ने सिरदर्द का बहाना किया। अब तक वह शंकाओं के होते हुए भी रविवार को गिरजाघर चली जाया करती थी। प्रभु सेवक उसका मनोभाव ताड़ गए, बोले—सोफ़ी गिरजा जाने में तुम्हें क्या आपत्ति है? वहाँ जाकर आध घंटे चुपचाप बैठे रहना कोई ऐसा मुश्किल काम नहीं।

मिसेज़ सेवक ने पूछा—सोफ़ी, क्या सिर में दर्द इतना है कि गिरजे तक नहीं चल सकतीं?

सोफ़िया—जा क्यों नहीं सकती; पर जाना नहीं चाहती।

मिसेज़ सेवक—क्यों?

सोफ़िया—मेरी इच्छा। मैंने गिरजा जाने की प्रतिज्ञा नहीं की है।

मिसेज़ सेवक—क्या तू चाहती है कि हम कहीं मुँह दिखाने के लायक न रहें?

सोफ़िया—हरगिज़ नहीं, मैं सिर्फ इतना ही चाहती हूँ कि आप मुझे चर्च जाने के लिए मजबूर न करें।

जॉन सेवक ने आकर केवल इतना पूछा—क्या बहुत ज़्यादा दर्द है? मैं उधर से कोई दवा लेता आऊँगा, ज़रा पढ़ना कम कर दो और रोज़ घूमने जाया करो।

यह कहकर वह प्रभु सेवक के साथ फ़िटन पर आ बैठे। लेकिन मिसेज़ सेवक इतनी आसानी से उसका गला छोड़ने वाली न थीं। बोलीं—तुझे ईसू के नाम से इतनी घृणा है?

सोफ़िया—मैं हृदय से उनकी श्रद्धा करती हूँ।

माँ—तू झूठ बोलती है।

सोफ़िया—अगर दिल में श्रद्धा न होती, तो जबान से कदापि न कहती।

माँ—तू प्रभु मसीह को अपना मुक्तिदाता समझती है? तुझे यह विश्वास है कि वही तेरा उद्धार करेंगे?

सोफ़िया—कदापि नहीं। मेरा विश्वास है कि मेरी मुक्ति, अगर मुक्ति हो सकती है, तो मेरे कर्मों से होगी।

माँ—तेरे कर्मों से तेरे मुँह में कालिख लगेगी, मुक्ति न होगी।

यह कहकर मिसेज़ सेवक फ़िटन पर जा बैठीं। संध्या हो गयी थी। सड़क पर ईसाइयों के दल-के-दल कोई ओवरकोट पहने, कोई माघ की ठंड से सिकुड़े हुए, खुश गिरजे चले जा रहे

थे, पर सोफ़िया को सूर्य की मलिन ज्योति भी असह्य हो रही थी, वह एक ठंडी साँस खींचकर बैठ गयी। 'तेरे कर्मों से तेरे मुँह में कालिख लगेगी'—ये शब्द उसके अंतःकरण को भाले के समान बेधने लगे। सोचने लगी—मेरी स्वार्थ-सेवा का यही उचित दंड है। मैं भी केवल रोटियों के लिए अपनी आत्मा की हत्या कर रही हूँ, अपमान और अनादर के झोंके सह रही हूँ। इस घर में कौन मेरा हितैषी है? कौन है, जो मेरे मरने की खबर पाकर आँसू की चार बूँदें गिरा दे? ऐसे जीवन पर धिक्कार है। आखिर मामा अपने दिल में क्या समझती हैं कि बात-बात पर वाग्बाणों से छेदने लगती हैं? उनके दिल में यही विचार होगा कि इसे कहीं और ठिकाना नहीं है, कोई इसका पूछनेवाला नहीं है। मैं इन्हें दिखा दूँगी कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ। अब इस घर में रहना नरकवास के समान है। सोफ़िया उठी, और मन में कोई स्थान निश्चित किये बिना ही अहाते से बाहर निकल आयी। उसके जी में आया, ज़रा दरिया की सैर करती चलूँ। कदाचित् किसी सज्जन से भेंट हो जाये। जब तक दो-चार आदमियों से परिचय न हो, और वे मेरा हाल न जानें, मुझसे कौन सहानुभूति प्रकट करेगा? जब अपने माता-पिता अपने शत्रु हो रहे हैं, तो दूसरों से भलाई की क्या आशा?

वह इसी नैराश्य की दशा में चली जा रही थी कि सहसा उसे एक विशाल प्रासाद दिख पड़ा, जिसके सामने बहुत चौड़ा हरा मैदान था। अंदर जाने के लिए एक ऊँचा फाटक था, जिसके ऊपर एक सुनहरा गुम्बद बना था। इस गुम्बद में नौबत बज रही थी, फाटक से भवन तक सुर्खी की एक रविश थी, जिसके दोनों ओर बेलें और गुलाब की क्यारियाँ थीं।

सोफ़िया ने शहर में ऐसा रमणीक स्थान न देखा था। वह एक चौकी पर बैठ गयी और सोचने लगी—अब लोग चर्च से आ गये होंगे। मुझे घर में न देखकर चौंकेंगे तो ज़रूर; पर समझेंगे, कहीं घूमने गयी होगी। अगर रात-भर यहीं बैठी रहूँ, तो भी वहाँ किसी को चिन्ता न होगी, आराम से खा-पीकर सोएँगे।

सोफ़िया सोच रही थी कि इतने में भवन में सामनेवाले पक्के चबूतरे पर फर्श बिछ गया। कई आदमी सितार, बेला, मृदंग ले, आ बैठे, और इन साजों के साथ स्वर मिलाकर कई नवयुवक एक स्वर से गाने लगे:

शांति-समर में कभी भूलकर धैर्य नहीं खोना होगा;
वज्र-प्रहार भले सिर पर हो, नहीं किन्तु रोना होगा।
अरि से बदला लेने का मन-बीज नहीं बोना होगा;
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा।
देश-दाग़ को रुधिर वारि से हर्षित हो धोना होगा;
देश-कार्य की सारी गठरी सिर पर रख ढोना होगा।
आँखें लाल, भवें टेढ़ी कर, क्रोध नहीं करना होगा;
बलि-वेदी पर तुझे हर्ष से चढ़कर कट मरना होगा।
नश्वर है नर-देह, मौत से कभी नहीं डरना होगा;

सत्य-मार्ग को छोड़ स्वार्थ-पथ पैर नहीं धरना होगा।

होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा;

मातृभूमि के लिए जगत में जीना औ' मरना होगा।

संगीत में न लालित्य था, न माधुर्य; पर वह शक्ति, वह जागृति भरी हुई थी, जो सामूहिक संगीत का गुण है, आत्मसमर्पण और उत्कर्ष का पवित्र संदेश विराट आकाश में, और सोफ़िया के अशांत हृदय में गूँजने लगा। वह अब तक धार्मिक विवेचन ही में रत रहती थी। राष्ट्रीय संदेश सुनने का अवसर उसे कभी न मिला था। उसके रोम-रोम से वही ध्वनि, दीपक-से ज्योति के समान निकलने लगी—

'मातृभूमि के लिए जगत में जीना औ' मरना होगा।'

समा बँधा हुआ था, सोफ़िया के हृदय की आँखों के सामने इन्हीं भावों के चित्र नृत्य करते हुए मालूम होते थे।

अभी संगीत की ध्वनि गूँज ही रही थी कि अकस्मात् उसी अहाते के अंदर एक खपरैल के मकान में आग लग गयी। जब तक लोग उधर दौड़े, अग्नि की ज्वाला प्रचंड हो गयी।

अभी अग्नि का वेग पूर्णतः शांत न हुआ था कि दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी— 'दौड़ो-दौड़ो, आदमी डूब रहा है।' आवाज़ सुनते ही आग बुझानेवाले दल से कई आदमी निकलकर बावली की तरफ़ लपके, और डूबनेवाले को बचाने के लिए पानी में कूद पड़े। सोफ़िया उठकर बावली की ओर जाना ही चाहती थी कि अचानक उसने एक आदमी को पानी का डोल लिये फिसलकर जमीन पर गिरते देखा। चारों ओर अग्नि शांत हो गयी थी; पर जहाँ वह आदमी गिरा था, वहाँ अब तक बड़े वेग से धधक रही थी। अग्नि-ज्वाला विकराल मुँह खोले उस अभागे मनुष्य की तरफ लपकी। आग की लपटें उसे निगल जातीं; पर सोफ़िया विद्युत-गति से ज्वाला की तरफ दौड़ी और उस आदमी को खींचकर बाहर निकाल लायी। यह सब कुछ क्षण-मात्र में हो गया। अभागे की जान बच गयी; लेकिन सोफ़िया का कोमल गात आग की लपट में झुलस गया। वह ज्वालाओं के घेरे से बाहर आते ही अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ी।

सोफ़िया ने तीन दिन तक आँखें न खोलीं। मन न जाने किन लोकों में भ्रमण किया करता था। कभी ईसा की सौम्य मूर्ति आँखों के सामने आ जाती, कभी किसी विदुषी महिला के चंद्रमुख के दर्शन होते, जिन्हें वह सेंट मेरी समझती।

चौथे दिन प्रातःकाल उसने आँखें खोलीं, तो अपने को एक सजे हुए कमरे में पाया। उसके सामने कुरसी पर वही महिला बैठी हुई थी, जिन्हें उसने सुषुप्तावस्था में सेंट मेरी समझा था, और सिरहाने की ओर एक वृद्ध पुरुष बैठे थे, इन्हीं को कदाचित् उसने, अर्द्ध चेतना की दशा में, ईसा समझा था।

सोफ़िया ने क्षीण स्वर में पूछा—मैं कहाँ हूँ? मामा कहाँ हैं?

वृद्ध पुरुष ने कहा—तुम कुँवर भरतसिंह के घर में हो। तुम्हारे सामने रानी साहिबा बैठी हुई हैं, तुम्हारा जी अब कैसा है?

सोफ़िया—अच्छी हूँ, प्यास लगी है। मामा कहाँ हैं, पापा कहाँ हैं, आप कौन हैं?

रानी—यह डॉक्टर गांगुली हैं। तुम्हारे पापा-मामा कौन हैं?

सोफ़िया—पापा का नाम मि. जॉन सेवक है। हमारा बँगला सिगरा में है।

डॉक्टर—अच्छा, तुम जॉन सेवक की बेटी हो? हम उसे जानता है; अभी बुलाता है।

रानी—किसी को अभी भेज दूँ?

सोफ़िया—कोई जल्दी नहीं है, आ जायेंगे। मैंने जिस आदमी को पकड़कर खींचा था, उसकी क्या दशा हुई?

रानी—बेटी, वह ईश्वर की कृपा से बहुत अच्छी तरह है। उसे ज़रा भी आँच नहीं लगी। वह मेरा बेटा विनय है। अगर तुम दौड़कर न पहुँच जातीं, तो आज न जाने क्या होता। मैं तुम्हारे ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकती।

सोफ़िया—जिस घर में आग लगी थी, उसके आदमी सब बच गए?

रानी—बेटी, यह तो केवल अभिनय था, विनय ने यहाँ एक सेवा-समिति बना रखी है! जब शहर में कोई मेला होता है, या कहीं से किसी दुर्घटना का समाचार आता है, तो समिति वहाँ पहुँचकर सेवा-सहायता करती है। उस दिन समिति की परीक्षा के लिए कुँवर साहब ने वह अभिनय किया था।

डॉक्टर—कुँवर साहब देवता है, कितने ग़रीब लोगों की रक्षा करता है। यह समिति, अभी थोड़े दिन हुए, बंगाल गयी थी।

इतने में एक युवती रमणी आकर खड़ी हो गयी। उसके मुख से उज्ज्वल दीपक के समान प्रकाश की रश्मियाँ छिटक रही थीं। गले में मोतियों के हार के सिवा उसके शरीर पर कोई आभूषण न था। उषा की शुभ्र छटा मूर्तिमान् हो गयी थी। सोफ़िया ने उसे एक क्षण-भर देखा, तब बोली—इंदु, तुम यहाँ कहाँ? आज कितने दिनों के बाद तुम्हें देखा है?

इंदु चौंक पड़ी। तीन दिन से बराबर सोफ़िया को देख रही थी, खयाल आता था कि इसे कहीं देखा है; पर कहाँ देखा है, यह याद न आती थी। उसकी बातें सुनते ही स्मृति जागृत हो गयी, आँखें चमक उठीं, गुलाब खिल गया। बोली—ओहो! सोफ़ी, तुम हो?

दोनों सखियाँ गले मिल गईं। यह वही इंदु थी, जो सोफ़िया के साथ नैनीताल में पढ़ती थी। इंदु कभी पिछली बातें याद करके रोती, कभी हँसती, कभी गले मिल जाती। अपनी माँ से उसका गुणानुवाद करने लगी। अंत में सोफ़िया ने झेंपे हुए कहा—इंदु, ईश्वर के लिए अब मेरी और ज़्यादा तारीफ न करो, नहीं तो मैं तुमसे न बोलूँगी। इतने दिनों तक कभी एक खत भी न लिखा, मुँह-देखे का प्रेम करती हो।

रानी—नहीं बेटी सोफ़ी, इंदु मुझसे कई बार तुम्हारी चर्चा कर चुकी है। यहाँ किसी से हँसकर बोलती तक नहीं। तुम्हारे सिवा मैंने इसे किसी की तारीफ़ करते नहीं सुना।

इंदु—बहन, तुम्हारी शिकायत वाजिब है, पर करूँ क्या, मुझे खत नहीं लिखना आता। एक तो बड़ी भूल यह हुई कि तुम्हारा पता नहीं पूछा, और अगर पता मालूम भी होता, तो भी मैं खत न लिख सकती। मुझे डर लगता है कि कहीं तुम हँसने न लगो। मेरा पत्र कभी समाप्त

ही न होता, और न जाने क्या-क्या लिख जाती।

कुँवर साहब को मालूम हुआ कि सोफ़िया बातें कर रही है, तो वह भी उसे धन्यवाद देने के लिए आये। पूरे छः फीट के मनुष्य थे, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे बाल, लम्बी दाढ़ी, मोटे कपड़े का एक नीचा कुरता पहने हुए थे। सोफ़िया ने ऐसा तेजस्वी स्वरूप कभी न देखा था। 'सोफ़ी ने सम्मान-भाव से उठना चाहा; पर कुँवर साहब मधुर स्वर में बोले—बेटी, लेटी रहो, तुम्हें उठने में कष्ट होगा। लो, मैं बैठ जाता हूँ, तुम्हारे पापा से मेरा परिचय है। मैंने उन्हें बुलाया है, लेकिन मैं कहे देता हूँ, मैं अभी तुम्हें न जाने दूँगा। (रानी से) जाह्नवी, यहाँ प्यानो मँगवाकर रख दो। आज मिस सोहराबजी को बुलवाकर सोफ़िया का एक तैल चित्र खिंचवाओ।

रानी—कुछ नाज भी दान करा दूँ?

यह कहकर रानी ने डॉक्टर गांगुली की ओर देखकर आँखें मटकाईं। कुँवर साहब तुरंत बोले—फिर वही ढकोसले! इस जमाने में जो दरिद्र है, उसे दरिद्र होना चाहिए, जो भूखों मरता है, उसे भूखों मरना चाहिए; जब घंटे-दो घंटे की मेहनत से खाने-भर को मिल सकता है, तो कोई सबब नहीं कि क्यों कोई आदमी भूखों मरे। दान ने हमारी जाति में जितने आलसी पैदा कर दिए हैं, उतने सब देशों ने मिलकर भी न पैदा किये होंगे।

डॉक्टर गांगुली—सोफ़िया, तुम राजा साहब का बात सुनता है? तुम्हारा प्रभु मसीह तो दान को सबसे बढ़कर महत्त्व देता है, तुम कुँवर साहब से कुछ नहीं कहता?

सोफ़िया ने इंदु की ओर देखा, और मुस्कराकर आँखें नीची कर लीं, मानो कह रही थी कि मैं इनका आदर करती हूँ, नहीं तो जवाब देने में असमर्थ नहीं हूँ।

कुँवर साहब कह गये थे, मैंने मि. सेवक को सूचना दे दी है, वह आते ही होंगे। सोफ़िया को अब यह भय होने लगा कि कहीं वह आ न रहे हों। आते-ही-आते मुझे अपने साथ चलने को कहेंगे। मेरे सिर फिर वही विपत्ति पड़ेगी। इंदु से अपनी विपत्ति कथा कहूँ, तो शायद उसे मुझसे कुछ सहानुभूति हो।

उधर इंदु भी सोफ़िया से कितनी ही बातें करना चाहती थी। रानीजी के सामने उसे दिल की बातें करने का अवसर न मिला था। डर रही थी कि सोफ़िया के पिता उसे लेते गए, तो मैं फिर अकेली हो जाऊँगी। आखिर नौ बजते-बजते वह अधीर हो गयी। आकर नौकरानी को अपना कमरा साफ करने के बहाने से हटा दिया और सोफ़िया के सिरहाने बैठकर बोली—क्यों बहन, बहुत कमजोरी तो नहीं मालूम होती?

सोफ़िया—बिल्कुल नहीं। मुझे तो मालूम होता है कि मैं चंगी हो गयी।

इंदु—तुम्हारे पापा कहीं तुम्हें अपने साथ ले गए, तो मेरे प्राण निकल जायेंगे। तुम भी उनकी राह देख रही हो। उनके आते ही खुश होकर चली जाओगी, और शायद फिर कभी याद न करोगी।

यह कहते-कहते इंदु की आँखें सजल हो गईं। मनोभावों के अनुचित आवेश को हम बहुधा मुस्कराहट से छिपाते हैं। इंदु की आँखों में आँसू भरे हुए थे, पर वह मुस्करा रही थी।

सोफ़िया बोली—आप मुझे भूल सकती हैं, पर मैं आपको कैसे भूलूँगी?

वह अपने दिल का दर्द सुनाने ही जा रही थी कि संकोच ने आकर जबान बंद कर दी, बात फेरकर बोली—मैं कभी-कभी आपसे मिलने आया करूँगी।

इंदु—मैं तुम्हें यहाँ से अभी पंद्रह दिन तक न जाने दूँगी। धर्म बाधक न होता, तो कभी न जाने देती। अम्माँजी तुम्हें अपनी बहू बनाकर छोड़तीं। जहाँ बैठती हैं, तुम्हारी ही चर्चा करती हैं। विनय भी तुम्हारे हाथों बिका हुआ-सा जान पड़ता है।

इस प्रेममय आग्रह ने संकोच का लंगर उखाड़ दिया। जो अपने घर में नित्य कटु शब्द सुनने का आदी हो, उसके लिए उतनी मधुर सहानुभूति काफ़ी से ज़्यादा थी। अब सोफ़ी को इंदु से अपने मनोभावों को गुप्त रखना मैत्री के नियमों के विरुद्ध प्रतीत हुआ। करुण स्वर में बोली—इंदु, मेरा वश चलता तो कभी रानी के चरणों को न छोड़ती, पर अपना क्या काबू है? यह स्नेह और कहाँ मिलेगा?

इंदु यह भाव न समझ सकी। अपनी स्वाभाविक सरलता से बोली—कहीं विवाह की बातचीत हो रही है क्या?

सोफ़िया—नहीं, मैंने तो इरादा कर लिया है कि विवाह न करूँगी।

इंदु—क्यों?

सोफ़िया—इसलिए कि विवाह से मुझे अपनी धार्मिक स्वाधीनता त्याग देनी पड़ेगी। धर्म विचार-स्वतंत्रता का गला घोंट देता है। मैं अपनी आत्मा को किसी मत के हाथ नहीं बेचना चाहती। मुझे ऐसा ईसाई पुरुष मिलने की आशा नहीं, जिसका हृदय इतना उदार हो कि वह मेरी धार्मिक शंकाओं को दरगुजर कर सके। मैं परिस्थिति से विवश होकर ईसा को खुदा का बेटा और अपना मुक्तिदाता नहीं मान सकती।

इंदु—मैं तो समझती थी, तुम्हारे यहाँ हम लोगों के यहाँ से कहीं ज़्यादा आज़ादी है; जहाँ चाहो, अकेली जा सकती हो। हमारा तो घर से निकलना मुश्किल है।

सोफ़िया—लेकिन इतनी धार्मिक संकीर्णता तो नहीं है?

इंदु—नहीं, कोई किसी को पूजा-पाठ के लिए मजबूर नहीं करता। भक्ति तो अपने विश्वास और मनोवृत्ति पर ही निर्भर है।

सोफ़िया—हमारी स्वाधीनता लौकिक और इसलिए मिथ्या है। आपकी स्वाधीनता मानसिक और इसलिए सत्य है। असली स्वाधीनता विचार के प्रवाह में बाधक न होती।

इंदु—तुम गिरजे में कभी नहीं जातीं?

सोफ़िया—पहले दुराग्रह-वश जाती थी, अबकी नहीं गयी। इस पर घर के लोग बहुत नाराज़ हुए। बुरी तरह तिरस्कार किया गया।

इंदु ने प्रेममयी सरलता से कहा—वे लोग नाराज़ हुए होंगे, तो तुम बहुत रोयी होगी।

सोफ़िया—पहले रोया करती थी, अब परवा नहीं करती।

इंदु—मुझे तो कभी कोई कुछ कह देता है, तो हृदय पर तीर-सा लगता है। दिन-दिन भर रोती ही रह जाती हूँ। सच पूछो, तो मुझे किसी के क्रोध पर रोना नहीं आता, रोना आता है अपने ऊपर कि मैंने उन्हें क्यों नाराज़ किया, क्यों मुझसे ऐसी भूल हुई।

सोफ़िया को भ्रम हुआ कि इंदु मुझे अपनी क्षमाशीलता से लज्जित करना चाहती है, माथे पर शिकन पड़ गयी। बोली—मेरी जगह पर आप होतीं, तो ऐसा न कहतीं। आखिर क्या आप अपने धार्मिक विचारों को छोड़ बैठतीं?

इंदु—यह तो नहीं कह सकती पर घरवालों को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती।

सोफ़िया—आपकी माताजी अगर आपको जबरदस्ती कृष्ण की उपासना करने से रोकें, तो आप मान जायेंगी?

इंदु—हाँ, मैं तो मान जाऊँगी। अम्माँ को नाराज़ न करूँगी। कृष्ण तो अंतर्यामी हैं, उन्हें प्रसन्न रखने के लिए उपासना की ज़रूरत नहीं। उपासना तो केवल अपने मन के संतोष के लिए है।

सोफ़िया—(आश्चर्य से) आपको ज़रा भी मानसिक पीड़ा न होगी?

इंदु—अवश्य होगी; पर उनकी खातिर मैं सह लूँगी।

सोफ़िया—अच्छा, अगर वह आपकी इच्छा के विरुद्ध आपका विवाह करना चाहें तो?

इंदु—(लजाते हुए) वह समस्या तो हल हो चुकी। माँ-बाप ने जिससे उचित समझा, कर दिया। मैंने जबान तक नहीं खोली।

सोफ़िया—अरे, यह कब?

इंदु—इसे तो दो साल हो गये। (आँखें नीची करके) अगर मेरा अपना वश होता, तो उन्हें कभी न वरती, चाहे कुँवारी ही रहती। मेरे स्वामी मुझसे प्रेम करते हैं, धन की कोई कमी नहीं। पर मैं उनके हृदय के केवल चतुर्थांश की अधिकारिणी हूँ, उसके तीन भाग सार्वजनिक कामों में भेंट होते हैं। एक के बदले चौथाई पाकर कौन संतुष्ट हो सकता है?

सोफ़िया—आपकी धार्मिक स्वाधीनता में तो बाधा नहीं डालते?

इंदु—नहीं। उन्हें इतना अवकाश कहाँ?

सोफ़िया—तब तो मैं आपको मुबारकबाद दूँगी।

इंदु—अगर किसी कैदी को बधाई देना उचित हो, तो शौक से दो।

सोफ़िया—बेड़ी प्रेम की हो तो?

इंदु—ऐसा होता, तो मैं तुमसे बधाई देने को आग्रह करती। मैं बँध गयी, वह मुक्त हैं। मुझे यहाँ आये तीन महीने होने आते हैं; पर तीन बार से ज़्यादा नहीं आये; और वह भी एक-एक घंटे के लिए। इसी शहर में रहते हैं, दस मिनट में मोटर आ सकती है; पर इतनी फुर्सत किसे है। मैं तुम्हें चिताए देती हूँ, किसी देश-सेवक से विवाह न करना, नहीं तो पछताओगी। तुम उसके अवकाश के समय की मनोरंजन-सामग्री-मात्र रहोगी।

सोफ़िया—मैं तो पहले ही अपना मन स्थिर कर चुकी; सबसे अलग-ही-अलग रहना चाहती हूँ, जहाँ मेरी स्वाधीनता में बाधा डालनेवाला कोई न हो। मैं सत्पथ पर रहूँगी, या कुपथ पर चलूँगी, यह जिम्मेवारी भी अपने ही सिर लेना चाहती हूँ।

इंदु—क्या तुम अपने मामा और पापा के अधीन नहीं रहना चाहतीं?

सोफ़िया—न, पराधीनता में प्रकार का नहीं, केवल मात्राओं का अंतर है।

इंदु—तो मेरे ही घर क्यों नहीं रहतीं? मैं इसे अपना सौभाग्य समझूँगी! और अम्माँजी तो तुम्हें आँखों की पुतली बनाकर रखेंगी। बोलो, कहूँ जाकर अम्माँ से?

सोफ़िया—नहीं, अभी भूलकर भी नहीं। आपकी अम्माँजी को जब मालूम होगा कि इसके माँ-बाप इसकी बात नहीं पूछते, मैं उनकी आँखों से भी गिर जाऊँगी।

इंदु—नहीं सोफ़ी, अम्माँजी का स्वभाव बिल्कुल निराला है। जिस बात से तुम्हें अपने निरादर का भय है, वही बात अम्माँजी के आदर की वस्तु है। वह स्वयं अपनी माँ से किसी बात पर नाराज़ हो गयी थीं, तब से मैके नहीं गईं। उन्हें ज्यों ही यह बात मालूम होगी, तुम्हारी दूनी इज्जत करने लगेंगी।

सोफ़ी ने आँखों में आँसू भरकर कहा—बहन, मेरी लाज अब आप ही के हाथ में है।

इंदु ने कहा—वह मुझे अपनी लाज से कम प्रिय नहीं है।

उधर मि. जॉन सेवक को कुँवर साहब का पत्र मिला, तो जाकर स्त्री से बोले—देखा, मैं कहता न था कि सोफ़ी पर कोई संकट आ पड़ा। यह देखो, कुँवर भरतसिंह का पत्र है। तीन दिनों से उनके घर पड़ी हुई है। उनके एक झोंपड़े में आग लग गयी थी, वह भी उसे बुझाने लगी। वहीं लपट में आ गयी।

मिसेज़ सेवक—ये सब बहाने हैं। मुझे उसकी किसी बात पर विश्वास नहीं रहा। जिसका दिल खुदा से फिर गया, उसे झूठ बोलने का क्या डर?

मि. जॉन सेवक—चुप भी रहो, तुम्हारी निर्दयता पर मुझे आश्चर्य होता है। मैंने तुम जैसी कठोर-हृदया स्त्री नहीं देखी।

मिसेज़ सेवक—मैं तो नहीं जाती। तुम्हें जाना हो, तो जाओ।

जॉन सेवक—मुझे तो देख रही हो, मरने की फुरसत नहीं है। उसी पाँड़ेपुरवाली ज़मीन के विषय में बातचीत कर रहा हूँ। तुम्हें इस वक़्त कोई काम नहीं है, मोटर मँगवाए देता हूँ, शान से चली जाओ, और उसे अपने साथ लेती आओ।

ईश्वर सेवक वहीं आराम-कुरसी पर आँखें बन्द किये ईश्वर-भजन में मग्न बैठे थे। बोले—मोटरकार की क्या ज़रूरत है? क्या गाड़ी पर न जाने से शान में फर्क आ जायेगा? प्रभु, दास को अपनी शरण में लो, अब देर न करो, मेरी सोफ़ी बेचारी वहाँ बेगानों में पड़ी हुई है, न जाने इतने दिन किस तरह काटे होंगे।

जॉन सेवक—अच्छा ही हुआ। यहाँ होती, तो रोजाना डॉक्टर की फीस न देनी पड़ती?

ईश्वर सेवक—डॉक्टर का क्या काम था। मैं खुद थोड़ी-बहुत डॉक्टरी कर लेता हूँ। घरवालों का स्नेह डॉक्टर की दवाओं से कहीं ज़्यादा लाभदायक होता है।

मिसेज़ सेवक—तो आप ही चले जाइए!

ईश्वर सेवक—सिर और आँखों से, मेरा ताँगा मँगवा दो। हम सबों को चलना चाहिए। भूले-भटके को प्रेम ही सन्मार्ग पर लाता है।

जॉन सेवक—मुझे अभी साथ न ले जाइए, मैं किसी दूसरे अवसर पर जाऊँगा। कुँवर साहब का शहर में बड़ा दबाव है। म्युनिसिपैलिटी के प्रधान उनके दामाद हैं। उनकी सहायता

से मुझे पाँड़ेपुरवाली ज़मीन बड़ी आसानी से मिल जायेगी। सम्भव है, वह कुछ हिस्से भी खरीद लें। मगर आज इन बातों का मौका नहीं है।

ईश्वर सेवक—मुझे तुम्हारी बुद्धि पर हँसी आती है। जिस आदमी से राह-रस्म पैदा करके तुम्हारे इतने काम निकल सकते हैं, उससे मिलने में भी तुम्हें इतना संकोच? ऐसा सुनहरा अवसर पाकर भी तुम्हें उससे फ़ायदा उठाना नहीं आता?

जॉन सेवक—खैर, आपका अनुरोध है, तो मैं ही चला जाऊँगा। मैं एक ज़रूरी काम कर रहा था, फिर कर लूँगा। आपको कष्ट करने की ज़रूरत नहीं। (स्त्री से) तुम तो चल रही हो?

मिसेज़ सेवक—मुझे नाहक ले चलते हो; मगर खैर, चलो।

भोजन के बाद चलना निश्चित हुआ। मिसेज़ सेवक ने अपने आभूषण निकाले, जिनसे वृद्धावस्था ने भी उन्हें विरक्त नहीं किया था। अपना अच्छे-से-अच्छा गाउन और ब्लाउज़ निकाला। उद्देश्य था सोफ़िया को जलाना, उसे दिखाना कि तेरे आने से मैं रो-रोकर मरी नहीं जा रही हूँ। प्रभु सेवक को भी साथ ले चलने की राय हुई। लेकिन जॉन सेवक ने जाकर उसके कमरे में देखा, तो उसका पता न था। वह प्रातःकाल से दो घड़ी रात तक शहर का चक्कर लगाया करता। केवल दो बार भोजन करने घर आता था। ऐसा कोई स्कूल न था, जहाँ उसने सोफ़ी को न ढूँढ़ा हो। समाचार-पत्रों में भी सूचना दे रखी थी। वहाँ भी रोज कई बार जाकर दरियाफ्त करता। उसे विश्वास होता जाता था कि सोफ़ी हमसे सदा के लिए बिदा हो गयी। आज भी, रोज की भाँति, एक बजे थका-माँदा, उदास और निराश लौटकर आया, तो जॉन सेवक ने शुभ सूचना दी—सोफ़िया का पता मिल गया।

प्रभु सेवक का चेहरा खिल उठा। बोला—सच! क्या उसका कोई पत्र आया है?

जॉन सेवक—कुँवर भरतसिंह के मकान पर है। जाओ, खाना खा लो। तुम्हें भी वहाँ चलना है।

प्रभु सेवक—मैं तो लौटकर खाना खाऊँगा। भूख गायब हो गयी। है तो अच्छी तरह?

मिसेज़ सेवक—बहुत अच्छी तरह है। खुदा ने यहाँ से रूठकर जाने की सजा दे दी।

प्रभु सेवक—मामा, खुदा ने आपका दिल न जाने किस पत्थर का बनाया है। आपको उस पर ज़रा भी दया नहीं आती?

मिसेज़ सेवक—गुमराहों पर दया करना पाप है।

प्रभु सेवक—अगर सोफ़ी गुमराह है, तो ईसाइयों में 100 में 99 आदमी गुमराह हैं! वह धर्म का स्वाँग नहीं दिखाना चाहती, यही उसमें दोष है; नहीं तो प्रभु मसीह से जितनी श्रद्धा उसे है, उतनी उन्हें भी न होगी, जो ईसा पर जान देते हैं।

मिसेज़ सेवक—मालूम हो गया कि तुम उसकी वकालत खूब कर सकते हो। मुझे इन दलीलों को सुनने की फ़ुरसत नहीं। यह कहकर मिसेज़ सेवक वहाँ से चली गईं।

तीनों आदमी फ़िटन पर बैठे, तो ईश्वर सेवक ने चलते-चलते जॉन सेवक से कहा—सोफ़ी को ज़रूर साथ लाना, और इस अवसर को हाथ से न जाने देना।

थोड़ी देर में फ़िटन कुँवर साहब के मकान पर पहुँच गयी। कुँवर साहब ने बड़े तपाक से

उनका स्वागत किया। मिसेज़ सेवक ने मन में सोचा था, मैं सोफ़िया से एक शब्द भी न बोलूँगी, दूर से खड़ी देखती रहूँगी। लेकिन जब सोफ़िया के कमरे में पहुँची और उसका मुरझाया चेहरा देखा, तो शोक से कलेजा मसोस उठा। मातृस्नेह उबल पड़ा। अधीर होकर उससे लिपट गईं। आँखों से आँसू बहने लगे। इस प्रवाह में सोफ़िया का मनोमालिन्य बह गया। जॉन सेवक ने सोफ़िया का माथा चूमा; किन्तु प्रभु सेवक आँखों में आँसू-भरे उसके सामने खड़ा रहा।

जब जॉन सेवक सोफ़ी को देखकर कुँवर साहब के साथ बाहर चले गए, तो मिसेज़ सेवक बोलीं—तुझे उस दिन क्या सूझी कि यहाँ चली आयी? ये लोग अपने धन के घमंड में तेरी बात भी न पूछते होंगे।

सोफ़िया—नहीं मामा, यह बात नहीं है। घमंड तो यहाँ किसी में छू भी नहीं गया है। सभी सॉदयता और विनय के पुतले हैं। मुझे आज चौथे दिन होश आया है। पर इन लोगों ने इतने प्रेम से सेवा-सुश्रूषा न की होती, तो शायद मुझे हफ़्तों बिस्तर पर पड़े रहना पड़ता। मैं अपने घर में भी ज़्यादा-से-ज़्यादा इतने ही आराम से रहती।

मिसेज़ सेवक—तुमने अपनी जान जोखिम में डाली थी, तो क्या ये लोग इतना भी करने से रहे?

सोफ़िया—नहीं मामा, ये लोग अत्यंत सुशील और सज़्जन हैं। खुद रानीजी प्रायः मेरे पास बैठी पंखा झलती हैं। कुँवर साहब दिन में कई बार आकर देख जाते हैं, और इंदु से तो मेरा बहनापा-सा हो गया है। यही लड़की है, जो मेरे साथ नैनीताल में पढ़ा करती थी।

मिसेज़ सेवक—(चिढ़कर) तुझे दूसरों में सब गुण-ही-गुण नज़र आते हैं। अवगुण सब घरवालों ही के हिस्से में हैं। यहाँ तक कि दूसरे धर्म भी अपने धर्म से अच्छे हैं।

प्रभु सेवक—मामा, आप तो ज़रा-ज़रा-सी बात पर तिनक उठती हैं। अगर कोई अपने साथ अच्छा बरताव करे, तो क्या उसका एहसान न माना जाये? कृतघ्नता से बुरा कोई दूषण नहीं है।

मिसेज़ सेवक—यह कोई आज नई बात थोड़े ही है। घरवालों की निंदा तो इसकी आदत हो गयी है। कहाँ हैं तेरी रानी साहब? मैं भी उन्हें धन्यवाद दे दूँ।

सोफ़िया—वह तो तुमसे मिलने को बहुत उत्सुक थीं। कब की आ गयी होतीं, पर कदाचित् हमारे बीच में बिना बुलाए आना अनुचित समझती होंगी।

प्रभु सेवक—मामा, अभी सोफ़ी को यहाँ दो-चार दिन और आराम से पड़ी रहने दीजिए। अभी इसे उठने में कष्ट होगा। देखिए, कितनी दुर्बल हो गयी है!

सोफ़िया—रानीजी भी यही कहती थीं कि अभी मैं तुम्हें जाने न दूँगी।

मिसेज़ सेवक—यह क्यों नहीं कहती कि तेरा ही जी यहाँ से जाने को नहीं चाहता।

सोफ़िया—नहीं मामा, आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं। मैं अब यहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहती। इन लोगों को मैं अब और कष्ट नहीं दूँगी। मगर एक बात मुझे मालूम हो जानी चाहिए। मुझ पर फिर तो अत्याचार न किया जायेगा? मेरी धार्मिक स्वतंत्रता में फिर तो कोई

बाधा न डाली जायेगी?

प्रभु सेवक—सोफ़ी, तुम व्यर्थ इन बातों की क्यों चर्चा करती हो? तुम्हारे साथ कौन-सा अत्याचार किया जाता है? ज़रा-सी बात का बतंगड़ बनाती हो।

मिसेज़ सेवक—नहीं, तूने यह बात पूछ ली, बहुत अच्छा किया। मैं भी मुगालते में नहीं रखना चाहती। मेरे घर में प्रभु मसीह के द्रोहियों के लिए जगह नहीं है।

प्रभु सेवक—आप नाहक उससे उलझती हैं। समझ लीजिए, कोई पगली बक रही है।

मिसेज़ सेवक—क्या करूँ, मैंने तुम्हारी तरह दर्शन नहीं पढ़ा। खुदा जानता है, मैंने तुम्हारी खातिर क्या-क्या कष्ट नहीं झेले। उस समय तुम्हारे पापा एक दफ़्तर में क्लर्क थे। घर का सारा काम-काज मुझी को करना पड़ता था। बाज़ार जाती, खाना पकाती, झाड़ू लगाती; तुम दोनों ही बचपन में कमज़ोर थे, नित्य एक-न-एक रोग लगा ही रहता था। घर के कामों से ज़रा फुरसत मिलती तो डॉक्टर के पास जाती। इतने आत्मसमर्पण से पाली हुई संतान को जब ईश्वर से विमुख होते देखती हूँ, तो मैं दुःख और क्रोध से बावली हो जाती हूँ। मुझे अपना मसीह सारे संसर से, यहाँ तक कि अपनी जान से भी प्यारा है।

सोफ़िया—आपको ईसू इतना प्यारा है, तो मुझे भी अपनी आत्मा, अपना ईमान उससे कम प्यारा नहीं है।

मिसेज़ सेवक—खुदा तुझे इस अभक्ति की सज़ा देगा। मेरी उससे यही प्रार्थना है कि वह फिर मुझे तेरी सूरत न दिखाए।

यह कहकर मिसेज़ सेवक कमरे के बाहर निकल आईं। रानी और इंदु उधर से आ रही थीं। द्वार पर उनसे भेंट हो गयी। रानीजी मिसेज़ सेवक के गले लिपट गयीं और कृतज्ञतापूर्ण शब्दों का दरिया बहा दिया। इंदु से बोलीं—देख, मिस सोफ़िया से कह दे, अभी जाने की तैयारी न करें। मिसेज़ सेवक, आप मेरी खातिर से सोफ़िया को अभी दो-चार दिन यहाँ रहने दें, मैं आपसे सविनय अनुरोध करती हूँ। मैं आपसे वादा करती हूँ, मैं स्वयं उसे आपके पास पहुँचा दूँगी।

मिसेज़ सेवक—मैं इसे अपने साथ चलने के लिए मजबूर नहीं करती। आप जितने दिन चाहें, शौक से रखें।

रानी—बस-बस, मैं इतना ही चाहती थी। आपने मुझे मोल ले लिया। आपसे ऐसी ही आशा भी थी। आप इतनी सुशीला न होतीं, तो लड़की में ये गुण कहाँ से आते? एक मेरी इंदु है कि बातें करने का भी ढंग नहीं जानती। आइए, अब आपको अपने घर की सैर कराऊँ। इंदु, चाय बनाने को कह दे।

मिसेज़ सेवक—मिस्टर सेवक बाहर खड़े मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे। देर होगी।

रानी—वाह, इतनी जल्दी। कम-से-कम आज यहाँ भोजन तो कर ही लीजिएगा। लंच करके हवा खाने चलें, फिर लौटकर कुछ देर गप-शप करें।

मिसेज़ सेवक इनकार न कर सकीं। रानीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया, और अपने राजभवन की सैर कराने लगीं। आध घंटे तक मिसेज़ सेवक मार्नो इंद्र-लोक की सैर करती

रहीं। भवन क्या था, आमोद, विलास, रसज्ञता और वैभव का क्रीड़ास्थल था। संगमरमर के फर्श पर बहुमूल्य कालीन बिछे हुए थे। दीवारों पर मनोहर पच्चीकारी; शीशे की अमूल्य-अलभ्य वस्तुएँ, प्राचीन चित्रकारों की विभूतियाँ; चीनी के विलक्षण गुलदान; जापान, चीन, यूनान और ईरान की कला-निपुणता के उत्तम नमूने; सोने के गमले; इटली के बने हुए हाथी-दाँत के पलँग; लकड़ी के नफीस ताक—मिसेज़ सेवक ने इन सारी वस्तुओं में से किसी की प्रशंसा नहीं की, कहीं भी विस्मय या आनंद का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उन्हें आनंद के बदले ईर्ष्या हो रही थी।

इतने पर भी रानीजी को निराशा नहीं हुई। उन्हें अपने बाग दिखाने लगीं। भाँति-भाँति के फूल और पौधे दिखाए। माली बड़ा चतुर था। प्रत्येक पौधे का गुण और इतिहास बतलाता जाता था—कहाँ से आया, कब आया, किस तरह लगाया गया, कैसे उसकी रक्षा की जाती है; पर मिसेज़ सेवक का मुँह अब भी न खुला। यहाँ तक कि अंत में उसने एक ऐसी नन्हीं-सी जड़ी दिखायी, जो येरुसलम से लाई गयी थी। कुँवर साहब उसे स्वयं बड़ी सावधानी से लाये थे, और उसमें एक-एक पत्ती निकलना उनके लिए एक-एक शुभ सम्वाद से कम न था। मिसेज़ सेवक ने तुरंत उस गमले को उठा लिया, उसे आँखों से लगाया और पत्तियों को चूमा। बोलीं—मेरी सौभाग्य है कि इस दुर्लभ वस्तु के दर्शन हुए।

रानी ने कहा—कुँवर साहब स्वयं इसका बड़ा आदर करते हैं। अगर यह आज सूख जाये, तो दो दिन तक उन्हें भोजन अच्छा न लगेगा।

इतने में चाय तैयार हुई। रानीजी को चाय से रुचि न थी। विनय और इंदु के बारे में बातें करने लगीं। विनय के आचार-विचार, सेवा-भक्ति और परोपकार-प्रेम की सराहना की, यहाँ तक कि मिसेज़ सेवक का जी उकता गया। इसके जवाब में वह अपनी संतानों का बखान न कर सकती थीं।

उधर मि. जॉन सेवक और कुँवर साहब दीवानखाने में बैठे लंच कर रहे थे। जॉन सेवक उन मनुष्यों में थे, जिनका व्यक्तित्व शीघ्र ही दूसरों को आकर्षित कर लेता है। उनकी बातें इतनी विचारपूर्ण होती थीं कि दूसरे अपनी बातें भूलकर उन्हीं की सुनने लगते थे। इस समय वह भारत की औद्योगिक और व्यावसायिक दुर्बलता पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे। अवसर पाकर उन साधनों का भी उल्लेख करते जाते थे, जो इस कुदशा-निवारण के लिए उन्होंने सोच रखे थे। अंत में बोले—हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है। इस सिगरेट के कारखाने से कम-से-कम एक हज़ार आदमियों के जीवन की समस्या हल हो जायेगी और खेती के सिर से उनका बोझ टल जायेगा। जितनी ज़मीन एक आदमी अच्छी तरह जोत-बो सकता है, उसमें घर-भर का लगा रहना व्यर्थ है। मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को अपनी रोटी कमाने का अवसर देगा।

कुँवर साहब—लेकिन जिन खेतों में इस वक़्त नाज बोया जाता है, उन्हीं खेतों में तम्बाकू बोई जाने लगेगी। फल यह होगा कि नाज और महँगा हो जायेगा।

जॉन सेवक—मेरी समझ में तम्बाकू की खेती का असर जूट, तेलहन और अफीम पर पड़ेगा। निर्यात जिंस कुछ कम हो जायेगी। गल्ले पर इसका कोई असर नहीं पड़ सकता।

कुँवर साहब—लेकिन तम्बाकू कोई अच्छी चीज़ तो नहीं। इसकी गणना मादक वस्तुओं में है और स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ता है।

जॉन सेवक—(हँसकर) ये सब डॉक्टरों की कोरी कल्पनाएँ हैं, जिन पर गम्भीर विचार करना हास्यास्पद है। डॉक्टरों के आदेशानुसार हम जीवन व्यतीत करना चाहें, तो जीवन का अंत ही हो जाये। दूध में सिल के कीड़े रहते हैं, घी में चरबी की मात्रा अधिक है, चाय और कहवा उत्तेजक हैं, यहाँ तक कि साँस लेने से भी कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यह कहकर उन्होंने कुँवर साहब को गर्वपूर्ण नेत्रों से देखा। कुँवर साहब की शंकाएँ बहुत कुछ निवृत्त हो चुकी थीं।

जॉन सेवक निःशंक होकर बोले—मैंने इन सब पहलुओं पर विचार करके ही यह मत स्थिर किया, और आपके इस दास को (प्रभु सेवक की ओर इशारा करके) इस व्यवसाय का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेजा। मेरी कम्पनी के अधिकांश हिस्से बिक चुके हैं, पर अभी रुपये नहीं वसूल हुए। मुझे पूरा विश्वास है कि पहले ही साल हमें 25 प्रति सैकड़े लाभ होगा। मैंने लाभ का अनुमान करने में बड़ी सावधानी से काम लिया है; बढ़ भले ही जाये, कम नहीं हो सकता।

कुँवर साहब—पहले ही साल 25 प्रति सैकड़े?

जॉन सेवक—जी हाँ, बड़ी आसानी से। आपसे मैं हिस्से लेने के लिए विनय करता, पर जब तक एक साल का लाभ दिखा न दूँ, आग्रह नहीं कर सकता।

कुँवर साहब—मुझे अब एक ही शंका और है। यदि इस व्यवसाय में इतना लाभ हो सकता है, तो अब तक ऐसी और कम्पनियाँ क्यों न खुलीं?

जॉन सेवक—(हँसकर) इसलिए कि अभी तक शिक्षित समाज में व्यवसाय-बुद्धि पैदा नहीं हुई। दो-चार कम्पनियाँ खुलीं भी, किन्तु उन्हें विशेषज्ञों के परामर्श और अनुभव से लाभ उठाने का अवसर न मिला। अगर मिला भी, तो बड़ा महँगा पड़ा! विवश होकर कम्पनियों को कारोबार बंद करना पड़ा। यहाँ प्रायः सभी कम्पनियों का यही हाल है। डाइरेक्टर अपनी जेब भरते हैं, मैनेजर अपना पुरस्कार भोगता है, दलाल अपनी दलाली लेता है; मतलब यह कि सारी पूँजी ऊपर-ही-ऊपर उड़ जाती है। मेरा सिद्धांत है, कम-से-कम खर्च और ज़्यादा-से-ज़्यादा नफा। मैंने एक कौड़ी दलाली नहीं दी, विज्ञापनों की मद उड़ा दी। यहाँ तक कि मैनेजर के लिए भी केवल 500 रुपये ही वेतन देना निश्चित किया है, उस पर घर का आदमी। डाइरेक्टर के बारे में भी मेरा यही निश्चय है कि सफर-खर्च के सिवा और कुछ न दिया जाये।

कुँवर साहब सांसारिक पुरुष न थे। उनका अधिकांश समय धर्म-ग्रंथों के पढ़ने में लगता था। वह किसी ऐसे काम में शरीक न होना चाहते थे, जो उनकी धार्मिक एकाग्रता में बाधक हो। धूर्तों ने उन्हें मानव-चरित्र का छिद्रान्वेषी बना दिया था। उन्हें किसी पर विश्वास न होता था। पाठशालाओं और अनाथालयों को चंदे देते हुए वह बहुत डरते थे और बहुधा इस विषय में औचित्य की सीमा से बाहर निकल जाते थे। मिस्टर जॉन सेवक का भाषण व्यावसायिक ज्ञान से परिपूर्ण था; पर कुँवर साहब पर इससे ज़्यादा प्रभाव उनके व्यक्तित्व का पड़ा। उनकी दृष्टि में जॉन सेवक अब केवल धन के उपासक न थे, वरन् हितैषी मित्र थे। ऐसा

आदमी उन्हें मुगालता न दे सकता था। बोले—जब आप इतनी किफ़ायत से काम करेंगे, तो आपका उद्योग अवश्य सफल होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। आपको शायद अभी मालूम न हो, मैंने यहाँ एक सेवा-समिति खोल रखी है। उसमें इस समय लगभग एक सौ स्वयंसेवक हैं। उसके निर्विघ्न संचालन के लिए एक स्थायी कोष की व्यवस्था कर देना चाहता हूँ। मैं आपको अपना मित्र और हितचिंतक समझकर पूछता हूँ, क्या आपके कारखाने में हिस्से ले लेने से मेरा उद्देश्य पूरा हो सकता है?

जॉन सेवक की व्यावसायिक लोलुपता ने अभी उनकी सद्भावनाओं को शिथिल नहीं किया था। कुँवर साहब ने उनकी राय पर फ़ैसला छोड़कर उन्हें दुविधा में डाल दिया। अगर उन्हें पहले से मालूम होता कि यह समस्या सामने आवेगी, तो नफा का तखमीना बताने में ज़्यादा सावधान हो जाते।

जॉन सेवक ऐसा उत्तर देना चाहते थे, जो स्वार्थ और आत्मा, दोनों ही को स्वीकार हो। बोले—कम्पनी की जो स्थिति है, वह मैंने आपके सामने खोलकर रख दी है। इस पर भी सम्भव है मुझसे भूलें हो गयी हों, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य विधाता के हाथों का खिलौना-मात्र है। हाँ, मेरी परिमित बुद्धि की दौड़ जहाँ तक है, मैंने कोई बात बढ़ाकर नहीं कही है। आकस्मिक बाधाओं को देखते हुए आप लाभ के अनुमान में कुछ और कमी कर सकते हैं।

कुँवर साहब—आखिर कहाँ तक?

जॉन सेवक—20 रुपये सैकड़े समझिए।

कुँवर साहब—और पहले वर्ष?

जॉन सेवक—कम-से-कम 15 रुपये प्रति सैकड़े।

कुँवर साहब—मैं पहले वर्ष 10 और उसके बाद 15 रुपये प्रति सैकड़े पर संतुष्ट हूँ।

जॉन सेवक—तो फिर मैं आपसे यही कहूँगा कि हिस्से लेने में विलम्ब न करें। खुदा ने चाहा, तो आपको कभी निराशा न होगी।

सौ-सौ रुपये के हिस्से थे। कुँवर साहब ने 500 हिस्से लेने का वादा किया और बोले—कल पहली किस्त के दस हज़ार रुपये बैंक द्वारा आपके पास भेज दूँगा।

जॉन सवक की ऊँची-से-ऊँची उड़ान भी यहाँ तक न पहुँची थी; पर वह इस सफलता पर प्रसन्न न हुए। उनकी आत्मा अब भी उनका तिरस्कार कर रही थी कि तुमने एक सरल-हृदय सज्जन पुरुष को धोखा दिया। तुमने इस लोकोक्ति को प्रमाणित कर दिया कि 'बनिया मारे जान, चोर मारे अनजान।'

अगर कुँवर साहब के सहयोग से जनता में कम्पनी की साख जम जाने का विश्वास न होता, तो मिस्टर जॉन सेवक साफ कह देते कि कम्पनी इतने हिस्से आपको नहीं दे सकती। एक परोपकारी संस्था के धन को किसी संदिग्ध व्यवसाय में लगाकर उसके अस्तित्व को खतरे में डालना स्वार्थपरता के लिए भी कड़वा ग्रास था; मगर धन का देवता आत्मा का बलिदान पाये बिना प्रसन्न नहीं होता। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि अब तक वह निजी स्वार्थ के लिए यह स्वाँग भर रहे थे, उनकी नीयत साफ नहीं थी। अब उन्होंने निःस्पृह होकर

नेकनीयती का व्यवहार करने का निश्चय किया। बोले—मैं कम्पनी के संस्थापक की हैसियत से इस सहायता के लिए हृदय से आपका अनुगृहीत हूँ। अब मैं आपसे एक और प्रार्थना करता हूँ। आपकी कृपा ने मुझे धृष्ट बना दिया है। मैंने कारखाने के लिए जो ज़मीन पसंद की है, वह पाँड़ेपुर के आगे पक्की सड़क पर स्थित है। रेल का स्टेशन वहाँ से निकट है और आस-पास बहुत-से गाँव हैं। रकबा दस बीघे का है। ज़मीन परती पड़ी हुई है। हाँ, बस्ती के जानवर उसमें चरने आया करते हैं। उसका मालिक एक अंधा फकीर है। अगर आप उधर कभी हवा खाने गये होंगे, तो आपने उस अंधे को अवश्य देखा होगा।

कुँवर साहब—हाँ-हाँ, अभी तो कल ही गया था, वही अंधा है न, काला-काला, दुबला-दुबला, जो सवारियों के पीछे दौड़ा करता है?

जॉन सेवक—जी हाँ, वही-वही। वह ज़मीन उसकी है; किन्तु वह उसे किसी दाम पर नहीं छोड़ना चाहता। आप अगर ज़रा तवज्जह करें, तो बड़ी आसानी से काम निकल जाये।

कुँवर साहब—मेरा उस फ़कीर पर कुछ दबाव नहीं है, और होता भी, तो मैं उससे काम न लेता।

जॉन सेवक—आप राजा साहब चतारी...

कुँवर साहब—नहीं, मैं उनसे कुछ नहीं कह सकता। वह मेरे दामाद हैं, और इस विषय में मेरा उनसे कहना नीति-विरुद्ध है। क्या वह आपके हिस्सेदार नहीं हैं?

जॉन सेवक—जी नहीं, वह स्वयं अतुल सम्पत्ति के स्वामी होकर भी धनियों की उपेक्षा करते हैं। उनका विचार है कि कल-कारखाने पूँजीवालों का प्रभुत्व बढ़ाकर जनता का अपकार करते हैं। इन्हीं विचारों ने तो उन्हें यहाँ प्रधान बना दिया।

कुँवर साहब—यह तो अपना-अपना सिद्धांत है। हम द्वैध जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और मेरा विचार यह है कि जनतावाद के प्रेमी उच्च श्रेणी में जितने मिलेंगे, उतने निम्न श्रेणी में न मिल सकेंगे। खैर, आप उनसे मिलकर देखिए तो।

जॉन सेवक—मैं स्वयं उनसे मिलकर तय कर लूँगा।

कुँवर साहब—अभी तो मिस सोफ़िया पूर्ण स्वस्थ होने तक यहीं रहेंगी न? आपको तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है?

जॉन सेवक इस विषय में सिर्फ दो-चार बातें करके यहाँ से बिदा हुए। मिसेज़ सेवक फ़िटन पर पहले ही से आ बैठी थीं। प्रभु सेवक विनय के साथ बाग में टहल रहे थे। विनय ने आकर जॉन सेवक से हाथ मिलाया। प्रभु सेवक उनसे कल फिर मिलने का वादा करके पिता के साथ चले। रास्ते में बातें होने लगीं।

जॉन सेवक—आज एक मुलाकात में जितना काम हुआ, उतना महीनों की दौड़-धूप से भी न हुआ था। कुँवर साहब बड़े सज्जन आदमी हैं। 50 हज़ार के हिस्से ले लिए।

प्रभु सेवक—इस घर के सभी प्राणी दया और धर्म के पुतले हैं। विनयसिंह जैसा वाक्-मर्मज्ञ नहीं देखा। मुझे तो इनसे प्रेम हो गया।

जॉन सेवक—कुछ काम की बातचीत भी की?

प्रभु सेवक—जी नहीं, आपके नजदीक जो काम की बातचीत है, उन्हें उसमें ज़रा भी रुचि नहीं। वह सेवा का व्रत ले चुके हैं, और इतनी देर तक अपनी समिति की ही चर्चा करते रहे।

जॉन सेवक—क्या तुम्हारा यह परिचय चतारी के राजा साहब पर भी कुछ असर डाल सकता है? विनयसिंह राजा साहब से हमारा कुछ काम निकलवा सकते हैं?

प्रभु सेवक—उनसे कहे कौन, मुझमें तो इतनी हिम्मत नहीं। उन्हें आप स्वदेशानुरागी सन्यासी समझिए। मुझसे अपनी समिति में आने के लिए उन्होंने बहुत आग्रह किया है।

जॉन सेवक—शरीक हो गये न?

प्रभु सेवक—जी नहीं, कह आया हूँ कि सोचकर उत्तर दूँगा। बिना सोचे-समझे इतना कठिन व्रत क्योंकर धारण कर लेता।

जॉन सेवक—मगर सोचने-समझने में महीनों न लगा देना। दो-चार दिन में आकर नाम लिखा लेना। तब तुम्हें उनसे कुछ काम की बातें करने का अधिकार हो जायेगा। (स्त्री से) तुम्हारी रानीजी से कैसी निभी?

मिसेज़ सेवक—मुझे तो उनसे घृणा हो गयी। मैंने किसी में इतना घमंड नहीं देखा।

प्रभु सेवक—मामा, आप उनके साथ घोर अन्याय कर रही हैं।

मिसेज़ सेवक—तुम्हारे लिए देवी होंगी, मेरे लिए तो नहीं हैं।

जॉन सेवक—यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि तुम्हारी उनसे न पटेगी। सोफ़ी को क्यों नहीं लाईं?

मिसेज़ सेवक—वह आये भी तो, या जबरन घसीट लाती?

जॉन सेवक—आयी नहीं या रानी ने आने नहीं दिया?

प्रभु सेवक—वह तो आने को तैयार थी, किन्तु इसी शर्त पर कि मुझ पर कोई धार्मिक अत्याचार न किया जाये।

जॉन सेवक—इन्हें यह शर्त क्यों मंजूर होने लगी!

प्रभु सेवक—अगर मामा अपनी बात पर अड़ी रहेंगी, तो शायद वह फिर घर न जाये।

जॉन सेवक—आखिर जायेगी कहाँ?

प्रभु सेवक—उसे कहीं जाने की ज़रूरत ही नहीं। रानी उस पर जान देती हैं।

लोग घर पहुँचे, तो गाड़ी की आहट पाते ही ईश्वर सेवक ने बड़ी स्नेहमयी उत्सुकता से पूछा—सोफ़ी आ गयी न? आ, तुझे गले लगा लूँ। ईसू तुझे अपने दामन में ले।

जॉन सेवक—पापा, वह अभी यहाँ आने के योग्य नहीं है। बहुत अशक्त हो गयी है। दो-चार दिन बाद आवेगी।

ईश्वर सेवक—गज़ब खुदा का! उसकी यह दशा है, और तुम सब उसे उसके हाल पर छोड़ आये!

जॉन सेवक—पापा, वहाँ बहुत आराम से है। राजा और रानी, दोनों ही उसके साथ प्रेम करते हैं। सच पूछिए, तो रानी ही ने उसे नहीं छोड़ा।

ईश्वर सेवक—कुँवर साहब से कुछ काम की बातचीत भी हुई?

जॉन सेवक—जी हाँ, मुबारक हो। 50 हज़ार की गोटी हाथ लगी।

ईश्वर सेवक—शुक्र है, शुक्र है, ईसू, मुझ पर अपना साया कर। यह कहकर वह फिर आराम-कुर्सी पर बैठ गये।

4

चंचल प्रकृति बालकों के लिए अंधे विनोद की वस्तु हुआ करते हैं। सूरदास को उनकी निर्दय बाल-क्रीड़ाओं से इतना कष्ट होता था कि वह मुँह-अँधेरे घर से निकल पड़ता और चिराग जलने के बाद लौटता। जिस दिन उसे जाने में देर होती, उस दिन विपत्ति में पड़ जाता था। बस्ती की गलियों में पग-पग पर किसी दुर्घटना की शंका बनी रहती थी। कोई उसकी लाठी छीनकर भागता; कोई कहता—सूरदास, सामने गड्ढा है, बाईं तरफ़ हो जाओ। सूरदास बाएँ घूमता, तो गड्ढे में गिर पड़ता। मगर बजरंगी का लड़का घीसू इतना दुष्ट था कि सूरदास को छेड़ने के लिए घड़ी-भर रात रहते ही उठ पड़ता।

एक दिन सूर्योदय के पहले सूरदास घर से चले, तो घीसू एक तंग गली में छिपा खड़ा था। सूरदास को वहाँ पहुँचते ही शंका हुई। वह खड़ा होकर आहट लेने लगा। घीसू अब हँसी न रोक सका। झपटकर सूरे का डंडा पकड़ लिया। सूरदास डंडे को मज़बूत पकड़े हुए था। घीसू ने पूरी शक्ति से खींचा। हाथ फिसल गया, अपने ही ज़ोर में गिर पड़ा, सिर में चोट लगी, खून निकल आया। उसने खून देखा, तो चीखता-चिल्लाता घर पहुँचा। बजरंगी ने पूछा, क्यों रोता है रे? क्या हुआ? घीसू ने उसे कुछ जवाब न दिया। आकर माँ से बोला—सूरदास ने मुझे ढकेल दिया। माँ ने सिर की चोट देखी, तो आँखों में खून उतर आया। लड़के का हाथ पकड़े हुए आकर बजरंगी के सामने खड़ी हो गयी और बोली—अब इस अंधे की शामत आ गयी है। लड़के को ऐसा ढकेला कि लहूलुहान हो गया।

बजरंगी ने शांत भाव से कहा—इसी ने कुछ छेड़ा होगा। वह बेचारा तो इससे आप अपनी जान छिपाता फिरता है।

जमुनी—तो भी क्या इतनी बेदर्दी से ढकेलना चाहिए था कि सिर फूट जाये! अंधों को सभी लड़के छेड़ते हैं; पर वे सबसे लठियाँव नहीं करते फिरते।

इतने में सूरदास भी आकर खड़ा हो गया। मुख पर ग्लानि छाई हुई थी। जमुनी लपककर उसके सामने आयी और बिजली की तरह कड़ककर बोली—क्यों सूरे, साँझ होते ही रोज लुटिया लेकर दूध के लिए सिर पर सवार हो जाते हो और अभी घिसुआ ने ज़रा लाठी पकड़ ली, तो उसे इतनी ज़ोर से धक्का दिया कि सिर फूट गया।

सूरदास—भगवान् जानते हैं, जो मैंने घीसू को पहचाना हो। समझा, कोई लौंडा होगा,

लाठी को मजबूत पकड़े रहा। घीसू का हाथ फिसल गया, गिर पड़ा। तुम्हारा ही दिया खाता हूँ, तुम्हारे ही लड़के को मारूँगा?

जमुनी—नहीं, अब तुम्हें घमंड हुआ है। भीख माँगते हो, फिर भी लाज नहीं आती, सबकी बराबरी करने को मरते हो।

बजरंगी जमुनी को मना कर रहा था, और लोग भी समझा रहे थे, लेकिन वह किसी की न सुनती थी। सूरदास अपराधियों की भाँति सिर झुकाए यह वाग्बाण सह रहा था।

भैरो ताड़ी उतारने जा रहा था, रुक गया, और सूरदास पर दो-चार छींटे उड़ा दिए—जमाना ही ऐसा है, सब रोजगारों से अच्छा भीख माँगना।

जगधर औरों से तो भीगी बिल्ली बना रहता था, सूरदास को धिक्कारने के लिए वह भी निकल पड़ा। जगधर और भैरो के कटु वाक्य को सुन-सुनकर वह और भी दुःखी हो रहा था। अपनी दीनता पर रोना आता था। सहसा मिठुआ भी आ पहुँचा। वह भी शरारत का पुतला था, घीसू से भी दो अंगुल बढ़ा हुआ। जगधर को देखते ही यह सरस पद गा-गाकर चिढ़ाने लगा—

लालू का लाल मुँह, जगधर का काला,

जगधर तो हो गया लालू का साला।

भैरो को भी उसने एक स्वरचित पद सुनाया:

भैरो, भैरो, ताड़ी बेच,

या बीबी की साड़ी बेच।

चिढ़नेवाले चिढ़ते क्यों हैं, इसकी मीमांसा तो मनोविज्ञान के पंडित ही कर सकते हैं। हमने साधारणतया लोगों को प्रेम और भक्ति के भाव ही से चिढ़ते देखा है। कोई राम या कृष्ण के नामों से इसलिए चिढ़ता है कि लोग उसे चिढ़ाने ही के बहाने से ईश्वर के नाम लें। कोई इसलिए चिढ़ता है कि बाल-वृंद उसे घेरे रहें। वे बाल-विनोद का रस लेना क्या जानें? दोनों झल्ला उठे। जगधर मिठुआ को गाली देने लगा; लेकिन भैरो को गालियाँ देने से संतोष न हुआ। उसने लपककर उसे पकड़ लिया। दो-तीन तमाचे ज़ोर-ज़ोर से मारे और बड़ी निष्ठुरता से उसके कान पकड़कर खींचने लगा। मिठुआ बिलबिला उठा। सूरदास अब तक दीन भाव से सिर झुकाए खड़ा था। मिठुआ का रोना सुनते ही उसकी त्योरियाँ बदल गईं। चेहरा तमतमा उठा। सिर उठाकर फूटी हुई आँखों से ताकता हुआ बोला—भैरो, भला चाहते हो, तो उसे छोड़ दो; नहीं तो ठीक न होगा।

भैरो—मार की इतनी अखर है, तो इसे रोकते क्यों नहीं? हमको चिढ़ाएगा, तो हम पीटेंगे—एक बार नहीं, हज़ार बार; तुमको जो करना हो, कर लो।

जगधर—लड़के को डाँटना तो दूर, ऊपर से और सह देते हो।

सूरदास—चुप भी रहो, आये हो वहाँ से न्याय करने। लड़कों को तो यह बान ही होती है; पर कोई उन्हें मार नहीं डालता। तुम्हीं लोगों को अगर किसी दूसरे लड़के ने चिढ़ाया होता, तो मुँह तक न खोलते।

भैरो—दूसरे लड़कों की और उसकी बराबरी है? दरोगाजी की गालियाँ खाते हैं, तो क्या डोमड़ों की गालियाँ भी खाएँ? अभी तो दो ही तमाचे लगाये हैं, फिर चिढ़ाए, तो उठाकर पटक दूँगा, मरे या जिए।

सूरदास—(मिट्ठू का हाथ पकड़कर) मिठुआ, चिढ़ा तो, देखूँ, यह क्या करते हैं। आज जो कुछ होना होगा, यहीं हो जायेगा।

लेकिन मिठुआ के गालों में अभी तक जलन हो रही थी, मुँह भी सूज गया था, सिसकियाँ बंद न होती थीं। जब बहुत बढ़ावे देने पर भी उसका मुँह न खुला, तो सूरदास ने झुँझलाकर कहा—अच्छा, मैं ही चिढ़ाता हूँ, देखूँ मेरा क्या बना लेते हो!

यह कहकर उसने लाठी मज़बूत पकड़ ली, और बार-बार उसी पद की रट लगाने लगा मानो कोई बालक अपना सबक याद कर रहा हो—

भैरो, भैरो, ताड़ी बेच,

या बीबी की साड़ी बेच।

एक ही साँस में उसने कई बार यही रट लगाई। भैरो कहाँ तो क्रोध से उन्मत्त हो रहा था, कहाँ सूरदास का यह बाल-हठ देखकर हँस पड़ा। और लोग भी हँसने लगे। अब सूरदास को ज्ञात हुआ कि मैं कितना दीन और बेकस हूँ। मेरे क्रोध का यह सम्मान है! भगवान् ने इतना अपंग न बना दिया होता, तो क्यों यह दुर्गत होती। यह सोचकर हठात् उसे रोना आ गया। बहुत जब्त करने पर भी आँसू न रुक सके।

बजरंगी ने भैरो और जगधर दोनों को धिक्कारा—क्या अंधे से हेकड़ी जताते हो! सरम नहीं आती? एक तो लड़के का तमाचों से मुँह लाल कर दिया, उस पर और गरजते हो। (जमुनी की ओर देखकर) यह सब तेरे कारण हुआ। अपने लौंडे को डाँटती नहीं, बेचारे अंधे पर गुस्सा उतारने चली है। जमुनी सूरदास का रोना देखकर सहम गयी थी! लज्जित होकर बोली—मैं क्या जानती थी कि इतना बखेड़ा हो जायेगा। आ बेटा मिट्ठू, चल बछवा पकड़ ले, तो दूध दुहूँ।

दुलारे लड़के तिनके की मार भी नहीं सह सकते। मिट्ठू दूध की पुचकार से भी शांत न हुआ, तो जमुनी ने आकर उसके आँसू पोंछे और गोद में उठाकर घर ले गयी।

मिट्ठू तो उधर गया, भैरो और जगधर भी अपनी-अपनी राह चले, पर सूरदास सड़क की ओर न गया। अपनी झोंपड़ी में जाकर अपनी बेकसी पर रोने लगा। अपने अंधेपन पर आज उसे जितना दुःख हो रहा था, उतना और कभी न हुआ था। सोचा, मेरी यह दुर्गत इसलिए न है कि अंधा हूँ, भीख माँगता हूँ। मसक्कत की कमाई खाता होता, तो मैं भी गरदन उठाकर न चलता? मेरा भी आदर-मान होता; क्यों चिऊँटी की भाँति पैरों के नीचे मसला जाता!

निराश होकर सूरदास के मन में विचार आया कि इस ज़मीन को क्यों न बेच दूँ। इसके सिवा अब मुझे और कोई सहारा नहीं है। कहाँ तक बाप-दादों के नाम को रोऊँ! साहब उसे लेने को मुँह फैलाए हुए हैं। दाम भी अच्छा दे रहे हैं। उन्हीं को दे दूँ। चार-पाँच हज़ार बहुत होते हैं। अपने घर सेठ की तरह बैठा हुआ चैन की बंसी बजाऊँगा। ये ही लोग, जो आज मुझ

पर रोब जमा रहे हैं, मेरा मुँह जोहेंगे, मेरी खुशामद करेंगे।

मन में यह विचार स्थिर करके सूरदास अपनी झोंपड़ी से निकला और लाठी टेकता हुआ गोदाम की तरफ़ चला। गोदाम के सामने पहुँचा, तो दयागिरि से भेंट हो गयी। उन्होंने पूछा—इमर कहाँ चले सूरदास? तुम्हारी जगह तो पीछे छूट गयी।

सूरदास—जरा इन्हीं मियाँ साहब से कुछ बातचीत करनी है।

दयागिरि—क्या इसी ज़मीन के बारे में?

सूरदास—हाँ, मेरा विचार है कि यह ज़मीन बेचकर कहीं तीर्थयात्रा करने चला जाऊँ। इस मुहल्ले में अब निबाह नहीं है।

दयागिरि—सुना, आज भैरो तुम्हें मारने की धमकी दे रहा था।

सूरदास—मैं तरह न दे जाता, तो उसने मार ही दिया था। सारा मुहल्ला बैठा हँसता रहा, किसी की जबान न खुली कि अंधे-अपाहिज आदमी पर यह कुन्याव क्यों करते हो। तो जब मेरा कोई हितू नहीं है, तो मैं क्यों दूसरों के लिए मरूँ?

दयागिरि—नहीं सूरे, मैं तुम्हें ज़मीन बेचने की सलाह न दूँगा। धर्म का फल इस जीवन में नहीं मिलता। हमें आँखें बंद करके नारायन पर भरोसा रखते हुए धर्म-मार्ग पर चलते रहना चाहिए। संकट ही में धीरज और धर्म की परीक्षा होती है। देखो, गुसाईंजी ने कहा है:

'आपत्ति-काल परखिये चारी। धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी।'

ज़मीन पड़ी है, पड़ी रहने दो। गउएँ चरती हैं, यह कितना बड़ा पुण्य है। रही तीर्थ-यात्रा, मैं भी शिवरात्रि के बाद बद्रीनारायण जानेवाला हूँ। हमारा-तुम्हारा साथ हो जायेगा। रास्ते में तुम्हारी एक कौड़ी न खर्च होगी, इसका मेरा जिम्मा है।

सूरदास—नहीं बाबा, अब यह कुन्याव नहीं सहा जाता। भाग्य में धर्म करना नहीं लिखा हुआ है, तो कैसे धर्म करूँगा। ज़रा इन लोगों को भी तो मालूम हो जाये कि सूरे भी कुछ है।

दयागिरि—सूरे, आँखें बंद होने पर भी कुछ नहीं सूझता। यह अहंकार है, इसे मिटाओ, नहीं तो यह जन्म भी नष्ट हो जायेगा। यही अहंकार सब पापों का मूल है—

'मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।'

न यहाँ तुम हो, न तुम्हारी भूमि; न तुम्हारा कोई मित्र है, न शत्रु है; जहाँ देखो भगवान्-ही-भगवान् हैं—

'ज्ञान-मान जहँ एकौ नाहीं, देखत ब्रह्म रूप सब गाहीं।'

सूरदास—बाबाजी, जब तक भगवान् की दया न होगी, भक्ति और वैराग्य किसी पर मन न जमेगा। इस घड़ी मेरा हृदय रो रहा है, उसमें उपदेश और ज्ञान की बातें नहीं पहुँच सकतीं। गीली लकड़ी खराद पर नहीं चढ़ती।

दयागिरि—पछताओगे और क्या। यह कहकर दयागिरि अपनी राह चले गये।

उनके जाने के बाद सूरदास ने अपने मन में कहा—यह भी मुझी को ज्ञान का उपदेश करते हैं। दीनों पर उपदेश का भी दाँव चलता है, मोटों को कोई उपदेश नहीं करता।

वेग से चलती हुई गाड़ी रुकावटों को फाँद जाती है। सूरदास समझाने से और भी ज़िद पकड़ गया। सीधे गोदाम के बरामदे में जाकर रुका। इस समय यहाँ बहुत-से चमार जमा थे। खालों की खरीद हो रही थी। चौधरी ने कहा—आओ सूरदास, कैसे चले?

सूरदास इतने आदमियों के सामने अपनी इच्छा न प्रकट कर सका। संकोच ने उसकी जबान बंद कर दी। बोला—कुछ नहीं, ऐसे ही चला आया।

ताहिर—साहब इनसे पीछेवाली ज़मीन माँगते हैं, मुँह-माँगे दाम देने को तैयार हैं! पर यह किसी तरह राजी नहीं होते।

ताहिरअली की बातें सुनते ही सूरदास की लज्जा ठट्ठा मारती हुई बाहर निकल आयी। बोला—मियाँ साहब, वह ज़मीन तो बाप-दादों की निसानी है, भला मैं उसे बय या पट्टा कैसे कर सकता हूँ? मैंने उसे धरम काज के लिए संकल्प कर दिया है।

ताहिर—धरम काज बिना रुपये के कैसे होगा? जब रुपये मिलेंगे, तभी तो तीरथ करोगे, साधु-संतों की सेवा करोगे; मंदिर-कुआँ बनवाओगे?

चौधरी—सूरे, इस बखत अच्छे दाम मिलेंगे। हमारी सलाह तो यही है कि दे दो, तुम्हारा कोई उपकार तो उससे होता नहीं।

सूरदास—मुहल्ले-भर की गउएँ चरती हैं, क्या इससे पुन्न नहीं होता? गऊ की सेवा से बढ़कर और कौन पुन्न का काम है?

ताहिर—अपना पेट पालने के लिए तो भीख माँगते फिरते हो, चले हो दूसरों के साथ पुन्न करने। इसी धरम के पीछे तुम्हारी यह दसा हो रही है, नहीं तो ठोकरें न खाते फिरते।

सूरदास ने उत्तेजित होकर कहा—मियाँ साहब, धरम एहसान के लिए नहीं किया जाता। नेकी करके दरिया में डाल देना चाहिए।

ताहिर—पछताओगे और क्या। साहब से जो कुछ कहोगे, वही करेंगे। तुम्हारे लिए घर बनवा देंगे, माहवार गुजारा देंगे; मिठुआ को किसी मदरसे में पढ़ने को भेज देंगे, उसे नौकर रखा देंगे, तुम्हारी आँखों की दवा करा देंगे, मुमकिन है, सूझने लगे।

सूरदास पर और किसी प्रलोभन का असर तो न हुआ; हाँ, दृष्टि-लाभ की सम्भावना ने ज़रा नरम कर दिया। बोला—क्या जनम के अंधों की दवा भी हो सकती है?

ताहिर—तुम जनम के अंधे हो क्या? तब तो मजबूरी है। लेकिन वह तुम्हारे आराम के इतने सामान जमा कर देंगे कि तुम्हें आँखों की ज़रूरत ही न रहेगी।

सूरदास—साहब, बड़ी नामूसी होगी। लोग चारों ओर से धिक्कारने लगेंगे।

चौधरी—तुम्हारी जायदाद है, बय करो, चाहे पट्टा लिखो, किसी दूसरे को दखल देने की क्या मजाल है!

सूरदास—बाप-दादों का नाम तो नहीं डुबाया जाता।

सूरदास की जिद से ताहिरअली को क्रोध आ गया। बोले—तुम्हारी तकदीर में भीख माँगना लिखा है, तो कोई क्या कर सकता है। साहब यह ज़मीन लेंगे ज़रूर, चाहे खुशी से दो, चाहे रोकर।

सूरदास ने गर्व से उत्तर दिया—खाँ साहब, अगर ज़मीन जायेगी, तो इसके साथ मेरी जान भी जायेगी। यह कहकर उसने लकड़ी सँभाली और अपने अड्डे पर आ बैठा।

उधर दयागिरि ने जाकर नायकराम से यह समाचार कहा। बजरंगी भी बैठा था। यह खबर सुनते ही दोनों के होश उड़ गये। बजरंगी ने चिंतित होकर कहा—अब क्या करना होगा पंडाजी, बताओ?

नायकराम—करना क्या होगा, जैसा किया है, वैसा भोगना होगा। जाकर अपनी घरवाली से पूछो। उसी ने आज आग लगाई थी।

बजरंगी—तो अब कोई उपाय निकालोगे या बैठकर पिछली बातों के नाम को रोएँ!

नायकराम—उपाय यही है कि आज सूरे आये, तो चलकर उसके पैरों पर गिरो, उसे दिलासा दो, जैसे राजी हो, वैसे राजी करो, दादा-भैया करो, मान जाये तो अच्छा, नहीं तो साहब से लड़ने के लिए तैयार हो जाओ, उनका कब्जा न होने दो।

बजरंगी—जरा मियाँ साहब के पास क्यों नहीं चले चलते? सूरदास ने उससे न जाने क्या-क्या बातें की हों। कहीं लिखा-पढ़ी कराने को कह आया हो, तो फिर चाहे कितनी ही आरजू-बिनती करोगे, कभी अपनी बात न पलटेगा।

नायकराम—मैं उस मुंशी के द्वार पर न जाऊँगा। उसका मिजाज और भी आसमान पर चढ़ जायेगा।

बजरंगी—नहीं पंडाजी, मेरी खातिर से ज़रा चले चलो।

नायकराम आख़िर राजी हुए। दोनों आदमी ताहिरअली के पास पहुँचे। वहाँ इस वक़्त सन्नाटा था। ताहिरअली अकेले बैठे हुए हिसाब-किताब लिख रहे थे। सहसा नायकराम ने कहा—कहिए मुंसीजी, आज सूरे से क्या बातचीत हुई?

ताहिर—अहा, आइए पंडाजी, मुआफ कीजिएगा, मैं ज़रा मीजान लगाने में मसरूफ था, इस मोढ़े पर बैठिए। सूरे से कोई बात तय न होगी। उसकी तो शामतें आयी हैं।

नायकराम—जब सूरे राजी नहीं है, तो साहब क्या खाके यह ज़मीन ले लेंगे! देख बजरंगी, हुई न वही बात, सूरे ऐसा कच्चा आदमी नहीं है।

ताहिर—साहब को अभी आप जानते नहीं हैं।

नायकराम—मैं साहब और साहब के बाप, दोनों को अच्छी तरह जानता हूँ। हाकिमों की खुशामद की बदौलत आज बड़े आदमी बने फिरते हैं।

ताहिर—खुशामद का तो आजकल जमाना है। वह इस ज़मीन को लिए बगैर न मानेंगे।

नायकराम—तो इधर भी यही तय है कि ज़मीन पर किसी पर कब्जा न होने देंगे, चाहे जान जाये। इसके लिए मर मिटेंगे।

ताहिर—तो आप ये सब बातें मुझसे क्यों कहते हैं, क्या मैं जानता नहीं हूँ? आपने सैयद रजा अली थानेदार का नाम तो सुना ही होगा, मैं उन्ही का लड़का हूँ। यहाँ कौन पंडा है, जिसे मैं नहीं जानता।

नायकराम—लीजिए, घर ही बैद, तो मरिए क्यों? फिर तो आप अपने घर ही के आदमी

हैं। आपको भगवान् ने विद्या-बुद्धि दी है, बीसों बहाने निकाल सकते हैं।

ताहिर—पंडाजी, जब आपसे भाईचारा हो गया, तो क्या परदा है। साहब पल्ले सिरे का घाघ है। हाकिमों से उसका बड़ा मेल-जोल है। मुफ्त में ज़मीन ले लेगा। आप सूरे से मुआमला तय करा दीजिए, तो उसका भी फ़ायदा हो, मेरा भी फ़ायदा हो और आपका भी फ़ायदा हो।

नायकराम—आपको वहाँ से इनाम-इकराम मिलनेवाला हो, वह हमीं लोगों से ले लीजिए। इसी बहाने कुछ आपकी खिदमत करेंगे।

ताहिर—मुआजल्लाह, पंडाजी, ऐसी बात न कहिए। मैं मालिक की निगाह बचाकर एक कौड़ी लेना भी हराम समझता हूँ।

नायकराम—अरे यार, मैं तुम्हें रुसवत थोड़े ही देने को कहता हूँ। जब हमारा-आपका भाईचारा हो गया, तो हमारा काम आपसे निकलेगा, आपका काम हमसे।

ताहिर—नहीं पंडाजी, खुदा मेरी नीयत को पाक रखे, मुझसे नमकहरामी न होगी। मैं जिस हाल में हूँ उसी में खुश हूँ, जब उसके करम की निगाह होगी, तो मेरी भलाई की कोई सूरत निकल ही आयेगी।

नायकराम—सुनते हो बजरंगी, दरोगाजी की बातें। चलो, चुपके से घर बैठो, जो कुछ आगे आयेगी, देखी जायेगी। अब तो साहब ही से निबटना है।

बजरंगी के विचार में नायकराम ने उतनी मिन्नत-समाजत न की थी, जितनी करनी चाहिए थी। दीनता से जो काम निकल जाता है, वह डींग मारने से नहीं निकलता। नायकराम ने तो लाठी कंधे पर रखी, और चले। बजरंगी ने कहा—मैं ज़रा गोरुओं को देखने जाता हूँ, उधर से होता हुआ आऊँगा। नायकराम के चले आने के बाद ताहिरअली भी घर गए; पर बजरंगी वहीं आस-पास टहलता रहा कि वह बाहर निकलें, तो अपना दुःखड़ा सुनाऊँ।

ताहिरअली के पिता पुलिस-विभाग में कांस्टेबिल से थानेदारी के पद तक पहुँचे थे। मरते समय कोई जायदाद तो न छोड़ी, यहाँ तक कि उनकी अन्तिम क्रिया कर्ज से की गयी; लेकिन ताहिर अली के सिर पर दो विधवाओं और उनकी सन्तानों का भार छोड़ गये। उन्होंने तीन शादियाँ की थीं। पहली स्त्री से ताहिरअली थे, दूसरी से माहिरअली और जाहिरअली, और तीसरी से जाबिरअली। ताहिरअली धैर्यशील और विवेकी मनुष्य थे। पिता का देहांत होने पर साल-भर तक तो रोजगार की तलाश में मारे-मारे फिरे। फिर कहीं मवेशीखाने की मुहर्रिरी मिल गयी, इधर कुछ समय से मिस्टर जॉन सेवक के यहाँ स्थायी रूप से नौकर हो गये थे। उनके आचार-विचार अपने पिता से बिलकुल निराले थे। रोजा-नमाज के पाबन्द और नीयत के साफ थे। हराम की कमाई से कोसों भागते थे। उनकी माँ तो मर चुकी थीं; पर दोनों विमाताएँ जीवित थीं। विवाह भी हो चुका था; स्त्री के अतिरिक्त एक लड़का था—साबिरअली, और एक लड़की—नसीमा। इतना बड़ा कुटुम्ब था और 30 रुपये मासिक आय। इस महँगी के समय में, जब कि इससे पँचगुनी आमदनी में भी सुचारु रूप से निर्वाह नहीं होता, उनको बहुत कष्ट झेलने पड़ते थे; पर नीयत खोटी न होती थी। ईश्वर-भीरुता उनके चरित्र का प्रधान गुण थी। उनकी बड़ी विमाता ने, जिसका नाम जैनब था, द्वार पर खड़ी

होकर नायकराम और बजरंगी की बातें सुनी थीं। बजरंगी दस ही पाँच कदम चला था कि माहिरअली ने पुकारा—सुनो जी, ओ आदमी। जरा यहाँ आना, तुम्हें अम्माँ बुला रही हैं।

बजरंगी लौट पड़ा, कुछ आस बँधी। आकर फिर बरामदे में खड़ा हो गया। जैनब टाट के परदे की आड़ में खड़ी थीं, पूछा—क्या बात थी जी?

बजरंगी—वही ज़मीन की बातचीत थी। साहब इसे लेने को कहते हैं। हमारा गुजर-बसर इसी ज़मीन से होता है! मुंसीजी से कह रहा हूँ, किसी तरह इस झगड़े को मिटा दीजिए। नज़र-नियाज देने को भी तैयार हूँ, मुदा मुंसीजी सुनते ही नहीं।

जैनब—सुनेंगे क्यों नहीं, सुनेंगे न तो ग़रीबों की हाय किस पर पड़ेगी? तुम भी तो गँवार आदमी हो, उनसे क्या कहने गए? हमसे कहते, हम तय करा देते।

जाबिर की माँ का नाम था रकिया। वह भी आकर खड़ी हो गईं। दोनों महिलाएँ साये की तरह साथ-साथ रहती थीं। दोनों के भाव एक, दिल एक, विचार एक, सौतिन का जलापा नाम को न था। बहनों का-सा प्रेम था। बोली—और क्या, भला ऐसी बातें मरदों से की जाती हैं?

बजरंगी—माताजी, मैं गँवार आदमी, इसका हाल क्या जानूँ। अब आप ही तय करा दीजिए। ग़रीब आदमी हूँ, बाल-बच्चे जिएँगे।

जैनब—सच-सच कहना, यह मुआमला दब जाये, तो कहाँ तक दोगे?

बजरंगी—बेगम साहब, 50 रुपये तक देने को तैयार हूँ।

जैनब—तुम भी गजब करते हो, 50 रुपये में इतना बड़ा काम निकालना चाहते हो?

रकिया—(धीरे से) बहन, कहीं बिदक न जाये।

बजरंगी—क्या करूँ, बेगम साहब, ग़रीब आदमी हूँ। लड़कों को दूध-दही जो कुछ हुकुम होगा, खिलाता रहूँगा; लेकिन नगद तो इससे ज़्यादा मेरा किया न होगा।

रकिया—अच्छा, तो रुपयों का इंतजाम करो। खुदा ने चाहा, तो सब तय हो जायेगा।

जैनब—(धीरे से) रकिया, तुम्हारी जल्दबाजी से मैं आज़िज हूँ।

बजरंगी—माँजी, यह काम हो गया, तो सारा मुहल्ला आपका जस गायगा।

जैनब—मगर तुम तो 50 रुपये से आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेते। इतने तो साहब ही दे देंगे, फिर गुनाह बेलज्जत क्यों किया जाये।

बजरंगी—माँजी, आपसे बाहर थोड़े ही हूँ। दस-पाँच रुपये और जुटा दूँगा।

बजरंगी—बस, दो दिन की मोहलत मिल जाये। तब तक मुंसीजी से कह दीजिए, साहब से कहें-सुनें।

जैनब—वाह महतो, तुम तो बड़े होशियार निकले। सेंत ही में काम निकालना चाहते हो। पहले रुपये लाओ, फिर तुम्हारा काम न हो, तो हमारा जिम्मा।

बजरंगी दूसरे दिन आने का वादा करके खुश-खुश चला गया, तो जैनब ने रकिया से कहा—तुम बेसब्र हो जाती हो। यही अहीर पूरे सौ गिनकर जाता।

रकिया—क्या करूँ, मैं डरती हूँ कि कहीं बहुत सख्ती से निशाना खता न कर जाये।

जैनब—वह अहीर रुपये ज़रूर लायेगा। ताहिर को आज ही से भरना शुरू कर दो।

रकिया—और कहीं साहब न माने, तो?

जैनब—तो कौन हमारे ऊपर नालिश करने जाता है।

ताहिरअली खाना खाकर लेटे थे कि जैनब ने जाकर कहा—साहब दूसरों की ज़मीन क्यों लिए लेते हैं? बेचारे रोते फिरते हैं।

ताहिर—मुफ्त थोड़े ही लेना चाहते हैं! उसका माकूल मुआवजा देने पर तैयार हैं।

जैनब—यह तो ग़रीबों पर जुल्म है।

रकिया—जुल्म ही नहीं है, अजाब है। भैया, तुम साहब से साफ-साफ कह दो, मुझे इस अजाब में न डालिए। खुदा ने मेरे आगे भी बाल-बच्चे दिए हैं, न जाने कैसी पड़े?

जैनब—गँवार तो हैं ही, तुम्हारे ही सिर हो जायें। तुम्हें साफ कह देना चाहिए कि मैं मुहल्लेवालों से दुश्मनी मोल न लूँगा, जान-जोखिम की बात है।

रकिया—जान-जोखिम तो है ही, ये गँवार किसी के नहीं होते।

ताहिर—क्या आपने भी कुछ अफवाह सुनी है?

रकिया—हाँ, ये सब चमार आपस में बातें करते जा रहे थे कि साहब ने ज़मीन ली, तो खून की नदी बह जायेगी। मैंने तो जब से सुना है, होश उड़े जा रहे हैं।

जैनब—होश उड़ने की बात ही है।

ताहिर—मुझे सब नाहक बदनाम कर रहे हैं। न मैं लेने में, न देने में। साहब ने उस अंधे से ज़मीन की निस्बत बातचीत करने का हुक्म दिया था। मैंने हुक्म की तामील की, जो मेरा फर्ज था; लेकिन ये अहमक यही समझ रहे हैं कि मैंने ही साहब को इस ज़मीन की खरीदारी पर आमादा किया है; हालांकि खुदा जानता है, मैंने कभी उनसे इसका ज़िक्र ही नहीं किया।

जैनब—मुझे बदनामी का खौफ तो नहीं है; हाँ, खुदा के कहर से डरती हूँ। बेकसों की आह क्यों सिर पर लो?

ताहिर—मेरे ऊपर क्यों अजाब पड़ने लगा?

जैनब—और किसके ऊपर पड़ेगा बेटा? यहाँ तो तुम्हीं हो, साहब तो नहीं बैठे हैं।

रकिया—मेरे मैके में एक कारिंदे ने किसी काश्तकार की ज़मीन निकाल ली थी। दूसरे ही दिन जवान बेटा उठ गया। किया उसने ज़मींदार ही के हुक्म से, मगर बला आयी उस ग़रीब के सिर।

यह पते की बात थी। ताहिरअली को भी इसका तुजुर्बा था। उनके घर के सभी बच्चे गंडों और तावीजों से मढ़े हुए थे, उस पर भी आये दिन झाड़-पूळँक और राई-नोन की ज़रूरत पड़ा ही करती थी।

धर्म का मुख्य स्तम्भ भय है। अनिष्ट की शंका को दूर कीजिए, फिर तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, रोज़ा-नमाज, किसी का निशान भी न रहेगा। मसजिदें खाली नज़र आयेंगी, और मंदिर वीरान!

ताहिरअली को भय ने परास्त कर दिया। स्वामिभक्ति और कर्त्तव्य-पालन का भाव

ईश्वरीय कोप का प्रतिकार न कर सका।

5

चतारी के राजा महेंद्रकुमार सिंह यौवनावस्था ही में अपनी कार्य-दक्षता और वंश प्रतिष्ठा के कारण म्युनिसिपैलिटी के प्रधान निर्वाचित हो गये थे। विचारशीलता उनके चरित्र का दिव्य गुण थी। बहुत ही सादे वस्त्र पहनते, ठाठ-बाट से घृणा थी और व्यसन तो उन्हें छू तक न गया था। हाँ, अगर कुछ प्रेम था, तो उद्यान-सेवा से। वह नित्य घंटे-दो-घंटे अपनी वाटिका में काम किया करते थे। बस, शेष समय नगर के निरीक्षण और नगर-संस्था के संचालन में व्यतीत करते थे। हुक्काम उनसे खिंचे रहते थे, उन्हें दम्भी और अभिमानी समझते थे किन्तु नगर के छोटे-से-छोटे मनुष्य की भी उनसे अभिमान या अविनय की शिकायत न थी। हर समय हरएक प्राणी से प्रसन्न-मुख मिलते थे। वह अत्यंत मितभाषी थे। वृद्धावस्था में मौन विचार-प्रौढ़ता का द्योतक होता है, और युवावस्था में विचार-दारिद्रय का; लेकिन राजा साहब का वाक्-संयम इस धारणा को असत्य सिद्ध करता था। उनके मुँह से जो बात निकलती थी, विवेक और विचार से परिष्कृत होती थी। एक ऐश्वर्यशाली ताल्लुकेदार होने पर भी उनकी प्रवृत्ति साम्यवाद की ओर थी। यशस्वी बनना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था।

प्रातःकाल था। राजा साहब स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर नगर का निरीक्षण करने जा ही रहे थे कि इतने में मिस्टर जॉन सेवक का मुलाकाती कार्ड पहुँचा। जॉन सेवक का राज्याधिकारियों से ज़्यादा मेल-जोल था, उनकी सिगरेट कम्पनी के हिस्सेदार भी अधिकांश अधिकारी लोग थे। राजा साहब ने कम्पनी की नियमावली देखी थी; पर जॉन सेवक से उनकी कभी भेंट न हुई थी। किन्तु राजा साहब कल इंदु से मिलने गये थे। वहाँ सोफ़िया से उनकी भेंट हो गयी थी। जॉन सेवक की कुछ चर्चा आ गयी। उस समय मि. सेवक के विषय में उनकी धारणा बहुत कुछ परिवर्तित हो गयी थी। कार्ड पाते ही बाहर निकल आये, और जॉन सेवक से हाथ मिलाकर अपने दीवानखाने में ले गये।

हम किसी से मिलते ही अपने सूक्ष्म बुद्धि से जान जाते हैं कि हमारे विषय में उसके क्या भाव हैं। मि. सेवक को एक क्षण तक मुँह खोलने का साहस न हुआ, कोई समयोचित भूमिका न सूझती थी। राजा साहब को भूमिका तो सूझ गयी थी—सोफ़ी के देवोपम त्याग और सेवा की प्रशंसा से बढ़कर और कौन-सी भूमिका होती—किन्तु कतिपय मनुष्यों को अपनी प्रशंसा सुनने से जितना संकोच होता है, उतना ही किसी दूसरे की प्रशंसा करने से

होता है। जॉन सेवक में यह संकोच न था। बोले—आपके दर्शनों की बहुत दिनों से इच्छा थी; लेकिन परिचय न होने के कारण न आ सकता था। और, साफ बात यह है कि (मुस्कराकर) आपके विषय में अधिकारियों के मुख से ऐसी-ऐसी बातें सुनता था, जो इस इच्छा को व्यक्त न होने देती थीं। लेकिन आपने निर्वाचन-क्षेत्रों को सुगम बनाने में जिस विशुद्ध देश-प्रेम का परिचय दिया है, उसने हाकिमों की मिथ्याक्षेपों की कलई खोल दी।

अधिकारियों के मिथ्याक्षेपों की चर्चा करके जॉन सेवक ने अपने वाक्-चातुर्य को सिद्ध कर दिया। राजा साहब को अधिकारियों से यही शिकायत थी, इसी कारण उन्हें अपने कार्यों के सम्पादन में कठिनाई पड़ती थी, विलम्ब होता था, बाधाएँ उपस्थित होती थीं। बोले—यह मेरा दुर्भाग्य है कि हुक्काम मुझ पर इतना अविश्वास करते हैं। मेरा अगर कोई अपराध है, तो इतना ही कि जनता के लिए भी स्वास्थ्य और सुविधाओं को उतना ही आवश्यक समझता हूँ, जितना हुक्काम और रईसों के लिए।

मिस्टर सेवक—महाशय, इन लोगों के दिमाग को कुछ न पूछिए। संसार इनके उपयोग के लिए है। जो प्राणी इनके द्वार पर अपना मस्तक न घिसे, वह अपवादी है, अशिष्ट है, राजद्रोही है; राष्ट्र-सेवा इनकी दृष्टि में सबसे अधम पाप है। आपने मेरे सिगरेट के कारखाने की नियमावली तो देखी होगी?

महेंद्र—जी हाँ, देखी थी।

जॉन सेवक—नियमावली का निकलना कहिए कि अधिकारी वर्ग की निगाहें मुझसे फिर गईं। मैं उनका कृपा-भाजन था, कितने ही अधिकारियों से मेरी मैत्री थी। किन्तु उसी दिन से मैं उनकी बिरादरी से टाट-बाहर कर दिया गया, मेरा हुक्का-पानी बंद हो गया। उनकी देखा-देखी हिंदुस्तानी हुक्काम और रईसों ने भी आनाकानी शुरू की।

इतनी लम्बी भूमिका के बाद जॉन सेवक अपने मतलब पर आये। बहुत सकुचाते हुए अपना उद्देश्य प्रकट किया। राजा साहब मानव-चरित्र के ज्ञाता थे, बने हुए तिलकधारियों को खूब पहचानते थे। एक दीन-दुर्बल अंधे की भूमि को, जो उसके जीवन का एकमात्र आधार हो, उसके कब्जे से निकालकर एक व्यवसायी को दे देना उनके सिद्धांत के विरुद्ध था। पर आज पहली बार उन्हें अपने नियम को ताक पर रखना पड़ा। यह जानते हुए कि मिस सोफ़िया ने उनके एक निकटतम सम्बंधी की प्राण-रक्षा की है, यह जानते हुए कि जॉन सेवक के साथ सद्व्यवहार करना कुँवर भरतसिंह को एक भारी ऋण से मुक्त कर देगा, वह इस प्रस्ताव की अवहेलना न कर सकते थे। कृतज्ञता हमसे वह सब कुछ करा लेती है, जो नियम की दृष्टि से त्याज्य है। राजा साहब ने इस मामले को जॉन सेवक की इच्छानुसार तय कर देने का वचन दिया, और मिस्टर सेवक अपनी सफलता पर फूले हुए घर आये।

स्त्री ने पूछा—क्या तय कर आये?

जॉन सेवक—वही, जो तय करने गया था।

स्त्री—शुक्र है, मुझे आशा न थी।

जॉन सेवक—यह सब सोफ़ी के एहसान की बरकत है। नहीं तो यह महाशय सीधे मुँह से बात करनेवाले न थे। ऐसे तपाक से मिले, मानो मैं उनका पुराना दोस्त हूँ। यह असाध्य कार्य

था, और सफलता के लिए मैं सोफ़ी का आभारी हूँ।

मिसेज़ सेवक—(क्रुद्ध होकर) तो तुम जाकर उसे लिवा लाओ, मैंने तो मना नहीं किया है। मुझे ऐसी बातें क्यों बार-बार सुनाते हो?

प्रभु सेवक नित्य एक बार सोफ़िया से मिलने जाया करता था। कुँवर साहब और विनय, दोनों ही की विनयशीलता और शालीनता ने उसे मंत्र-मुग्ध कर दिया था। कुँवर साहब गुणज्ञ थे। उन्होंने पहले ही दिन, एक निगाह में ताड़ लिया कि वह साधारण बुद्धि का युवक नहीं है। उन पर शीघ्र ही प्रकट हो गया कि इसकी स्वाभाविक रुचि साहित्य-दर्शन की ओर है। इसलिए वह प्रभु सेवक से प्रायः साहित्य और काव्य आदि विषयों पर वर्तालाप किया करते थे। वह उसकी प्रवृत्तियों को राष्ट्रीयता के भावों से अलंकृत कर देना चाहते थे। प्रभु सेवक को भी ज्ञात हो गया कि यह महाशय काव्य-कला के मर्मज्ञ हैं। इनसे उसे वह स्नेह हो गया था, जो कवियों को रसिक जनों से हुआ करता है। वही प्रभु सेवक, जो पहले हफ्तों कलम न उठाता था, अब एक-एक दिन में कई कविताएँ रच डालता। इस समय वह बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। जॉन सेवक को आते देखकर वहाँ आया कि देखूँ, क्या खबर लाये हैं। ज़मीन के मिलने में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयी थीं, उनसे उसे आशा हो गयी थी कि कदाचित् कुछ दिनों तक इस बंधन में न फँसना पड़े। जॉन सेवक की सफलता ने वह आशा भंग कर दी। मन की इस दशा में माता के अंतिम शब्द उसे बहुत प्रिय मालूम हुए। बोला—मामा, अगर आपका विचार है कि सोफ़ी वहाँ निरादर और अपमान सह रही है, और उकताकर स्वयं चली आवेगी, तो आप बड़ी भूल कर रही हैं। सोफ़ी अगर वहाँ बरसों रहे, तो भी वे लोग उसका गला न छोड़ेंगे। मैंने इतने उदार और शीलवान प्राणी ही नहीं देखे।

जॉन सेवक—तुम तो रोज वहाँ जाते हो, क्यों अपने साथ नहीं लाते?

मिसेज़ सेवक—प्रभु मसीह को द्रोही मेरे यहाँ आश्रय नहीं पा सकता।

प्रभु सेवक—गिरजे न जाना ही अगर प्रभु मसीह को द्रोही बनना है, तो लीजिए आज से मैं भी गिरजे न जाऊँगा। निकाल दीजिए मुझे भी घर से।

मिसेज़ सेवक—(रोकर) तो यहाँ मेरा ही क्या रखा है। अगर मैं ही विष की गाँठ हूँ, तो मैं मुँह में कालिख लगाकर क्यों न निकल जाऊँ। तुम और सोफ़ी आराम से रहो, मेरा भी खुदा मालिक है।

जॉन सेवक—प्रभु, तुम मेरे सामने अपनी माँ का निरादर नहीं कर सकते।

प्रभु सेवक—खुदा न करे, मैं अपनी माँ का निरादर करूँ। लेकिन मैं दिखावे के धर्म के लिए अपनी आत्मा पर यह अत्याचार न होने दूँगा। जब देखता हूँ कि और किसी बात में तो धर्म की परवा नहीं की जाती, और सारा धर्मानुराग दिखावे के धर्म पर ही किया जा रहा है, तो मुझे संदेह होने लगता है कि इसका तात्पर्य कुछ और तो नहीं!

जॉन सेवक—तुमने किस बात में मुझे धर्म के विरुद्ध आचरण करते देखा?

प्रभु सेवक—सैकड़ों ही बातें हैं, एक हो तो कहूँ।

जॉन सेवक—नहीं, एक ही बतलाओ।

प्रभु सेवक—उस बेकस अंधे की ज़मीन पर, कब्जा करने के लिए आप जिन साधनों का उपयोग कर रहे हैं, क्या वे धर्मसंगत हैं?

जॉन सेवक—तुम इस वक़्त अपने होश में नहीं हो, मैं तुमसे वाद-विवाद नहीं करना चाहता। पहले जाकर शांत हो जाओ, फिर मैं तुम्हें इसका उत्तर दूँगा।

प्रभु सेवक क्रोध से भरा हुआ अपने कमरे में आया और सोचने लगा कि क्या करूँ। यहाँ तक उसका सत्याग्रह शब्दों ही तक सीमित था, अब उसके क्रियात्मक होने का अवसर आ गया, पर क्रियात्मक शक्ति का उसके चरित्र में एकमात्र अभाव था। सहसा जॉन सेवक आकर बैठ गए, और गम्भीर भाव से बोले—प्रभु, आज तुम्हारा आवेश देखकर मुझे जितना दुःख हुआ है, उससे कहीं अधिक चिन्ता हुई है। मुझे अब तक तुम्हारी व्यावहारिक बुद्धि पर विश्वास था; पर अब विश्वास उठ गया। क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ-जैसे और हज़ारों आदमी, जो नित्य गिरजे आते हैं, भजन गाते हैं, आँखें बंद करके ईश-प्रार्थना करते हैं, धर्मानुराग में डूबे हुए हैं? कदापि नहीं। अगर अब तक तुम्हें नहीं मालूम है, तो अब मालूम हो जाना चाहिए कि धर्म केवल स्वार्थ-संगठन है। बोलो, तुम्हें कुछ कहना है?

प्रभु सेवक—जी नहीं।

जॉन सेवक—अब तो फिर इतनी उच्छृंखलता न करोगे?

प्रभु सेवक ने मुस्कराकर कहा—जी नहीं।

6

धर्मभीरुता में जहाँ अनेक गुण हैं, वहाँ एक अवगुण भी है; वह सरल होती है। ताहिरअली ने जब से अपनी दोनों विमाताओं की बातें सुनी थीं, उनके हृदय में घोर अशांति हो रही थी। बार-बार खुदा से दुआ माँगते थे, नीति-ग्रंथों से अपनी शंका का समाधान करने की चेष्टा करते थे। दिन तो किसी तरह गुजरा, संध्या होते ही वह मि. जॉन सेवक के पास पहुँचे और बड़े विनीत शब्दों में बोले—हुज़ूर की खिदमत में इस वक़्त एक खास अर्ज करने के लिए हाज़िर हुआ हूँ। इर्शाद हो तो कहूँ।

जॉन सेवक—हाँ-हाँ, कहिए, कोई नई बात है क्या?

ताहिर—हुज़ूर उस अंधे की ज़मीन लेने का खयाल छोड़ दें, तो बहुत ही मुनासिब हो। हज़ारों दिक्कतें हैं। अकेला सूरदास ही नहीं, सारा मुहल्ला लड़ने पर तुला हुआ है। मैं आपसे यही अर्ज करूँगा कि इसके बजाए किसी दूसरी ज़मीन की फ़िक्र कीजिए।

जॉन सेवक—यह क्यों?

ताहिर—हुज़ूर, यह सब अजाब का काम है। सैंकड़ों आदमियों का काम उस ज़मीन से निकलता है, सबकी गायें वहीं चरती हैं, बरातें ठहरती हैं, प्लेग के दिनों में लोग वहीं झोंपड़े डालते हैं।

जॉन सेवक—(हँसकर) अजाब तो मेरी गरदन पर पड़ेगा न? मैं उसका बोझ उठा सकता हूँ।

ताहिर—हुज़ूर, मैं भी तो आप ही के दामन से लगा हुआ हूँ। मैं उस अजाब से कब बच सकता हूँ? आखिर शहर के करीब और ज़मीनें भी तो मिल सकती हैं।

जॉन सेवक ने कृत्रिम क्रोध धारण करके कहा—मेरे भी बाल-बच्चे हैं। जब मैं नहीं डरता, तो आप क्यों डरते हैं? क्या आप समझते हैं कि मुझे अपने बाल-बच्चे प्यारे नहीं, या मैं खुदा से नहीं डरता?

ताहिर—आप साहबे-एकबाल हैं, आपको अजाब का खौफ नहीं। एकबाल वालों से अजाब भी काँपता है। खुदा का कहर ग़रीबों ही पर गिरता है।

जॉन सेवक—इस नए धर्म-सिद्धांत के जन्मदाता शायद आप ही होंगे; क्योंकि मैंने आज

तक कभी नहीं सुना कि ऐश्वर्य से ईश्वरीय कोप भी डरता है।

ताहिर—हुज़ूर, मुझे इस झगड़े से दूर रखें, तो अच्छा हो।

जॉन सेवक—आज आपको इस झगड़े से दूर रखूँ, कल आपको यह शंका हो कि पशु-हत्या से खुदा नाराज़ होता है, आप मुझे खालों की खरीद से दूर रखें, तो मैं आपको किन-किन बातों से दूर रखूँगा, और कहाँ-कहाँ ईश्वर के कोप से आपकी रक्षा करूँगा? इससे तो कहीं अच्छा यही है कि आपको अपने ही से दूर रखूँ।

मिसेज़ सेवक—जब आपको ईश्वरीय कोप का इतना भय है, तो आपसे हमारे यहाँ काम नहीं हो सकता।

ताहिर—मुझे हुज़ूर की खिदमत से इनकार थोड़े ही है, मैं तो सिर्फ...

मिसेज़ सेवक—आपको हमारी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना पड़ेगा, चाहे उससे आपका खुदा खुश हो या नाखुश। हम अपने कामों में आपके खुदा को हस्तक्षेप न करने देंगे।

ताहिरअली हताश हो गये। मन को समझाने लगे—ईश्वर दयालु है, क्या वह देखता नहीं कि मैं कैसी बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ। गृहचिंता आत्मचिंतन की घातिका है।

आशाओं और चिंताओं से दबा व्यक्ति मिसेज़ सेवक के कटु वाक्यों का क्या उत्तर देता! स्वामी के कोप ने ईश्वर के कोप को परास्त कर दिया। व्यथित कंठ से बोले—हुज़ूर का नमक खाता हूँ, आपकी मरजी मेरे लिए खुदा के हुक्म का दरजा रखती है।

जॉन सेवक—हाँ, अब आप आये सीधे रास्ते पर। जाइए, अपना काम कीजिए। धर्म और व्यापार को एक तराजू तौलना मूर्खता है। धर्म धर्म है, व्यापार व्यापार; परस्पर कोई सम्बंध नहीं। धर्म तो व्यापार का श्रृंगार है। खाली पेट खुदा का नाम लेना पाप है।

ताहिरअली ने झुककर सलाम किया और घर लौट आये।

7

संध्या हो गयी थी। किन्तु फागुन लगने पर भी सर्दी के मारे हाथ-पाँव अकड़ते थे। ठंडी हवा के झोंके शरीर की हड्डियों में चुभे जाते थे। लोग लिहाफ में यों मुँह छिपाये हुए थे, जैसे चूहे बिलों में से झाँकते हैं। दूकानदार अँगीठियों के सामने, बैठे हाथ सेंकते थे। बड़े घरों की स्त्रियाँ मनाती थीं—मिसराइन न आये, तो आज भोजन बनाएँ, चूल्हे के सामने बैठने का अवसर मिले। चाय की दूकानों पर जमघट रहता था। सूरदास अपनी जगह पर तो आ बैठा था; पर इधर-उधर से सूखी टहनियाँ बटोरकर जला ली थीं और हाथ सेंक रहा था। सोचता—क्या इसी दिन के लिए, मैंने इस ज़मीन का इतना जतन किया था? यही अभिलाषा थी कि यहाँ एक कुआँ और एक छोटा-सा मंदिर बनवा देता, मरने के पीछे अपनी कुछ निशानी रहती।

नायकराम उसे ढाढ़स देता रहता था—तुम कुछ चिन्ता मत करो, कौन माँ का बेटा है, जो मेरे रहते तुम्हारी ज़मीन निकाल ले। लहू की नदी बहा दूँगा।

वह इन्हीं विचारों में मग्न था कि नायकराम कंधे पर लट्ठ रखे, एक अँगोछा कंधे पर डाले, पान के बीड़े मुँह में भरे, आकर खड़ा हो गया और बोला—सूरदास, बैठे टापते ही रहोगे? साँझ हो गयी, खाने-भर को मिल गया कि नहीं?

सूरदास—कहाँ महाराज, आज तो एक भागवान से भी भेंट न हुई।

नायकराम—जो भाग्य में था, मिल गया। चलो, घर चलें। मैं तो इधर आया था कि कहीं साहब मिल जायें, तो दो-दो बातें कर लूँ। फिर एक बार उनकी और हमारी भी हो जाये।

सूरदास चलने को उठा ही था कि सहसा एक गाड़ी की आहट मिली। रुक गया। आस बँधी। एक क्षण में फ़िटन आ पहुँची। सूरदास ने आगे बढ़कर कहा—दाता, भगवान् तुम्हारा कल्यान करें, अंधे की खबर लीजिए।

फ़िटन रुक गयी, और चतारी के राजा साहब उतर पड़े। नायकराम उनका पंडा था। साल में दो-चार सौ रुपये उनकी रियासत से पाता था। उन्हें आशीर्वाद देकर बोला—सरकार का इधर कैसे आना हुआ?

राजा साहब—यही सूरदास है, जिसकी ज़मीन आगे पड़ती है? आओ, तुम दोनों आदमी मेरे साथ बैठ जाओ, मैं ज़रा उस ज़मीन को देखना चाहता हूँ।

नायकराम—सरकार चलें, हम दोनों पीछे-पीछे आते हैं।

राजा साहब—अजी आकर बैठ जाओ, तुम्हें आने में देर होगी, और मैंने अभी संध्या नहीं की है।

सूरदास—पंडाजी, तुम बैठ जाओ, मैं दौड़ता हुआ, गाड़ी के साथ-ही-साथ पहुँचूँगा।

राजा साहब—नहीं-नहीं, तुम्हारे बैठने में कोई हरज नहीं है, तुम इस समय भिखारी सूरदास नहीं, ज़मींदार सूरदास हो।

नायकराम—बैठो सूरे, बैठो। हमारे सरकार साक्षात् देवरूप हैं।

राजा साहब—पंडाजी, तुम इनका हाथ पकड़कर बिठा दो, यों न बैठेंगे।

नायकराम ने सूरदास को गोद में उठाकर गद्दी पर बैठा दिया, आप भी बैठे, और फ़िटन चली। सूरदास को अपने जीवन में फ़िटन पर बैठने का यह पहला ही अवसर था। तीन-चार मिनट में जब गोदाम पर गाड़ी रुक गयी और राजा साहब उतर पड़े, तो सूरदास को आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी क्योंकर आ गये।

राजा साहब—ज़मीन तो बड़े मौके की है।

सूरदास—सरकार, बाप-दादों की निसानी है।

सूरदास के मन में भाँति-भाँति की शंकाएँ उठ रही थीं—क्या साहब ने इनको यह ज़मीन देखने के लिए भेजा है? सुना है, यह बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं। लेकिन मैं इनकी बातों में आनेवाला नहीं हूँ।

राजा साहब—असामियों के साथ बंदोबस्त हैं?

नायकराम—नहीं सरकार, ऐसे ही परती पड़ी रहती है, सारे मुहल्ले की गऊएं यहीं चरने आती हैं। उठा दी जाये, तो 200 रुपये से कम नफ़ा न हो, पर यह कहता है, जब भगवान् मुझे यों ही खाने-भर को देते हैं, तो इसे क्यों उठाऊँ।

राजा साहब—अच्छा, तो सूरदास दान लेता ही नहीं, देता भी है। ऐसे प्राणियों के दर्शन ही से पुण्य होता है।

नायकराम की निगाह में सूरदास का इतना आदर कभी न हुआ था। बोले—हुज़ूर, उस जन्म का कोई बड़ा भारी महात्मा है।

राजा साहब—उस जन्म का नहीं, इस जन्म का महात्मा है।

नायकराम राजा साहब को खुश करने के लिए सूरदास का गुणानुवाद करने लगे—धर्मावतार, इतने पर भी इन्हें चैन नहीं है। यहाँ, धर्मशाला, मंदिर और कुआँ बनवाने का विचार कर रहे हैं।

राजा साहब—वाह, तब तो बात ही बन गयी। क्यों सूरदास, तुम इस ज़मीन में से 9 बीघे मिस्टर जॉन सेवक को दे दो। उनसे जो रुपये मिलें, उन्हें धर्म-कार्य में लगा दो। इस तरह तुम्हारी अभिलाषा भी पूरी हो जायेगी और काम भी निकल जायेगा। दूसरों से इतने अच्छे दाम न मिलेंगे। बोलो, कितने रुपये दिला दूँ?

नायकराम सूरदास को मौन देखकर डरे कि कहीं यह इनकार कर बैठा, तो मेरी बात गयी! बोले—सूरे, हमारे मालिक को जानते हो न, चतारी के महाराज हैं, इसी दरबार से

हमारी परवरिस होती है। मिनिसपलटी के सबसे बड़े हाकिम हैं।

सूरदास—जब आपका इतना अख्तियार है, तो कोई दूसरी ज़मीन क्यों नहीं दिला देते?

राजा साहब—ऐसे अच्छे मौके पर शहर में दूसरी ज़मीन मिलनी मुश्किल है।

सूरदास—महाराज, मैं खुशी से ज़मीन न बेचूँगा।

नायकराम—सूरे, भंग तो नहीं खा गए? कुछ खयाल है, किससे बातें कर रहे हो!

सूरदास—पंडाजी, सब खियाल है, आँखें नहीं हैं, तो क्या अक्किल भी नहीं है! पर जब मेरी चीज़ है ही नहीं, तो मैं उसका बेचनेवाला कौन होता हूँ?

राजा साहब—यह ज़मीन तो तुम्हारी ही है?

सूरदास—नहीं, मेरी नहीं, मेरे बाप-दादों की है। मेरी चीज़ वही है, जो मैंने अपने बाँह-बल से पैदा की हो। यह ज़मीन मुझे धरोहर मिली है, मैं इसका मालिक नहीं हूँ।

राजा साहब—सूरदास, तुम्हारी यह बात मेरे मन में बैठ गयी। अगर और ज़मींदारों के दिल में ऐसे ही भाव होते, तो आज सैकड़ों घर यों तबाह न होते।

सूरदास—धमावतार, मेरा तो इस ज़मीन के साथ इतना ही नाता है कि जब तक जिऊँ, इसकी रक्षा करूँ, और मरूँ, तो इसे ज्यों-की-त्यों छोड़ जाऊँ।

राजा साहब—लेकिन यह तो सोचो कि तुम अपनी ज़मीन का एक भाग केवल इसलिए दूसरे को दे रहे हो कि मंदिर बनवाने के लिए रुपये मिल जायें।

नायकराम—बोलो सूरे, महाराज की इस बात का क्या जवाब देते हो?

सूरदास—मैं सरकार की बातों का जवाब देने जोग हूँ कि जवाब दूँ? इतना तो सरकार जानते ही हैं कि लोग उँगली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लेते हैं। साहब पहले तो न बोलेंगे, फिर धीरे-धीरे हाता बना लेंगे, कोई मंदिर में जाने न पायेगा, उनसे कौन रोज-रोज लड़ाई करेगा।

नायकराम—सूरदास ने यह बात पक्की कही, बड़े आदमियों से कौन लड़ता फिरेगा?

राजा साहब—साहब क्या करेंगे, क्या तुम्हारा मंदिर खोदकर फेंक देंगे?

नायकराम—बोलो सूरे, अब क्या कहते हो?

सूरदास—सरकार, ग़रीब की घरवाली गाँव-भर की भावज होती है। साहब किरस्तान हैं, धरमशाले में तमाकू का गोदाम बनाएँगे, मंदिर में उनके मजूर सोएँगे, कुएँ पर उनके मजूरों का अड्डा होगा, बहू-बेटियाँ पानी भरने न जा सकेंगी। मेरे बाप-दादों का नाम डूब जायेगा। सरकार, मुझे इस दलदल में न फँसाइए।

नायकराम—धरमावतार, सूरदास की बात मेरे मन में भी बैठती है। थोड़े दिनों में मंदिर, धरमशाला, कुआँ, सब साहब का हो जायेगा, इसमें संदेह नहीं।

राजा साहब—अच्छा, यह भी माना; लेकिन ज़रा यह भी तो सोचो कि इस कारखाने से लोगों को क्या फ़ायदा होगा। हज़ारों मजदूर, मिस्त्री, बाबू, मुंशी, लुहार, बढ़ई आकर आबाद हो जायेंगे, एक अच्छी बस्ती हो जायेगी, बनियों की नई-नई दूकानें खुल जायेंगी, आस-पास के किसानों को अपनी शाक-भाजी लेकर शहर न जाना पड़ेगा, यहीं खरे दाम मिल जायेंगे।

कुँजड़े, खटिक, ग्वाले, धोबी, दरजी, सभी को लाभ होगा। क्या तुम इस पुण्य के भागी न बनोगे?

नायकराम—अब बोलो सूरे, अब तो कुछ नहीं कहना है? हमारे सरकार की भलमंसी है कि तुमसे इतनी दलील कर रहे हैं।

सूरदास—भैया, इसीलिए न लोग चाहते हैं कि हाकिम धरमात्मा हो, नहीं तो क्या देखते नहीं हैं कि हाकिम लोग बिना डाम-फूल-सूअर के बात नहीं करते। सरकार ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक ज़रूर बढ़ जायेगी, रोजगारी लोगों को फ़ायदा भी होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जायेगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा! यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहाँ हो जायेगी। सरकार, मुझे इस कुकरम और अधरम से बचाएँ।

नायकराम—दीनबंधु, सूरदास बहुत पक्की बात कहता है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, आपके अकबाल से सभी जगह घूम आया हूँ, जजमान लोग बुलाते रहते हैं। जहाँ-जहाँ कल-कारखाने हैं, वहाँ यही हाल देखा है।

राजा साहब—क्या बुराइयाँ तीर्थस्थान में नहीं हैं?

सूरदास—उनका सुधार भी तो बड़े आदमियों ही के हाथ में है, जहाँ बुरी बातें पहले ही से हैं, वहाँ से हटाने के बदले उन्हें और फैलाना तो ठीक नहीं है।

राजा साहब—ठीक कहते हो सूरदास, बहुत ठीक कहते हो। तुम जीते, मैं हार गया। जिस वक़्त मैंने साहब से इस ज़मीन को तय करा देने का वादा किया था, ये बातें मेरे ध्यान में न आयी थीं। अब तुम निश्चिंत हो जाओ, मैं साहब से कह दूँगा, सूरदास अपनी ज़मीन नहीं देता।

नायकराम ने कहा—सूरदास, आज राजा साहब भी तुम्हारी खोपड़ी को मान गये।

8

सोफ़िया को इंदु के साथ रहते चार महीने गुज़र गये। अपने घर और घरवालों की याद आते ही उसके हृदय में एक ज्वाला-सी प्रज्वलित हो जाती थी। प्रभु सेवक नित्यप्रति उससे एक बार मिलने आता; पर कभी उससे घर का कुशल-समाचार न पूछती। यद्यपि इंदु ने उसकी परिस्थिति को सबसे गुप्त रखा था; पर अनुमान से सभी प्राणी उसकी यथार्थ दशा से परिचित हो गये थे।

घर टपकता हो, तो उसकी मरम्मत की जाती है; गिर जाये, तो उसे छोड़ दिया जाता है। सोफ़ी को जब ज्ञात हुआ कि इन लोगों को मेरी सब बातें मालूम हो गईं तो उसने परदा रखने की चेष्टा करनी छोड़ दी; धर्म-ग्रंथों के अध्ययन में डूब गयी। पुरानी कुदूरतें दिल से मिटने लगीं। माता के कठोर वाक्य-बाणों का घाव भरने लगा।

एक दिन प्रातःकाल वह कोई धर्मग्रंथ पढ़ रही थी कि इंदु आकर बैठ गयी। उसका मुख उदास था। सोफ़िया उसकी ओर आकृष्ट न हुई, पूर्ववत् पुस्तक देखने में मग्न रही। इंदु बोली —सोफ़ी, अब यहाँ दो-चार दिन की और मेहमान हूँ, मुझे भूल तो न जाओगी?

सोफ़ी ने बिना सिर उठाए ही कहा—हाँ।

इंदु—तुम्हारा मन तो अपनी किताबों में बहल जायेगा, मेरी याद भी न आयेगी; पर मुझसे तुम्हारे बिना एक दिन न रहा जायेगा।

सोफ़ी ने किताब की तरफ़ देखते हुए कहा—हाँ।

इंदु—फिर न जाने कब भेंट हो। सारे दिन अकेले पड़े-पड़े बिसूरा करूँगी।

सोफ़ी ने किताब का पन्ना उलटकर कहा—हाँ।

इंदु से सोफ़िया की निष्ठुरता अब न सही गयी। इस समय उसका कोमल हृदय वियोग-व्यथा से भरा हुआ था, उसमें मान का स्थान नहीं था, रोकर बोली—बहन, ईश्वर के लिए ज़रा पुस्तक बंद कर दो; चली जाऊँगी, तो फिर खूब पढ़ना। वहाँ से तुम्हें छेड़ने न आऊँगी।

सोफ़ी ने इंदु की ओर देखा, मानो समाधि टूटी! उसकी आँखों में आँसू थे, मुख उतरा हुआ, सिर के बाल बिखरे हुए। बोली—अरे! इंदु, बात क्या है? रोती क्यों हो?

इंदु—तुम अपनी किताब देखो, तुम्हें किसी के रोने-धोने की क्या परवा है! ईश्वर ने न

जाने क्यों मुझे तुझ-सा हृदय नहीं दिया।

सोफ़िया—बहन, क्षमा करना, मैं एक बड़ी उलझन में पड़ी हुई थी।

इंदु—मेरे लिए बुलावा आ गया। तीसरे दिन चली जाऊँगी।

सोफ़िया—यह तो तुमने बुरी खबर सुनाई, फिर मैं यहाँ कैसे रहूँगी?

इस वाक्य में सहानुभूति नहीं, केवल स्वहित था। किन्तु इंदु ने इसका आशय यह समझा कि सोफ़ी को मेरा वियोग असह्य होगा। बोली—तुम्हारा जी तो किताबों में बहल जायेगा। हाँ, मैं तुम्हारी याद में तड़पा करूँगी। बहन, अगर तुम्हें बुरा न लगे, तो एक याचना करूँ। क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि तुम भी कुछ दिन मेरे साथ रहो?

सोफ़िया—तुम्हारे प्रेम के बंधन में बँधी हुई हूँ, जहाँ चाहो, ले चलो। चाहूँ तो जाऊँगी, न चाहूँ तो भी जाऊँगी। मगर यह तो बताओ, तुमने राजा साहब से भी पूछ लिया है?

इंदु—यह ऐसी कौन-सी बात है, जिसके लिए उनकी अनुमति लेनी पड़े। मुझसे बराबर कहते रहते हैं कि तुम्हारे लिए एक लेडी की ज़रूरत है, अकेले तुम्हारा जी घबराता होगा। यह प्रस्ताव सुनकर फूले न समाएँगे।

रानी जाह्नवी तो इंदु की बिदाई की तैयारियाँ कर रही थीं, और इंदु सोफ़िया के लिए लैस और कपड़े आदि ला-लाकर रखती थी। भाँति-भाँति के कपड़ों से कई संदूक भर दिए। प्रभु सेवक को सोफ़ी का इंदु के साथ जाना अच्छा न लगता था। उसने सोफ़ी को समझाया; किन्तु वह इंदु का निमंत्रण अस्वीकार न करना चाहती थी।

तीसरे दिन राजा महेंद्रकुमार इंदु को बिदा कराने आये, तो इंदु ने और बातों के साथ सोफ़ी को साथ ले चलने का ज़िक्र छेड़ दिया। बोली—मेरा जी वहाँ अकेले घबराया करता है, मिस सोफ़िया के रहने से मेरा जी बहल जायेगा।

महेंद्र.—क्या मिस सेवक अभी तक यहीं हैं?

इंदु—बात यह है कि उनके धार्मिक विचार स्वतंत्र हैं, और उनके घरवाले उनके विचारों की स्वतंत्रता सहन नहीं कर सकते। इसी कारण वह अपने घर नहीं जाना चाहतीं।

महेंद्र—लेकिन यह तो सोचो, उनके मेरे घर में रहने से मेरी कितनी बदनामी होगी।

इंदु—मुझे तो इसमें बदनामी की कोई बात नहीं नज़र आती। क्या सहेली अपनी सहेली के यहाँ मेहमान नहीं होती? सोफ़ी का स्वभाव भी तो ऐसा उच्छृंखल नहीं है कि वह इधर-उधर घूमने लगेगी।

महेंद्र—वह देवी सही; लेकिन ऐसे कितने ही कारण हैं कि मैं उनका तुम्हारे साथ जाना उचित नहीं समझता हूँ। तुममें यह बड़ा दोष है कि कोई काम करने से पहले उसके औचित्य का विचार नहीं करतीं। क्या तुम्हारे विचार में कुल-मर्यादा की अवहेलना करना कोई बुराई नहीं?

इंदु—किन्तु मैं तो उनसे वादा कर चुकी हूँ। कई दिन से मैं इन्हीं तैयारियों में व्यस्त हूँ। यहाँ अम्माँ से आज्ञा ले चुकी हूँ। घर के सभी प्राणी जानते हैं वह मेरे साथ जा रही हैं। ऐसी दशा में अगर मैं उन्हें न ले गयी, तो लोग क्या कहेंगे?

महेंद्र—बदनामी से बचने के लिए सब कुछ किया जा सकता है। तुम्हें मिस सेवक से कहते शर्म आती हो, तो मैं कह दूँ। वह इतनी नादान नहीं कि इतनी सी बात न समझें।

इंदु—मुझे उनके साथ रहते-रहते उनसे इतना प्रेम हो गया है कि उनसे एक दिन भी अलग रहना मेरे लिए असाध्य-सा जान पड़ता है। इसकी तो खैर परवा नहीं; जानती हूँ, कभी-न-कभी उनसे वियोग होगा ही; इस समय मुझे सबसे बड़ी चिन्ता अपनी बात खोने की है। आप मेरी खातिर से अब की मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए, फिर मैं आपसे पूछे बगैर कोई काम न करूँगी।

महेंद्रकुमार किसी तरह राजी न हुए। इंदु रोई, अनुनय-विनय की, पैरों पड़ी, पर पति का पाषाण-हृदय न पसीजा; उन्हें अपना नाम संसार की सब वस्तुओं से प्रिय था।

जब महेंद्रकुमार बाहर चले गए, तो इंदु बहुत देर तक शोकावस्था में बैठी रही। बार-बार यही खयाल आता—सोफ़ी अपने मन में क्या कहेगी। मैंने उससे कह रखा है कि मेरे स्वामी मेरी कोई बात नहीं टालते। अब वह समझेगी, वह इसकी बात भी नहीं पूछते।

संध्या-समय जब जाह्नवी सैर करने चलीं, तो इंदु ने उनसे यह समाचार कहा, और आग्रह किया कि तुम महेंद्र को समझाकर सोफ़ी को ले चलने पर राजी कर दो। जाह्नवी ने कहा—तुम्हीं क्यों नहीं मान जातीं?

इंदु—अम्माँ, मैं सच्चे हृदय से कह रही हूँ, मैं जिद नहीं करती। अगर मैंने पहले ही सोफ़िया से न कह दिया होता, तो मुझे ज़रा भी दुःख न होता; पर सारी तैयारियाँ करके अब उसे न ले जाऊँ, तो वह अपने दिल में क्या कहेगी।

जाह्नवी—वह तुम्हारे स्वामी हैं, उनकी सभी बातें तुम्हें माननी पड़ेंगी।

इंदु—चाहे वह मेरी ज़रा-ज़रा-सी बातें भी न मानें?

जाह्नवी—हाँ, उन्हें इसका अख्तियार है। मुझे लज्जा आती है कि मेरे उपदेशों का तुम्हारे ऊपर ज़रा भी असर नहीं हुआ।

इंदु—आप मुझसे वह करने को कहती हैं, जो मेरे लिए असम्भव है।

जाह्नवी—चुप रहो, मैं तुम्हारे मुँह ऐसी बातें नहीं सुन सकती। मुझे भय हो रहा है कि कहीं सोफ़ी के विचार-स्वातंत्रय का जादू तुम्हारे ऊपर भी तो नहीं चल गया!

इंदु ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह रास्ते-भर मौन धारण किये बैठी रही। जब गाड़ी फिर मकान पर पहुँची, और वह उतरकर अपने कमरे की ओर चली, तो जाह्नवी ने कहा—बेटी, मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, महेंद्र से इस विषय में अब एक शब्द भी न कहना, नहीं तो मुझे बहुत दुःख होगा।

इंदु ने माता को मर्माहत भाव से देखा और अपने कमरे में चली गयी। सौभाग्य से महेंद्रकुमार भोजन करके सीधे बाहर चले गए, नहीं तो इंदु के लिए अपने उद्गारों का रोकना अत्यंत कठिन हो जाता।

नौ बजे विनयसिंह उससे मिलने आये। वह मानसिक अशांति की दशा में बैठी हुई अपने संदूकों में से सोफ़ी के लिए खरीदे हुए कपड़े निकाल रही थी, बोली—क्यों विनय, अगर

तुम्हारी स्त्री अपनी किसी सहेली को कुछ दिनों के लिए अपने साथ रखना चाहे, तो तुम उसे मना कर दोगे, या खुश होगे?

विनय—मेरे सामने यह समस्या कभी आयेगी ही नहीं, इसलिए मैं इसकी कल्पना करके अपने मस्तिष्क को कष्ट नहीं देना चाहता।

इंदू—यह समस्या तो पहले ही उपस्थित हो चुकी है।

विनय—बहन, मुझे तुम्हारी बातों से डर लग रहा है।

इंदु—क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा कई-कई दिनों तक घर में न आना, नित्य सेवा-समिति के कामों में व्यस्त रहना, मिस सोफ़िया की ओर आँख उठाकर न देखना, उसके साये से भागना, उस अंतर्द्वंद्व को छिपा सकता है, जो तुम्हारे हृदय-तल में विकराल रूप से छिड़ा हुआ है? लेकिन याद रखना, इस द्वंद्व की एक झंकार भी न सुनाई दे, नहीं तो अनर्थ हो जायेगा। सोफ़िया तुम्हारा इतना सम्मान करती है, जितना कोई सती अपने पुरुष का भी न करती होगी।

विनय—बहन, जब सब कुछ जानती हो ही, तो तुमसे क्या छिपाऊँ। इन चार-पाँच महीनों में मैंने जो मानसिक ताप सहन किया है, उसे मेरा हृदय ही जानता है। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, मैं आँखें खोकर गढ़े में गिर रहा हूँ, जान-बूझकर विष का प्याला पी रहा हूँ। कोई बाधा, कोई कठिनाई, कोई शंका अब मुझे सर्वनाश से नहीं बचा सकती।

यह कहकर विनयसिंह बाहर चले गये। इंदु 'बैठो-बैठो' कहती रह गयी। प्रातःकाल उठी, तो द्वार पर उसके लिए पालकी तैयार खड़ी थी। वह माता के गले से लिपटकर रोई, पिता के चरणों को आँसुओं से धोया और घर से चली। रास्ते में सोफ़ी का कमरा पड़ता था। इंदु ने उस कमरे की ओर ताका भी नहीं। सोफ़ी उठकर द्वार पर आयी, और आँखों में आँसू भरे हुए उससे हाथ मिलाया। इंदु ने जल्दी से हाथ छुड़ा लिया और आगे बढ़ गयी।

9

सोफ़िया इस समय उस अवस्था में थी, जब एक साधारण हँसी की बात, एक साधारण आँखों का इशारा, किसी का उसे देखकर मुस्करा देना, किसी महरी का उसकी आज्ञा का पालन करने में एक क्षण विलम्ब करना, ऐसी हज़ारों बातें, जो नित्य घरों में होती हैं और जिनकी कोई परवा भी नहीं करता, उसका दिल दुःखाने के लिए काफ़ी हो सकती थीं। फिर इंदु का बिना उससे कुछ कहे-सुने चला जाना क्यों न दुःखजनक होता! इंदु तो चली गयी; पर वह बहुत देर तक अपने कमरे के द्वार पर मूर्ति की भाँति खड़ी सोचती रही—यह तिरस्कार क्यों? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसका मुझे यह दंड मिला है? अगर उसे यह मंजूर न था कि मुझे साथ ले जाती, तो साफ-साफ कह देने में क्या आपत्ति थी? मैंने उसके साथ चलने के लिए आग्रह तो किया न था! लेकिन इस तरह आँखें फेर लेना कौन-सी भलमंसी है! राजा साहब ने न माना होगा, यह केवल बहाना है। इंदु ने खुद ही सोचा होगा—वहाँ बड़े-बड़े आदमी मिलने आवेंगे, उनसे इसका परिचय क्योंकर कराऊँगी।

वह अभी द्वार पर खड़ी ही थी कि जाह्नवी बेटी को बिदा करके लौटीं, और सोफ़ी के कमरे में आकर बोलीं—बेटी, मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने ही तुम्हें रोक लिया। इंदु को बुरा लगा, पर करूँ क्या, वह तो गयी ही तुम भी चली जातीं, तो मेरा दिन कैसे कटता?

सोफ़िया—आपकी शालीनता है, जो ऐसा कहती हैं। मुझे खेद है, इंदु ने जाते समय मुझसे हाथ भी न मिलाया।

जाह्नवी—केवल लज्जावश बेटी, केवल लज्जावश। मैं तुझसे कहती हूँ, ऐसी सरल बालिका संसार में न होगी। तुझे रोककर मैंने उस पर घोर अन्याय किया है। मेरी बच्ची का वहाँ ज़रा भी जी नहीं लगता; महीने-भर रह जाती है, तो स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। सोफ़ी, भगवान् ने मुझे दो बच्चे दिए, और दोनों ही को देखकर हृदय शीतल हो जाता है। इंदु जितनी ही कोमल प्रकृति और सरल हृदया है, विनय उतना ही धर्मशील और साहसी है। एक बार मुझे ज्वर आने लगा था—इस लड़के ने तीन महीने तक द्वार का मुँह नहीं देखा। नित्य मेरे पास बैठा रहता, कभी पंखा झलता, कभी पाँव सहलाता, कभी रामायण और महाभारत पढ़कर सुनाता। कितना कहती, बेटा जाओ, घूमो-फिरो; आखिर ये लौंडियाँ-बाँदियाँ किस दिन काम आयेंगी, डॉक्टर रोज आते ही हैं; तुम क्यों मेरे साथ सती होते हो; पर किसी तरह

न जाता। अब कुछ दिनों से सेवा-समिति का आयोजन कर रहा है। कुँवर साहब को जो सेवा-समिति से इतना प्रेम है, वह विनय ही के सत्संग का फल है, नहीं तो आज से तीन साल पहले इनका-सा विलासी सारे नगर में न था। विनय ने उनकी काया ही पलट दी। जन्म का विरागी है। पूर्व-जन्म में अवश्य कोई ऋषि रहा होगा।

सोफ़ी—आपके दिल में सेवा और भक्ति के इतने ऊँचे भाव कैसे जागृत हुए? यहाँ तो प्रायः रानियाँ अपने भोग-विलास में ही मग्न रहती हैं?

जाह्नवी—बेटी, यह डॉक्टर गांगुली के सदुपदेश का फल है। जब इंदु दो साल की थी, तो मैं बीमार पड़ी। डॉक्टर गांगुली मेरी दवा करने के लिए आये। हृदय का रोग था, जी घबराया करता, मानो किसी ने उच्चाटन-मंत्र मार दिया हो। डॉक्टर महोदय ने मुझे महाभारत पढ़कर सुनाना शुरू किया। उसमें मेरा ऐसा जी लगा कि कभी-कभी आधी रात तक बैठी पढ़ा करती। उसी समय से मेरे मन में जातिप्रेम का भाव अंकुरित हुआ। एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई—मेरी कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म लेता, जो अभिमन्यु, दुर्गादास और प्रताप की भाँति जाति का मस्तक ऊँचा करता। मैंने व्रत लिया कि पुत्र हुआ, तो उसे देश और जाति के हित के लिए समर्पित कर दूँगी। मैं उन दिनों तपस्विनी की भाँति ज़मीन पर सोती, केवल एक बार रूखा भोजन करती, अपने बरतन तक अपने हाथ से धोती थी। ईश्वर ने मेरी सुन ली। तीसरे साल विनय का जन्म हुआ। मैंने बाल्यावस्था ही से उसे कठिनाइयों का अभ्यास कराना शुरू किया। न कभी गद्दों पर सुलाती, न कभी महरियों और दाइयों की गोद में जाने देती, न कभी मेवे खाने देती। दस वर्ष की अवस्था तक केवल धार्मिक कथाओं द्वारा उसकी शिक्षा हुई। विनय पृथ्वी के अधिकांश प्रांतों का पर्यटन कर चुका है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त योरप की प्रधान भाषाओं का भी उसे अच्छा ज्ञान है। नित्य कम्बल बिछाकर ज़मीन पर सोता है और कम्बल ही ओढ़ता है। बेटी, मैं तुझसे कहाँ तक कहूँ, पूरा त्यागी है। समिति में इस समय एक सौ नवयुवक हैं, जिनमें कितने ही सम्पन्न घरों के हैं। कुँवर साहब की इच्छा है कि समिति के सदस्यों की पूर्ण संख्या पाँच सौ तक बढ़ा दी जाये। डॉक्टर गांगुली इसके अध्यक्ष हैं। तुमसे सच कहती हूँ, अगर कोई ऐसा अवसर आ पड़े कि जाति-रक्षा के लिए उसे प्राण भी देना पड़े, तो मुझे ज़रा भी शोक न होगा। शोक तब होगा, जब मैं उसे ऐश्वर्य के सामने सिर झुकाते या कर्त्तव्य के क्षेत्र से हटते देखूँगी। ईश्वर न करे, मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूँ।

एक क्षण में रानी ने फिर कहा—बेटी, मैं आवेश में तुमसे अपने दिल की कितनी ही बातें कह गयी; पर क्या करूँ, तुम्हारे मुख पर ऐसी मधुर सरलता है, जो मेरे मन को आकर्षित करती है। कुँवर साहब तो तुम्हारे ऊपर मोहित हो गये हैं। यदि धार्मिक बाधा न होती, तो (मुस्कराकर) उन्होंने मिस्टर सेवक के पास विनय के विवाह का संदेशा कभी का भेज दिया होता!

सोफ़ी का चेहरा शर्म से लाल हो गया, लम्बी-लम्बी पलकें नीचे को झुक गईं और अधरों पर एक अति सूक्ष्म, शांत, मृदुल मुस्कान की छटा दिखायी दी। उसने हाथों से मुँह छिपा लिया और बोली—आप मुझे गालियाँ दे रही हैं, मैं भाग जाऊँगी।

रानी—अच्छा, शर्माओ मत। लो, यह चर्चा ही न करूँगी। तुमसे यही अनुरोध है कि इस घर को अपना घर समझो, जिस चीज़ की ज़रूरत हो, निस्संकोच भाव से कह दो।

यह कहकर जाह्नवी चली गयी। सोफ़ी का हृदय हलका हो गया। उस दिन से उसका और भी आदर-सत्कार होने लगा।

एक दिन, तीसरे पहर, वह अपने कमरे में बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। गरमी इतनी सख्त थी कि बिजली के पंखे और खस की टट्टियों के होते हुए भी शरीर से पसीना निकल रहा था। सहसा प्रभु सेवक आकर बोले—सोफ़ी, ज़रा चलकर एक झगड़े का निर्णय कर दो। मैंने एक कविता लिखी है, विनयसिंह को उसके विषय में शंकाएँ हैं। मैं कुछ कहता हूँ, वह कुछ कहते हैं; फैसला तुम्हारे ऊपर छोड़ा गया है। ज़रा चलो।

सोफ़ी—मैं काव्य सम्बंधी विवाद का क्या निर्णय करूँगी, पिंगल का अक्षर तक नहीं जानती, अलंकारों का लेश-मात्र भी ज्ञान नहीं; मुझे व्यर्थ ले जाते हो।

प्रभु सेवक—उस झगड़े का निर्णय करने के लिए पिंगल जानने की ज़रूरत नहीं। मेरे और उनके आदर्श में विरोध है। चलो तो।

सोफ़ी आँगन से निकली, तो ज्वाला-सी देह में लगी। जल्दी-जल्दी पग उठाते हुए विनय के कमरे में आयी, जो राजभवन के दूसरे भाग में था। कमरे में कोई सामान न था। केवल एक कम्बल बिछा हुआ था और ज़मीन पर ही दस-पाँच पुस्तकें रखी हुई थीं। न पंखा, न खस की टट्टी, न परदे, न तसवीरें। वहीं विनय कम्बल पर सिर झुकाए बैठे हुए थे। सोफ़ी को देखते ही वह उठ खड़े हुए और उसके लिए कुर्सी लाने दौड़े।

विनय ने एक गद्देदार कुर्सी लाकर सोफ़ी के लिए रख दी। सोफ़ी संकोच और लज्जा से गढ़ी जा रही थी। विनय की ऐसी दशा हो रही थी, मानो पानी में भीग रहे हैं। आखिर विनय को एक उक्ति सूझी। प्रभु सेवक की ओर देखकर बोले—हम और तुम वादी हैं, खड़े रह सकते हैं, पर न्यायाधीश का तो उच्च स्थान पर बैठना ही उचित है।

सोफ़ी ने उत्तर दिया—खेल में बालक अपने को भूल नहीं जाता।

अंत में तीनों प्राणी कम्बल पर बैठे। प्रभु सेवक ने अपनी कविता पढ़ सुनाई। कविता माधुर्य में डूबी हुई, उच्च और पवित्र भावों से परिपूर्ण थी। विषय था—एक माता का अपनी पुत्री को आशीर्वाद। पुत्री ससुराल जा रही है; माता उसे गले लगाकर आशीर्वाद देती है—पुत्री, तू पति-परायण हो, तेरी गोद फले, उसमें फूल के-से कोमल बच्चे खेलें, उनकी मधुर हास्य-ध्वनि से तेरा घर और आँगन गूँजे।

कविता समाप्त करके प्रभु सेवक ने विनयसिंह से कहा—अब आपको इसके विषय में जो कुछ कहना हो, कहिए।

विनयसिंह ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका।

प्रभु सेवक—मैं आपके कथन का भावार्थ कर दूँ?

विनयसिंह—मेरे मन में एक बात आयी, कह दी; आप व्यर्थ उसे इतना बढ़ा रहे हैं।

प्रभु सेवक—आप उन भावों को सोफ़ी के सामने प्रकट करते क्यों शर्माते हैं?

विनयसिंह—शर्माता नहीं हूँ, लेकिन आपसे मेरा कोई विवाद नहीं है। आपको मानव-जीवन का यह आदर्श सर्वोत्तम प्रतीत होता है, मुझे वह अपनी वर्तमान अवस्था के प्रतिकूल जान पड़ता है। इसमें झगड़े की कोई बात नहीं है।

प्रभु सेवक—(हँसकर) यही तो मैं आपसे कहलाना चाहता हूँ कि आप उसे वर्तमान अवस्था के प्रतिकूल क्यों समझते हैं? क्या आपके विचार में दाम्पत्य जीवन सर्वथा निंद्य है?

विनयसिंह—यह मेरा आशय कदापि नहीं; मेरा आशय केवल यह था कि दाम्पत्य जीवन स्वार्थपरता का पोषक है। किसी उच्चकोटि के कवि के लिए दाम्पत्य जीवन की सराहना करना—उसकी तारीफों के पुल बाँमना—शोभा नहीं देता। इस समय हमें ऐसे व्रतधारियों की, त्यागियों की, परमार्थ-सेवियों की आवश्यकता है, जो जाति के उद्धार के लिए अपने प्राण तक दे दें। हमारे कविजनों को इन्हीं उच्च और पवित्र भावों को उत्तेजित करना चाहिए। आपकी कविता सर्वथा असामयिक है। इस समय हमारे कवियों का कर्त्तव्य है त्याग का महत्त्व दिखाना, ब्रह्मचर्य में अनुराग उत्पन्न करना, आत्मनिग्रह का उपदेश करना।

प्रभु सेवक—आपको जो कुछ कहना था, कह चुके?

विनयसिंह—अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर इस समय इतना ही काफ़ी है।

प्रभु सेवक—मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि बलिदान और त्याग के आदर्श की मैं निंदा नहीं करता। वह मनुष्य के लिए सबसे ऊँचा स्थान है; और वह धन्य है, जो उसे प्राप्त कर ले। किन्तु दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, उपकार, त्याग आदि देवोचित गुणों के विकास के जैसे सुयोग गार्हस्थ्य जीवन में प्राप्त होते हैं, और किसी अवस्था में नहीं मिल सकते। मुझे तो यहाँ तक कहने में संकोच नहीं है कि मनुष्य के लिए यही एक ऐसी व्यवस्था है, जो स्वाभाविक कही जा सकती है। जिन कृत्यों ने मानव-जाति का मुख उज्ज्वल कर दिया है, उनका श्रेय योगियों को नहीं, दाम्पत्य-सुख-भोगियों को है। हरिश्चंद्र योगी नहीं थे, रामचंद्र योगी नहीं थे, कृष्ण त्यागी नहीं थे, नेपोलियन त्यागी नहीं था, नेलसन योगी नहीं था।

यह कथन समाप्त करके प्रभु सेवक ने सोफ़िया से कहा—तुमने दोनों वादियों के कथन सुन लिए, तुम इस समय न्याय के आसन पर हो, सत्यासत्य का निर्णय करो।

सोफ़ी—इसका निर्णय तुम आप ही कर सकते हो। तुम्हारी समझ में संगीत बहुत अच्छी चीज़ है?

प्रभु सेवक—अवश्य।

सोफ़ी—लेकिन, अगर किसी के घर में आग लगी हुई हो, तो उसके निवासियों को गाते-बजाते देखकर तुम उन्हें क्या कहोगे?

प्रभु सेवक—मूर्ख कहूँगा, और क्या।

सोफ़ी—क्यों, गाना तो कोई बुरी चीज़ नहीं?

प्रभु सेवक—तो यह साफ-साफ क्यों नहीं कहतीं कि तुमने इन्हें डिग्री दे दी? मैं पहले ही समझ रहा था कि तुम इन्हीं की तरफ़ झुकोगी।

सोफ़ी—अगर यह भय था, तो तुमने मुझे निर्णायक क्यों बनाया था? तुम्हारी कविता उच्च कोटि की है। मैं इसे सर्वांग-सुंदर कहने को तैयार हूँ। लेकिन तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अपनी इस अलौकिक शक्ति को स्वदेश-बंधुओं के हित में लगाओ। तुम्हें ईश्वर ने जितनी ही महत्त्वपूर्ण शक्ति प्रदान की है, उतना ही उत्तरदायित्व भी तुम्हारे ऊपर ज़्यादा है।

जब सोफ़िया चली गयी, तो विनय ने प्रभु सेवक से कहा—मैं इस निर्णय को पहले ही से जानता था। तुम लज्जित तो न हुए होगे?

प्रभु सेवक—उसने तुम्हारी मुरौवत की है।

विनयसिंह—भाई, तुम बड़े अन्यायी हो। इतने युक्तिपूर्ण निर्णय पर भी उनके सिर इलजाम लगा ही दिया। मैं तो उनकी विचारशीलता का पहले ही से कायल था, आज से भक्त हो गया। सोफ़िया मेरी किसी तरह नहीं हो सकती; पर मैं उसका हो गया, और आजीवन उसी का रहूँगा।

प्रभु सेवक—विनय, अगर सोफ़ी को यह बात मालूम हो गयी, तो वह यहाँ एक क्षण भी न रहेगी; कहीं वह आत्महत्या न कर ले। ईश्वर के लिए यह अनर्थ न करो।

विनयसिंह—नहीं प्रभु, मैं बहुत जल्द यहाँ से चला जाऊँगा, और फिर कभी न आऊँगा। मेरा हृदय जलकर भस्म हो जाये; पर सोफ़ी को आँच भी न लगने पावेगी। यह मत समझो कि मैं सेवा-धर्म का त्याग कर रहा हूँ। नहीं, ऐसा न होगा, मैं अब भी सेवा-मार्ग का अनुगामी रहूँगा; अंतर केवल इतना होगा कि निराकार की जगह साकार की, अदृश्य की जगह दृश्यमान की भक्ति करूँगा।

सहसा जाह्नवी ने आकर कहा—विनय, ज़रा इंदु के पास चले जाओ, कई दिन से उसका समाचार नहीं मिला। मुझे शंका हो रही है, कहीं बीमार तो नहीं हो गयी। खत भेजने में विलम्ब तो कभी न करती थी!

विनय तैयार हो गये। कुरता पहना, हाथ में सोटा लिया और चल दिए। प्रभु सेवक सोफ़ी के पास आकर बैठ गये और सोचने लगे—विनयसिंह की बातें इससे कहूँ या न कहूँ। सोफ़ी ने उन्हें चिंतित देखकर पूछा—कुँवर साहब कुछ कहते थे?

प्रभु सेवक—उस विषय में तो कुछ नहीं कहते थे; पर तुम्हारे विषय में ऐसे भाव प्रकट किये, जिनकी सम्भावना मेरी कल्पना में भी न आ सकती थी।

सोफ़ी ने क्षण-भर ज़मीन की ओर ताकने के बाद कहा—मैं समझती हूँ, पहले ही समझ जाना चाहिए था; पर मैं इससे चिंतित नहीं हूँ। यह भावना मेरे हृदय में उसी दिन अंकुरित हुई, जब यहाँ आने के चौथे दिन बाद मैंने आँखें खोलीं, और उस अर्द्धचेतना की दशा में एक देव-मूर्ति को सामने खड़े अपनी ओर वात्सल्य-दृष्टि से देखते हुए पाया। वह दृष्टि और वह मूर्ति आज तक मेरे हृदय पर अंकित है और सदैव अंकित रहेगी।

प्रभु सेवक—सोफ़ी, तुम्हें यह कहते हुए लज्जा नहीं आती?

सोफ़िया—नहीं, लज्जा नहीं आती। लज्जा की बात ही नहीं है। वह मुझे अपने प्रेम के योग्य समझते हैं, यह मेरे लिए गौरव की बात है। ऐसे साधु-प्रकृति, ऐसे त्यागमूर्ति, ऐसे सदुत्साही पुरुष की प्रेम-पात्री बनने में कोई लज्जा नहीं।

प्रभु सेवक—धर्म-विरोध के होते हुए भी?

सोफ़िया—यह विचार उन लोगों के लिए है, जिनके प्रेम वासनाओं से युक्त होते हैं। प्रेम के लिए धर्म की विभिन्नता कोई बंधन नहीं है। ऐसी बाधाएँ उस मनोभाव के लिए हैं, जिसका अंत विवाह है, उस प्रेम के लिए नहीं, जिसका अंत बलिदान है।

प्रभु सेवक—मैंने तुम्हें जता दिया, यहाँ से चलने के लिए तैयार रहो।

सोफ़िया—मगर घर पर किसी से इसकी चर्चा करने की ज़रूरत नहीं।

प्रभु सेवक—इससे निश्चिंत रहो।

सोफ़िया—कुछ निश्चय हुआ, यहाँ से उनके जाने का कब इरादा है?

प्रभु सेवक—तैयारियाँ हो रही हैं। रानीजी को यह बात मालूम हुई, तो विनय के लिए कुशल नहीं। मुझे आश्चर्य न होगा, अगर मामा से इसकी शिकायत करें।

सोफ़िया ने गर्व से सिर उठाकर कहा—प्रभु, कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो? प्रेम अभय का मंत्र है। प्रेम का उपासक संसार की समस्त चिंताओं और बाधाओं से मुक्त हो जाता है। प्रभु सेवक चले गए, तो सोफ़िया ने किताब बंद कर दी और बाग में आकर हरी घास पर लेट गयी।

उस दिन के बाद एक सप्ताह हो गया, पर विनयसिंह ने राजपूताने को प्रस्थान न किया। वह किसी-न-किसी हीले से दिन टालते जाते थे। अब विनय और सोफ़िया, दोनों ही को विदित होने लगा कि प्रेम को, जब वह स्त्री और पुरुष में हो, वासना से निर्लिप्त रखना उतना आसान नहीं, जितना उन्होंने समझा था। सोफ़ी एक किताब बगल में दबाकर प्रातःकाल बाग में जा बैठती। शाम को भी कहीं और सैर करने न जाकर वहीं आ जाती। विनय भी उससे कुछ दूर पर लिखते-पढ़ते, कुत्ते से खेलते या किसी मित्र से बातें करते अवश्य दिखायी देते। दोनों एक दूसरे की ओर दबी आँखों से देख लेते थे; पर संकोचवश कोई बातचीत करने में अग्रसर न होता था। दोनों ही लज्जाशील थे; पर दोनों इस मौन भाषा का आशय समझते थे। पहले इस भाषा का ज्ञान न था।

एक दिन, रात को, भोजन करने के बाद सोफ़िया रानी जाह्नवी के पास बैठी हुई कोई समाचार-पत्र पढ़कर सुना रही थी कि विनयसिंह आकर बैठ गये। सोफ़ी की विचित्र दशा हो गयी, पढ़ते-पढ़ते भूल जाती कि कहाँ तक पढ़ चुकी हूँ, और पढ़ी हुई पंक्तियों को फिर पढ़ने लगती, वह भी अटक-अटककर, शब्दों पर आँखें न जमतीं। जाह्नवी ने कई बार टोका—सोती तो नहीं हो? क्या बात है, रुक क्यों जाती हो? सहसा उनकी दृष्टि विनयसिंह की ओर फिरी—उसी समय जब वह प्रेमातुर नेत्रों से उसकी ओर ताक रहे थे। जाह्नवी का विकसित, शांत मुख-मंडल तमतमा उठा, मानो बाग में आग लग गयी। अग्निमय नेत्रों से विनय की ओर देखकर बोलीं—तुम कब जा रहे हो?

विनयसिंह—बहुत जल्द।

जाह्नवी—मैं बहुत जल्द का आशय यह समझती हूँ कि तुम प्रातःकाल ही प्रस्थान करोगे।

विनयसिंह—जैसी आज्ञा।

जाह्नवी—अभी जाकर सब आदमियों को सूचना दे दो। मैं चाहती हूँ कि तुम स्टेशन पर सूर्य के दर्शन करो।

विनय—इंदु से मिलने जाना है।

जाह्नवी—कोई ज़रूरत नहीं। मिलने-भेंटने की प्रथा स्त्रियों के लिए है, पुरुषों के लिए नहीं, जाओ।

विनय को फिर कुछ कहने की हिम्मत न हुई, आहिस्ता से उठे और चले गये।

सोफ़ी ने साहस करके कहा—आजकल तो राजपूताने में आग बरसती होगी!

जाह्नवी ने निश्चयात्मक भाव से कहा—कर्त्तव्य कभी आग और पानी की परवा नहीं करता। जाओ, तुम भी सो रहो, सवेरे उठना है।

सोफ़ी सारी रात बैठी रही। विनय से मिलने के लिए उसका हृदय तड़फड़ा रहा था—आह! वह कल चले जायेंगे, और मैं उनसे बिदा भी न हो सकूँगी। वह बार-बार खिड़की से झाँकती कि कहीं विनय की आहट मिल जाये। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी, सोफ़ी का दिल नैराश्य से बैठा जाता था—हाय, मैं यों ही बैठी रहूँगी और सबेरा हो जायेगा, विनय, चले जायेंगे। कोई भी तो नहीं, जिसके हाथों एक पत्र लिखकर भेज दूँ।

तब वह छत पर से उतरी और अपने कमरे में जाकर लेट रही। नैराश्य ने निद्रा की शरण ली; पर चिन्ता की निद्रा क्षुधावस्था का विनोद है—शांति-विहीन और नीरस। ज़रा ही देर सोई थी कि चौंककर उठ बैठी। सूर्य का प्रकाश कमरे में फैल गया था, और विनयसिंह अपने बीसों साथियों के साथ स्टेशन जाने को तैयार खड़े थे।

वह तुरंत बाग में आ पहुँची और भीड़ को हटाती हुई यात्रियों के सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। राष्ट्रीय गान हो रहा था, यात्री नंगे सिर, नंगे पैर, एक-एक कुरता पहने, हाथ में लकड़ी लिए, गरदनों में एक-एक थैली लटकाए चलने को तैयार थे। सब-के-सब प्रसन्न-वदन, उल्लास से भरे हुए, जातीयता के गर्व से उन्मत्त थे, जिनको देखकर दर्शकों के मन गौरवान्वित हो रहे थे। एक क्षण में रानी जाह्नवी आईं और यात्रियों के मस्तक पर केशर के तिलक लगाये। तब कुँवर भरतसिंह ने आकर उनके गलों में हार पहनाए। इसके बाद डॉक्टर गांगुली ने चुने हुए शब्दों में उन्हें उपदेश दिया। उपदेश सुनकर यात्री लोग प्रस्थित हुए। जयजयकार की ध्वनि सहस्त्र-सहस्त्र कठों से निकलकर वायुमंडल को प्रतिध्वनित करने लगी। स्त्रियों और पुरुषों का एक समूह उनके पीछे-पीछे चला। सोफ़िया चित्रवत् खड़ी यह दृश्य देख रही थी। उसकी आँखें विनयसिंह की ओर लगी हुई थीं। एकाएक विनयसिंह की आँखें उसकी ओर फिरीं; उनमें कितना नैराश्य था, कितनी मर्म-वेदना, कितनी विवशता, कितनी विनय! सोफ़िया उपचेतना की अवस्था में यात्रियों के पीछे-पीछे चली, और उसी दशा में सड़क पर आ पहुँची; फिर चौराहा मिला, पर अभी तक सोफ़ी को खबर न हुई कि मैं इनके साथ चली आ रही हूँ। उसे इस समय विनयसिंह के सिवा और कोई नज़र ही न आता था। कोई प्रबल आकर्षण उसे खींचे लिए जाता था। यहाँ तक कि वह स्टेशन के समीप के चौराहे पर पहुँच गयी। अचानक उसके कानों में प्रभु सेवक की आवाज़ आयी, जो बड़े वेग से

फ़िटन दौड़ाए चले आते थे।

प्रभु सेवक ने पूछा—सोफ़ी, तुम कहाँ जा रही हो? जूते तक नहीं, पहने हो!

सोफ़िया पर घड़ों पानी पड़ गया—आह! मैं इस वेश में कहाँ चली आयी! मुझे सुधि ही न रही। लजाती हुई बोली—कहीं तो नहीं!

प्रभु सेवक—क्या इन लोगों के साथ स्टेशन तक जाओगी? आओ, गाड़ी पर बैठ जाओ।

सोफ़ी—मैं इतनी दूर निकल आयी, और ज़रा भी ख्याल न आया कि कहाँ जा रही हूँ।

प्रभु सेवक—आकर बैठ जाओ। इतनी दूर आयी हो, तो स्टेशन तक और चली चलो।

सोफ़ी—मैं स्टेशन न जाऊँगी। यहीं से लौट जाऊँगी।

प्रभु सेवक—मैं स्टेशन से लौटता हुआ आऊँगा। आज तुम्हें मेरे साथ घर चलना होगा।

सोफ़ी—मैं वहाँ न जाऊँगी।

प्रभु सेवक—बड़े पापा नाराज़ होंगे। आज उन्होंने तुम्हें बहुत आग्रह करके बुलाया है।

सोफ़ी—जब तक मामा मुझे खुद आकर न ले जायेंगी, उस घर में क़दम न रखूँगी।

यह कहकर सोफ़ी लौट पड़ी, और प्रभु सेवक स्टेशन की तरफ़ चल दिए।

स्टेशन पर पहुँचकर विनय ने चारों तरफ़ आँखें फाड़-फाड़कर देखा, सोफ़ी न थी।

प्रभु सेवक ने उसके कान में कहा—धर्मशाले तक यों ही रात के कपड़े पहने चली आयी थी, वहाँ से लौट गयी। जाकर खत ज़रूर लिखिएगा, वरना वह राजपूताने जा पहुँचेगी।

विनय ने गद्गद कंठ से कहा—देह लेकर जा रहा हूँ, हृदय यहीं छोड़े जाता हूँ।

10

बालकों पर प्रेम की भाँति द्वेष का असर भी होता है। जबसे मिठुआ और घीसू को मालूम हुआ था कि ताहिरअली हमारा मैदान जबरदस्ती ले रहे हैं, तब से दोनों उन्हें दुश्मन समझते थे। बजरंगी, नायकराम आदि भी इसी प्रकार की बातें करते रहते थे। मिठुआ और घीसू इन बातों को बड़े प्रेम से सुनते, उनकी द्वेषाग्नि और भी प्रचंड होती थी। घीसू जब भैंसे लेकर मैदान जाता तो ज़ोर-ज़ोर से पुकारता—देखें, कौन हमारी ज़मीन लेता है, उठाकर ऐसा पटकूँ कि वह भी याद करे। दोनों टाँगें तोड़ दूँगा। घीसू अपने घमंड में समझता था कि मुझे जो पेच मालूम हैं, उनसे जिसे चाहूँ, गिरा दूँ। मिठुआ कुश्ती तो न लड़ता था; पर कभी-कभी अखाड़े की तरफ़ जा बैठता था। उसे अपनी पहलवानी की डींग मारने के लिए इतना काफ़ी थी। दोनों जब ताहिरअली को कहीं देखते, तो सुनाकर कहते—दुश्मन जाता है, उसका मुँह काला। मिठुआ कहता—जै शंकर, काँटा लगे न कंकर, दुश्मन को तंग कर। घीसू कहता—बम भोला, बैरी के पेट में गोला, उससे कुछ न जाये बोला।

ताहिरअली इन छोकरों की छिछोरी बातें सुनते और अनसुनी कर जाते। लड़कों के मुँह क्या लगें। सोचते—कहीं ये गालियाँ दे बैठें, तो इनका क्या बना लूँगा। वे दोनों समझते, डर के मारे नहीं बोलते, और शेर हो जाते।

एक दिन दोनों ने सलाह की—चलकर मियाँजी के लड़कों की खबर लेनी चाहिए। मैदान में जाकर जाहिर और जाबिर को खेलने के लिए बुलाया, और खूब चपतें लगाईं। जाबिर छोटा था, उसे मिठुआ ने दाबा। जाहिर और घीसू का जोड़ था; लेकिन घीसू अखाड़ा देखे हुए था, कुछ दाँव-पेच जानता ही था, आन-की-आन में जाहिर को दबा बैठा। मिठुआ ने जाबिर के चुटकियाँ काटनी शुरू कीं। बेचारा रोने लगा। इनका रोना सुनकर नन्हा-सा साबिर एक पतली-सी टहनी लिए, अकड़ता हुआ पीड़ितों की सहायता करने आया, और घीसू को टहनी से मारने लगा। जब इस शस्त्र-प्रहार का घीसू पर कुछ असर न हुआ, तो उसने इससे ज़्यादा चोट करनेवाला बाण निकाला—घीसू पर थूकने लगा। घीसू ने जाहिर को छोड़ दिया, और साबिर के दो-तीन तमाचे लगाये। जाहिर मौका पाकर फिर उठा, और अबकी ज़्यादा सावधान होकर घीसू से चिमट गया। दोनों में मल्ल-युद्ध होने लगा। आखिर घीसू ने उसे फिर पटका और मुश्कें चढ़ा दीं। जाहिर को अब रोने के सिवा कोई उपाय न सूझा, जो निर्बलों का

अंतिम आधार है। तीनों की आर्तध्वनि माहिर अली के कान में पहुँची। वह इस समय स्कूल जाने को तैयार थे। तुरंत किताबें पटक दीं और मैदान की तरफ़ दौड़े। देखा, तो जाबिर और जाहिर नीचे पड़े हाय-हाय कर रहे हैं और साबिर अलग बिलबिला रहा है! कुलीनता का रक्त खौल उठा; मैं सैयद पुलिस के अफसर का बेटा, चुंगी के मुहर्रिर का भाई, अँगरेज़ी के आठवें दरजे का विद्यार्थी! यह मूर्ख, उजड्ड अहीर का लौंडा, इसकी इतनी मजाल कि मेरे भाइयों को नीचा दिखाए! घीसू के एक ठोकर लगाई और मिठुआ के कई तमाचे। मिठुआ तो रोने लगा; किन्तु घीसू चिमड़ा था। जाहिर को छोड़कर उठा, हौसले बढ़े हुए थे, दो मोरचे जीत चुका था, ताल ठोककर माहिर अली से भी लिपट गया। माहिर ने उसका टेंटुआ पकड़ा और ज़ोर से दबाने लगे। मरता क्या न करता घीसू, माहिर के हाथ में दाँत जमा दिए; तीन दाँत गड़ गए, खून बहने लगा। जैनब और रकिया यह हंगामा सुनकर दरवाज़े पर आ गईं। देखा तो समरभूमि रक्त से प्लावित हो रही है, गालियाँ देती हुई ताहिरअली के पास आईं। जैनब ने तिरस्कार भाव से कहा—तुम यहाँ बैठे खालें नोच रहे हो, कुछ दीन-दुनिया की भी खबर है! वहाँ वह अहीर का लौंडा हमारे लड़कों का खून-खच्चर किये डालता है। मुए को पकड़ पाती, तो खून ही चूस लेती।

रकिया—मुआ आदमी है कि देव-बच्चा है! माहिर के हाथ में इतनी ज़ोर से दाँत काटा है कि खून के फौवारे निकल रहे हैं। कोई दूसरा मर्द होता, तो इसी बात पर मुए को जीता गाड़ देता।

जैनब—कोई अपना होता, तो इस वक़्त मूड़ीकाटे को कच्चा ही चबा जाता।

ताहिरअली घबराकर मैदान की ओर दौड़े। माहिर के कपड़े खून से तर देखे, तो जामे से बाहर हो गये। घीसू के दोनों कान पकड़कर ज़ोर से हिलाए और तमाचे-पर-तमाचे लगाने शुरू किये। मिठुआ ने देखा, अब पिटने की बारी आयी; मैदान हमारे हाथ से गया, गालियाँ देता हुआ भागा। घीसू नई-नई अछूती गालियाँ दे रहा था और ताहिरअली गालियों का जवाब तमाचों से दे रहे थे। मिठुआ ने जाकर इस संग्राम की सूचना बजरंगी को दी—सब लोग मिलकर घीसू को मार रहे हैं, उसके मुँह से लहू निकल रहा है। वह भैंसें चरा रहा था, बस तीनों लड़के आकर भैसों को भगाने लगे। घीसू ने मना किया, तो सबों ने मिलकर मारा, और बड़े मियाँ भी निकलकर मार रहे हैं। बजरंगी यह खबर सुनते ही आग हो गया। उसने ताहिरअली की माताओं को 50 रुपये दिए थे और उस ज़मीन को अपनी समझे बैठा था। लाठी उठाई और दौड़ा। देखा, तो ताहिरअली घीसू के हाथ-पाँव बँधवा रहे हैं। पागल हो गया, बोला—बस, मुंशीजी, भला चाहते हो, तो हट जाओ; नहीं तो सारी सेखी भुला दूँगा।

ताहिरअली ने अभी कुछ जवाब न दिया था कि घीसू ने बाप को देखते ही ज़ोर से छलाँग मारी और एक पत्थर उठाकर ताहिरअली की तरफ़ फेंका। वह सिर नीचा न कर लें, तो माथा फट जाये। जब तक घीसू दूसरा पत्थर उठाए, उन्होंने लपककर उसका हाथ पकड़ा और इतनी ज़ोर से ऐंठा कि वह 'अहा मरा! अहा मरा!' कहता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ा। अब बजरंगी आपे से बाहर हो गया। झपटकर ऐसी लाठी मारी कि ताहिरअली तिरमिराकर गिर पड़े।

बजरंगी ने ताहिरअली को गिरते देखा, तो सँभल गया, दूसरा हाथ न चलाया। घीसू का हाथ पकड़ा और घर चला गया। यहाँ घर में कुहराम मचा। ताहिरअली को लोगों ने उठाया और चारपाई पर लादकर कमरे में लाये। कंधे पर लाठी पड़ी थी, शायद हड्डी टूट गयी थी। अभी तक बेहोश थे। चमारों ने तुरंत हल्दी पीसी और उसे गुड़-चूने में मिलाकर उनके कंधे में लगाया। जैनब और रकिया तो ताहिरअली की मरहम-पट्टी करने लगीं, बेचारी कुल्सूम दरवाज़े पर खड़ी रो रही थी। पति की ओर उससे ताका भी न जाता था। ताहिरअली की दिन-भर सेंक-बाँध हुई, चमारों ने इस तरह दौड़-धूप की, मानो उनका कोई अपना इष्ट मित्र है। जैनब और रकिया बार-बार कुल्सूम को ताने देतीं—बहन, तुम्हारा दिल भी गजब का है। शौहर का वहाँ बुरा हाल हो रहा है और तुम यहाँ मज़े से बैठी हो। हमारे मियाँ के सिर में ज़रा-सा दर्द होता था, तो हमारी जान नाखून में समा जाती थी। प्रातःकाल ताहिरअली की आँखें खुलीं; दर्द से अब भी कराह रहे थे; पर अब अवस्था उतनी शोचनीय न थी। तकिये के सहारे बैठ गये। कुल्सूम ने उन्हें चमारों से बातें करते सुना। उसे ऐसा जान पड़ा कि इनका स्वर कुछ विकृत हो गया है। अब कुल्सूम ने चित्त सावधान किया और पति के पास आ बैठी। ताहिरअली ने उसे देखा, तो क्षीण स्वर में बोले—खुदा ने हमें नमकहरामी की सजा दी है। जिनके लिए अपने आका का बुरा चेता, वही अपने दुश्मन हो गये।

कुल्सूम—तुम यह नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते? जब तक ज़मीन का मुआमला तय न हो जायेगा, एक-न-एक झगड़ा-बखेड़ा रोज़ होता रहेगा, लोगों से दुश्मनी बढ़ती जायेगी। यहाँ जान थोड़े ही देना है।

ताहिर—जान तो सलामत रहेगी, पर गुजर क्योंकर होगा, कौन इतना दिए देता है?

कुल्सूम—न इतना मिलेगा, न सही; इसका आधा तो मिलेगा! दोनों वक़्त न खाएँगे, एक ही वक़्त सही; जान तो आफत में न रहेगी।

ताहिर—तुम एक वक़्त खाकर खुश रहोगी, घर में और लोग भी तो हैं, उनके दुःखड़े रोज़ कौन सुनेगा? मुझे अपनी जान से दुश्मनी थोड़े ही है; पर मजबूर हूँ।

कुल्सूम—घर के लोगों के पीछे क्या जान दे दोगे?

ताहिर—कैसी बातें करती हो, आखिर वे लोग कोई गैर तो नहीं हैं? अपने ही भाई हैं, अपनी माँएँ हैं। उनकी परवरिश मेरे सिवा और कौन करेगा?

कुल्सूम—तुम समझते होगे, वे तुम्हारे मोहताज हैं; मगर उन्हें तुम्हारी रत्ती-भर भी परवा नहीं। सोचती हैं, जब तक मुफ़्त का मिले, अपने खजाने में क्यों हाथ लगाएँ।

ताहिर—मेरा जो फर्ज़ है, उसे पूरा करता हूँ। अगर उनके पास रुपये हैं, तो इसका मुझे क्यों अफ़सोस हो, वे शौक से खाएँ, आराम से रहें।

कुल्सूम—पछताओगे; जब समझाती हूँ, मुझ ही पर नाराज़ होते हो; लेकिन देख लेना, कोई बात न पूछेगा।

ताहिर—यह सब तुम्हारी नीयत का कसूर है।

कुल्सूम—हाँ, औरत हूँ, मुझे अक्ल कहाँ! पड़े तो हो, किसी ने झाँका तक नहीं।

ताहिरअली ने करवट ली, तो कंधे में असह्य वेदना हुई। 'आह-आह' करके चिल्ला उठे। माथे पर पसीना आ गया। कुल्सूम घबराकर बोली—किसी को भेजकर डॉक्टर को क्यों नहीं बुला लेते? कहीं हड्डी पर जरब न आ गया हो।

ताहिर—हाँ, मुझे भी ऐसा ही खौफ होता है, मगर डॉक्टर को बुलाऊँ तो उसकी फीस के रुपये कहाँ से आवेंगे?

कुल्सूम—तनख्वाह तो अभी मिली थी, क्या इतनी जल्द खर्च हो गयी?

ताहिर—खर्च तो नहीं हो गयी, लेकिन फीस की गुंजाइश नहीं है। अबकी माहिर की तीन महीने की फीस देनी होगी।

कुल्सूम—जब देखो, माहिर की फीस का तकाजा सिर पर सवार रहता है। अभी दस दिन हुए, फीस दी नहीं गयी?

ताहिर—दस दिन नहीं हुए, एक महीना हो गया।

कुल्सूम—फीस अबकी न दी जायेगी। डॉक्टर की फीस उनकी फीस से ज़्यादा ज़रूरी है। वह पढ़कर कमाएँगे, तो मेरे घर न भरेंगे। मुझे तो तुम्हारी ही जान का भरोसा है।

ताहिर—(बात बदलकर) इन मुजियों की जब तक अच्छी तरह तंबीह न हो जायेगी, शरारत से बाज न आयेंगे।

कुल्सूम—सारी शरारत इसी माहिर की थी। लड़कों में लड़ाई-झगड़ा होता ही रहता है। यह वहाँ न जाता तो क्यों मुआमला इतना तूल खींचता?

ताहिर—मुझे तो खून के छींटे देखते ही जैसे सिर पर भूत सवार हो गया।

इतने में घीसू की माँ जमुनी आ पहुँची। जैनब ने उसे देखते ही तुरंत बुला लिया और डाँटकर कहा—मालूम होता है, तेरी शामत आ गयी है।

जमुनी—बेगम साहब, शामत नहीं आयी है, बुरे दिन आये हैं, और क्या कहूँ। मैं कल ही दही बेचकर लौटी, तो यह हाल सुना। सीधे आपकी खिदमत में दौड़ी; पर यहाँ बहुत-से आदमी जमा थे, लाज के मारे लौट गयी। जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे माफ कीजिए, नहीं तो उजड़ जायेंगे, कहीं ठिकाना नहीं है।

जैनब—अब हमारे किये कुछ नहीं हो सकता। साहब बिना मुकदमा चलाये न मानेंगे, और वह न चलायेंगे, तो हम चलाएँगे। हम कोई धुनिये-जुलाहे हैं? यों सबसे दबते फिरें, तो इज्जत कैसे रहे?

रकिया—जब पुलिस आकर मारते-मारते कचूमर निकाल देगी, तब होश आयेगा; नज़र-नियाज देनी पड़ेगी, वह अलग। तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

जमुनी को अपने पति के हिस्से का व्यावहारिक ज्ञान भी मिला था। इन धमकियों से भयभीत न होकर बोली—बेगम साहब, यहाँ इतने रुपये कहाँ धरे हैं, दूध-पानी करके दस-पाँच रुपये बटोरे हैं। आपके बाल-बच्चों को साल-छः महीने दूध पिला दूँगी।

जैनब समझ गयी कि यह अहीरन कच्ची गोटी नहीं खेली है। इसके लिए किसी दूसरे ही मंत्र का प्रयोग करना चाहिए। नाक सिकोड़कर बोली—तू अपना दूध अपने घर रख, यहाँ

दूध-घी के ऐसे भूखे नहीं हैं। यह ज़मीन अपनी हुई जाती है; जितने जानवर चाहूँगी, पाल लूँगी। मगर तुझसे कहे देती हूँ कि तू कल से घर में न बैठने पायेगी।

जमुनी भयभीत होकर बोली—नहीं बेगम साहब, आपको भी भगवान् ने बाल-बच्चे दिए हैं, ऐसा जुलुम न कीजिएगा, नहीं तो मर जाऊँगी।

जैनब—यह भी न करें, वह भी न करें, तो इज्जत कैसे रहे? कल को तेरा अहीर लट्ठ लेकर आ पहुँचे तो? खुदा ने चाहा, तो अब वह लट्ठ उठाने लायक ही न रहेगा।

जमुनी पैरों पर गिर पड़ी और बोली—बीबी, जो हुकुम हो, उसके लिए हाजिर हूँ।

जैनब ने चोट-पर-चोट लगाई और जमुनी के बहुत रोने-गिड़गिड़ाने पर 25 रुपये लेकर जिन्नात से उसे अभय-दान दिया। घर गयी, रुपये लाकर दिए और पैरों पर गिरी; मगर बजरंगी से यह बात न कही।

सहसा साबिर ने आकर जैनब से कहा—आपको अब्बा बुलाते हैं। जैनब वहाँ गयी, तो ताहिरअली को पड़े कराहते देखा। कुल्सूम से बोली—बीबी, गजब का तुम्हारा जिगर है। अरे भले आदमी, जाकर ज़रा मूँग का दलिया पका दे।

ताहिर—नहीं, मेरा कुछ खाने को जी नहीं चाहता। आपको इसलिए तकलीफ दी है कि अगर आपके पास कुछ रुपये हों, तो मुझे कर्ज के तौर पर दे दीजिए। मेरे कंधे में बड़ा दर्द है, शायद हड्डी टूट गयी है, डॉक्टर को दिखाना चाहता हूँ; मगर उसकी फीस के लिए रुपयों की ज़रूरत है।

जैनब—बेटा, भला सोचो तो, मेरे पास रुपये कहाँ से आयेंगे, तुम्हारे सिर की कसम खाकर कहती हूँ। मगर तुम डॉक्टर को बुलाओ ही क्यों? तुम्हें सीधे साहब के यहाँ जाना चाहिए। यह हंगामा उन्हीं की बदौलत तो हुआ है, नहीं तो यहाँ हमसे किसी को क्या गरज थी। एक इक्का मँगवा लो और साहब के यहाँ चले जाओ। वह एक रुक्की लिख देंगे, तो सरकारी शिफाखाने में खासी तरह इलाज हो जायेगा।

ताहिरअली के दिल में यह बात बैठ गयी। माता को धन्यवाद दिया। इक्का मँगवाया, लाठी के सहारे बड़ी मुश्किल से उस पर सवार हुए और साहब के बँगले पर पहुँचे।

मिस्टर सेवक, राजा महेंद्रकुमार से मिलने के बाद, कम्पनी के हिस्से बेचने के लिए बाहर चले गये थे और उन्हें लौटे हुए आज तीन दिन हो गये थे। कल वह राजा साहब से फिर मिले थे; मगर जब उनका फैसला सुना, तो बहुत निराश होकर आये और मिसेज़ सेवक से सारा वृत्तांत कह सुनाया।

मिसेज़ सेवक को हिंदुस्तानियों से चिढ़ थी। यद्यपि इसी देश के अन्न-जल से उनकी सृष्टि हुई थी, पर अपने विचार से हजरत ईसा की शरण में आकर, वह हिंदुस्तानियों के अवगुणों से मुक्त हो चुकी थीं। उनके विचार में यहाँ के आदमियों को खुदा ने सज्जनता, सहृदयता, उदारता, शालीनता आदि दिव्य गुणों से सम्पूर्णतः वंचित रखा है।

मिस्टर जोज़फ क्लार्क जिले के हाकिम थे। अभी थोड़े ही दिनों से यहाँ आये थे। मिसेज़ सेवक ने उनसे रब्त-जब्त पैदा कर लिया था। वास्तव में उन्होंने क्लार्क को सोफ़ी के लिए चुना था। दो-एक बार उन्हें अपने घर बुला भी चुकी थीं। गृह-निर्वासन से पहले दो-तीन बार

सोफ़ी से उनकी मुलाकात भी हो चुकी थी; किन्तु वह उनकी ओर विशेष आकृष्ट न हुई थी। तो भी मिसेज़ सेवक इस विषय में अभी निराश न हुई थीं।

जॉन सेवक ने लज्जित होकर कहा—मैं क्या जानता था, यह महाशय भी दगा देंगे। यहाँ उनकी बड़ी ख्याति है, अपने वचन के पक्के समझे जाते हैं। खैर, कोई मुजायका नहीं। अब कोई दूसरा उपाय सोचना पड़ेगा।

मिसेज़ सेवक—मैं मिस्टर क्लार्क से कहूँगी। पादरी साहब से भी सिफारिश कराऊँगी।

जॉन सेवक—क्लार्क को म्युनिसिपैलिटी के मुआमलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं।

जॉन सेवक इसी चिन्ता में पड़े हुए थे कि इस हंगामे की खबर मिली। सन्नाटे में आ गये। पुलिस को रिपोर्ट की। दूसरे दिन गोदाम जाने का विचार कर ही रहे थे कि ताहिरअली लाठी टेकते हुए आ पहुँचे। आते-आते एक कुरसी पर बैठ गये।

जॉन सेवक—कहिए मुंशीजी, मालूम होता है, आपको बहुत चोट आयी।

ताहिर—हुज़ूर, कुछ न पूछिए, कम्बख्तों ने मार डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

जॉन सेवक—और इन्हीं दुष्टों की आप मुझसे सिफारिश कर रहे थे।

ताहिर—हुज़ूर, अपनी खता की बहुत सजा पा चुका। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरी गरदन की हड्डी पर जरब आ गया है।

जॉन सेवक—यह आपकी भूल है। हड्डी टूट जाना कोई मामूली बात नहीं है। आप यहाँ तक किसी तरह न आ सकते थे। चोट ज़रूर आयी है, मगर दो-चार रोज़ मालिश कर लेने से आराम हो जायेगा। आखिर यह मारपीट हुई क्यों?

ताहिर—हुज़ूर, यह सब उसी शैतान बजरंगी अहीर की हरकत है।

जॉन सेवक—मगर चोट खा जाने ही से आप निरपराध नहीं हो सकते। मैं इसे आपकी नादानी और असावधानी समझता हूँ। आप ऐसे आदमियों से उलझे ही क्यों? आपको मालूम है, इसमें मेरी कितनी बदनामी है?

ताहिर—मेरी तरफ़ से ज्यादती तो नहीं हुई।

जॉन सेवक—ज़रूर हुई, वरना देहातों में आदमी किसी से छेड़कर लड़ने नहीं आते। आपको इस तरह रहना चाहिए कि लोगों पर आपका रोब रहे।

मिसेज़ सेवक—कुछ नहीं, यह सब इनकी कमजोरी है। कोई राह चलते किसी को नहीं मारता।

ईश्वर सेवक कुरसी पर पड़े-पड़े बोले—खुदा के बेटे, मुझे अपने साये में ले, सच्चे दिल से उसकी बंदगी न करने की यही सज़ा है।

ताहिरअली को ये बातें घाव पर नमक के समान लगीं। ऐसा क्रोध आया कि इसी वक़्त कह दूँ, जहन्नुम में जाये तुम्हारी नौकरी; पर जॉन सेवक को उनकी दुरावस्था से लाभ उठाने की एक युक्ति सूझ गयी। फ़िटन तैयार कराई और ताहिरअली को लिए हुए राजा महेंद्रकुमार के मकान पर जा पहुँचे। राजा साहब शहर का गश्त लगाकर मकान पर पहुँचे ही थे कि जॉन

सेवक का कार्ड पहुँचा। झुँझलाए, लेकिन शील आ गया, बाहर निकल आये। मिस्टर सेवक ने कहा—क्षमा कीजिएगा, आपको कुसमय कष्ट हुआ, किन्तु पाँड़ेपुरवालों ने इतना उपद्रव मचा रखा है कि मेरी समझ में नहीं आता, आपके सिवा किसका दामन पकड़ूँ। कल सबों ने मिलकर गोदाम पर धावा कर दिया। शायद आग लगा देना चाहते थे, पर आग तो न लगा सके; हाँ, यह मेरे एजेंट हैं, सब-के-सब इन पर टूट पड़े। इनको और इनके भाइयों को मारते-मारते बेदम कर दिया। इतने पर भी उन्हें तस्कीन न हुई, जनाने मकान में घुस गए।

महेंद्रकुमार सिंह स्त्रियों का बड़ा सम्मान करते थे। उनका अपमान होते देखकर तैश में आ जाते थे। रौद्र रूप धारण करके बोले—सब जनाने में घुस गए! कमीने! स्त्रियों पर अत्याचार करना चाहते थे!

जॉन सेवक—यही तो इस ड्रामे का सबसे लज्जास्पद अंश हैं।

महेंद्रकुमार—लज्जास्पद नहीं महाशय, घृणास्पद कहिए।

जॉन सेवक—अब यह बेचारे कहते हैं कि या तो मेरा इस्तीफा लीजिए, या गोदाम की रक्षा के लिए चौकीदारों का प्रबंध कीजिए। स्त्रियाँ तो वहाँ एक क्षण भी नहीं रहना चाहतीं। यह सारा उपद्रव उसी अंधे की बदौलत हो रहा है।

महेंद्रकुमार—मुझे तो वह बहुत ग़रीब, सीधा-सा आदमी मालूम होता है; मगर है छँटा हुआ। उसी की दीनता पर तरस खाकर मैंने निश्चय किया था कि आपके लिए कोई दूसरी ज़मीन तलाश करूँ। लेकिन जब उन लोगों ने शरारत पर कमर बाँधी है और आपको जबरदस्ती वहाँ से हटाना चाहते हैं, तो इसका उन्हें अवश्य दंड मिलेगा।

जॉन सेवक—बस, यही बात है, वे लोग मुझे वहाँ से निकाल देना चाहते हैं।

महेंद्रकुमार—मैं खूब समझ रहा हूँ। यों मैं स्वयं जनवादी हूँ और उस नीति का हृदय से समर्थन करता हूँ; पर जनवाद के नाम पर देश में जो अशांति फैली हुई है, उसका मैं घोर विरोधी हूँ। आप निश्चिंत रहिए।

इसी भाँति कुछ देर और बातें करके राजा साहब को खूब भरकर जॉन सेवक बिदा हुए। रास्ते में ताहिरअली सोचने लगे—साहब को मेरी दुर्गति से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में ज़रा भी संकोच नहीं हुआ।

जॉन सेवक अनुमान से उनके मन के भाव ताड़ गये। बोले—आप सोच रहे होंगे, मैंने बातों में इतना रंग क्यों भरा, केवल घटना का यथार्थ वृत्तांत क्यों न कह सुनाया; किन्तु सोचिए, बिना रंग भरे मुझे यह फल प्राप्त हो सकता? मैंने राजा साहब को स्वपक्षी बना लिया, फिर रंग भरने का दोष कहाँ रहा?

इतने में फ़िटन बँगले पर आ पहुँची। ईश्वर सेवक ने पूछा—कहो, क्या कर आये?

जॉन सेवक ने गर्व से कहा—राजा को अपना मुरीद बना आया। थोड़ा-सा रंग तो ज़रूर भरना पड़ा, पर उसका असर बहुत अच्छा हुआ।

ईश्वर सेवक—ख़ुदा, मुझ पर दया-दृष्टि कर। बेटा, रंग मिलाए बग़ैर भी दुनिया का कोई काम चलता है? सफलता का यही मूल-मंत्र है।

जॉन सेवक—जी हाँ, अब कोई संदेह नहीं।

यह कहकर उन्होंने प्रभु सेवक को पुकारा और तिरस्कार करके बोले—बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? ज़रा पाँड़ेपुर क्यों नहीं चले जाते?

प्रभु सेवक—मुझे कोई आपत्ति नहीं; पर इस समय मुझे सोफ़ी के पास जाना है।

जॉन सेवक—पाँड़ेपुर से लौटते हुए सोफ़ी के पास आसानी से जा सकते हो।

प्रभु सेवक—मैं सोफ़ी से मिलना ज़्यादा ज़रूरी समझता हूँ।

जॉन सेवक—तुम्हारे रोज़-रोज़ मिलने से क्या फ़ायदा, जब तुम आज तक उसे घर लाने में सफल नहीं हो सके?

प्रभु सेवक के मुँह से ये शब्द निकलते-निकलते रह गए—मामा ने जो आग लगा दी है, वह मेरे बुझाए नहीं बुझ सकी। तुरंत अपने कमरे में आये, कपड़े पहने और उसी वक़्त ताहिरअली के साथ पाँड़ेपुर चलने को तैयार हो गये।

11

भैरो पासी अपनी माँ का सपूत बेटा था। यथासाध्य उसे आराम से रखने की चेष्टा करता रहता था। इस भय से कि कहीं बहू सास को भूखा न रखे, वह उसकी थाली अपने सामने परसा लिया करता था और उसे अपने साथ ही बैठाकर खिलाता था। आप चाहे ज़मीन पर सोये, पर उसे खाट पर सुलाता। कहता, इसने न जाने कितने कष्ट झेलकर मुझे पाला-पोसा है; मैं इससे जीते-जी कभी उरिन नहीं हो सकता। अगर माँ का सिर भी दर्द करता तो बेचैन हो जाता, ओझे-सयाने बुला लाता। अपनी स्त्री को ताकीद करता रहता था कि अम्माँ को कोई तकलीफ न होने पाये। इस तरह बुढ़िया का मान बढ़ गया था। ज़रा-सी कोई बात इच्छा के विरुद्ध होती, तो रूठ जाती और बहू को आड़े हाथों लेती। बहू का नाम सुभागी था। बहू ने ज़रा चिलम भरने में देर की, चारपाई बिछाना भूल गयी, या मुँह से निकलते ही उसका पैर दबाने न आ पहुँची, तो बुढ़िया उसके सिर हो जाती। जगधर से भैरो की गहरी मित्रता थी। यद्यपि भैरो का घर बस्ती के पश्चिम सिरे पर था, और जगधर का घर पूर्व सिरे पर, किन्तु जगधर की यहाँ बहुत आमद-रफ़्त थी। यहाँ मुफ़्त में ताड़ी पीने को मिल जाती थी। उसके घर में खानेवाले बहुत थे, कमानेवाला अकेला वही था। पाँच लड़कियाँ थीं, एक लड़का और स्त्री। खोंचे की बिक्री में इतना लाभ कहाँ कि इतने पेट भरे और ताड़ी-शराब भी पिए! वह भैरो की हाँ-में-हाँ मिलाया करता था। इसलिए सुभागी उससे जलती थी।

दो-तीन साल पहले की बात है, एक दिन, रात के समय, भैरो और जगधर बैठे हुए ताड़ी पी रहे थे। जाड़ों के दिन थे; बुढ़िया खा-पीकर, अँगीठी सामने रखकर, आग ताप रही थी। भैरो ने सुभागी से कहा—थोड़े-से मटर भून ला। नमक, मिर्च, प्याज भी लेती आना। सुभागी ने मटर तो भूने, लेकिन प्याज घर में न था। हिम्मत न पड़ी कि कह दे—प्याज नहीं है। दौड़ी हुई कुँजड़े की दूकान पर गयी। कुँजड़ा दूकान बंद कर चुका था। सुभागी ने बहुत चिरौरी की, पर उसने दूकान न खोली। विवश होकर उसने भूने हुए मटर लाकर भैरो के सामने रख दिए। भैरो ने प्याज न देखा, तो तेवर बदले। बोला—क्या मुझे बैल समझती है कि भुने हुए मटर लाकर रख दिए, प्याज क्यों नहीं लाई?

सुभागी ने कहा—प्याज घर में नहीं है, तो क्या मैं प्याज हो जाऊँ?

जगधर—प्याज के बिना मटर क्या अच्छे लगेंगे?

बुढ़िया—प्याज तो अभी कल ही धेले का आया था। घर में कोई चीज़ तो बचती ही नहीं। न जाने इस चुड़ैल का पेट है या भाड़।

भैरो—प्याज नहीं था, तो लाई क्यों नहीं?

जगधर—जो चीज़ घर में न रहे, उसकी फिकर रखनी चाहिए।

सुभागी—मैं क्या जानती थी कि आज आधी रात को प्याज की धुन सवार होगी।

भैरो ताड़ी के नशे में था। नशे में भी क्रोध का-सा गुण है, निर्बलों ही पर उतरता है। डंडा पास ही धरा था, उठाकर एक डंडा सुभागी को मारा। उसके हाथ की सब चूड़ियाँ टूट गईं। घर से भागी। भैरो पीछे दौड़ा। सुभागी एक दूकान की आड़ में छिप गयी। भैरो ने बहुत ढूँढ़ा, जब उसे न पाया तो घर जाकर किवाड़ बंद कर लिए और फ़िर रात भर खबर न ली। सुभागी ने सोचा, इस वक़्त जाऊँगी तो प्राण न बचेंगे। पर रात-भर रहूँगी कहाँ? बजरंगी के घर गयी। उसने कहा—ना, बाबा, मैं यह रोग नहीं पालता। सूरदास बैठा खाना पका रहा था। उसकी झोपड़ी में घुस गयी और बोली—सूरे, आज रात-भर मुझे पड़े रहने दो, मारे डालता है, अभी जाऊँगी, तो एक हड्डी भी न बचेगी।

सूरदास ने कहा—आओ, लेट रहो, भोरे चली जाना, अभी नसे में होगा।

दूसरे दिन जब भैरो को यह बात मालूम हुई, तो सूरदास से गाली-गलौज की और मारने की धमकी दी। सुभागी उसी दिन से सूरदास पर स्नेह करने लगी। जब अवकाश पाती, तो उसके पास आ बैठती, कभी-कभी उसके घर में झाड़ू लगा जाती, कभी घरवालों की आँख बचाकर उसे कुछ दे जाती, मिठुआ को अपने घर बुला ले जाती और उसे गुड़-चबेना खाने को देती।

भैरो ने कई बार उसे सूरदास के घर से निकलते देखा। जगधर ने दोनों को बातें करते हुए पाया। भैरो के मन में संदेह हो गया कि ज़रूर इन दोनों में कुछ साठ-गाँठ है, तभी से वह सूरदास से खार खाता था।

जिस दिन बजरंगी और ताहिरअली में झगड़ा हुआ था, उसी दिन भैरो और सूरदास में भी संग्राम छिड़ गया। बुढ़िया ने दोपहर को नहाया था। सुभागी उसकी धोती छाँटना भूल गयी। गरमी के दिन थे ही, रात को 9 बजे बुढ़िया को फिर गरमी मालूम हुई। जब वह नहाकर धोती माँगने लगी, तो सुभागी को याद आयी। काटो तो बदन में लहू नहीं। हाथ जोड़कर बोली—अम्माँ, आज धोती धोने की याद नहीं रही। तुम ज़रा देर मेरी धोती पहन लो, तो मैं उसे छाँटकर अभी सुखाए देती हूँ।

बुढ़िया इतनी क्षमाशील न थी, हज़ारों गालियाँ सुनाईं और गीली धोती पहने बैठी रही। इतने में भैरो दूकान से आया और सुभागी से बोला—जल्दी खाना ला, आज संगत होनेवाली है। आओ अम्माँ, तुम भी खा लो।

बुढ़िया बोली—नहाकर गीली धोती पहने बैठी हूँ। अब अपने हाथों धोती धो लिया करूँगी।

भैरो—क्या इसने धोती नहीं धोई?

बुढ़िया—वह अब मेरी धोती क्यों धोने लगी। घर की मालकिन है।

सुभागी ने बहुत कुछ उज्र किया; किन्तु भैरो ने एक न सुनी, डंडा लेकर मारने दौड़ा। सुभागी भागी और आकर सूरदास के घर में घुस गयी। पीछे-पीछे भैरो भी झोपड़े में घुसा और चाहता था कि सुभागी का हाथ पकड़कर खींच ले कि सूरदास उठकर खड़ा हो गया और बोला—क्या बात है भैरो, इसे क्यों मार रहे हो?

भैरो गर्म होकर बोला—द्वार पर से हट जाओ, नहीं तो पहले तुम्हारी हड्डियाँ तोड़ूँगा, सारा बगुलाभगतपन निकल जायेगा। बहुत दिनों से तुम्हारा रंग देख रहा हूँ, आज सारी कसर निकाल लूँगा।

सूरदास—मेरा क्या छैलापन तुमने देखा? बस, यही न कि मैंने सुभागी को घर से निकाल नहीं दिया?

भैरो—हटता है सामने से कि नहीं?

सूरदास—मैं अपने घर यह उपद्रव न मचाने दूँगा।

भैरो ने क्रोध में आकर सूरदास को धक्का दिया। बेचारा बेलाग खड़ा था, गिर पड़ा, पर फिर उठा और भैरो की कमर पकड़कर बोला—अब चुपके से चले जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा!

सूरदास था तो दुबला-पतला, पर उसकी हड्डियाँ लोहे की थीं। भैरो को ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो कोई लोहे का शिकंजा है। कितना ही ज़ोर मारता, पर शिकंजा ज़रा भी ढीला न होता था। सुभागी ने मौका पाया, तो भागी। अब भैरो ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देने लगा। मुहल्लेवाले यह शोर सुनकर आ पहुँचे। नायकराम ने मज़ाक करके कहा—क्यों सूरे, अच्छी सूरत देखकर आँखें खुल जाती हैं क्या मुहल्ले ही में?

सूरदास—पंडाजी, तुम्हें दिल्लगी सूझी है और यहाँ मुख में कालिख लगाई जा रही है। अंधा था, अपाहिज था, भिखारी था, नीच था, चोरी-बदमासी के इलजाम से तो बचा हुआ था! आज वह इलजाम भी लग गया।

बजरंगी—आदमी जैसा आप होता है, वैसा ही दूसरों को समझता है।

भैरो—तुम कहाँ के बड़े साधु हो। अभी आज ही लाठी चलाकर आये हो। मैं दो साल से देख रहा हूँ, मेरी घरवाली इससे आकर अकेले में घंटों बातें करती है।

नायकराम—सुभा होने की बात ही है। अंधा आदमी देवता थोड़े ही होता है, और फिर देवता लोग भी तो काम के तीर से नहीं बचे।

ठाकुरदीन—महाराज, क्यों अंधे के पीछे पड़े हुए हो। चलो, कुछ भजन-भाव हो।

नायकराम—तुम्हें भजन-भाव सूझता है, यहाँ एक भले आदमी की इज्जत का मुआमला आ पड़ा है। भैरो, तुम सुभागी को मारते बहुत हो, इससे उसका मन तुमसे नहीं मिलता।

भैरो देख रहा था कि मुझे लोग बना रहे हैं। तिनककर बोला—अपनी मेहरिया है, मारते-पीटते हैं, तो किसी का साझा है?

बजरंगी—मार-पीट से लड़का तो बस में आता नहीं, औरत क्या बस में आयेगी।

भैरो—बस में आये औरत का बाप, औरत किस खेत की मूली है! मार से भूत भागता है।

बजरंगी—तो औरत भी भाग जायेगी, लेकिन काबू में न आयेगी?

नायकराम—बहुत अच्छी कही बजरंगी, बहुत पक्की कही, वाह-वाह!

ठाकुरदीन—पंडाजी, तुम दोनों को लड़ाकर दम लोगे; बिचारे अपाहिज आदमी के पीछे पड़े हो।

नायकराम—तुम सूरदास को क्या समझते हो, यह देखने ही में इतने दुबले हैं। अभी हाथ मिलाओ, तो मालूम हो। भैरो, अगर इन्हें पछाड़ दो, तो पाँच रुपये इनाम दूँ।

भैरो—निकल जाओगे।

नायकराम—निकलनेवाले को कुछ कहता हूँ। यह देखो, ठाकुरदीन के हाथ में रखे देता हूँ।

जगधर—क्या ताकते हो भैरो, ले पड़ो।

सूरदास—मैं नहीं लड़ता।

नायकराम—सूरदास, देखो, नाम-हँसाई मत कराओ। हार ही जाओगे या और कुछ!

सूरदास—लेकिन भाई, मैं पेंच-पाच नहीं जानता। मैं जैसे चाहूँगा, वैसे लड़ूँगा।

जगधर—हाँ-हाँ, तुम जैसे चाहना, वैसे लड़ना।

सूरदास—अच्छा तो आओ, कौन आता है!

नायकराम—अंमे आदमी का जीवट देखना। चलो भैरो, आओ मैदान में।

भैरो—अंधे से क्या लड़ूँगा!

नायकराम—बस, इसी पर इतना अकड़ते थे?

जगधर—निकल आओ भैरो, एक झपट्टे में तो मार लोगे!

भैरो—तुम्हीं क्यों नहीं लड़ जाते, तुम्हीं इनाम ले लेना।

जगधर को रुपयों की नित्य चिन्ता रहती थी। धनोपार्जन के किसी उपाय को हाथ से न छोड़ना चाहता था। बोला—क्यों सूरे, हमसे लड़ोगे?

सूरदास—तुम्हीं आ जाओ, कोई सही।

जगधर ने धोती ऊपर चढ़ा ली और सूरदास से लिपट गया। सूरदास ने उसकी एक टाँग पकड़ ली और इतनी ज़ोर से खींचा कि जगधर धम से गिर पड़ा। चारों तरफ़ से तालियाँ बजने लगीं।

बजरंगी बोला—वाह, सूरदास, वाह! नायकराम ने दौड़कर उसकी पीठ ठोंकी।

भैरो—मुझे तो कहते थे, एक ही झपट्टे में गिरा दोगे, तुम कैसे गिर गए?

जगधर—सूरे ने टाँग पकड़ ली, नहीं तो क्या गिरा लेते।

नायकराम—अच्छा, तो एक बाजी और हो जाये।

जगधर—हाँ-हाँ, अबकी देखना।

दोनों योद्धाओं में फिर मल्ल-युद्ध होने लगा। सूरदास ने अबकी जगधर का हाथ

पकड़कर इतने ज़ोर से ऐंठा कि वह 'आह! आह!' करता हुआ ज़मीन पर बैठ गया। सूरदास ने तुरंत उसका हाथ छोड़ दिया और गरदन पकड़कर दोनों हाथों से ऐसा दबोचा कि जगधर की आँखें निकल आईं; नायकराम ने दौड़कर सूरदास को हटा लिया।

भैरो ने बिगड़कर कहा—यह कोई कुश्ती है कि जहाँ पकड़ पाया, वहीं धर दबाया।

नायकराम—यह बात तो पहले तय हो चुकी थी।

जगधर सँभलकर उठ बैठा और चुपके से सरक गया। भैरो भी उसके पीछे चलता हुआ। उनके जाने के बाद यहाँ खूब कहकहे उड़े। ठाकुरदीन यंत्र-मंत्र का कायल था। बोला—सूरे को किसी देवता का इष्ट है। हमें भी बताओ सूरे, कौन-सा मंत्र जगाया था?

सूरदास—सौ मंत्रों का मंत्र हिम्मत है।

नायकराम—अच्छा सूरदास, ईमान से बता दो, सुभागी को किस मंत्र से बस में किया? अब तो यहाँ सब लोग अपने ही हैं, कोई दूसरा नहीं है।

सूरदास ने करुण स्वर में कहा—पंडाजी, अगर तुम भी मुझसे ऐसी बातें करोगे, तो मैं मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँगा। यह कहकर सूरदास फूट-फूटकर रोने लगा।

नायकराम—तो रोते क्यों हो भले आदमी, अंधे हो तो क्या मर्द नहीं हो? मुझे तो कोई यह कलंक लगाता, तो और खुश होता। यही तो मरदों के काम हैं। चलो भगवान का भजन हो, यह सब दुःख दूर हो जायेगा।

बजरंगी को चिन्ता लगी हुई थी—आज की मार-पीट का न जाने क्या फल हो? कल पुलिस द्वार पर आ जायेगी। गुस्सा हराम होता है। नायकराम ने आश्वासन दिया—भले आदमी, पुलिस से क्या डरते हो? कहो, थानेदार को बुलाकर नचाऊँ। निश्चिंत बैठे रहो, कुछ न होने पायेगा।

तीनों आदमी यहाँ से चले। दयागिरि पहले ही से इनकी राह देख रहे थे। कई गाड़ीवान और बनिए भी आ बैठे थे। ज़रा देर में भजन की तानें उठने लगीं।

किन्तु जगधर और भैरो दोनों के मन में ईर्ष्या का फोड़ा पक रहा था। जगधर कहता था—मैंने तो समझा था, सहज में पाँच रुपये मिल जायेंगे, नहीं तो क्या कुत्ते ने काटा था कि उससे भिड़ने जाता? आदमी काहे का है, लोहा है।

भैरो—मैं उसकी ताकत की परीक्षा कर चुका हूँ। ठाकुरदीन सच कहता है, उसे किसी देवता का इष्ट है।

जगधर—इष्ट-विष्ट कुछ नहीं है, यह सब बेफिकरी है। हम-तुम गृहस्थी के जंजाल में फँसे हुए हैं, नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता सिर पर सवार रहती है, घाटे-नफे के फेर में पड़े रहते हैं। उसे कौन चिन्ता है?

भैरो—आज सुभागी आती है, तो गला दबा देता हूँ।

जगधर—किसी के घर में छिपी बैठी होगी।

भैरो—अंमे ने मेरी आबरू बिगाड़ दी।

जगधर—सुभागी घर आती तो उससे समझते। तुम लगे वहीं दुहाई देने।

भैरो—इस अंधे को मैं ऐसा कपटी न समझता था, नहीं तो अब तक कभी-का मज़ा चखा चुका होता। अब उस चुड़ैल को घर में न रखूँगा। चमार के हाथों यह बेआबरुई!

यों बातें करते हुए दोनों अपने-अपने घर गये। रात के दो बजे होंगे कि अकस्मात् सूरदास की झोंपड़ी से ज्वाला उठी। लोग अपने-अपने द्वारों पर सो रहे थे। दम-के-दम में सैकड़ों आदमी जमा हो गये। आग बुझाने का प्रयत्न किया जा रहा था; पर झोंपड़े की आग, ईर्ष्या की आग की भाँति कभी नहीं बुझती।

सहसा सूरदास दौड़ा हुआ आया और चुपचाप ज्वाला के प्रकाश में खड़ा हो गया।

बजरंगी ने पूछा—यह कैसे लगी सूरे, चूल्हे में तो आग नहीं छोड़ दी थी?

सूरदास—झोंपड़े में जाने का कोई रास्ता ही नहीं है?

बजरंगी—अब तो अंदर-बाहर सब एक हो गया है। दीवारें जल रही हैं।

सूरदास—किसी तरह नहीं जा सकता?

बजरंगी—कैसे जाओगे? देखते नहीं हो, यहाँ तक लपटें आ रही हैं!

जगधर—सूरे, क्या आज चूल्हा ठंडा नहीं किया था?

नायकराम—चूल्हा ठंडा किया होता, तो दुसमनों का कलेजा कैसे ठंडा होता।

जगधर—पंडाजी, मेरा लड़का काम न आये, अगर मुझे कुछ भी मालूम हो। तुम मुझ पर नाहक सुभा करते हो।

नायकराम—मैं जानता हूँ जिसने लगाई है। बिगाड़ न दूँ, तो कहना।

ठाकुरदीन—तुम क्या बिगाड़ोगे, भगवान आप ही बिगाड़ देंगे।

सूरदास—अब तो लपट नहीं आती।

बजरंगी—हाँ, फूस जल गया, अब धरन जल रही है।

सूरदास—अब तो अंदर जा सकता हूँ?

नायकराम—अंदर तो जा सकते हो; पर बाहर नहीं निकल सकते। अब चलो आराम से सो रहो; जो होना था, हो गया। पछताने से क्या होगा?

सूरदास—हाँ, सो रहूँगा, जल्दी क्या है।

थोड़ी देर में रही-सही आग भी बुझ गयी। कुशल यह हुई कि और किसी के घर में आग न लगी। सब लोग इस दुर्घटना पर आलोचनाएँ करते हुए बिदा हुए। किन्तु सूरदास अब भी वहीं बैठा हुआ था। उसे झोंपड़े और बरतन आदि के जल जाने का भी दुःख न था; दुःख था उस पोटली का, जो उसकी उम्र-भर की कमाई थी, जो उसके जीवन की सारी आशाओं का आधार थी, जो उसकी सारी यातनाओं और रचनाओं का निष्कर्ष थी।

उस समय तक राख ठंडी हो चुकी थी। सूरदास अटकल से द्वार की ओर झोंपड़े में घुसा; पर दो-तीन पग के बाद एकाएक पाँव भूबल में पड़ गया। ऊपर राख थी, लेकिन नीचे आग। तुरंत पाँव खींच लिया और अपनी लकड़ी से राख को उलटने-पलटने लगा, जिससे नीचे की आग भी जल्द राख हो जाये। आध घंटे में उसने सारी राख नीचे से ऊपर कर दी, और तब फिर डरते-डरते राख में पैर रखा। राख गरम थी, पर असह्य न थी। उसने उसी जगह की

सीध में राख को टटोलना शुरू किया, जहाँ छप्पर में पोटली रखी थी। उसे विश्वास था कि रुपये मिलें या न मिलें, पर चाँदी तो कहीं गयी ही नहीं। सहसा वह उछल पड़ा, कोई भारी चीज़ हाथ लगी। उठा लिया; पर टटोलकर देखा, तो मालूम हुआ ईंट का टुकड़ा है। फिर टटोलने लगा, कोई चीज़ हाथ न लगी। वह वहीं राख पर बैठ गया और बिलख-बिलखकर रोने लगा। अपनी बेबसी का इतना दुःख उसे कभी न हुआ था।

तड़का हो गया, सूरदास अब राख के ढेर को बटोरकर एक जगह कर रहा था। आशा से ज़्यादा दीर्घजीवी और कोई वस्तु नहीं होती।

उसी समय जगधर आकर बोला—सूरे, सच कहना, तुम्हें मुझ पर तो सुभा नहीं है?

सूरे को सुभा तो था, पर उसने इसे छिपाकर कहा—तुम्हारे ऊपर क्यों सुभा करूँगा? तुमसे मेरी कौन-सी अदावत थी?

जगधर—मुहल्लेवाले तुम्हें भड़काएँगे, पर मैं भगवान से कहता हूँ, मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता।

सूरदास—अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। बिना जाने-बूझे किस पर सुभा करूँ?

जगधर—इसी से तुम्हें चिता दिया कि कहीं सुभे में मैं भी न मारा जाऊँ।

सूरदास—तुम्हारी तरफ़ से मेरा दिल साफ है।

जगधर को भैरो की बातों से अब यह विश्वास हो गया कि उसी की शरारत है। वह वहाँ से सीधे भैरो के पास गया। वह चुपचाप बैठा नारियल का हुक्का पी रहा था, पर मुख से चिन्ता और घबराहट झलक रही थी। जगधर को देखते ही बोला—कुछ सुना; लोग क्या बातचीत कर रहे हैं?

जगधर—सब लोग तुम्हारे ऊपर सुभा करते हैं। नायकराम की धमकी तो तुमने अपने कानों से सुनी।

भैरो—यहाँ ऐसी धमकियों की परवा नहीं है। सबूत क्या है कि मैंने लगाई?

जगधर—सच कहो, तुम्हीं ने लगाई?

भैरो—हाँ, चुपके से एक दियासलाई लगा दी।

जगधर—मैं कुछ-कुछ पहले ही समझ गया था; पर यह तुमने बुरा किया। झोंपड़ी जलाने से क्या मिला? दो-चार दिन में फिर दूसरी झोंपड़ी तैयार हो जायेगी।

भैरो—कुछ हो, दिल की आग तो ठंडी हो गयी! यह देखो!

यह कहकर उसने एक थैली दिखायी, जिसका रंग धुएँ से काला हो गया था। जगधर ने उत्सुक होकर पूछा—इसमें क्या है? अरे! इसमें तो रुपये भरे हुए हैं।

भैरो—यह सुभागी को बहका ले जाने का जरीबाना है।

जगधर—सच बताओ, ये रुपये कहाँ मिले?

भैरो—उसी झोंपड़े में। बड़े जतन से धरन की आड़ में रखे हुए थे। मैंने गिने हैं। पाँच सौ से ऊपर हैं। न जाने कैसे इतने रुपये जमा हो गए!

जगधर—मेरी तो सलाह है कि रुपये उसे लौटा दो। बड़ी मसक्कत की कमाई है। हज़म

न होगी।

जगधर दिल का खोटा आदमी नहीं था; पर इस समय उसने यह सलाह उसे नेकनीयती से नहीं, हसद से दी थी। बेपरवाही से बोला—मुझे अच्छी तरह हज़म हो जायेगी। हाथ में आये हुए रुपये को नहीं लौटा सकता।

जगधर—पुलिस सब खा जायेगी।

भैरो—सूरे पुलिस में न जायेगा। रो-धोकर चुप हो जायेगा।

जगधर—ग़रीब की हाय बड़ी जान-लेवा होती है।

भैरों—वह ग़रीब है! अंधा होने से ही ग़रीब हो गया? जो आदमी दूसरों की औरतों पर डोरे डाले, जिसके पास सैकड़ों रुपये जमा हों, जो दूसरों को रुपये उधार देता हो, वह ग़रीब है? ग़रीब जो कहो, तो हम-तुम हैं। जिसने मेरी आबरू बिगाड़ दी, उसके साथ जो चाहे करूँ, मुझे पाप नहीं लग सकता।

जगधर का मन आज खोंचा लेकर गलियों का चक्कर लगाने में न लगा। छाती पर साँप लोट रहा था—इसे दम-के-दम में इतने रुपये मिल गए, अब मौज उड़ाएगा।

जगधर के मन में ईर्ष्या का अंकुर जमा। वह भैरो के घर से लौटा तो देखा कि सूरदास राख को बटोरकर उसे आटे की भाँति गूँध रहा है। बोला—सूरे, क्या ढूँढ़ते हो?

सूरदास—कुछ नहीं। यहाँ रखा ही क्या था! यही लोटा-तवा देख रहा था।

जगधर—और वह थैली किसकी है, जो भैरो के पास है?

सूरदास चौंका। क्या इसीलिए भैरो आया था? ज़रूर यही बात है। घर में आग लगाने के पहले रुपये निकाल लिए होंगे।

लेकिन अंधे भिखारी के लिए दरिद्रता इतनी लज्जा की बात नहीं है, जितना धन। सूरदास जगधर से अपनी आर्थिक हानि को गुप्त रखना चाहता था। बोला—मेरे पास थैली-वैली कहाँ? होगी किसी की। थैली होती, तो भीख माँगता?

जगधर—मुझसे उड़ते हो? भैरो मुझसे स्वयं कह रहा था कि झोंपड़े में धरन के ऊपर यह थैली मिली। पाँच सौ रुपये से कुछ बेशी हैं।

सूरदास—वह तुमसे हँसी करता होगा। साढ़े पाँच रुपये तो कभी जुड़े ही नहीं, साढ़े पाँच सौ कहाँ से आते!

इतने में सुभागी वहाँ आ पहुँची। रात-भर मंदिर के पिछवाड़े अमरूद के बाग में छिपी बैठी थी। वह जानती थी, आग भैरो ने लगाई है। वह इस समय उसको तस्कीन देने आयी थी। जगधर को वहाँ खड़े देखा, तो झिझकी। भय हुआ, कहीं यह मुझे पकड़ न ले। उसने प्रण कर लिया था कि अब भैरो के घर न जाऊँगी, अलग रहूँगी और मेहनत-मजूरी करके जीवन का निर्वाह करूँगी।

वह पीछे लौटना ही चाहती थी कि जगधर ने पुकारा—सुभागी, कहाँ जाती है? देखी अपने खसम की करतूत, बेचारे सूरदास को कहीं का न रखा।

सुभागी ने समझा, मुझे झाँसा दे रहा है। मेरे पेट की थाह लेने के लिए यह जाल फेंका है।

व्यंग से बोली—उसके गुरु तो तुम्हीं हो, तुम्हीं ने मंत्र दिया होगा।

जगधर—हाँ, यही मेरा काम है, चोरी-डाका न सिखाऊँ, तो रोटियाँ क्योंकर चलें!

सुभागी ने फिर व्यंग किया—रात ताड़ी पीने को नहीं मिली क्या?

जगधर—ताड़ी के बदले क्या अपना ईमान बेच दूँगा? जब तक समझता था, भला आदमी है, साथ बैठता था, हँसता-बोलता था, ताड़ी भी पी लेता था, कुछ ताड़ी के लालच से नहीं जाता था; लेकिन आज से कभी उसके पास बैठते देखा, तो कान पकड़ लेना। सूरदास ने न जाने कितने जतन से पाँच सौ रुपये बटोरे थे। वह सब उड़ा ले गया।

सूरदास—फिर वही रट लगाये जाते हो। कह दिया कि मेरे पास रुपये नहीं थे, मेरे पास पाँच सौ रुपये होते, तो चैन की बंसी न बजाता, दूसरों के सामने हाथ क्यों पसारता?

जगधर—सूरे, अगर तुम भरी गंगा में कहो कि मेरे रुपये नहीं है, तो भी मैं न मानूँगा। मैंने अपनी आँखों से वह थैली देखी है।

सुभागी—तुमने थैली देखी है?

जगधर—हाँ, देखी नहीं तो क्या झूठ बोल रहा हूँ?

सुभागी—सूरदास, सच-सच बता दो, रुपये तुम्हारे हैं!

सूरदास—पागल हो गयी है क्या? इनकी बातों में आ जाती है! भला मेरे पास रुपये कहाँ से आते?

जगधर—इनसे पूछ, रुपये न थे, तो इस घड़ी राख बटोरकर क्या ढूँढ़ रहे थे?

सुभागी ने सूरदास के चेहरे की तरफ़ अन्वेषण की दृष्टि से देखा। उसकी उस बीमार की-सी दशा थी, जो अपने प्रियजनों की तस्कीन के लिए अपनी असह्य वेदना को छिपाने का असफल प्रयत्न कर रहा हो। जगधर के निकट आकर बोली—रुपये ज़रूर थे, इसका चेहरा कहे देता है।

जगधर—मैंने थैली अपनी आँखों से देखी है।

सुभागी—अब चाहे वह मुझे मारे या निकाले, पर रहूँगी उसी के घर। मेरे ही कारण इस पर यह बिपत पड़ी है। मैंने ही उजाड़ा है, मैं ही बसाऊँगी। जब तक इसके रुपये न दिला दूँगी, मुझे चैन न आयेगा।

यह कहकर वह सूरदास से बोली—तो अब रहोगे कहाँ?

सूरदास ने यह बात न सुनी। वह सोच रहा था—रुपये मैंने ही तो कमाए थे, क्या फिर नहीं कमा सकता? यही न होगा, जो काम इस साल होता, वह कुछ दिनों के बाद होगा। धन गया, घर गया, आबरू गयी;ज़मीन बच रही है, यह भी न जाने, जायेगी या बचेगी।

इन दुःखजनक विचारों से मर्माहत-सा होकर वह रोने लगा। सुभागी जगधर के साथ भैरो के घर की ओर चली जा रही थी और यहाँ सूरदास अकेला बैठा हुआ रो रहा था।

सहसा वह चौंक पड़ा। किसी ओर से आवाज़ आयी—तुम खेल में रोते हो!

मिठुआ घीसू के घर से रोता चला आता था, शायद घीसू ने मारा था। इस पर घीसू उसे चिढ़ा रहा था—खेल में रोते हो!

सूरदास कहाँ तो नैराश्य, ग्लानि, चिन्ता और क्षोभ के अपार जल में गोते खा रहा था, कहाँ यह चेतावनी सुनते ही उसे ऐसा मालूम हुआ, किसी ने उसका हाथ पकड़कर किनारे पर खड़ा कर दिया। वाह! मैं तो खेल में रोता हूँ। कितनी बुरी बात है! सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी-पर-बाजी हारते हैं, चोट-पर-चोट खाते हैं पर मैदान में डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते।

सूरदास उठ खड़ा हुआ, और विजय-गर्व की तरंग में राख के ढेर को दोनों हाथों से उड़ाने लगा।

एक क्षण में मिठुआ, घीसू और मुहल्ले के बीसों लड़के आकर इस भस्म-स्तूप के चारों ओर जमा हो गये और मारे प्रश्नों के सूरदास को परेशान कर दिया। उसे राख फेंकते देखकर सबों को खेल हाथ आया। राख की वर्षा होने लगी।

मिठुआ ने पूछा—दादा, अब हम रहेंगे कहाँ?

सूरदास—दूसरा घर बनाएँगे।

मिठुआ—और कोई फिर आग लगा दे?

सूरदास—तो फिर बनाएँगे।

मिठुआ—और कोई हज़ार बार लगा दे?

सूरदास—तो हम हज़ार बार बनायेंगे।

बालकों को संख्याओं से विशेष रुचि होती है। मिठुआ ने फिर पूछा—और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?

सूरदास ने उसी बालोचित सरलता से उत्तर दिया—तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे।

जब वहाँ राख की चुटकी भी न रही, तो सब लड़के किसी दूसरे खेल की तलाश में दौड़े। दिन अच्छी तरह निकल आया था। सूरदास ने भी लकड़ी सँभाली और सड़क की तरफ़ चला।

सूरदास तो सड़क के किनारे राहगीरों की जय मना रहा था, यहाँ मुहल्लेवालों ने उसकी झोंपड़ी बसानी शुरू की। किसी ने फूस दिया, किसी ने बाँस दिये, किसी ने धरन दी, कई आदमी झोंपड़ी बनाने में लग गये। जगधर ही इस संगठन का प्रधान मंत्री था। ईर्ष्या में तम-ही-तम नहीं होता, कुछ सत् भी होता है। संध्या तक झोंपड़ी तैयार हो गयी, पहले से कहीं ज़्यादा बड़ी और पायदार। सबने गुट कर रखा था कि सूरदास को झोंपड़ी बनने की ज़रा भी खबर न हो। जब वह शाम को आये, तो घर देखकर चकित हो जाये, और पूछने लगे, किसने बनाई, तब सब लोग कहें, आप-ही-आप तैयार हो गयी।

12

प्रभु सेवक ताहिरअली के साथ चले, तो पिता पर झल्लाये हुए थे—यह मुझे कोल्हू का बैल बनाना चाहते हैं। आठों पहर तम्बाकू ही के नशे में डूबा पड़ा रहूँ, अधिकारियों की चौखट पर मस्तक रगड़ूँ, हिस्से बेचता फिरूँ, पत्रों में विज्ञापन छपवाऊँ, बस सिगरेट की डिबिया बन जाऊँ। यह मुझसे नहीं हो सकता। अगर मैं अपनी ईश्वरदत्त रचना-शक्ति से काम न लूँ, तो यह मेरी कृतघ्नता होगी। इन मियाँजी को भी ज़रा-सी चोट आ गयी, तो फ़रियाद लेकर पहुँचे। ताहिरअली से सरोष होकर बोले—क्या बात हुई कि सब-के-सब बिगड़ खड़े हुए?

ताहिर—हुज़ूर, बिलकुल बेसबब। मैं तो खुद ही इन सबों से जान बचाता रहता हूँ।

प्रभु सेवक—किसी कार्य के लिए कारण का होना आवश्यक है; पर आज मालूम हुआ कि वह भी दार्शनिक रहस्य है, क्यों?

ताहिर—(बात न समझकर) जी हाँ, और क्या!

प्रभुसेवक—जी हाँ, और क्या के क्या मानी? मैं कहता हूँ, बिना चिनगारी के आग नहीं लग सकती; आप फरमाते हैं, जी हाँ, और क्या। आपने कहाँ तक शिक्षा पायी है?

ताहिर—(कातर स्वर से) हुज़ूर, मिडिल तक तालीम पायी थी, पर बदक़िस्मती से पास न हो सका। बहुत दिनों तक चुंगी में मुंशी रह चुका हूँ।

प्रभु सेवक—तो फिर आपके पांडित्य और विद्वता पर किसे शंका हो सकती है! आपके कथन के आधार पर मुझे मान लेना चाहिए कि आप शांत बैठे हुए पुस्तकावलोकन में मग्न थे, या सम्भवतः ईश्वर-भजन में तन्मय हो रहे थे, और विद्रोहियों का एक सशस्त्र दल पहुँचकर आप पर हमले करने लगा।

ताहिर—हुज़ूर तो खुद ही चल रहे हैं, मैं क्या अर्ज करूँ, तहक़ीक़ात कर लीजिएगा।

प्रभु सेवक—सूर्य को सिद्ध करने के लिए दीपक की ज़रूरत नहीं होती। देहाती लोग प्रायः बड़े शांतिप्रिय होते हैं। जब तक उन्हें भड़काया न जाये, लड़ाई-दंगा नहीं करते। आश्चर्य है कि आपके सिर पर जो कुछ गुज़री, उसके कारण भी नहीं बता सकते।

ताहिर—हुज़ूर, झगड़ा लड़कों से शुरू हुआ। मुहल्ले के कई लड़के मेरे लड़कों को मार रहे थे। मैंने जाकर उन सबों की गोशमाली कर दी। बस, इतनी ज़रा-सी बात पर लोग चढ़

आये।

प्रभु सेवक—धन्य हैं, आपके साथ भगवान् ने उतना अन्याय नहीं किया है, जितना मैं समझता था। आपके लड़कों में और मुहल्ले के लड़कों में मार-पीट हो रही थी। अपने लड़कों के रोने की आवाज़ सुनी और आपका खून उबलने लगा। आपको दुनिया में इतने दिनों तक रहने के बाद यह अनुभव हो जाना चाहिए था कि लड़कों के बीच में बूढ़ों को न पड़ना चाहिए। इसका नतीजा बुरा होता है।

फ़िटन उड़ी जाती थी और उसके साथ ताहिरअली के होश भी उड़े जाते थे—मैं समझता था, इन हज़रत में ज़्यादा इंसानियत होगी; पर देखता हूँ तो यह अपने बाप से भी दो अंगुल ऊँचे हैं। न हारी मानते हैं, न जीती। दौलत ज़्यादा होने से अक्ल भी ज़्यादा हो जाती है।

ये बातें हो रही थीं कि पाँड़ेपुर आ पहुँचा। सूरदास आज बहुत प्रसन्नचित्त नज़र आता था। और दिन सवारियों के निकल जाने के बाद दौड़ता था। आज आगे ही से उनका स्वागत किया, फ़िटन देखते ही दौड़ा। प्रभु सेवक ने फ़िटन रोक दी और कर्कश स्वर में बोले—क्यों सूरदास, माँगते हो भीख, बनते हो साधु और काम करते हो बदमाशों का? मुझसे फ़ौजदारी करने का हौसला हुआ है?

सूरदास—कैसी फ़ौजदारी हुज़ूर? मैं अंधा-अपाहिज आदमी भला क्या फ़ौजदारी करूँगा।

प्रभु सेवक—तुम्हीं ने तो मुहल्लेवालों को साथ लेकर मेरे मुंशीजी पर हमला किया था और गोदाम में आग लगाने को तैयार थे?

सूरदास—सरकार, भगवान से कहता हूँ, मैं नहीं था। आप लोगों का माँगता हूँ, जान-माल का कल्यान मनाता हूँ, मैं क्या फौजदारी करूँगा?

प्रभु सेवक—क्यों मुंशीजी, यही अगुआ था न?

ताहिर—नहीं हुज़ूर, इशारा इसी का था, पर यह वहाँ न था।

प्रभु सेवक—मैं इन चालों को खूब समझता हूँ। तुम जानते होगे, इन धमकियों से लोग डर जायेंगे, मगर एक-एक से चक्की न पिसवायी, तो कहना कि कोई कहता था।

फ़िटन आगे बढ़ी, तो जगधर मिला। खोंचा हथेली पर रखे, एक हाथ से मक्खियाँ उड़ाता चला जाता था। प्रभु सेवक को देखते ही सलाम करके खड़ा हो गया। प्रभु सेवक ने पूछा—तुम भी कल फ़ौजदारी करनेवालों में थे?

जगधर—सरकार, मैं टके का आदमी क्या खाके फौजदारी करूँगा, और बिचारे सूरदास की क्या मजाल है कि सरकार के सामने अकड़ दिखाये। अपनी ही बिपत में पड़ा हुआ है। किसी ने रात को बिचारे की झोंपड़ी में आग लगा दी। हुकुम हो, तो कुछ खिलाऊँ। कचालू खूब चटपटे हैं।

प्रभु सेवक का जी ललचा गया। खोंचा उतारने को कहा और कचालू, दही-बड़े, फुलौड़ियाँ खाने लगे। भूख लगी हुई थी। ये चीज़ें बहुत प्रिय लगीं। कहा—सूरदास ने तो यह बात मुझसे नहीं कही?

जगधर—वह कभी न कहेगा। कोई गला भी काट ले, तो शिकायत न करेगा।

प्रभु सेवक—तब तो वास्तव में कोई महापुरुष है। कुछ पता न चला, किसने झोंपड़े में आग लगाई थी?

जगधर—सब मालूम हो गया, हुज़ूर, पर किया क्या जाये। कितना कहा गया कि थाने में रपट कर दे, मुदा कहता है, कौन किसी को फँसाये! सारी करतूत भैरो ताड़ीवाले की है।

प्रभु सेवक—कैसे मालूम हुआ? किसी ने उसे आग लगाते देखा?

जगधर—हुज़ूर, वह खुद मुझसे कह रहा था। रुपयों की थैली लाकर दिखायी। इससे बढ़कर और क्या सबूत होगा?

सहसा भैरो सिर पर ताड़ी का घड़ा रखे आता हुआ दिखायी दिया। जगधर ने तुरंत खोंचा उठाया, बिना पैसे लिए क़दम बढ़ाता हुआ दूसरी तरफ़ चल दिया। भैरो ने समीप आकर सलाम किया। प्रभु सेवक ने आँखें दिखाकर पूछा—तू ही भैरो ताड़ीवाला है न?

भैरो—(काँपते हुए) हाँ हुज़ूर, मेरा ही नाम भैरो है।

प्रभु सेवक—तू यहाँ लोगों के घरों में आग लगाता फिरता है?

भैरो—हुज़ूर, जवानी की क़सम खाता हूँ, किसी ने हुज़ूर से झूठ कह दिया है।

प्रभु सेवक—तू कल मेरे गोदाम पर फौजदारी करने में शरीक था?

भैरो—हुज़ूर का ताबेदार हूँ, आपसे फ़ौजदारी करूँगा। मुंसीजी से पूछिए, झूठ कहता हूँ या सच। यह जो अंधा है, हुज़ूर, एक ही बदमास है।

प्रभु सेवक—अच्छा! इस अंधे के पास रुपये भी हैं?

भैरो—हुज़ूर, बिना रुपये के इतनी गरमी और कैसे होगी! जब पेट भरता है, तभी तो बहू-बेटियों पर निगाह डालने की सूझती है।

प्रभु सेवक—बेकार क्या बकता है, अंधा आदमी क्या बुरी निगाह डालेगा? मैंने तो सुना है, वह बहुत सीधा-सादा आदमी है।

इतने में भैरो की दूकान आ गयी। ग्राहक उसकी राह देख रहे थे। वह अपनी दूकान में चला गया। तब प्रभु सेवक ने ताहिरअली से कहा—आप कहते हैं, सारा मुहल्ला मिलकर मुझे मारने आया था। मुझे इस पर विश्वास नहीं आता। जहाँ लोगों में इतना बैर-विरोध है, वहाँ इतना एका होना असम्भव है।

बजरंगी का घर मिला। तीसरा पहर हो गया था। वह भैसों की नाँद में पानी डाल रहा था। फ़िटन पर ताहिरअली के साथ प्रभु सेवक को बैठे देखा, तो समझ गया—मियाँजी अपने मालिक को लेकर रोब जमाने आये हैं। जानते हैं, इस तरह मैं दब जाऊँगा। साहब अमीर होंगे, अपने घर के होंगे।

ताहिरअली ने इशारा किया, यही बजरंगी है। प्रभु सेवक ने बनावटी क्रोध धारण करके कहा—क्यों बे, कल के हंगामे में तू भी शरीक था?

बजरंगी—शरीक किसके साथ था? मैं अकेला था।

प्रभु सेवक—तेरे साथ सूरदास और मुहल्ले के और लोग न थे; झूठ बोलता है!

बजरंगी—झूठ नहीं बोलता, किसी का दबैल नहीं हूँ। मेरे साथ न सूरदास था और न मोहल्ले का कोई दूसरा आदमी। मैं अकेला था।

इतने में वहाँ लोगों का जमघट लग गया।

प्रभु सेवक बजरंगी से कह रहे थे—तुम्हारी शामत न आये, नहीं तो साहब तुम्हें तबाह कर देंगे। किसी काम के न रहोगे। तुम्हारी इतनी मजाल!

बजरंगी इसका जवाब देना ही चाहता था कि नायकराम ने आगे बढ़कर कहा—उस पर आप क्यों बिगड़ते हैं, फौजदारी मैंने की है, जो कहना हो, मुझसे कहिए।

प्रभु सेवक ने विस्मित होकर पूछा—तुम्हारा क्या नाम है?

नायकराम को कुछ तो राजा महेन्द्रकुमार के आश्वासन और कुछ अपनी शक्ति के ज्ञान ने उच्छृंखल बना दिया था। लाठी सीधी करता हुआ बोला—लट्ठमार पाँड़े!

इस जवाब में हेकड़ी की जगह हास्य का आधिक्य था। प्रभु सेवक का क्रोध हवा हो गया। हँसकर बोले—तब तो यहाँ ठहरने में कुशल नहीं है, कहीं बिल खोदना चाहिए।

नायकराम अक्खड़ आदमी था। प्रभु सेवक के मनोभाव न समझ सका। भ्रम हुआ—यह मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, मानो कह रहे हैं कि तुम्हारी बकवास से क्या होता है, हम ज़मीन लेंगे और ज़रूर लेंगे। तिनककर बोला—आप हँसते क्या हैं, क्या समझ रखा है कि अंधे की ज़मीन सहज ही में मिल जायेगी? इस धोखे में न रहिएगा।

प्रभु सेवक को अब क्रोध आया। पहले उन्होंने समझा था, नायकराम दिल्लगी कर रहा है। अब मालूम हुआ कि वह सचमुच लड़ने पर तैयार है। बोले—इस धोखे में नहीं हूँ। अब तक भरोसा था कि समझौते से सारी बातें तय हो जायेंगी, इसीलिए आया था। लेकिन तुम्हारी इच्छा कुछ और हो, तो वही सही। अब हम तुम्हें भी अपने हाथ दिखाएँ, तो कोई अन्याय नहीं है।

इन शब्दों में नेकनीयती झलक रही थी। ठाकुरदीन ने कहा—हुज़ूर, पण्डाजी की बातों का खियाल न करें। इनकी आदत ही ऐसी है, जो कुछ मुँह में आया, बक डालते हैं।

नायकराम—आप दूसरों के बल पर कूदते होंगे, यहाँ अपने हाथों के बल का भरोसा करते हैं। आप लोगों के दिल में जो अरमान हों, निकाल डालिए। (धीरे से) एक ही हाथ में सारी किरस्तानी निकल जायेगी।

प्रभु सेवक—क्या कहा, ज़रा ज़ोर से क्यों नहीं कहते?

नायकराम—(कुछ डरकर) कह तो रहा हूँ, जो अरमान हो, निकाल डालिए।

प्रभु सेवक—तुमने गाली दी है।

यह कहते हुए प्रभु सेवक फ़िटन से नीचे उतर पड़े, नेत्रों से ज्वाला-सी निकलने लगी, सारा शरीर थरथराने लगा, एड़ियाँ ऐसी उछल रही थीं मानो किसी उबलती हुई हाँड़ी का ढकना है। उनके हाथ में केवल एक पतली-सी छड़ी थी। फ़िटन से उतरते ही वह झपटकर नायकराम के कल्ले पर पहुँच गये, उसके हाथ से लाठी छीनकर फेंक दी; और ताबड़तोड़ कई बेंत लगाए। नायकराम दोनों हाथों से वार रोकता पीछे हटता जाता था। इन अविरल

प्रहारों से वह चौंधिया-सा गया।

और लोग भी हतबुद्धि-से खड़े रहे; किसी ने बीच-बचाव तक न किया। बजरंगी नायकराम के पसीने की जगह खून बहानेवालों में था। दोनों साथ खेले और एक ही अखाड़े में लड़े थे। ठाकुरदीन और कुछ न कर सकता था, तो प्रभु सेवक के सामने खड़ा हो सकता था; किन्तु दोनों-के-दोनों गुमसुम-से ताकते रहे। दो-ही-तीन ठोकरें पड़ी थीं कि नायकराम जाँघ में चोट खाकर गिर पड़ा। उसके गिरते ही बजरंगी ने दौड़कर प्रभु सेवक को हटा दिया और बोला—बस साहब, बस, अब इसी में कुशल है कि आप चले जाइए, नहीं तो खून हो जायेगा।

प्रभु सेवक—हमको कोई चरकटा समझ लिया है बदमाश, खून पी जाऊँगा, गाली देता है!

बजरंगी—बस, अब बहुत न बढ़िए, यह उसी गाली का फल है कि आप यों खड़े हैं; नहीं तो अब तक न जाने क्या हो गया होता।

प्रभु सेवक क्रोधोन्माद से निकलकर विचार के क्षेत्र में पहुँच चुके थे। आकर फ़िटन पर बैठ गये और घोड़े को चाबुक मारा, घोड़ा हवा हो गया।

बजरंगी ने जाकर नायकराम को उठाया। घुटनों में बहुत चोट आयी थी, खड़ा न हुआ जाता था। मालूम होता था, हड्डी टूट गयी है। बजरंगी का कंधा पकड़कर धीरे-धीरे लँगड़ाते हुए घर चले।

ठाकुरदीन ने कहा—नायकराम, भला या बुरा, भूल तुम्हारी थी। ये लोग गाली नहीं बर्दाश्त कर सकते।

नायकराम—अरे, तो मैंने गाली कब दी थी भाई, मैंने तो यही कहा था कि एक ही हाथ में किरस्तानी निकल जायेगी। बस, इसी पर बिगड़ गया।

जमुनी अपने द्वार पर खड़े-खड़े यह तमाशा देख रही थी। आकर बजरंगी को कोसने लगी—खड़े मुँह ताकते रहे, और वह लौंडा मार-पीटकर चला गया, सारी पहलवानी धरी रह गयी।

बजरंगी—मैं तो जैसे घबरा गया।

जमुनी—चुप भी रहो। लाज नहीं आती। यह तुम लोगों के घमंड की सजा है।

ठाकुरदीन—बहुत सच कहती हो जमुनी, यह कौतुक देखकर यही कहना पड़ता है कि भगवान को हमारे गरूर की सजा देनी थी, नहीं तो क्या ऐसे-ऐसे जोधा कठपुतलियों की भाँति खड़े रहते!

नायकराम—यही बात होगी भाई, मैं अपने घमंड में किसी को कुछ न समझता था।

सहसा भैरो आकर खड़ा हो गया। नायकराम ने ताना दिया—तुम्हें तो खुशी हुई होगी!

भैरो—क्यों भैया?

नायकराम—मुझ पर मार न पड़ी है!

भैरो—क्या मैं तुम्हारा दुसमन हूँ भैया? मैंने तो अभी दूकान पर सुना। होस उड़ गये।

साहब देखने में तो बहुत सीधा-सादा मालूम होता था। मुझसे हँस-हँसकर बातें कीं, यहाँ आकर न जाने कौन भूत उस पर सवार हो गया।

नायकराम—उसका भूत मैं उतार दूँगा, अच्छी तरह उतार दूँगा, ज़रा खड़ा तो होने दो। हाँ, जो कुछ राय हो, उसकी खबर वहाँ न होने पाए, नहीं तो चौकन्ना हो जायेगा।

बजरंगी—यहाँ हमारा ऐसा कौन बैरी बैठा हुआ है?

जगधर—यह न कहो, घर का भेदी लंका दाहे। कौन जाने, कोई आदमी साबासी लूटने के लिए, इनाम लेने के लिए, सुर्खरू बनने के लिए, वहाँ सारी बातें लगा आये!

भैरो—मुझी पर शक कर रहे हो न? तो मैं इतना नीच नहीं हूँ कि घर का भेद दूसरों में खोलता फिरूँ। क्या इतना नहीं जानता कि मरने-जीने में, बिपत-सम्पत में मुहल्ले के लोग ही काम आते हैं? कभी किसी के साथ विश्वासघात किया है?

नायकराम—तुमने अवसर पड़ने पर कभी साथ नहीं छोड़ा, इतना तो मानना पड़ेगा।

भैरो—पण्डाजी, तुम्हारा हुक्म हो, तो आग में कूद पड़ूँ।

इतने में सूरदास भी आ पहुँचा। सोचता आता था—आज कहाँ खाना बनाऊँगा, इसकी क्या चिन्ता है; बस, नीम के पेड़ के नीचे बाटियाँ लगाऊँगा। गरमी के तो दिन हैं, कौन पानी बरस रहा है। ज्यों ही बजरंगी के द्वार पर पहुँचा कि जमुनी ने आज का सारा वृत्तांत कह सुनाया। होश उड़ गये। उपले-ईंधन की सुधि न रही। सीधे नायकराम के यहाँ पहुँचा। बजरंगी ने कहा—आओ सूरे, बड़ी देर लगायी, क्या अभी चले आते हो? आज तो यहाँ बड़ा गोलमाल हो गया।

सूरदास—हाँ, जमुनी ने मुझसे कहा। मैं तो सुनते ही ठक रह गया।

बजरंगी—होनी थी, और क्या। है तो लौंडा, पर हिम्मत का पक्का है। जब तक हम लोग हाँ-हाँ करें, तब तक फ़िटन से कूद ही तो पड़ा और लगा हाथ-पर-हाथ चलाने।

सूरदास—तुम लोगों ने पकड़ भी न लिया?

बजरंगी—सुनते तो हो, जब तक दौड़ें, तब तक तो उसने हाथ चला ही दिया।

सूरदास—बड़े आदमी गाली सुनकर आपे से बाहर हो जाते हैं।

जगधर—जब बीच बाजार में बेभाव पड़ेंगी, तब रोएँगे। अभी तो फूले न समाते होंगे।

सूरदास—अरे, अब जो हो गया, सो हो गया, उसकी आबरू बिगाड़ने से क्या मिलेगा?

नायकराम—तो क्या यों ही छोड़ दूँगा! एक-एक बेंत के बदले अगर सौ-सौ जूते न लगाऊँ तो मेरा नाम नायकराम नहीं। यह चोट मेरे बदन पर नहीं, मेरे कलेजे पर लगी है।

सूरदास—बैर बढ़ाने से कुछ फ़ायदा न होगा। तुम्हारा तो कुछ न बिगड़ेगा, लेकिन मुहल्ले के सब आदमी बँध जायेंगे।

नायकराम—कैसी पागलों की-सी बातें करते हो। बोलो बजरंगी, तुम लोग भी डर रहे हो कि वह किरस्तान सारे मुहल्ले को पीसकर पी जायेगा?

बजरंगी—औरों की तो मैं नहीं कहता, लेकिन मेरा बस चले, तो उसके हाथ-पैर तोड़ दूँ, चाहे जेहल ही क्यों न काटना पड़े। यह तुम्हारी बेइज्जती नहीं है, मुहल्ले भर के मुँह में

कालिख लग गयी है।

भैरो—तुमने मेरे मुँह से बात छीन ली। क्या कहूँ, उस वक़्त मैं न था, नहीं तो हड्डी तोड़ डालता।

जगधर—पण्डाजी, मुँह-देखी नहीं कहता, तुम चाहे दूसरों के कहने-सुनने में आ जाओ, लेकिन मैं बिना उसकी मरम्मत किये न मानूँगा।

इस पर कई आदमियों ने कहा—मुखिया की इज्जत गयी, तो सबकी गयी। वही तो किरस्तान हैं, जो गली-गली ईसा मसीह के गीत गाते फिरते हैं। डोमडा, चमार, जो गिरजा में जाकर खाना खा ले, वही किरस्तान हो जाता है। वही बाद में कोट-पतलून पहनकर साहब बन जाते हैं।

नायकराम—अब बताओ सूरे, तुम्हारी बात मानूँ या इतने आदमियों की? तुम्हें यह डर होगा कि कहीं मेरी ज़मीन पर आँच न आ जाये, तो इससे तुम निश्चिंत रहो। राजा साहब ने जो बात कह दी, उसे पत्थर की लकीर समझो।

सूरदास—जमीन की मुझे चिंता नहीं हैं। मरूँगा, जो सिर पर लाद थोड़े ही ले जाऊँगा। पर अंत में यह सारा पाप मेरे ही सिर पड़ेगा।

जगधर—सूरे, सोचो, हम लोगों की कितनी बेआबरुई है!

सूरदास—आबरू को बनाने-बिगाड़नेवाला आदमी नहीं है, भगवान् है। उन्हीं की निगाह में आबरू बनी रहनी चाहिए। आदमियों की निगाह में आबरू की परख कहाँ है।

बजरंगी—तुमसे कुछ मतलब नहीं, हम लोग जो चाहेंगे, करेंगे।

सूरदास—अगर मेरी बात न मानोगे, तो मैं जाके साहब से सारा माजरा कह सुनाऊँगा।

नायकराम—अगर तुमने उधर पैर रखा, तो याद रखना, वहीं खोदकर गाड़ दूँगा।

सूरदास ने इसका कुछ जवाब न दिया। चुपके से उठा और मंदिर के चबूतरे पर जाकर लेट गया। मिठुआ प्रसाद के इंतज़ार में वहीं बैठा हुआ था। उसे पैसे निकालकर दिये कि सत्तू-गुड़ खा ले। मिठुआ खुश होकर बनिए की दूकान की ओर दौड़ा।

सूरदास के चले जाने के बाद कुछ देर तक लोग सन्नाटे में बैठे रहे। उसके विरोध ने उन्हें संशय में डाल दिया था। यह भी मालूम था कि वह जो कुछ कहता है, उसे पूरा कर दिखाता है। नायकराम ने उस पर लगे हुए कलंक का समर्थन करके उसे परास्त करने का निश्चय किया। बोला—मालूम होता है, उन लोगों ने अंधे को फोड़ लिया है।

भैरो—मुझे भी यही संदेह होता है।

जगधर—सूरदास फूटनेवाला आदमी नहीं है।

बजरंगी—कभी नहीं।

ठाकुरदीन—ऐसा स्वभाव तो नहीं है, पर कौन जाने। मेरे ही घर चोरी हुई, तो क्या बाहर के चोर थे? पड़ोसियों की करतूत थी। पूरे एक हज़ार का माल उठ गया। आदमी का मन छिन-भर में क्या से क्या हो जाता है!

नायकराम—शायद ज़मीन का मामला करने पर राज़ी हो गया हो; पर साहब ने इधर

आँख उठाकर भी देखा, तो बँगले में आग लगा दूँगा। भैरो मेरी मदद करेंगे ही।

भैरो—पण्डाजी, तुम लोग मेरे ऊपर सुभा करते हो, पर मैं जवानी की क़सम खाता हूँ, जो उसके झोंपड़े के पास भी गया होऊँ।

नायकराम—जो आदमी किसी की बहू-बेटी पर बुरी निगाह करे, उसके घर में आग लगाना बुरा नहीं। मुझे पहले तो विश्वास नहीं आता था; पर आज उसके मिजाज का रंग बदला हुआ है।

बजरंगी—पण्डाजी, सूर को तुम आज 30 बरसों से देख रहे हो। ऐसी बात न कहो।

जगधर—सूरे में और चाहे जितनी बुराइयाँ हों, यह बुराई नहीं है।

भैरो—मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हमने हक-नाहक उस पर कलंक लगाया। सुभागी आज सबेरे आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ी और तब से घर से बाहर नहीं निकली। सारे दिन अम्माँ की सेवा-टहल करती रही।

यहाँ तो ये बातें होती रहीं कि प्रभु सेवक का सत्कार क्योंकर किया जायेगा। उसी के कार्यक्रम का निश्चय होता रहा। उधर प्रभु सेवक को खेद यह था कि मैंने यह नौबत आने ही क्यों दी। मुझे उनसे मैत्री करनी चाहिए थी। उन लोगों को ताहिरअली के गले मिलाना चाहिए था; पर यह समय-सेवा किससे सीखूँ? उँह! ये चालें वह चले, जिसे फैलने की अभिलाषा हो, यहाँ तो सिमटकर रहना चाहते हैं। पापा बिगड़ेंगे, मैं शांत भाव से उनका क्रोध सह लूँगा। अगर वह मुझसे निराश होकर यह कारखाना खोलने का विचार त्याग दें, तो मैं मुँह-माँगी मुराद पा जाऊँ।

किन्तु प्रभु सेवक को कितना आश्चर्य हुआ, जब सारा वृत्तांत सुनकर भी जॉन सेवक के मुख पर क्रोध का कोई लक्षण न दिखायी दिया; यह मौन व्यंग्य और तिरस्कार से कहीं ज़्यादा दुस्सह था। प्रभु सेवक चाहते थे कि पापा मेरी खूब तम्बीह करें, जिसमें मुझे अपनी सफाई देने का अवसर मिले, मैं सिद्ध कर दूँ कि इस दुर्घटना का ज़िम्मेदार मैं नहीं हूँ। उन्होंने दो-एक बार पिता के क्रोध को उकसाने की चेष्टा की; किन्तु जॉन सेवक ने केवल एक बार उन्हें तीव्र दृष्टि से देखा, और उठकर चले गये।

मिस्टर जॉन सेवक छलके हुए दूध पर आँसू न बहाते थे। प्रभु सेवक के कार्य की तीव्र आलोचना करना व्यर्थ था। वह जानते थे कि इसमें आत्मसम्मान कूट-कूटकर भरा हुआ है। उन्होंने स्वयं इस भाव का पोषण किया था। सोचने लगे—इस गुत्थी को कैसे सुलझाऊँ? नायकराम मुहल्ले का मुखिया है। सारा मुहल्ला इसके इशारों का गुलाम है। सूरदास तो केवल स्वर भरने के लिए है। और, नायकराम मुखिया ही नहीं, शहर का मशहूर गुंडा भी है। बड़ी कुशल हुई कि प्रभु सेवक वहाँ से जीता-जागता लौट आया। राजा साहब बड़ी मुश्किलों से सीधे हुए थे! नायकराम उनके पास ज़रूर फरियाद करेगा, अबकी हमारी ज्यादती साबित होगी। सारी रात जॉन सेवक इसी उधेड़बुन में पड़े रहे। एकाएक उन्हें एक बात सूझी। चेहरे पर मुस्कराहट की झलक दिखायी दी। सम्भव है, यह चाल सीधी पड़ जाये, तो फिर बिगड़ा हुआ काम सँवर जाये। सुबह को हाजिरी खाने के बाद फ़िटन तैयार कराई और पाँड़ेपुर चल दिये।

नायकराम ने पैरों में पट्टियाँ बाँध ली थीं, शरीर में हल्दी की मालिश कराए हुए थे, एक डोली मँगवा रखी थी और राजा महेन्द्रकुमार के पास जाने को तैयार थे। अभी मुहूर्त में दो-चार पल की कसर थी। बजरंगी और जगधर साथ जानेवाले थे। सहसा फ़िटन पहुँची, तो लोग चकित हो गये। एक क्षण में सारा मुहल्ला आकर जमा हो गया, आज क्या होगा?

जॉन सेवक नायकराम के पास जाकर बोले—आप ही का नाम नायकराम पाँड़े है न? मैं आपसे कल की बातों के लिए क्षमा माँगने आया हूँ। लड़के ने ज्यों ही मुझसे यह समाचार कहा, मैंने उसको खूब डाँटा, और रात ज़्यादा न हो गयी होती, तो मैं उसी वक़्त आपके पास आया होता। लड़का कुमार्गी और मूर्ख है। किसी बात पर ध्यान ही नहीं देता।

नायकराम—बोलो भाई बजरंगी, साहब की बातों का जवाब दो, मुझसे तो बोला नहीं जाता, रात कराह-कराहकर काटी है। साहब कहते हैं, माफ कर दो। मैं तो यह सब व्यवहार नहीं जानता। यहाँ तो ईंट का जवाब पत्थर से देना सीखा है।

बजरंगी—साहब लोगों का यही दस्तूर है। पहले तो मारते हैं, और जब देखते हैं कि अब हमारे ऊपर भी मार पड़ा चाहती है, तो चट कहते हैं, माफ कर दो; यह नहीं सोचते कि जिसने मार खायी है, उसे बिन मारे कैसे तस्कीन होगी।

जॉन सेवक—तुम्हारा यह कहना ठीक है, लेकिन यह समझ लो कि क्षमा बदले के भय से नहीं माँगी जाती। क्षमा आदमी उसी वक़्त माँगता है, जब उसे अपने अन्याय और बुराई का विश्वास हो जाता है, और जब उसकी आत्मा उसे लज्जित करने लगती है। प्रभु सेवक से तुम माफी माँगने को कहो, तो कभी न राज़ी होगा। मैं जो क्षमा माँग रहा हूँ, वह इसलिए कि मुझे यहाँ सरासर उसकी ज़्यादती मालूम होती है। मैं उसके दुर्व्यवहार पर लज्जित हूँ, और मुझे इसका दु:ख है कि मैंने उसे यहाँ क्यों आने दिया। सच पूछिए, तो अब मुझे यही पछतावा हो रहा है कि मैंने इस ज़मीन को लेने की बात ही क्यों उठाई। अगर तुम लोग खुशी से दोगे तो लूँगा, नहीं तो छोड़ दूँगा।

उद्दंडता सरलता का केवल उग्र रूप है। साहब के मधुर वाक्यों ने नायकराम का क्रोध शांत कर दिया। कोई दूसरा आदमी इतनी ही आसानी से उसे साहब की गरदन पर तलवार चलाने के लिए उत्तेजित कर सकता था; सम्भव था, प्रभु सेवक को देखकर उसके सिर पर खून सवार हो जाता; पर इस समय साहब की बातों ने उसे मंत्रमुग्ध-सा कर दिया। बोला—कहो बजरंगी, क्या कहते हो?

बजरंगी—कहना क्या है, जो अपने सामने मस्तक नवाते, उसके सामने मस्तक नवाना ही पड़ता है।

जगधर—हाँ, झगड़े का मिट जाना अच्छा है। बैर-विरोध से किसी का भला नहीं होता।

भैरो—छोटे साहब को चाहिए कि आकर पण्डाजी से खता माफ करावें। अब वह कोई बालक नहीं हैं कि आप उनकी ओर से सिपारिस करें। उन्हें खुद आकर पण्डाजी से कहना-सुनना चाहिए।

नायकराम—हाँ, यह बात पक्की है। जब तक वह थूककर न चाटेंगे, मेरे दिल से मलाल न निकलेगा।

जॉन सेवक—प्रभु सेवक अगर बुद्धू न होता, तो इतने आदमियों के बीच में और पण्डाजी-जैसे पहलवान पर हाथ न उठाता। उसे तुम कितना ही दबाओ, पर मुआफ़ी न माँगेगा। रही ज़मीन की बात, अगर तुम लोगों की मरजी है कि मैं इस मुआमले को दबा रहने दूँ, तो यही सही। बतलाइए पण्डाजी, आपको क्या शंका है?

नायकराम—भैरो, इसका जवाब दो। अब तो साहब ने तुमको कायल कर दिया!

भैरो—कायल क्या कर दिया, साहब यही कहते हैं न कि छोटे साहब को अक्कल नहीं है; तो वह कुएँ में क्यों नहीं कूद पड़ते, अपने दाँतों से अपना हाथ क्यों नहीं काट लेते? ऐसे आदमियों को कोई कैसे पागल समझ ले?

जॉन सेवक—जो आदमी न समझे कि किस मौके पर कौन काम करना चाहिए, किस मौके पर कौन बात करनी चाहिए, वह पागल नहीं तो और क्या है?

नायकराम—साहब, उन्हें मैं पागल तो किसी तरह न मानूँगा। हाँ आपका मुँह देखके उनसे बैर न बढ़ाऊँगा। आपकी नम्रता ने मेरा सिर झुका दिया है। ज़िन्दगी में पहली बार मेरा इतना अपमान हुआ और पहली बार मैंने क्षमा करना भी सीखा। यह आपकी बुद्धि की बरकत है। अब साहब की दूसरी बात का जवाब दो बजरंगी।

बजरंगी—उसमें अब काहे का सवाल-जवाब। साहब ने तो कह दिया कि मैं उसका नाम न लूँगा। बस, झगड़ा मिट गया।

जॉन सेवक—लेकिन अगर उस ज़मीन के मेरे हाथ में आने से तुम्हारा सोलहों आने फ़ायदा हो, तो भी तुम हमें न लेने दोगे?

बजरंगी—हमारा फ़ायदा क्या होगा, हम तो मिट्टी में मिल जायेंगे।

जॉन सेवक—मैं दिखा दूँगा कि यह तुम्हारा भ्रम है। बतलाओ, तुम्हें क्या एतराज है?

बजरंगी—पण्डाजी के हज़ारों जात्री आते हैं, वे इसी मैदान में ठहरते हैं। वहीं खाना बनाते हैं, वहीं सोते भी हैं। सहर के धरमसालों में देहात के लोगों को आराम कहाँ? यह ज़मीन न रहे, तो कोई जात्री यहाँ झाँकने भी न आये।

जॉन सेवक—जात्रियों के लिए, सड़क के किनारे, खपरैल के मकान बनवा दिये जायें, तो कैसा?

बजरंगी—इतने मकान कौन बनवायेगा?

जॉन सेवक—इसका मेरा जिम्मा। मैं वचन देता हूँ कि यहाँ धर्मशाला बनवा दूँगा।

बजरंगी—मेरी और मुहल्ले के आदमियों की गायें-भैंसे कहाँ चरेंगी?

जॉन सेवक—अहाते में घास चराने का तुम्हें अख्तियार रहेगा। अभी तुम्हें सारा दूध लेकर शहर जाना पड़ता है। हलवाई तुमसे दूध लेकर मलाई, मक्खन, दही बनाता है, और तुमसे कहीं ज़्यादा सुखी है। जब यहाँ कारखाना खुल जायेगा, तो हज़ारों आदमियों की बस्ती हो जायेगी, तुम दूध की मलाई बेचोगे, दूध अलग बिकेगा। इस तरह तुम्हें दोहरा नफ़ा होगा। उपले घर बैठे बिक जायेंगे। तुम्हें तो कारखाना खुलने से नफ़ा-ही-नफ़ा है।

नायकराम—आता है समझ में न बजरंगी?

बजरंगी—समझ में क्यों नहीं आता, लेकिन एक मैं दूध की मलाई बना लूँगा, और लोग भी तो हैं, जो खाने के लिए जानवर पाले हुए हैं। उन्हें तो मुसकिल पड़ेगी।

ठाकुरदीन—मेरी एक गाय है। साँझ सबेरे दूध दुहकर छोड़ देता हूँ। धेले का भी चारा नहीं लेना पड़ता। तब तो आठ आने रोज का भूसा भी पूरा न पड़ेगा।

जॉन सेवक—तुम्हारी पान की दूकान है न? अभी तुम दस-बारह आने कमाते होगे। तब तुम्हारी बिक्री चौगुनी हो जायेगी। इधर की कमी उधर पूरी हो जायेगी। मज़दूरों को पैसे की पकड़ नहीं होती; काम से ज़रा फुरसत मिली कि कोई पान पर गिरा; कोई सिगरेट पर। खोंचेवाले की खासी बिक्री होगी, और शराब-ताड़ी का पूछना ही क्या, चाहो तो पानी को शराब बनाकर बेचो। तुम्हारे लड़के अभी शहर पढ़ने जाते हैं, तब यहीं मदरसा खुल जायेगा।

जगधर—क्या यहाँ मदरसा भी खुलेगा?

जॉन सेवक—हाँ, कारखाने के आदमियों के लड़के आखिर पढ़ने कहाँ जायेंगे?

जगधर—फीस कुछ कम ली जायेगी?

जॉन सेवक—फीस बिलकुल ही न ली जायेगी, कम-ज़्यादा कैसी!

जगधर—तब तो बड़ा आराम हो जायेगा।

नायकराम—जिसका माल है, उसे क्या मिलेगा?

जॉन सेवक—जो तुम लोग तय कर दो। मैं तुम्हीं को पंच मानता हूँ। बस, उसे राज़ी करना तुम्हारा काम है।

नायकराम—वह राज़ी ही है। आपने बात-की-बात में सबको राज़ी कर लिया, नहीं तो यहाँ लोग मन में न जाने क्या-क्या समझे बैठे थे। सच है, विद्या बड़ी चीज़ है।

भैरो—वहाँ ताड़ी की दूकान के लिए कुछ देना तो न पड़ेगा?

नायकराम—कोई और खड़ा हो गया, तो चढ़ा-ऊपरी होगी ही।

जॉन सेवक—नहीं, तुम्हारा हक़ सबसे बढ़कर समझा जायेगा।

नायकराम—तो फिर तुम्हारी चाँदी है भैरो!

जॉन सेवक—तो अब मैं चलूँ पण्डाजी, अब आपके दिल में मलाल तो नहीं है?

नायकराम—अब कुछ कहलाइए न, आपका-सा भलामानुस आदमी कम देखा।

जॉन सेवक चले गये तो बजरंगी ने कहा—कहीं सूरे राज़ी न हुए, तो?

नायकराम—हम राज़ी करेंगे! चार हज़ार रुपये दिलाने चाहिए। अब इसी समझौते में कुशल है।

जॉन सेवक घर पहुँचे तो डिनर तैयार था। प्रभु सेवक ने पूछा—आप कहाँ गये थे? जॉन सेवक ने रूमाल से मुँह पोंछते हुए कहा—पांडेपुर, जिस समय मैं पहुँचा हूँ, सारे आदमी नायकराम के द्वार पर जमा थे। वह डोली में बैठकर शायद राजा महेंद्रसिंह के पास जाने को तैयार था। मुझे सबों ने यों देखा जैसे फाड़ खायेंगे। लेकिन मैंने कुछ इस तरह धैर्य और विनय से काम लिया, उन्हें दलीलों और चिकनी-चुपड़ी बातों में ऐसा ढर्रे पर लाया कि जब चला, तो सब मेरा गुणानुवाद कर रहे थे। ज़मीन का मुआमला भी तय हो गया। उसके मिलने में अब

कोई बाधा नहीं है।

प्रभु सेवक—पहले तो सब उस ज़मीन के लिए मरने-मारने पर तैयार थे।

जॉन सेवक—और कुछ कसर थी, तो वह तुमने जाकर पूरी कर दी। लेकिन याद रखो, ऐसे विषयों में सदैव धार्मिक अवसर पर निगाह रखनी चाहिए। यही सफलता का मूल-मंत्र है। शिकारी जानता है, किस वक़्त हिरन पर निशाना मारना चाहिए। एक महीना नहीं, एक दिन पहले, मेरी बातों का इन आदमियों पर ज़रा भी असर न होता। कल तुम्हारी उद्दंडता ने वह अवसर प्रस्तुत कर दिया। मैं क्षमाप्रार्थी बनकर उनके सामने गया। मुझे झुककर, दीनता से, नम्रता से अपनी समस्या को उनके सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिला। यदि उनकी ज़्यादती होती, तो मेरी ओर से भी कड़ाई की जाती। ज़्यादती हमारी ओर से हुई, बस यही मेरी जीत थी।

ईश्वर सेवक बोले—ईश्वर, इस पापी को अपनी शरण में ले। बर्फ़ आजकल बहुत महँगी हो गयी है, फिर समझ में नहीं आता, क्यों इतनी निर्दयता से खर्च की जाती है। सुराही का पानी काफ़ी ठण्डा होता है।

जॉन सेवक—पापा, क्षमा कीजिए, बिना बर्फ़ के प्यास ही नहीं बुझती।

ईश्वर सेवक—खुदा ने चाहा बेटा, तो उस ज़मीन का मुआमला तय हो जायेगा।

मिसेज़ सेवक—मुझे इन हिन्दुस्तानियों पर विश्वास नहीं आता। दग़ाबाज़ी कोई इनसे सीख ले। अभी सब-के-सब हाँ-हाँ कह रहे हैं, मौका पड़ने पर सब निकल जायेंगे। महेंद्रसिंह ने नहीं धोखा दिया? यह जाति ही हमारी दुश्मन है।

प्रभु सेवक—मामा, यह आपका अन्याय है? पहले हिन्दुस्तानियों को ईसाइयों से कितना ही द्वेष रहा हो, किन्तु अब हालात बदल गये हैं। हम खुद अँगरेज़ों की सहायता से उन्हें दबाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु हमारा उद्धार देशवासियों से भ्रातृभाव रखने में है, उन पर रोब जमाने में नहीं। आखिर हम भी तो इसी जननी की संतान हैं।

जॉन सेवक—प्रभु सेवक, तुमने बड़ा गहन विषय छेड़ दिया। मेरे विचार में हमारा कल्याण अँगरेज़ों के साथ मेल-जोल करने में है। हम अँगरेज़ों से मैत्री करके उन पर अपनी राजभक्ति का सिक्का जमा सकते हैं, और मनमाने स्वत्व प्राप्त कर सकते हैं। हिन्दुस्तानियों में मिलकर हम गुम हो जायेंगे, खो जायेंगे। उनसे पृथक् रहकर विशेष अधिकार और विशेष सम्मान प्राप्त कर सकते हैं।

ये ही बातें हो रही थीं कि एक चपरासी ने आकर एक खत दिया। यह जिलाधीश मिस्टर क्लार्क का खत था। उनके यहाँ विलायत से कई मेहमान आये हुए थे। क्लार्क ने उनके सम्मान में एक डिनर दिया था, और मिसेज़ सेवक तथा मिस सोफ़िया सेवक को उसमें सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया था। साथ ही मिसेज़ सेवक से विशेष अनुरोध भी किया था कि सोफ़िया को एक सप्ताह के लिए अवश्य बुला लीजिए।

चपरासी के जाने के बाद मिसेज़ सेवक ने कहा—सोफ़ी के लिए यह स्वर्ण-संयोग है।

जॉन सेवक—हाँ, है तो; पर वह आयेगी कैसे?

मिसेज़ सेवक—उसके पास यह पत्र भेज दूँ?

जॉन सेवक—सोफ़ी इसे खोलकर देखेगी भी नहीं। उसे जाकर लिवा क्यों नहीं लातीं?

मिसेज़ सेवक—वह तो आती ही नहीं।

जॉन सेवक—तुमने कभी बुलाया ही नहीं, आती क्योंकर?

मिसेज़ सेवक—वह आने के लिए कैसी शर्त लगाती है!

जॉन सेवक—अगर उसकी भलाई चाहती हो, तो अपनी शर्तों को तोड़ दो।

मिसेज़ सेवक—वह गिरजा न जाये, तो भी ज़बान न खोलूँ?

जॉन सेवक—हज़ारों ईसाई गिरजा नहीं जाते, और अँगरेज़ तो बहुत कम आते हैं।

मिसेज़ सेवक—प्रभु मसीह की निंदा करे, तो भी चुप रहूँ?

जॉन सेवक—वह मसीह की निंदा नहीं करती, और न कर सकती है। जिसे ईश्वर ने ज़रा भी बुद्धि दी है, वह प्रभु मसीह का सच्चे दिल से सम्मान करेगा। हिंदू तक ईसू का नाम आदर के साथ लेते हैं।

ईश्वर सेवक—या खुदा, इस खानदान पर अपना साया फैला। बेटा, मसीह का दास कभी सन्मार्ग से नहीं फिर सकता। उस पर प्रभु मसीह की दयादृष्टि रहती है।

जॉन सेवक—(स्त्री से) तुम कल सुबह चली जाओ, रानी से भेंट भी हो जायेगी और सोफ़ी को भी लेती आओगी।

मिसेज़ सेवक—अब जाना ही पड़ेगा। जी तो नहीं चाहता; पर जाऊँगी।

***

सूरदास संध्या समय घर आया, और सब समाचार सुने, तो नायकराम से बोला—तुमने मेरी ज़मीन साहब को दे दी?

नायकराम—मैंने क्यों दी? मुझसे वास्ता?

सूरदास—मैं तो तुम्हीं को सब कुछ समझता था और तुम्हारे ही बल पर कूदता था, पर आज तुमने भी साथ छोड़ दिया। मेरी भूल थी कि तुम्हारे बल पर फूला हुआ था। यह उसी की सजा है। अब न्याय के बल पर लड़ूँगा, भगवान ही का भरोसा करूँगा।

नायकराम—बजरंगी, ज़रा भैरो को बुला लो, इन्हें सब बातें समझा दें। मैं इनसे कहाँ तक मगज लगाऊँ।

बजरंगी—भैरो को क्यों बुला लूँ, क्या मैं इतना भी नहीं कर सकता। भैरो को इतना सिर चढ़ा दिया, इसी से तो उसे घमंड हो गया है।

यह कहकर बजरंगी ने जॉन सेवक की सारी आयोजनाएँ बढ़ा-घटाकर बयान कर दीं और बोला, बताओ, जब कारखाने से सबका फ़ायदा है, तो हम साहब से क्यों लड़ें?

सूरदास—तुम्हें विश्वास हो गया कि सबका फ़ायदा होगा?

बजरंगी—हाँ, हो गया। मानने-लायक बात होती है, तो मानी ही जाती है।

सूरदास—कल तो तुम लोग ज़मीन के पीछे जान देने पर तैयार थे, मुझ पर संदेह कर रहे थे कि मैंने साहब से मेल कर लिया, आज साहब के एक ही चकमे में पानी हो गये?

बजरंगी—अब तक किसी ने ये सब बातें इतनी सफाई से न समझाई थीं। कारखाने से सारे मुहल्ले का, सारे शहर का फ़ायदा है। तो अब हमें तो झगड़ा नहीं है। तुमको भी हम यही सलाह देते हैं कि अच्छे दाम मिल रहे हैं, ज़मीन दे डालो। यों न दोगे, तो जाबते से ले ली जायेगी। इससे क्या फ़ायदा?

सूरदास—अधर्म और अविचार कितना बढ़ जायेगा, यह भी मालूम है?

बजरंगी—धन से तो अधर्म होता ही है, पर धन को कोई छोड़ नहीं देता।

सूरदास—तो अब तुम लोग मेरा साथ न दोगे? मत दो। जिधर न्याय है, उधर किसी की मदद की ज़रूरत भी नहीं है। मेरी चीज़ है, बाप-दादों की कमाई है, किसी दूसरे का उस पर कोई अख्तियार नहीं है। अगर ज़मीन गयी, तो उसके साथ मेरी जान भी जायेगी। यह कहकर सूरदास उठ खड़ा हुआ और अपने झोंपड़े के द्वार पर आकर नीम के नीचे लेट रहा।

13

विनयसिंह के जाने के बाद सोफ़िया को ऐसा प्रतीत होने लगा कि रानी जाह्नवी मुझसे खिंची हुई हैं। वह अब उसे पुस्तकें तथा पत्र पढ़ने या चिट्ठियाँ लिखने के लिए बहुत कम बुलातीं; उसके आचार-व्यवहार को संदिग्ध दृष्टि से देखतीं। यद्यपि अपनी बदगुमानी को वह यथासाध्य प्रकट न होने देतीं, पर सोफ़ी को ऐसा खयाल होता कि मुझ पर अविश्वास किया जा रहा है। वह बदगुमानी उस वक़्त और असह्य हो जाती, जब डाकिये के आने पर रानीजी स्वयं उसके हाथ से पत्र आदि लेतीं और बड़े ध्यान से देखतीं कि सोफ़िया का कोई पत्र तो नहीं है। कई बार सोफ़िया को अपने पत्रों के लिफाफे फटे हुए मिले। वह इस कूटनीति का रहस्य खूब समझती थी।

किन्तु आश्चर्य यह था कि सोफ़िया में अब वह आत्माभिमान न था। वह अब अत्यंत सहनशील हो गयी थी। रानीजी से द्वेष करने के बदले वह उनकी संशय-निवृत्ति के लिए अवसर खोजा करती थी। उसे रानीजी का बर्ताव सर्वथा न्यायसंगत मालूम होता था। वह सोचती—इनकी परम अभिलाषा है कि विनय का जीवन आदर्श हो और मैं उनके आत्मसंयम में बाधक न बनूँ। मैं इन्हें कैसे समझाऊँ कि आपकी अभिलाषा को मेरे हाथों ज़रा-सा भी झोंका न लगेगा।

सोफ़िया विनय को तो भूल जाना चाहती थी; पर इसके साथ ही शंकित रहती थी कि कहीं वह मुझे भूल न जायें। जब कई दिनों तक उनका कोई समाचार नहीं मिला, तो उसने समझा—मुझे भूल गये। मुझे उनका पता मालूम होता, तो कदाचित् रोज़ एक पत्र लिखती, दिन में कई-कई पत्र भेजती; पर उन्हें एक पत्र लिखने का भी अवकाश नहीं! अच्छा ही है।

एक दिन इन भावनाओं ने उसे इतना व्याकुल किया कि वह रानी के कमरे में जाकर विनय के पत्रों को पढ़ने लगी और एक क्षण में जितने पत्र मिले, सब पढ़ डाले। देखूँ, मेरी ओर कोई संकेत है या नहीं; कोई वाक्य ऐसा है, जिसमें से प्रेम की सुगंध आये? किन्तु ऐसा शब्द एक भी न मिला, जिससे वह कोई गुप्त आशय निकाल सकती। हाँ, उस पहाड़ी देश में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, उनका विस्तार से उल्लेख किया गया था। वह इतनी विपत्ति झेल रहे हैं, और मैं यहाँ आराम से पड़ी हूँ! वह इसी उद्वेग में अपने कमरे में आयी और विनय को एक लम्बा पत्र लिखा। पत्र समाप्त करके वह उसी वक़्त पास ही के

लेटरबक्स में डाल आयी।

पत्र डाल आने के बाद जब उसका उद्वेग शान्त हुआ तो, उसे विचार आया कि मेरा रानीजी के कमरे में छिपकर जाना और पत्रों को पढ़ना किसी तरह उचित न था। वह सारे दिन इसी चिन्ता में पड़ी रही। बार-बार अपने को धिक्कारती। ईश्वर! मैं कितनी अभागिनी हूँ! मैंने अपना जीवन सच्चे धर्म की जिज्ञासा पर अर्पण कर दिया था, बरसों से सत्य की मीमांसा में रत हूँ; पर वासना की पहली ही ठोकर में नीचे गिर पड़ी। मैं क्यों इतनी दुर्बल हो गयी हूँ? आद् वह पत्र, जो मैं अभी छोड़ आयी हूँ, वापस मिल जाता, तो मैं फाड़ डालती।

वह इसी चिंता और ग्लानि में बैठी हुई थी कि रानीजी कमरे में आयीं। सोफ़िया उठ खड़ी हुई और अपनी आँखें छिपाने के लिए ज़मीन की ओर ताकने लगी। किन्तु आँसू पी जाना आसान नहीं है। रानी ने कठोर स्वर में पूछा—सोफ़ी, क्यों रोती है?

जब हम अपनी भूल पर लज्जित होते हैं, तो यथार्थ बात आप-ही-आप हमारे मुँह से निकल पड़ती है। सोफ़ी हिचकती हुई बोली—जी, कुछ नहीं...मुझसे एक अपराध हो गया है, आपसे क्षमा माँगती हूँ।

रानी ने और भी तीव्र स्वर में पूछा—क्या बात है?

सोफ़ी—आज जब आप सैर करने गयी थीं, तो मैं आपके कमरे में चली गयी थी। पर मैंने आपकी कोई चीज़ नहीं छुई।

रानी—मैं तुम्हें इतना नीच नहीं समझती।

सोफ़ी—एक पत्र देखना था।

रानी—विनयसिंह का?

सोफ़िया ने सिर झुका लिया। वह अपनी दृष्टि में स्वयं इतनी पतित हो गयी थी कि जी चाहता था, ज़मीन फट जाती और मैं उसमें समा जाती। रानी ने तिरस्कार के भाव से कहा—सोफ़ी, तुम मुझे कृतघ्न समझोगी, मगर मैंने तुम्हें अपने घर में रखकर बड़ी भूल की। इससे बहुत अच्छा होता कि विनय उसी दिन आग में जल गया होता। तब मुझे इतना दुःख न होता। तुम जानती हो, मैंने क्यों विनय को इतनी जल्द यहाँ से भगा दिया? तुम्हारे कारण, तुम्हारे प्रेमाघातों से बचाने के लिए। आखिर तुम उससे क्या चाहती हो? तुम्हें मालूम है, तुमसे उसका विवाह नहीं हो सकता। अगर मैं हैसियत और कुल-मर्यादा का विचार न करूँ, तो भी तुम्हारे और हमारे बीच में धर्म की दीवार खड़ी है। इस प्रेम का फल इसके सिवा और क्या होगा कि तुम अपने साथ उसे भी ले डूबोगी और मेरी चिर संचित अभिलाषाओं को मिट्टी में मिला दोगी? मैं अपने बेटे को सच्चा राजपूत बनाना चाहती हूँ। आज वह किसी की रक्षा के निमित्त अपने प्राण दे दे, तो मुझसे अधिक भाग्यवती माता संसार में न होगी। मैं तुमसे सत्य कहती हूँ सोफ़ी, अगर तुम्हारे उपकार के बोझ से दबी न होती, तो तुम्हें इस दशा में विष देकर मार्ग से हटा देना अपना कर्त्तव्य समझती। मैं राजपूतनी हूँ, मरना भी जानती हूँ और मारना भी जानती हूँ। तुम्हें ईश्वर ने बुद्धि दी है, विवेक दिया है। विवेक से काम लो। मेरे कुल का सर्वनाश न करो।

सोफ़ी ने रोते हुए कहा—मुझे आज्ञा दीजिए, आज चली जाऊँ।

रानी कुछ नर्म होकर बोलीं—मैं तुम्हें जाने को नहीं कहती। तुम मेरे सिर और आँखों पर रहो, (लज्जित होकर) मेरे मुँह से इस समय जो कटु शब्द निकले हैं, उनके लिए क्षमा करो। विनय अब शायद फिर न आयेगा। अब उसकी जीवन-रक्षा का केवल एक ही उपाय है। जानती हो, वह क्या है?

सोफ़ी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

रानी—जानना चाहती हो?

सोफ़ी ने सिर हिलाकर कहा—हाँ।

रानी—आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो?

सोफ़ी ने फिर सिर हिलाकर कहा—हाँ।

रानी—तो तुम किसी सुयोग्य पुरुष से विवाह कर लो। विनय को दिखा दो कि तुम उसे भूल गईं, तुम्हें उसकी चिन्ता नहीं है। हो सकता है कि यह नैराश्य उसे जीवन से विरक्त कर दे, वह ज्ञान-लाभ का आश्रय ले, जो नैराश्य का एकमात्र शरणस्थल है, पर सम्भावना होने पर भी इस उपाय के सिवा दूसरा अवलम्ब नहीं है। स्वीकार करती हो?

सोफ़ी रानी के पैरों पर गिर पड़ी और बोली—उनके हित के लिए...कर सकती हूँ।

रानी ने सोफ़ी को उठाकर गले लगा लिया और बोलीं—मैं जानती हूँ, तुम उसके लिए सब कुछ कर सकती हो। ईश्वर तुम्हें इस प्रतिज्ञा को पूरा करने का बल प्रदान करें।

यह कहकर जाह्नवी वहाँ से चली गईं। सोफ़ी एक कोच पर बैठ गयी और दोनों हाथों से मुँह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसका रोम-रोम ग्लानि से पीड़ित हो रहा था। उसे जाह्नवी पर क्रोध न था। उसे उन पर असीम श्रद्धा हो रही थी। कितना उच्च और पवित्र उद्देश्य है! लेकिन रानी का अंतिम आदेश उसके लिए सबसे कड़वा ग्रास था। वह योगिनी बन सकती थी; पर प्रेम को कलंकित करने की कल्पना ही से घृणा होती थी।

शाम हो गयी थी। सोफ़िया मन-मारे उदास बैठी बाग की तरफ़ टकटकी लगाए ताक रही थी, सहसा प्रभु सेवक ने कमरे में प्रवेश किया।

सोफ़िया ने प्रभु सेवक से कोई बात नहीं की। चुपचाप अपनी जगह मूर्तिवत् बैठी रही। वह उस दशा को पहुँच गयी थी, जब सहानुभूति से भी अरुचि हो जाती है।

लेकिन प्रभु सेवक अपनी नई रचना सुनाने के लिए इतने उत्सुक हो रहे थे कि सोफ़ी के चेहरे की ओर उनका ध्यान ही न गया। आते-ही-आते बोले—सोफ़ी, देखो, मैंने आज रात को यह कविता लिखी है। ज़रा ध्यान देकर सुनना। मैंने अभी कुँवर साहब को सुनाई है। उन्हें बहुत आनंद आया।

यह कहकर प्रभु सेवक ने मधुर स्वर में अपनी कविता सुनानी शुरू की। कवि ने मृत्युलोक के एक दुःखी प्राणी के हृदय के भाव व्यक्त किये थे, जो तारागण को देखकर उठे। वह एक-एक चरण झूम-झूमकर पढ़ते थे और दो-दो, तीन-तीन बार दुहराते थे; किन्तु सोफ़िया ने एक बार भी दाद न दी, मानो वह काव्य-रस-शून्य हो गयी थी। जब पूरी कविता समाप्त हो गयी, तो प्रभु सेवक ने पूछा—इसके विषय में तुम्हारा क्या विचार है?

सोफ़िया ने कहा—अच्छी तो है।

प्रभु सेवक—मेरी सूक्तियों पर तुमने ध्यान नहीं दिया। तारागण की आज तक किसी कवि ने देवात्माओं से उपमा नहीं दी है। मुझे तो विश्वास है कि इस कविता के प्रकाशित होते ही कवि-समाज में हलचल मच जायेगी।

सोफ़िया—शेली और वर्ड्सवर्थ इस उपमा को पहले ही बाँध चुके हैं। यहाँ के कवियों ने भी कुछ ऐसा ही वर्णन किया है। कदाचित् ह्यूगो की एक कविता का शीर्षक भी यही है। सम्भव है, तुम्हारी कल्पना उन कवियों से लड़ गयी हो।

प्रभु सेवक—मैंने काव्य-साहित्य तुमसे बहुत ज़्यादा देखा है; पर मुझे कहीं यह उपमा नहीं दिखायी दी।

सोफ़िया—खैर, हो सकता है, मुझी को याद न होगा। कविता बुरी नहीं है।

प्रभु सेवक—अगर कोई दूसरा कवि यह चमत्कार दिखा दे, तो उसकी गुलामी करूँ।

सोफ़िया—तुम्हारी निगाह में अपनी स्वाधीनता का मूल्य बहुत ज़्यादा नहीं है।

प्रभु सेवक—तो मैं भी यही कहूँगा कि कवित्व के रसास्वादन के लिए अभी तुम्हें बहुत अभ्यास करने की ज़रूरत है।

सोफ़िया—मुझे अपने जीवन में इससे अधिक महत्त्व के काम करने हैं। आजकल घर के क्या समाचार हैं?

प्रभु सेवक—वही पुरानी दशा चली आती है। मैं तो आजिज़ आ गया हूँ। पापा को अपने कारखाने की धुन लगी हुई है, और मुझे उस काम से घृणा है। कहीं ठिकाना नहीं मिलता, नहीं तो इस माया के घोंसले में एक दिन भी न रहता। कहाँ जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता।

सोफ़िया—बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने गुणी और विद्वान् होकर भी तुम्हें निर्वाह का कोई उपाय नहीं सूझता। क्या कल्पना के संसार में आत्मसम्मान का स्थान नहीं है?

प्रभु सेवक—सोफ़ी, मैं और सब कुछ कर सकता हूँ, पर गृह-चिंता का बोझ नहीं उठा सकता। एक सुरम्य उपवन में, किसी सघन वृक्ष के नीचे, पक्षियों का मधुर कलरव सुनता हुआ काव्य-चिंतन में मग्न पड़ा रहूँ, यही मेरे जीवन का आदर्श है।

सोफ़िया—तुम्हारी ज़िन्दगी इसी भाँति स्वप्न देखने में गुज़रेगी।

प्रभु सेवक—कुछ हो, चिंता से तो मुक्त हूँ, स्वच्छन्द तो हूँ!

यह कहकर प्रभु सेवक ने पाँड़ेपुर की घटना बयान की और इतनी डींग मारी कि सोफ़ी चिढ़कर बोली—रहने भी दो, एक गँवार को पीट लिया, तो कौन-सा बड़ा काम किया। अपनी कविताओं में तो अहिंसा के देवता बन जाते हो, वहाँ जरा-सी बात पर इतने जामे से बाहर हो गये!

प्रभु सेवक—गाली सह लेता?

सोफ़िया—जब तुम मारनेवाले को मारोगे, गाली देनेवाले को भी मारोगे, तो अहिंसा का निर्वाह कब करोगे? जो बात दूसरों को सिखलाना चाहते हो, वह पहले स्वयं सीख लो।

प्रभु सेवक—ठीक यही बात विनय ने भी अपने पत्र में लिखी है। लो, याद आ गया। यह

तुम्हारा पत्र है।

यह कहकर प्रभु सेवक ने एक लिफाफा निकालकर सोफ़िया के हाथ में रख दिया। सोफ़िया ने पूछा—आजकल कहाँ हैं?

प्रभु सेवक—उदयपुर के पहाड़ी प्रांतों में घूम रहे हैं। मेरे नाम जो पत्र आया है, उसमें तो उन्होंने साफ लिखा है कि मैं इस सेवा कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य हूँ। मुझमें उतनी सहनशीलता नहीं, जितनी होनी चाहिए।

प्रभु सेवक चले गये, तो सोफ़िया सोचने लगी—यह पत्र पढ़ूँ या न पढ़ूँ? विनय इसे रानीजी से गुप्त रखना चाहते हैं, नहीं तो यहीं के पते से भेजते? सम्भव है, कोई ऐसी बात हो, जो रानी के क्रोध को और भी उत्तेजित कर दे। नहीं, इस पत्र को गुप्त ही रखना चाहिए।

सोफ़िया ने और ज़्यादा सोच-विचार नहीं किया। शंका हुई, कहीं मैं विचलित न हो जाऊँ। चलनी में पानी नहीं ठहरता।

उसने वह पत्र ले जाकर रानी को दे दिया। उन्होंने पूछा—किसका पत्र है? यह तो विनय की लिखावट जान पड़ती है। तुम्हारे नाम आया है न? तुमने खोला नहीं?

सोफ़िया—जी नहीं।

रानी ने प्रसन्न होकर कहा—मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ, पढ़ो। तुमने अपना वचन पालन किया, इससे मैं बहुत खुश हुई।

सोफ़िया—मुझे क्षमा कीजिए।

रानी—मैं खुशी से कहती हूँ, पढ़ो; देखो, क्या लिखते हैं?

सोफ़िया—जी नहीं।

रानी ने पत्र ज्यों-का-त्यों संदूक में बन्द कर दिया। खुद भी नहीं पढ़ा। कारण, यह नीति-विरुद्ध था। तब सोफ़िया से बोली—बेटी, अब मेरी तुमसे एक और याचना है। विनय को एक पत्र लिखो और उसमें स्पष्ट लिख दो, हमारा और तुम्हारा कल्याण इसमें है कि हममें केवल भाई और बहन का सम्बंध रहे। तुम्हारे पत्र से यह प्रकट होना चाहिए कि तुम उनके प्रेम की अपेक्षा उनके जातीय भावों की ज़्यादा कद्र करती हो। मुझे विश्वास है, तुम्हारा पत्र पाते ही उनकी चेष्टाएँ बदल जायेंगी और वह कर्त्तव्य-मार्ग पर सुदृढ़ हो जायेंगे। मैं इस कृपा के लिए जीवन-पर्यंत तुम्हारी आभारी रहूँगी।

सोफ़ी ने कातर स्वर में कहा—आपकी आज्ञा का पालन करूँगी।

रानी—नहीं, केवल मेरी आज्ञा का पालन करना काफ़ी नहीं है। अगर उससे यह भासित हुआ कि किसी की प्रेरणा से लिखा गया है, तो उसका असर जाता रहेगा।

सोफ़िया—आपको पत्र लिखकर दिखा दूँ?

रानी—नहीं, तुम्हीं भेज देना।

सोफ़िया जब वहाँ से आकर पत्र लिखने बैठी, तो उसे सूझता ही न था कि क्या लिखूँ। सोचने लगी—वह मुझे निर्मम समझेंगे; अगर लिख दूँ, मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ा ही नहीं, तो उन्हें कितना दुःख होगा! कैसे कहूँ कि मैं तुमसे प्रेम नहीं करती?

वह मेज़ पर से उठ खड़ी हुई और निश्चय किया, कल लिखूँगी। अभी वह मुँह-हाथ धोकर बैठी ही थी कि उसने रानी को द्वार से अन्दर की ओर झाँकते देखा। पन्द्रह मिनट भी न गुज़रे थे कि रानी फिर दूसरी तरफ़ से लौटीं और कमरे में झाँका।

सोफ़ी को उनका यों मँडलाना बहुत नागवार मालूम हुआ। उसने समझा—यह मुझे बिल्कुल काठ की पुतली बनाना चाहती हैं। बस, इनके इशारों पर नाचा करूँ। इतना तो नहीं हो सका कि जब मैंने बंद लिफाफा उनके हाथ में रख दिया, तो मुझे खत पढ़कर सुना देतीं। पहले मैंने समझा था, उनसे केवल आध्यात्मिक प्रेम करूँगी। अब विदित हो रहा है कि आध्यात्मिक प्रेम या भक्ति केवल धर्म-जगत् ही की वस्तु है। स्त्री-पुरुष में पवित्र प्रेम होना असम्भव है। प्रेम पहले उँगली पकड़कर तुरंत ही पहुँचा पकड़ता है। यह सब जानते हुए भी पतंग की भाँति दीपक पर गिर रही हूँ।

आधी रात तक मनोभावों से निरन्तर संग्राम करने के बाद सोफ़ी ने अपने को प्रेम-कल्पनाओं की गोद में डाल दिया। अबाध रूप से उनका आनन्द उठाने लगीः

'क्यों विनय, तुम मेरे लिए क्या-क्या मुसीबतें झेलोगे? अपमान, अनादर, द्वेष, माता-पिता का विरोध, तुम मेरे लिए यह सब विपत्ति सह लोगे? लेकिन धर्म? वह देखो, तुम्हारा मुख उदास हो गया। तुम सब कुछ करोगे; पर धर्म नहीं छोड़ सकते। मेरी भी यही दशा है। मैं तुम्हारे साथ उपवास कर सकती हूँ, तिरस्कार, अपमान, निंदा, सब कुछ भोग सकती हूँ, पर धर्म को कैसे त्याग दूँ? ईसा का दामन कैसे छोड़ दूँ? क्या यह सम्भव नहीं कि मैं ईसा के दामन से लिपटी रहकर भी अपनी प्रेमाकांक्षाओं को तृप्त करूँ? हिंदू-धर्म की उदार छाया में किसके लिए शरण नहीं? आस्तिक भी हिंदू हैं, नास्तिक भी हिंदू हैं, तैंतीस करोड़ देवताओं को माननेवाला भी हिन्दू है। जहाँ महावीर के भक्तों के लिए स्थान है, बुद्देव के भक्तों के लिए स्थान है, वहाँ क्या ईसू के भक्त के लिए स्थान नहीं है? तुमने मुझे अपने प्रेम का निमंत्रण दिया है, मैं उसे अस्वीकार क्यों करूँ?'

आह, मुझसे बड़ी भूल हुई। मैंने नाहक वह पत्र रानीजी को दे दिया। मेरा पत्र था, मुझे उसको पढ़ने का पूरा अधिकार था। मेरे और उनके बीच प्रेम का नाता है, जो संसार के और सभी सम्बंधों से पवित्र और श्रेष्ठ है। जाकर रानीजी से वह पत्र माँग लूँ? उसे देने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मन में चाहे कितना ही बुरा मानें, पर मेरी अमानत मुझे अवश्य दे देंगी। मगर मैं उनसे माँगू क्यों? अपनी चीज़ ले लेने के लिए मैं किसी दूसरे का एहसान क्यों उठाऊँ?

ग्यारह बज रहे थे। सोफ़िया के हृदय में प्रबल उत्कंठा हुई कि इसी क्षण चलकर अपना पत्र लाऊँ। वह दृढ़ संकल्प करके कमरे से निकली और निर्भय होकर रानीजी के दीवानखाने की ओर चली। वह अपने हृदय को बार-बार समझा रही थी—मुझे भय किसका है, अपनी चीज़ लेने जा रही हूँ; कोई पूछे तो उससे साफ़-साफ़ कह सकती हूँ।

किन्तु निरन्तर यह आश्वासन मिलने पर भी उसके क़दम इतनी सावधानी से उठते थे कि बरामदे के पक्के फ़र्श पर भी कोई आहट न होती थी। उसकी मुखाकृति से वह अशांति झलक रही थी, जो आंतरिक दुश्चिन्ता का चिन्ह है। रास्ते में कई कमरे थे। यद्यपि उनमें अँधेरा

था, रोशनी गुल हो चुकी थी, तो भी वह दरवाज़े पर एक क्षण के लिए रुक जाती थी, कि कोई उनमें बैठा न हो। इस प्रकार पाँच कमरों के बाद रानीजी का दीवानखाना मिला।

सोफ़िया कई मिनट तक बिजली के बटन के पास खड़ी रही। बटन दबाने की हिम्मत न पड़ती थी। सारे आँगन में प्रकाश फैल जायेगा, लोग चौंक पड़ेंगे। विवश होकर उसने मेज़ को टटोलना शुरू किया। दावात लुढ़क गयी, स्याही मेज़ पर फैल गयी और उसके कपड़ों पर दाग पड़ गये। उसे विश्वास था कि रानी ने पत्र अपने हैंडबैग में रखा होगा। ज़रूरी चिट्ठियाँ उसी में रखती थीं। बड़ी मुश्किल से उसे बैग मिला। उसने हैंडबैग उठा लिया और कमरे से बाहर निकली।

अपने कमरे में पहुँचते ही सोफ़िया ने द्वार बन्द कर दिया और परदे डाल दिये। गरमी के मारे सारी देह पसीने से तर थी, हाथ काँप रहे थे। वह चिट्ठियों को निकाल-निकालकर देखने लगी। सोफ़िया को उनकी तलाशी लेते घंटों गुज़र गये, पर वह चीज़ न मिली। उसे अब कुछ-कुछ निराशा होने लगी; यहाँ तक कि अंतिम पत्र भी उलट-पलटकर रख दिया गया।

सोफ़िया रोने लगी। वह पत्र कहाँ गया? रानी ने तो उसे मेरे सामने ही इसी बैग में रख दिया था? उनके और सभी पत्र यहाँ मौजूद हैं। क्या उसे कहीं और रख दिया?

सोफ़िया की आशा फिर हरी हुई। उसने दुबारा पत्रों को पढ़ना शुरू किया और ज़्यादा ध्यान देकर। एक-एक लिफाफे को खोलकर देखने लगी कि कहीं रानी ने उसे किसी दूसरे लिफाफे में रख दिया हो। अंत को यह शंका भी मिट गयी। उस लिफाफे का कहीं पता न था।

सोफ़िया चारपाई पर लेट गयी, मानो थक गयी हो। सोफ़िया को अपनी नैतिक दुर्बलता पर क्रोध आ रहा था—मैंने व्यर्थ ही अपनी आत्मा पर यह अपराध मढ़ा। क्या मैं रानी से अपना पत्र न माँग सकती थी? रानीजी को कहीं मेरा यह कपट-व्यवहार मालूम हो गया; और अवश्य ही मालूम हो जायेगा, तो वह मुझे अपने मन में क्या समझेंगी?

सहसा सोफ़िया के कानों में झाड़ू लगाने की आवाज़ आयी। वह चौंकी, क्या सवेरा हो गया? परदा उठाकर द्वार खोला, तो दिन निकल आया था। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया। उसने बड़ी कातर दृष्टि से हैंडबैग की ओर देखा और मूर्ति के समान खड़ी रह गयी। कौन-सा मुँह दिखाऊँगी? रानी बहुत तड़के उठती हैं, मुझे अवश्य ही देख लेंगी। किन्तु अब और हो ही क्या सकता है? भगवन्! तुम दीनों के आधार-स्तम्भ हो, अब लाज तुम्हारे हाथ है। ईश्वर करे, अभी रानी न उठी हों। कदाचित् इतने शुद्ध हृदय से उसने कभी प्रार्थना न की होगी!

अब एक क्षण भी विलम्ब करने का अवसर न था। उसने बैग उठा लिया और बाहर निकली। जब वह दीवानखाने के द्वार पर पहुँची, तो उसका हृदय यों धड़कने लगा, मानो कोई हथौड़ा चला रहा हो। वह ज़रा देर ठिठकी, कमरे में झाँककर देखा, रानी बैठी हुई थीं। उसने ज़मीन की ओर ताकते हुए हैंडबैग चुपके से ले जाकर मेज़ पर रख दिया। रानी ने उसकी ओर उस दृष्टि से देखा, जो अंतस्तल पर शर के समान लगती है। उसमें अपमान भरा हुआ था; क्रोध न था, दया न थी, ज्वाला न थी, तिरस्कार था—विशुद्ध, सजीव और सशब्द।

सोफ़िया लौटना ही चाहती थी कि रानी ने पूछा—विनय का पत्र ढूँढ़ रही थीं?

सोफ़िया अवाक् रह गयी। मालूम हुआ, किसी ने कलेजे में बर्छी मार दी।

रानी ने फिर कहा—उसे मैंने अलग रख दिया है, मँगवा दूँ?
सोफ़िया ने उत्तर न दिया। उसके सिर में चक्कर-सा आने लगा।
रानी ने तीसरा बाण चलाया—क्या यही सत्य की मीमांसा है?
सोफ़िया मूर्च्छित होकर फर्श पर गिर पड़ी।

14

सोफ़िया को होश आया तो वह अपने कमरे में चारपाई पर पड़ी हुई थी। कानों में रानी के अंतिम शब्द गूँज रहे थे—क्या यही सत्य की मीमांसा है? वह अपने को इस समय इतनी नीच समझ रही थी कि घर का मेहतर भी उसे गालियाँ देता, तो शायद सिर न उठाती। वह वासना के हाथों इतनी परास्त हो चुकी थी कि अब उसे अपने सँभलने की कोई आशा न दिखायी देती थी। आह! विनय को ये बातें मालूम होंगी, तो वह अपने मन में क्या समझेंगे? मेरे कारण धर्म भी बदनाम हो गया, नहीं तो क्या आज मुझसे यह पूछा जाता—क्या यही सत्य की मीमांसा है?

उसने सिरहाने की ओर देखा। अलमारियों पर धर्म-ग्रंथ सजे हुए रखे थे। उन ग्रंथों की ओर ताकने की हिम्मत न पड़ी। मैं सत्य की मीमांसा करने चली थी और इस बुरी तरह गिरी कि अब उठना कठिन है।

अभी नौ बजे का समय था, पर सोफ़िया को भ्रम हो रहा था कि संध्या हो रही है। वह सोचती थी—क्या मैं सारे दिन सोती रह गयी, किसी ने मुझे जगाया भी नहीं! कोई क्यों जगाने लगा? यहाँ अब मेरी परवा किसे है, और क्यों हो!

सहसा मिसेज़ सेवक कमरे में दाखिल हुईं। उन्हें देखते ही सोफ़िया को अपने हृदय में एक जलोद्‌गार-सा उठता हुआ जान पड़ा। वह दौड़कर माता के गले से लिपट गयी। यही अब उसका अंतिम आश्रय था। उसे ऐसा जान पड़ा, ईश्वर ने मेरी दीनता पर तरस खाकर मामा को यहाँ भेजा है। वह फूट-फूट रोने लगी। लेकिन माता की आँखों में आँसू न थे। वह तो मिस्टर क्लार्क के निमंत्रण का सुख-सम्वाद सुनाने के लिए अधीर हो रही थीं। ज्यों ही सोफ़िया के आँसू थमे, मिसेज़ सेवक ने कहा—आज तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। मिस्टर क्लार्क ने तुम्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया है।

सोफ़िया ने उत्तर न दिया। उसे माता की यह बात भद्दी मालूम हुई।

मिसेज़ सेवक ने फिर कहा—जब से तुम यहाँ आयी हो, वह कई बार तुम्हारा कुशल-समाचार पूछ चुके हैं।

सोफ़िया ने घृणा से मुँह फेर लिया। माता की सम्मान-लोलुपता असह्य थी। न मुहब्बत की बातें हैं, न आश्वासन के शब्द, न ममता के उद्‌गार। कदाचित् प्रभु मसीह ने भी निमंत्रित

किया होता, तो वह इतनी प्रसन्न न होती।

मिसेज़ सेवक बोलीं—अब तुम्हें इनकार न करना चाहिए। विलम्ब से प्रेम ठंडा हो जाता है और फिर उस पर कोई चोट नहीं पड़ सकती। एक विद्वान् ने कहा है—प्रत्येक प्राणी को जीवन में केवल एक बार अपने भाग्य की परीक्षा का अवसर मिलता है, और वही भविष्य का निर्णय कर देता है। तुम्हारे जीवन में यह वही अवसर है। इसे छोड़ दिया, तो फिर हमेशा पछताओगी।

सोफ़िया ने व्यथित होकर कहा—अगर मिस्टर क्लार्क ने मुझे निमंत्रित न किया होता, तो शायद आप मुझे याद भी न करतीं?

मिसेज़ सेवक ने अवरुद्ध कंठ से कहा—मेरे मन में जो कुछ है, वह तो ईश्वर ही जानता है; पर ऐसा कोई दिन नहीं जाता कि मैं तुम्हारे और प्रभु के लिए ईश्वर से प्रार्थना न करती होऊँ।

यह कहकर मिसेज़ सेवक जाह्नवी से मिलने गईं। रानी ने उनका विशेष आदर न किया। अपनी जगह पर बैठे-बैठे बोलीं—आपके दर्शन तो बहुत दिनों के बाद हुए।

मिसेज़ सेवक ने हँसकर कहा—अभी मेरी वापसी की मुलाकात आपके जिम्मे बाकी है।

रानी—आप मुझसे मिलने आयीं ही कब? पहले भी सोफ़िया से मिलने आयी थीं, और आज भी। अगर बुरा न मानिए तो एक बात पूछूँ?

मिसेज़ सेवक—पूछिए, बुरा क्यों मानूँगी।

रानी—मिस सोफ़िया की उम्र तो ज़्यादा हो गयी, आपने उसकी शादी की कोई फ़िक्र की या नहीं? अब तो उसका जितनी जल्दी विवाह हो जाये, उतना ही अच्छा।

मिसेज़ सेवक—इसकी शादी कब की हो गयी होती, कई अँगरेज़ बेतरह पीछे पड़े, लेकिन यह राज़ी ही नहीं होती। आजकल जिलाधीश मिस्टर क्लार्क के पैगाम आ रहे हैं। देखूँ, अब भी राज़ी होती है या नहीं।

जाह्नवी—विवाह सदैव अपने स्वजातियों में करना चाहिए। योरपियन लोग हिंदुस्तानी ईसाइयों का बहुत आदर नहीं करते, और अनमेल विवाहों का परिणाम अच्छा नहीं होता।

मिसेज़ सेवक—(गर्व के साथ) ऐसा कोई योरपियन नहीं है, जो मेरे खानदान में विवाह करना मर्यादा के विरुद्ध समझे। हम और वे एक हैं। हम और वे एक ही खुदा को मानते हैं, एक ही गिरजा में प्रार्थना करते हैं और एक ही नबी के अनुचर हैं। अभी तीन-चार दिन हुए, लड़कियों को इनाम देने का जलसा था। मिस्टर क्लार्क ने खुद मुझे उस जलसे का प्रधान बनाया और मैंने ही इनाम बाँटे।

रानी—हिंदू या मुसलमान, जिन्हें कुछ भी अपने जातीय गौरव का खयाल है, अँगरेज़ों के साथ मिलना-जुलना अपने लिए सम्मान की बात नहीं समझते। प्रत्येक हिंदू जानता है कि मसीह बौद्ध काल में यहीं आये थे, यहीं उनकी शिक्षा हुई थी और जो ज्ञान उन्होंने यहाँ प्राप्त किया, उसी का पश्चिम में प्रचार किया। फिर कैसे हो सकता है कि हिंदू अँगरेज़ों को श्रेष्ठ समझें?

दोनों महिलाओं में इसी तरह नोक-झोंक होती रही। कृतज्ञता या धन्यवाद के शब्द किसी के मुँह से न निकले। यहाँ तक कि जब मिसेज़ सेवक बिदा होने लगीं, तो रानी जाह्नवी उनको पहुँचाने के लिए कमरे के द्वार तक भी न गईं।

मिसेज़ सेवक सोफ़िया के पास आयीं, तो वह तैयार थी। किताबों के गट्ठर बँधे हुए थे। इस घर को छोड़ते हुए उसे दुःख हो रहा था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि विनयसिंह से फिर मुलाकात न होगी, उनसे सदा के लिए बिछुड़ रही हूँ। रानी की अपमान-भरी बातें, उनकी भर्त्सना और अपनी भ्रांति सब कुछ भूल गयी। हृदय के एक-एक तार से यही ध्वनि निकल रही थी—अब विनय से फिर भेंट न होगी।

मिसेज़ सेवक बोलीं—कुँवर साहब से भी मिल लूँ।

सोफ़िया डर रही थी कि कहीं मामा को रात की घटना की खबर न मिल जाये, कुँवर साहब कहीं दिल्लगी-ही-दिल्लगी में कह न डालें। बोली—उनसे मिलने में देर होगी, फिर मिल लीजिएगा।

मिसेज़ सेवक—फिर किसे इतनी फ़ुर्सत है!

दोनों कुँवर साहब के दीवानखाने में पहुँचीं। यहाँ इस वक़्त स्वयंसेवकों की भीड़ लगी हुई थी। गढ़वाल प्रांत में दुर्भिक्ष का प्रकोप था। न अन्न था, न जल। जानवर मरे जाते थे, पर मनुष्यों को मौत भी न आती थी; एड़ियाँ रगड़ते थे, सिसकते थे। यहाँ से पचास स्वयंसेवकों का एक दल, पीड़ितों का कष्ट निवारण करने के लिए जानेवाला था। डॉक्टर गांगुली ने इस वृद्धावस्था में भी इस दल का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था। दोनों आदमी इतने व्यस्त थे कि मिसेज़ सेवक की ओर किसी ने ध्यान न दिया। आखिर वह बोलीं—डॉक्टर साहब, आपका कब जाने का विचार है?

कुँवर साहब ने मिसेज़ सेवक की तरफ़ देखा और बड़े तपाक से आगे बढ़कर हाथ मिलाया, कुशल-समाचार पूछा और ले जाकर एक कुर्सी पर बैठा दिया। सोफ़िया माँ के पीछे जाकर खड़ी हो गयी।

कुँवर साहब—ये लोग गढ़वाल जा रहे हैं। आपने पत्रों में देखा होगा, वहाँ लोगों पर कितना घोर संकट पड़ा हुआ है।

मिसेज़ सेवक—खुदा इन लोगों का उद्योग सफल करें। इनके त्याग की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है। मैं देखती हूँ, यहाँ इनकी खास तादाद है।

कुँवर साहब—मुझे इतनी आशा न थी, विनय की बातों पर विश्वास न होता था, सोचता था, इतने वालंटियर कहाँ मिलेंगे।

मिसेज़ सेवक—मिस्टर क्लार्क कल आपकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। ईश्वर ने चाहा, तो आप शीघ्र सी.आयी.ई. होंगे और मुझे आपको बधाई देने का अवसर मिलेगा।

कुँवर साहब—(लजाते हुए) मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ। मिस्टर क्लार्क मुझे इस योग्य समझते हैं, तो वह उनकी कृपा-दृष्टि है।

मिसेज़ सेवक—सोफ़ी आज घर जा रही है। (मुस्कराकर) शायद आपको जल्द ही

इसका कन्यादान देना पड़े। (धीरे से) मिस्टर क्लार्क जाल फैला रहे हैं।

कुँवर साहब—बड़ी खुशी की बात है। सोफ़ी, देखो, हम लोगों को और विशेषतः अपने ग़रीब भाइयों को न भूल जाना। तुम्हें परमात्मा ने जितनी सहृदयता प्रदान की है, वैसा ही अच्छा अवसर भी मिल रहा है। हमारी शुभेच्छाएँ सदैव तुम्हारे साथ रहेंगी।

सोफ़िया मारे शर्म के कुछ बोल न सकी। माँ ने कहा—आप रानीजी को ज़रूर साथ लाइएगा। मैं कार्ड भेजूँगी।

कुँवर साहब—मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझे खेद है कि मैं उस उत्सव में सम्मिलित न हो सकूँगा। मैंने व्रत कर लिया है कि राज्याधिकारियों से कोई सम्पर्क न रखूँगा।

मिसेज़ सेवक—खुदा ने आपको राजा बनाया है। राजों ही के साथ तो राजा का मेल हो सकता है। अँगरेज़ लोग बाबुओं को मुँह नहीं लगाते, क्योंकि इससे यहाँ के राजों का अपमान होता है।

डॉ. गांगुली—मिसेज़ सेवक, यह बहुत दिनों तक राजा रह चुका है, अब इसका जी भर गया है। मैं इसका बचपन का साथी हूँ। हम दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। कुँवर साहब उसी बखत से Pessimist है।

कुँवर साहब—गांगुली, तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो। मुझमें आशावादिता के गुण ही नहीं हैं। आशावादी परमात्मा का भक्त होता है, पक्का ज्ञानी, पूर्ण ऋषि। मैं आदि से भोग-विलास का दास रहा हूँ; वह दिव्य ज्ञान न प्राप्त कर सका, जो आशावादिता की कुंजी है। मिसेज़ सेवक, डॉक्टर महोदय के जीवन का सार है—आत्मोत्सर्ग। इन पर जितनी विपत्तियाँ पड़ीं, वे किसी ऋषि को नास्तिक बना देतीं। मुझे यकीन नहीं आता कि कोई शासक जाति शासितों के साथ न्याय और साम्य का व्यवहार कर सकती है। मैं अँगरेज़ों की तरफ़ से निराश हो गया हूँ, इन्हें विश्वास है कि भारत का उद्धार अँगरेज़-जाति ही के द्वारा होगा।

मिसेज़ सेवक—(रुखाई से) तो क्या आप यह नहीं मानते कि अँगरेज़ों ने भारत के लिए जो कुछ किया है, वह शायद ही किसी जाति ने किसी जाति या देश के साथ किया हो?

कुँवर साहब—नहीं, मैं यह नहीं मानता।

मिसेज़ सेवक—शिक्षा का इतना प्रचार और भी किसी काल में हुआ था?

कुँवर साहब—मैं उसे शिक्षा नहीं कहता, जो मनुष्य को स्वार्थ का पुतला बना दे।

मिसेज़ सेवक—रेल, तार, जहाज़, डाक, सब विभूतियाँ अँगरेज़ों के साथ आयीं!

कुँवर साहब—अँगरेज़ों के बगैर भी आ सकती थीं, और अगर आयी भी हैं तो अधिकतर अँगरेज़ों ही के लाभ के लिए।

सहसा रानी जाह्नवी कमरे में आयीं। सोफ़िया का चेहरा उन्हें देखते ही सूख गया, वह कमरे के बाहर निकल आयी, रानी के सामने खड़ी न रह सकी। मिसेज़ सेवक को भी शंका हुई कि कहीं चलते-चलते रानी से फिर न विवाद हो जाये। वह भी बाहर चली आयीं। कुँवर साहब ने दोनों को फ़िटन पर सवार कराया। सोफ़िया ने सजल नेत्रों से कर जोड़कर कुँवरजी को प्रणाम किया। फ़िटन चली।

15

राजा महेन्द्रकुमार सिंह यद्यपि सिद्धान्त के विषय में अधिकारियों से जौ-भर भी न दबते थे; पर गौण विषयों में वह अनायास उनसे विरोध करना व्यर्थ ही नहीं, जाति के लिए अनुपयुक्त भी समझते थे। उन्हें शांत नीति पर जितना विश्वास था, उतना उग्र नीति पर न था, विशेषतः इसलिए कि वह वर्तमान परिस्थिति में जो कुछ सेवा कर सकते थे, वह शासकों के विश्वासपात्र होकर ही कर सकते थे। पहले उन्होंने न्याय-पक्ष लेकर जॉन सेवक को सूरदास की ज़मीन दिलाने से इनकार कर दिया था; पर अब उन्हें इसके विरुद्ध आचरण करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था। उन्हें यह शंका होती थी कि कहीं लोग मुझे एक धनी व्यापारी के साथ पक्षपात करने का दोषी न ठहराने लगें। उनकी आदत थी कि बोर्ड में प्रस्ताव रखने के पहले वह इंदु से, और इंदु न होती, तो अपने इष्ट-मित्रों से परामर्श कर लिया करते थे; यद्यपि इस तर्कयुद्ध से कोई अन्तर न पड़ता, वह अपने पक्ष पर स्थिर रहते; पर घंटे-दो घंटे के विचार-विनिमय से उनको बड़ा आश्वासन मिलता था।

तीसरे पहर का समय था। समिति के सेवक गढ़वाल जाने के लिए स्टेशन पर जमा हो रहे थे। इंदु ने गाड़ी तैयार करने का हुक्म दिया। यद्यपि बादल घिरा हुआ था, किन्तु सेवकों को बिदा करने के लिए स्टेशन पर जाना ज़रूरी था। जाह्नवी ने उसे बहुत आग्रह करके बुलाया था। वह जाने को तैयार ही थी कि राजा साहब अन्दर आये और इंदु को कहीं जाने को तैयार देखकर बोले—कहाँ जाती हो, बादल घिरा हुआ है।

इंदु—समिति के लोग गढ़वाल जा रहे हैं। उन्हें बिदा करने स्टेशन जा रही हूँ। अम्माँजी ने बुलाया भी है।

राजा—पानी अवश्य बरसेगा।

इंदु—परदा डाल दूँगी; और भीग भी गयी, तो क्या? आखिर वे भी तो आदमी ही हैं, जो लोक-सेवा के लिए इतनी दूर जा रहे हैं।

राजा—न जाओ, तो कोई हरज है? स्टेशन पर भीड़ बहुत होगी।

इंदु—हरज क्या होगा, मैं जाऊँ या न जाऊँ; आप भी क्यों नहीं चलते?

राजा—मैं ऐसी संस्थाओं में सम्मिलित नहीं होता!

इंदु—कैसी संस्थाओं में?

राजा—ऐसी ही संस्थाओं में!

इंदु—क्या सेवा-समितियों से सहानुभूति रखना आपत्तिजनक है? मैं तो समझती हूँ, ऐसे कार्यों में भाग लेना किसी के लिए भी लज्जा या आपत्ति की बात नहीं हो सकती।

राजा—तुम्हारी समझ में और मेरी समझ में बड़ा अन्तर है। यदि मैं बोर्ड का प्रधान न होता, यदि मैं शासन का एक अंग न होता, अगर मैं रियासत का स्वामी न होता, तो प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में भाग लेता। वर्तमान स्थिति में मेरा किसी संस्था में भाग लेना इस बात का प्रमाण समझा जायेगा कि राज्याधिकारियों को उससे सहानुभूति है। मैं यह भ्रांति नहीं फैलाना चाहता।

इंदु—तो इस पद को त्याग क्यों नहीं देते? स्वाधीनता का क्यों बलिदान करते हैं?

राजा—केवल इसलिए कि मुझे विश्वास है कि नगर का प्रबंध जितनी सुंदरता से मैं कर सकता हूँ, और कोई नहीं कर सकता। नगरसेवा का ऐसा अच्छा और दुर्लभ अवसर पाकर मैं अपनी स्वच्छंदता की ज़रा भी परवा नहीं करता। जनवाद और साम्यवाद का सम्पत्ति से वैर है। मैं उस समय तक साम्यवादियों का साथ न दूँगा, जब तक मन में यह निश्चय न कर लूँ कि अपनी सम्पत्ति त्याग दूँगा। मैं वचन से साम्यवाद का अनुयायी बनकर कर्म से उसका विरोधी नहीं बनना चाहता। मैं उन लोगों को धूर्त और पाखंडी समझता हूँ, जो अपनी सम्पत्ति को भोगते हुए साम्य की दुहाई देते फिरते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि साम्यदेव के पुजारी बनकर वह किस मुँह से विशाल प्रासादों में रहते हैं और संसार के सुखों का दिल खोलकर उपभोग करते हैं।

यह कटाक्ष कुँवर साहब पर था। इंदु समझ गयी। त्योरियाँ बदल गईं, किन्तु उसने जब्त किया और इस अप्रिय प्रसंग को समाप्त करने के लिए बोली—मुझे देर हो रही है, तीन बजनेवाले हैं, साढ़े तीन पर गाड़ी छूटती है, अम्माँजी से मुलाकात हो जायेगी, विनय का कुशल-समाचार भी मिल जायेगा।

राजा साहब—जिन कारणों से मेरा जाना अनुचित है, उन्हीं कारणों से तुम्हारा जाना अनुचित है। तुम जाओ या मैं जाऊँ, एक ही बात है।

इंदु उसी पाँव अपने कमरे में लौट आयी और सोचने लगी—यह अन्याय नहीं, तो और क्या है? चित्त बहुत खिन्न हुआ, आँखें सजल हो गईं। घंटी बजाई और लौंडी से कहा—गाड़ी खुलवा दो, मैं स्टेशन न जाऊँगी।

महेन्द्रकुमार भी उसके पीछे-पीछे कमरे में जाकर बोले—कहीं सैर क्यों नहीं कर आतीं?

इंदु—नहीं, बादल घिरा हुआ है, भीग जाऊँगी।

राजा साहब—क्या नाराज़ हो गईं?

इंदु—नाराज़ क्यों हूँ? आपके हुक्म की लौंडी हूँ। आपने कहा, मत जाओ, न जाऊँगी।

राजा साहब—मैं तुम्हें विवश नहीं करना चाहता। यदि मेरी शंकाओं को जान लेने के बाद भी तुम्हें वहाँ जाने में कोई आपत्ति नहीं दिखलाई पड़ती, तो शौक से जाओ। अगर तुम्हारे जाने से मेरी बदनामी हो, तो तुम जाना चाहोगी?

ये सब मुझे रोक रखने के बहाने हैं। तुम डरते हो; अपने कर्मों के फल भोगो; मैं क्यों डरूँ? मन में यह निश्चय करके उसने निश्चयात्मक रूप से कहा—आपने मुझे जाने की आज्ञा दे दी, मैं जाती हूँ।

राजा ने भग्न हृदय होकर कहा—तुम्हारी इच्छा, जाना चाहती हो, शौक से जाओ।

इंदु चली गयी, तो राजा साहब सोचने लगे—स्त्रियाँ कितनी निष्ठुर, स्वच्छंदताप्रिय और मानशील होती हैं! चली जा रही हैं, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। इसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं कि हुक्काम के कानों तक यह बात पहुँचेगी, तो वह मुझे क्या कहेंगे।

इंदु स्टेशन की तरफ़ चली; पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती थी, उसका दिल एक बोझ से दबा जाता था। मैदान में जिसे हम विजय कहते हैं, घर में उसी का नाम निष्ठुरता और अभद्रता है। इंदु को इस विजय पर गर्व न था। अपने हठ का खेद था।

इंदु ने बाहर की तरफ़ सिर निकालकर देखा, स्टेशन का सिगनल नज़र आ रहा था। नर-नारियों के समूह स्टेशन की ओर दौड़े चले जा रहे थे। सवारियों का ताँता लगा हुआ था। उसने कोचवान से कहा—गाड़ी फेर दो, मैं स्टेशन न जाऊँगी, घर की तरफ़ चलो।

कोचवान ने गाड़ी फेर दी। दो क्षण बाद ही राजा साहब की गाड़ी बराबर आ कर खड़ी हो गयी।

राजा साहब उतर पड़े। कोचवान ने गाड़ी रोक दी। इंदु चकित होकर बोली—आप कब आ गये?

राजा—तुम्हारे आने के पाँच मिनट बाद मैं भी चल पड़ा। तुम स्टेशन के सामने से कैसे लौट आयीं? तबियत तो अच्छी है? मैं तो घबरा गया। आओ, मोटर पर बैठ जाओ। स्टेशन पर गाड़ी आ गयी है, दस मिनट में छूट जायेगी। लोग उत्सुक हो रहे हैं।

इंदु—अब मैं न जाऊँगी। आप तो पहुँच ही गये थे।

राजा—तुम्हें चलना ही पड़ेगा।

इंदु—मुझे मजबूर न कीजिए, मैं न जाऊँगी।

राजा—मैं उन लोगों से तुम्हें लाने का वादा कर आया हूँ। तुम न चलोगी, तो मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

इंदु—आप व्यर्थ इतना आग्रह कर रहे हैं। आपको मुझसे नाराज़ होने का यह अंतिम अवसर था। अब फिर इतना दुस्साहस न करूँगी।

राजा ने निराश होकर कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा! मालूम होता है, हमारे और तुम्हारे ग्रहों में कोई मौलिक विरोध है, जो पग-पग पर अपना फल दिखलाता रहता है।

यह कहकर वह मोटर पर सवार हो गये, और बड़े वेग से स्टेशन की तरफ़ चले। बग्घी भी आगे बढ़ी। कोचवान ने पूछा—हुज़ूर गईं क्यों नहीं? सरकार बुरा मान गये।

इंदु ने इसका कुछ जवाब न दिया। वह सोच रही थी—क्या मुझसे फिर भूल हुई? क्या मेरा जाना उचित था? ईश्वर ही जानें।

इन्हीं विषादमय विचारों में डूबी हुई वह चंद्रभवन पहुँची और सीधे राजा साहब के

दीवानखाने में जा बैठी। आँखें चुरा रही थी कि किसी नौकर-चाकर से सामना न हो जाये।

इंदु को बहुत देर तक न बैठना पड़ा। पाँच बजते-बजते राजा साहब आ पहुँचे। इंदु का हृदय धक-धक करने लगा, वह उठकर द्वार पर खड़ी हो गयी। राजा साहब उसे देखते ही बड़े मधुर स्वर से बोले—तुमने आज जातीय उद्‌गारों का एक अपूर्व दृश्य देखने का अवसर खो दिया। कई हज़ार मनुष्यों ने जब यात्रियों पर पुष्प-वर्षा की, तो सारी भूमि फूलों से ढँक गयी। सेवकों का राष्ट्रीय गान इतना भावमय, इतना प्रभावोत्पादक था कि दर्शक-वृंद मुग्ध हो गये। तुमसे बड़ी भूल हुई। तुम्हारी माताजी बार-बार पछताती थीं।

इंदु को जिस बात की शंका थी, वह पूरी हो गयी। सोचा—यह सब कपटलीला है। इनका दिल साफ नहीं है। इन मीठी बातों की आड़ में कितनी कटुता छिपी हुई है। चिढ़कर बोली—मैं जाती, तो आपको ज़रूर बुरा मालूम होता।

राजा—(हँसकर) केवल इसलिए कि मैंने तुम्हें जाने से रोका था? अगर मुझे बुरा मालूम होता, तो मैं खुद क्यों जाता?

इंदु—मालूम नहीं, आप क्या समझकर गये। शायद मुझे लज्जित करना चाहते होंगे।

राजा—इंदु, इतना अविश्वास मत करो। सच कहता हूँ, मुझे तुम्हारे जाने का ज़रा मलाल न होता। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि पहले मुझे तुम्हारी जिद बुरी लगी; किन्तु जब मैंने विचार किया, तो मुझे अपना आचरण सर्वथा अन्यायपूर्ण प्रतीत हुआ। अपने इसी अन्याय का प्रायश्चित्त करने के लिए मैं स्टेशन गया। अब तो तुम्हें मेरी बातों का विश्वास आया?

दूसरे दिन राजा साहब ने दैनिक पत्र खोला, तो उसमें सेवकों की यात्रा का वृत्तांत बड़े विस्तार से प्रकाशित हुआ था। इसी प्रसंग में लेखक ने राजा साहब की उपस्थिति पर भी टीका की थी:

'इस अवसर पर म्युनिसिपैलिटी के प्रधान राजा महेन्द्रकुमार सिंह का मौजूद होना बड़े महत्त्व की बात है। आश्चर्य है कि राजा साहब-जैसे विवेकशील पुरुष ने वहाँ जाना क्यों आवश्यक समझा? राजा साहब अपने व्यक्तित्व को अपने पद से पृथक् नहीं कर सकते और उनकी उपस्थिति सरकार को उलझन में डालने का कारण हो सकती है। अनुभव ने यह बात सिद्ध कर दी है कि सेवा-समितियाँ चाहे कितनी शुभेच्छाओं से भी गर्भित हों, पर कालांतर में वे विद्रोह और अशांति का केंद्र बन जाती हैं। क्या राजा साहब इसका जिम्मा ले सकते हैं कि यह समिति अपनी पूर्ववर्ती संस्थाओं का अनुसरण न करेगी?'

राजा साहब ने पत्र बंद करके रख दिया और विचारमग्न हो गये! उनके मुँह से बेअख्तियार निकल गया—वही हुआ जिसका मुझे डर था। आज क्लब जाते ही मुझ पर चारों ओर से संदेहात्मक दृष्टि पड़ने लगेगी। कल ही कमिश्नर साहब से मिलने जाना है, उन्होंने पूछा तो क्या कहूँगा? क्या कोई बहाना सोचूँ?

वह सारी रात इसी चिन्ता में डूबे रहे। इंदु भी कुछ गुमसुम थी। प्रातःकाल दो-चार मित्र आ गये और उसी लेख की चर्चा की। एक साहब बोले—मैं कमिश्नर से मिलने गया था, तो वह उसी लेख को पढ़ रहा था और रह-रहकर ज़मीन पर पैर पटकता था।

राजा साहब के होश और भी उड़ गये। झट उन्हें एक उपाय सूझ गया। मोटर तैयार

कराई और कमिश्नर के बँगले पर जा पहुँचे। यों तो यह महाशय राजा साहब का कार्ड पाते ही बुला लिया करते थे, आज अरदली ने कहा—साहब एक ज़रूरी काम कर रहे हैं, मेम साहब बैठी हैं, आप एक घंटा ठहरें।

राजा साहब समझ गये कि लक्षण अच्छे नहीं हैं। बैठकर एक अँगरेज़ी पत्रिका के चित्र देखने लगे—वाह, कितने साफ और सुंदर चित्र हैं!

किसी तरह एक घंटा गुजरा और साहब ने बुलाया। राजा साहब अन्दर गये तो साहब की त्योरियाँ चढ़ी हुई देखीं। एक घंटे इंतज़ार से झुँझला गये थे, खड़े-खड़े बोले—आपको अवकाश हो, तो मैं कुछ कहूँ, नहीं तो फिर कभी आऊँगा।

कमिश्नर साहब ने रुखाई से पूछा—मैं पहले आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि इस पत्र ने आपके विषय में जो आलोचना की है, वह आपकी नज़र से गुजरी है?

राजा साहब—जी हाँ, देख चुका हूँ।

कमिश्नर—आप इसका कोई जवाब देना चाहते हैं?

राजा साहब—मैं इसकी कोई ज़रूरत नहीं समझता; अगर इतनी-सी बात पर मुझ पर अविश्वास किया जा सकता है और मेरी बरसों की वफादारी का कुछ विचार नहीं किया जाता, तो मुझे विवश होकर अपना पद-त्याग करना पड़ेगा।

कमिश्नर ने कुछ नरम होकर कहा—गवर्नमेंट के हर एक कर्मचारी का धर्म है कि किसी को अपने ऊपर ऐसे इलज़ाम लगाने का अवसर न दे।

राजा साहब—मैं जानता हूँ आप लोग यह किसी तरह भूल नहीं सकते कि मैं भारतवासी हूँ, इसी प्रकार मेरे बोर्ड के सहयोगियों के लिए यह भूल जाना असम्भव है कि मैं शासन का एक अंग हूँ। आप जानते हैं कि मैं बोर्ड में मिस्टर जॉन सेवक को पाँड़ेपुर की ज़मीन दिलाने का प्रस्ताव करनेवाला हूँ; लेकिन जब तक मैं अपने आचरण से यह सिद्ध न कर दूँगा कि मैंने स्वतः, बगैर किसी दबाव के, केवल प्रजा के हित के लिए यह प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसकी स्वीकृति की कोई आशा नहीं है। यही कारण है, जो मुझे कल स्टेशन पर ले गया था।

कमिश्नर की बाँछें खिल गईं। हँस-हँसकर बातें बनाने लगा।

राजा साहब—मुझे आपसे पूरी सहायता मिलनी चाहिए।

कमिश्नर—मैं यथाशक्ति आपकी सहायता करूँगा।

राजा साहब—बोर्ड ने मंजूर भी कर लिया, तो मुहल्लेवालों की तरफ़ से फसाद की आशंका है।

कमिश्नर—कुछ परवा नहीं, मैं सुपरिंटेंडेंट-पुलिस को ताकीद कर दूँगा कि वह आपको मदद करते रहें।

राजा साहब यहाँ से चले, तो ऐसा मालूम होता था, मानो आकाश पर चल रहे हों। यहाँ से वह मि. क्लार्क के पास गये और वहाँ भी इसी नीति से काम लिया। दोपहर को घर आये। उनके हृदय में यह खयाल खटक रहा था कि इस बहाने से मेरा काम तो निकल गया; लेकिन मैं सूरदास के साथ कहीं ऐसी ज्यादती तो नहीं कर रहा हूँ कि अंत में मुझे नगरवासियों के

सामने लज्जित होना पड़े? इसी विषय में बातचीत करने के लिए वह इंदु के पास आये और बोले—तुम कोई ज़रूरी काम तो नहीं कर रही हो? मुझे एक बात में तुमसे कुछ सलाह करनी है।

इंदु डरी कि कहीं सलाह करते-करते वाद-विवाद न होने लगे। बोली—काम तो कुछ नहीं कर रही हूँ; लेकिन मैं आपको कोई सलाह देने के योग्य नहीं हूँ। मुझे तो केवल खाने, सोने और आपको दिक करने के लिए बनाया है।

राजा साहब—तुम्हारे दिक करने ही में तो मज़ा मिलता है। बतलाओ, सूरदास की ज़मीन के बारे में तुम्हारी क्या राय है? तुम मेरी जगह होतीं तो क्या करतीं?

इंदु—मेरी राय में तो सूरदास से उसके बाप-दादों की जायदाद छीन लेना अन्याय होगा।

राजा साहब—तुम्हें मालूम है कि सूरदास को इस जायदाद से कोई लाभ नहीं होता, केवल इधर-उधर के ढोर चरा करते हैं?

इंदु—उसे यह इतमीनान तो है कि ज़मीन मेरी है। मुहल्लेवाले उसका एहसान तो मानते ही होंगे? उसकी धर्म-प्रवृत्ति पुण्य कार्य से संतुष्ट होगी।

राजा साहब—लेकिन मैं नगर के मुख्य व्यवस्थापक की हैसियत से एक व्यक्ति के यथार्थ या कल्पित हित के लिए नगर का हज़ारों रुपये का नुकसान तो नहीं करा सकता? कारखाना खुलने से हज़ारों मनुष्यों की जीविका चलेगी, नगर की आय में वृद्ध होगी, सबसे बड़ी बात यह है कि उस अमिट धन का भाग देश में रह जायेगा, जो सिगरेट के लिए अन्य देशों को देना पड़ता है।

इंदु ने राजा के मुँह की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। सोचा—इनका अभिप्राय क्या है? क्या अधिकारियों के दबाव से इन्होंने ज़मीन को मिस्टर सेवक के अधिकार में देने का फैसला कर लिया है और मुझसे अपने निश्चय का अनुमोदन कराना चाहते हैं? बोली—इस दृष्टिकोण से तो यही न्यायसंगत है कि सूरदास की ज़मीन छीन ली जाये।

राजा साहब—भई, इतनी जल्द पहलू बदलने की सनद नहीं। अपनी उसी युक्ति पर स्थिर रहो। मुझे जो कुछ करना था, कर चुका; अब तुमसे तर्क करके अपना इतमीनान करना चाहता हूँ।

इंदु—अगर मेरे मुँह से कोई अप्रिय शब्द निकल जाये, तो आप नाराज़ तो न होंगे?

राजा साहब—इसकी परवा न करो, जातीय सेवा का दूसरा नाम बेहयाई है। अगर ज़रा-ज़रा-सी बात पर नाराज़ होने लगें, तो हमें पागलखाने जाना पड़े।

इंदु—यदि एक व्यक्ति के हित के लिए आप नगर का अहित नहीं करना चाहते तो क्या सूरदास ही ऐसा व्यक्ति है, जिसके पास दस बीघे ज़मीन हो? ऐसे लोग भी तो नगर में हैं, जिनके पास इससे कहीं ज़्यादा ज़मीन है। हमारे बँगले का क्षेत्र पंद्रह बीघे से कम न होगा। मि. सेवक के बँगले का भी पाँच बीघे से कम का घेरा नहीं है और दादाजी का भवन तो पूरा एक गाँव है। आप इनमें से कोई भी ज़मीन इस कारखाने के लिए ले सकते हैं।

राजा साहब—(मुस्कराकर) बड़े मार्के की युक्ति है। कायल हो गया। मेरे पास इसका

कोई जवाब नहीं। सारा मोहल्ला उसकी हिमायत करने पर तैयार है; यहाँ तक कि लोग मि. सेवक के गुमाश्ते के घर में घुस गये, उनके भाइयों को मारा, आग लगा दी, स्त्रियों तक की बेइज्जती की।

इंदु—मेरे विचार में तो यह इस बात का एक और प्रमाण है कि उस ज़मीन को छोड़ दिया जाये। उस पर कब्जा करने से ऐसी घटनाएँ कम न होंगी, बढ़ेंगी। मुझे तो भय है, कहीं खून-खराबा न हो जाये।

राजा साहब—जो लोग स्त्रियों की बेइज्जती कर सकते हैं, वे दया के योग्य नहीं।

इंदु—जिन लोगों की ज़मीन आप छीन लेंगे, वे आपके पाँव न सहलाएँगे।

राजा साहब—आश्चर्य है, तुम स्त्रियों के अपमान को मामूली बात समझ रही हो।

इंदु—फौज के गोरे, रेल के कर्मचारी, नित्य हमारी बहनों का अपमान करते रहते हैं, उनसे तो कोई नहीं बोलता। इसीलिए कि आप उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। अगर लोगों ने उपद्रव किया है, तो अपराधियों पर मुकदमा दायर कीजिए, उन्हें दंड दिलाइए। उनकी जायदाद क्यों जब्त करते हैं?

राजा साहब—तुम जानती हो, मि. सेवक की यहाँ के अधिकारियों से कितनी राह-रस्म है। मिस्टर क्लार्क तो उनके द्वार के दरबान बने हुए हैं। अगर मैं उनकी इतनी सेवा न कर सका, तो हुक्काम का विश्वास मुझ पर से उठ जायेगा।

इंदु ने चिंतित हो कहा—मैं नहीं जानती थी कि प्रधान की दशा इतनी शोचनीय होती है।

राजा साहब—अब तो मालूम हो गया। बतलाओ, अब मुझे क्या करना चाहिए?

इंदु—पद-त्याग।

राजा साहब—मेरे पद-त्याग से ज़मीन बच सकेगी?

इंदु—आप दोष-पाप से तो मुक्त हो जायेंगे!

राजा साहब—ऐसी गौण बातों के लिए पद-त्याग हास्यजनक है।

इंदु को अपने पति के प्रधान होने का बड़ा गर्व था। उसका ख्याल था कि यहाँ राजा साहब पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, बोर्ड उनके अधीन है, पर अब विदित हुआ कि उसे कितना भ्रम था। उसका गर्व चूर-चूर हो गया। उसे आज ज्ञात हुआ कि प्रधान केवल राज्याधिकारियों के हाथों का खिलौना है। राजा साहब की पद-लोलुपता उसे कुठाराघात के समान लगी। बोली—उपहास इतना निंद्य नहीं है, जितना अन्याय। मेरी समझ में नहीं आता कि आपने इस पद की कठिनाइयों को जानते हुए भी क्यों इसे स्वीकार किया। अगर आप न्याय-विचार से सूरदास की ज़मीन का अपहरण करते, तो मुझे आपसे कोई शिकायत न होती; लेकिन केवल अधिकारियों के भय से या बदनामी से बचने के लिए न्याय-पथ से मुँह फेरना अत्यंत अपमानजनक है। आपको नगरवासियों और विशेषतः दीनजनों के स्वत्व की रक्षा करनी चाहिए। मैं राजनीति के सिद्धान्तों से परिचित नहीं हूँ पर आपका जो मानवीय धर्म है, वह आपसे कह रही हूँ। मैं आपको सचेत किये देती हूँ कि आपने अगर हुक्काम के दबाव से सूरदास की ज़मीन ली, तो मैं चुपचाप बैठी न रह सकूँगी।

यह कहते-कहते इंदु रुक गयी। उसे ध्यान आ गया कि मैं आवेश में आकर औचित्य की सीमा से बाहर होती जाती हूँ। राजा साहब इतने लज्जित हुए कि बोलने को शब्द न मिलते थे। अंत में शरमाते हुए बोले—तुम्हें मालूम नहीं कि राष्ट्र के सेवकों को कैसी-कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। मि. क्लार्क और मि. सेवक में विशेष घनिष्ठता हो जाने के कारण परिस्थिति बिलकुल बदल गयी है। मिस सेवक जब से तुम्हारे घर से गयी है, मि. क्लार्क नित्य ही उन्हीं के पास बैठे रहते हैं, इजलास पर नहीं जाते, किसी से मिलते तक नहीं। दोनों साथ-साथ सैर करने जाते हैं, साथ-साथ थिएटर देखने जाते हैं। मेरा अनुमान है कि मि. सेवक ने वचन दे दिया है।

इंदु—इतनी जल्दी! अभी उसे हमारे यहाँ से गये एक सप्ताह से ज़्यादा न हुआ होगा।

राजा साहब—मिसेज़ सेवक ने पहले से ही सब कुछ पक्का कर रखा था। मिस सेवक के वहाँ जाते ही प्रेम-क्रीड़ा शुरू हो गयी।

इंदु ने अब तक सोफ़िया को एक साधारण ईसाई लड़की समझ रखा था। यद्यपि वह उससे बहन का-सा बर्ताव करती थी, उसकी योग्यता का आदर करती थी, उससे प्रेम करती थी, किन्तु दिल में उसे अपने से नीचा समझती थी। पर मि. क्लार्क से उसके विवाह की बात ने उसके हृद्‌गत भावों को आंदोलित कर दिया। सोचने लगी—मि. क्लार्क से विवाह हो जाने के बाद जब सोफ़िया मिसेज़ क्लार्क बनकर मुझसे मिलेगी, तो अपने मन में मुझे तुच्छ समझेगी; उसके व्यवहार में, बातों में, शिष्टाचार में बनावटी नम्रता की झलक होगी, वह मेरे सामने जितना ही झुकेगी, उतना ही मेरा सिर नीचा करेगी। यह अपमान मेरे सहे न सहा जायेगा।

अंत में इंदु ने निश्चय किया—मैं सोफ़िया से मिलूँगी ही नहीं। मैं अपने रानी होने का अभिमान तो उससे कर ही नहीं सकती।

ये सब बातें एक क्षण में इंदु के मन में आ गईं। बोली—मैं आपको कभी दबने की सलाह न दूँगी।

राजा साहब—और यदि दबना पड़े?

इंदु—तो अपने को अभागिनी समझूँगी।

राजा साहब—यहाँ तक तो कोई हानि नहीं; पर कोई आंदोलन तो न उठाओगी? यह इसलिए पूछता हूँ कि तुमने अभी मुझे यह धमकी दी है।

इंदु—मैं चुपचाप न बैठूँगी। आप दबें, मैं क्यों दबूँ?

राजा साहब—चाहे मेरी कितनी ही बदनामी हो जाये?

इंदु—मैं इसे बदनामी नहीं समझती।

राजा साहब—फिर सोच लो। यह मानी हुई बात है कि वह ज़मीन मि. सेवक को अवश्य मिलेगी। मैं रोकना भी चाहूँ, तो नहीं रोक सकता, और यह भी मानी हुई बात है कि इस विषय में तुम्हें मौनव्रत का पालन करना पड़ेगा।

राजा साहब अपने सार्वजनिक जीवन में अपनी सहिष्णुता और मृदु व्यवहार के लिए

प्रसिद्ध थे; पर निजी व्यवहारों में वह क्षमाशील न थे। इंदु का चेहरा तमतमा उठा, तेज़ होकर बोली—अगर आपको अपना सम्मान प्यारा है, तो मुझे भी अपना धर्म प्यारा है।

राजा साहब गुस्से के मारे वहाँ से उठकर चले गये और इंदु अकेली रह गयी।

सात-आठ दिनों तक दोनों के मुँह में दही जमा रहा। राजा साहब कभी घर में आ जाते, तो दो-चार बातें करके यों भागते, जैसे पानी में भीग रहे हों। न वह बैठते, न इंदु उन्हें बैठने को कहती। उन्हें यह दुःख था कि इसे मेरी ज़रा भी परवाह नहीं है। पग-पग पर मेरा रास्ता रोकती है। मैं अपना पदत्याग दूँ, तब इसे तस्कीन होगी।

इधर इंदु को दुःख था कि ईश्वर ने इन्हें सब कुछ दिया है, यह हाकिमों से क्यों इतना दबते हैं, क्यों इतनी ठकुरसुहाती करते हैं, अपने सिद्धान्तों पर स्थिर क्यों नहीं रहते, उन्हें क्यों स्वार्थ के नीचे रखते हैं, जाति-सेवा का स्वाँग क्यों भरते हैं?

शनैः-शनैः उसके विचारों में परिवर्तन होने लगा—यह उनका कसूर नहीं है, मेरा कसूर है। मैं क्यों उन्हें अपने आदर्श के अनुसार बनाना चाहती हूँ? स्त्री का कर्त्तव्य है कि अपने पुरुष की सहगामिनी बने।

शाम हो गयी थी। इंदु का चित्त बहुत घबरा रहा था। उसने सोचा, ज़रा अम्माँ जी के पास चलूँ कि सहसा राजा साहब सामने आकर खड़े हो गये। मुख निष्प्रभ हो रहा था, मानो घर में आग लगी हुई हो। भय-कम्पित स्वर में बोले—इंदु, मिस्टर क्लार्क मिलने आये हैं। अवश्य उसी ज़मीन के सम्बंध में कुछ बातचीत करेंगे। अब मुझे क्या सलाह देती हो? मैं एक कागज़ लाने का बहाना करके चला आया हूँ।

यह कहकर उन्होंने बड़े कातर नेत्रों से इंदु की ओर देखा, मानो सारे संसार की विपत्ति उन्हीं के सिर आ पड़ी हो। ज़रा साँस लेकर फिर बोले—अगर मैंने इनसे विरोध किया, तो मुश्किल में फँस जाऊँगा। तुम्हें मालूम नहीं, इन अँगरेज़ हुक्काम के कितने अधिकार होते हैं। यों चाहूँ, तो इसे नौकर रख लूँ, मगर इसकी एक शिकायत में मेरी सारी आबरू खाक में मिल जायेगी। ऊपरवाले हाकिम इसके खिलाफ मेरी एक भी न सुनेंगे। मैं इसकी बात दुलख नहीं सकता। मुझ पर दया करो, मुझ पर दया करो!

इंदु ने क्षमा-भाव से देखकर कहा—मुझसे आप क्या करने को कहते हैं?

राजा साहब—यही कि या तो मौन रहकर इस अत्याचार का तमाशा देखो, या मुझे अपने हाथों से थोड़ी-सी संखिया दे दो।

राजा साहब की इस कापुरुषता और विवशता, उनके भय-विकृत मुखमंडल, दयनीय दीनता तथा क्षमा-प्रार्थना पर इंदु करुणार्द्र हो गयी—इस करुणा में सहानुभूति न थी, सम्मान न था। यह वह दया थी, जो भिखारी को देखकर किसी उदार प्राणी के हृदय में उत्पन्न होती है। बोली—अगर आप समझते हैं कि क्लार्क की अप्रसन्नता आपके लिए दुस्सह है, तो जिस बात से वह प्रसन्न हो, वही कीजिए। मैं वादा करती हूँ कि आपके बीच में मुँह न खोलूँगी। जाइए, साहब को देर हो रही होगी, कहीं इसी बात पर न नाराज़ हो जायें!

राजा साहब इस व्यंग्य से दिल में ऐंठकर रह गये। चुपके से उठे और चले गये। इंदु के आश्वासन से उन्हें संतोष न हुआ। सोचने लगे—मैं इसकी नज़रों में गिर गया। बदनामी से

इतना डरता था, पर घर ही में मुँह दिखाने लायक न रहा।

राजा साहब के जाते ही इंदु ने एक लम्बी साँस ली और फर्श पर लेट गयी। उसके मुँह से सहसा ये शब्द निकले—इनका हृदय से कैसे सम्मान करूँ? इन्हें अपना उपास्य देव कैसे समझूँ? मैं अपने पति की पूजा करना चाहती हूँ; पर दिल पर मेरा काबू नहीं! भगवन्! तुम मुझे इस कठिन परीक्षा में क्यों डाल रहे हो?

16

अरावली की पहाड़ियों में एक वट-वृक्ष के नीचे विनयसिंह बैठे हुए हैं। उनके अंतस्तल में निरंतर भीषण संग्राम होता रहता है। सेवा-मार्ग उनका ध्येय था। प्रेम के काँटें उसमें बाधक हो रहे थे। उन्हें अपने मार्ग से हटाने के लिए वह सदैव यत्न करते रहते हैं। बाहर की आग केवल देह का नाश करती है, जो स्वयं नश्वर है, भीतर की आग अनंत आत्मा का सर्वनाश कर देती है।

विनय को यहाँ आये कई महीने हो गये; पर उनके चित्त की अशांति समय के साथ बढ़ती ही जाती है। पहले उन्होंने यहाँ के कष्टों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर अपनी माता को पत्र लिखे। उन्हें विश्वास था कि अम्माँजी मुझे बुला लेंगी। पर वह मनोरथ पूरा न हुआ। इतने ही में सोफ़िया का पत्र मिल गया, जिसने उनके धैर्य के टिमटिमाते हुए दीपक को बुझा दिया। अब उनके चारों ओर अँधेरा था।

किन्तु इस चिन्ता और ग्लानि की दशा में भी वह यथासाध्य अपने कर्त्तव्य का पालन करते जाते हैं। जसवंतनगर के प्रांत में एक बच्चा भी नहीं है, जो उन्हें न पहचानता हो। देहात के लोग उनके इतने भक्त हो गये हैं कि ज्यों ही वह किसी गाँव में जा पहुँचते हैं, सारा गाँव उनके दर्शनों के लिए एकत्र हो जाता है। उन्होंने उन्हें अपनी मदद आप करना सिखाया है। प्रत्येक व्यक्ति अब केवल अपने ही लिए नहीं, दूसरों के लिए भी है; वह अब अपने को प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ नहीं, मित्रों और सहयोगियों से घिरा हुआ समझता है। सामूहिक जीवन का पुनरुद्धार होने लगा है।

विनय को चिकित्सा का भी अच्छा ज्ञान है। उनके हाथों सैकड़ों रोगी आरोग्य-लाभ कर चुके हैं। कितने ही घर, जो परस्पर के कलह से बिगड़ गये थे, फिर आबाद हो गये हैं। किन्तु ज्यों-ज्यों उनमें प्रजा की भक्ति होती जा रही है, प्रजा पर उनका प्रभाव बढ़ता जाता है, राज्य के अधिकारी वर्ग उनसे बदगुमान होते जाते हैं। उनके विचार में प्रजा दिन-दिन सरकश होती जाती है। दरबार ने इन सूचनाओं से आशंकित होकर कई गुप्तचरों को विनय के आचार-विचार की टोह लगाने के लिए तैनात कर दिया है; पर उनकी निःस्पृह सेवा किसी को उन पर आघात करने का अवसर नहीं देती।

बरगद के नीचे ठंडी-ठंडी हवा जो लगी, तो बैठे-बैठे सो गये। आँख खुली, तो दोपहर ढल

चुकी थी। झपटकर उठ बैठे, लकड़ी सँभाली और आगे बढ़े। आज उन्होंने जसवंतनगर में विश्राम करने का विचार किया था। संध्या होती जाती थी और अभी जसवंतनगर का कहीं पता न था। राह में एक आदमी मिला, मालूम हुआ कि डाकिया है। वह विनय को पहचानता था। सलाम करके बोला—इस चाल से तो आप आधी रात को भी जसवंतनगर न पहुँचेंगे।

विनय—पैर में बेवाय फट गयी है, चलते नहीं बनता। तुम खूब मिले। मैं बहुत घबरा रहा था कि अकेले कैसे जाऊँगा।

डाकिए ने विनयसिंह के हाथ में एक पत्र रख दिया। रानीजी का पत्र था। यद्यपि अँधेरा हो रहा था, पर विनय इतने उत्सुक हुए कि तुरंत लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ने लगे। उनके सिर में ऐसा चक्कर आया कि गिरने का भय हुआ। ज़मीन पर बैठ गये। डाकिए ने घबराकर पूछा—क्या कोई बुरा समाचार है? आपका चेहरा पीला पड़ गया है।

विनय—नहीं, कोई ऐसी खबर नहीं। पैरों में दर्द हो रहा है, शायद मैं आगे न जा सकूँगा।

डाकिया—मैं आपको कंधे पर बैठाकर ले चलूँगा; पर यहाँ न छोड़ूँगा।

विनय—भाई, तुम बहुत दिक कर रहे हो। चलो, लेकिन मैं धीरे-धीरे चलूँगा। तुम न होते, तो आज मैं यहीं पड़ रहता।

डाकिया—आप न होते, तो मेरी जान की कुशल न थी। यह न समझिए कि मैं केवल आपकी खातिर ज़िद कर रहा हूँ, मैं इतनी पुण्यात्मा नहीं हूँ। अपनी रक्षा के लिए आपको साथ लिए चलता हूँ। मेरे पास इस वक़्त ढाई सौ रुपये हैं। दोपहर को एक जगह सो गया, बस देर हो गयी। आप मेरे भाग्य से मिल गये, नहीं तो डाकुओं से जान न बचती।

विनय—यह तो बड़े जोखिम की बात है। तुम्हारे पास कोई हथियार है?

डाकिया—मेरे हथियार आप हैं। आपके साथ मुझे कोई खटका नहीं है। आपको देखकर किसी डाकू की मजाल नहीं कि मुझ पर हाथ उठा सके।

सहसा घोड़ों की टॉप की आवाज़ कान में आयी। डाकिए ने घबराकर पीछे देखा। पाँच सवार भाले उठाए, घोड़े बढ़ाए चले आते थे। उसके होश उड़ गये, काटो तो बदन में लहू नहीं। बोला—लीजिए, सब आ ही पहुँचे। इन सबों के मारे इधर रास्ता चलना कठिन हो गया है। अब आप ही बचाएँ, तो मेरी जान बच सकती है।

इतने में पाँचों सवार सिर पर आ पहुँचे। उनमें से एक ने पुकारा—अबे, ओ डाकिए, इधर आ, तेरे थैले में क्या है?

विनयसिंह ज़मीन पर बैठे हुए थे। लकड़ी टेककर उठे कि इतने में एक सवार ने डाकिए पर भाले का वार किया। डाकिया सेना में रह चुका था। वार को थैले पर रोका। वह दूसरा वार करनेवाला ही था कि विनय सामने आकर बोले—भाइयो, यह क्या अँधेर करते हो! क्या थोड़े-से रुपयों के लिए एक ग़रीब की जान ले लोगे?

सवार—जान इतनी प्यारी है, तो रुपये क्यों नहीं देता?

विनय—जान भी प्यारी है और रुपये भी प्यारे हैं। दोनों में से एक भी नहीं दे सकता।

सवार—तो दोनों ही देने पड़ेंगे।

विनय—पहले मेरा काम तमाम कर दो। जब तक मैं हूँ, तुम्हारा मनोरथ न पूरा होगा।

सवार—हम साधु-संतों पर हाथ नहीं उठाते। सामने से हट जाओ।

विनय—मेरा जो धर्म है, वह मैं करता हूँ; तुम्हारा जो धर्म हो, वह तुम करो।

दूसरा सवार—तुम कौन हो?

तीसरा सवार—बेधा हुआ है, मार दो एक हाथ, गिर पड़े, प्रायश्चित्त कर लेंगे।

पहला सवार—आखिर तुम हो कौन?

विनय—मैं कोई हूँ, तुम्हें इससे मतलब?

दूसरा सवार—तुम इधर के रहनेवाले नहीं जान पड़ते। क्यों बे डाकिए, यह कौन हैं?

डाकिया—यह तो नहीं जानता, पर इनका नाम है विनयसिंह। धर्मात्मा और परोपकारी आदमी हैं। कई महीनों से इस इलाके में ठहरे हुए हैं।

विनय का नाम सुनते ही पाँचों सवार घोड़ों से कूद पड़े और विनय के सामने हाथ बाँधकर खड़े हो गये। सरदार ने कहा—महाराज, हमारा अपराध क्षमा कीजिए। आज आपके दर्शन पाकर जीवन सफल हो गया। इस इलाके में आपका यश घर-घर गाया जा रहा है। अब हम पापियों का उद्धार कीजिए। हमें आज्ञा दीजिए कि आपके चरणों की रज माथे पर लगाएँ।

विनय ने मुस्कराकर कहा—तो डाकिए की जान न लोगे? तुमसे हमें डर लगता है।

सरदार—महाराज, हमें अब लज्जित न कीजिए। हमारा अपराध क्षमा कीजिए। डाकिया महाशय, तुम आज किसी भले आदमी का मुँह देखकर उठे थे, नहीं तो अब तक तुम्हारा प्राण-पखेरू आकाश में उड़ता होता। मेरा नाम सुना है न? वीरपालसिंह मैं ही हूँ, जिसने राज्य के नौकरों को नेस्तनाबूद करने का प्रण कर लिया है।

विनय—राज्य के नौकरों पर इतना अत्याचार क्यों करते हो?

वीरपाल—महाराज, आप तो कई महीनों से इस इलाके में हैं, क्या आपको इन लोगों की करतूतें मालूम नहीं हैं? ये लोग प्रजा को दोनों हाथों से लूट रहे हैं। इनमें न दया है, न धर्म। हैं हमारे ही भाईबंद, पर हमारी ही गरदन पर छुरी चलाते हैं। जिसे घूस न दीजिए, वही आपका दुश्मन है। हमने लाचार होकर इस हत्या-मार्ग पर पग रखा है। किसी तरह तो इन दुष्टों की आँखें खुलें।

विनय—मुझे यहाँ की स्थिति का कुछ ज्ञान तो था; पर यह न मालूम था कि दशा इतनी शोचनीय है। मैं अब स्वयं राजा साहब से मिलूँगा और यह सारा वृत्तांत उनसे कहूँगा।

वीरपाल—महाराज, कहीं ऐसी भूल भी न कीजिएगा, नहीं तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

विनय—इसकी चिन्ता नहीं। संतोष तो हो जायेगा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया! मुझे तुमसे भी कुछ कहना है। तुम्हारा यह विचार कि इन हत्याकांडों से अधिकारीवर्ग प्रजापरायण हो जायेगा, मेरी समझ में निर्मूल और भ्रमपूर्ण है।

वीरपाल—हम आपसे तर्क तो नहीं कर सकते; पर इतना जानते हैं कि विष विष ही से शांत होता है। जब मनुष्य दुष्टता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, उसमें दया और धर्म लुप्त

हो जाता है, जब उसमें आत्मा की ज्योति मलिन हो जाती है, तब उसके लिए केवल एक ही उपाय शेष रह जाता है, और वह है प्राणदंड। व्याघ्र-जैसे हिंसक पशु सेवा से वशीभूत हो सकते हैं! पर स्वार्थ को कोई दैविक शक्ति परास्त नहीं कर सकती।

विनय—ऐसी शक्ति है तो। हाँ, केवल उसका उचित उपयोग करना चाहिए।

विनय ने अभी बात भी न पूरी की थी कि अकस्मात् किसी तरफ़ से बंदूक की आवाज़ कानों में आयी। सवारों ने चौंककर एक-दूसरे की तरफ़ देखा और एक तरफ़ घोड़े छोड़ दिये। विनय की समझ में कुछ न आया। डाकिए से पूछा—ये सब किधर जा रहे हैं?

डाकिया—बंदूक की आवाज़ ने किसी शिकार की खबर दी होगी, उसी तरफ़ गये हैं। आज किसी सरकारी नौकर की जान पर ज़रूर बनेगी।

विनय—अगर यहाँ के कर्मचारियों का यही हाल है, जैसा इन्होंने बयान किया तो मुझे बहुत जल्द महाराज की सेवा में जाना पड़ेगा।

डाकिया—महाराज, अब आपसे क्या परदा है; सचमुच यही हाल है। हम लोग तो टके के मुलाजिम ठहरे, चार पैसे ऊपर से न कमाएँ तो बाल-बच्चों को कैसे पालें?

दस बजते-बजते दोनों आदमी जसवंतनगर पहुँच गये। विनय बस्ती के बाहर ही एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और डाकिए से जाने को कहा। डाकिए ने उनसे अपने घर चलने का बहुत आग्रह किया। जब वह किसी तरह न राज़ी हुए, तो अपने घर से उनके वास्ते भोजन बनवा लाया। भोजन के उपरांत दोनों आदमी उसी जगह लेटे। डाकिया उन्हें अकेला छोड़कर घर न गया। वह तो थका था, लेटते ही सो गया, पर विनय को नींद कहाँ! रानीजी के पत्र का एक-एक शब्द उनके हृदय में काँटे के समान चुभ रहा था। रानी ने लिखा था—तुमने मेरे साथ, और अपने बंधुओं के साथ दगा की है। मैं तुम्हें कभी क्षमा न करूँगी। तुमने मेरी अभिलाषाओं को मिट्टी में मिला दिया। तुम इतनी आसानी से इंद्रीयों के दास हो जाओगे, इसकी मुझे लेश-मात्र भी आशंका न थी। तुम्हारा वहाँ रहना व्यर्थ है, घर लौट आओ और विवाह करके आनंद से भोग-विलास करो। हाँ, अब मुझे तुम्हारे ऊपर वह घमंड न होगा, जिस पर मैं फूली हुई थी। तुम्हारे पिताजी को अभी यह वृत्तांत मालूम नहीं है। वह सुनेंगे, तो न जाने उनकी क्या दशा होगी। मैं बताए देती हूँ कि अब तुम्हें अपनी प्रेम-क्रीड़ा के लिए कोई दूसरा क्षेत्र ढूँढ़ना पड़ेगा; क्योंकि मिस सोफ़िया की मँगनी मि. क्लार्क से हो गयी है और दो-चार दिन में विवाह भी होनेवाला है। यह इसीलिए लिखती हूँ कि तुम्हें सोफ़िया के विषय में कोई भ्रम न रहे और विदित हो जाये कि जिसके लिए तुमने अपने जीवन की और अपने माता-पिता की अभिलाषाओं का खून किया, उसकी दृष्टि में तुम क्या हो!

विनय के मन में ऐसा उद्वेग हुआ कि इस वक़्त सोफ़िया सामने आ जाती, तो उसे धिक्कारता—यही मेरे अनंत हृदयानुराग का उपहार है? तुम्हारे ऊपर मुझे कितना विश्वास था, पर अब ज्ञात हुआ कि वह तुम्हारी प्रेमक्रीड़ा मात्र थी। क्लार्क विद्वान, चतुर, योग्य गुणों का आगार ही क्यों न हो, लेकिन अगर मैंने तुम्हें पहचानने में धोखा नहीं खाया है, तो तुम उसके साथ प्रसन्न न रह सकोगी।

यह सोचते-सोचते विनय के मन में प्रत्याघात का विचार उत्पन्न हुआ। नैराश्य में प्रेम भी

द्वेष का रूप धारण कर लेता है। उनकी प्रबल इच्छा हुई कि सोफ़िया को एक लम्बा पत्र लिखूँ और उसे जी भरकर धिक्कारूँ।

इसी उद्विग्न दशा में करवटें बदलते-बदलते विनय की आँखें झपक गईं। पहाड़ी देशों में रातें बड़ी सुहावनी होती हैं। एक ही झपकी में तड़का हो गया। मालूम नहीं वह कब तक पड़े सोया करते; लेकिन पानी के झींसे मुँह पर पड़े, तो घबड़ाकर उठ बैठे। बादल घिरे हुए थे और हलकी-हलकी फुहार पड़ रही थी। जसवंतनगर चलने का विचार करके उठे थे कि कई आदमियों को घोड़े भगाए अपनी तरफ़ आते देखा। समझे, शायद वीरपालसिंह और उनके साथी होंगे; पर समीप आये, तो मालूम हुआ कि रियासत की पुलिस के आदमी हैं। डाकिया उनके पास ही सोया था, पर उसका कहीं पता न था।

अफसर ने पूछा—तुम्हारा ही नाम विनयसिंह हैं?

'जी हाँ।'

'कल रात को तुम्हारे साथ कई आदमियों ने यहाँ पड़ाव डाला था?'

'जी नहीं, मेरे साथ केवल यहाँ के डाकघर का एक डाकिया था।'

'तुम वीरपालसिंह को जानते हो?'

'इतना ही जानता हूँ कि वह मुझे रास्ते में मिल गया, वहाँ से कहाँ गया, यह मैं नहीं जानता।'

'इसका आशय मैं यह समझता हूँ कि तुम्हें यह बात मालूम थी।'

'आप इसका जो आशय चाहें, समझें।

'उसने यहाँ से तीन मील पर सरकारी खजाने की गाड़ी लूट ली है और एक सिपाही की हत्या कर डाली है। पुलिस को संदेह है कि यह संगीन वारदात तुम्हारे इशारे से हुई है। इसलिए हम तुम्हें गिरफ्तार करते हैं।'

'यह मेरे ऊपर घोर अन्याय है। मुझे उस डाके और हत्या की ज़रा भी खबर नहीं है।'

'इसका फैसला अदालत से होगा।'

'कम-से-कम मुझे इतना पूछने का अधिकार तो है कि पुलिस को मुझ पर यह संदेह करने का क्या कारण है?'

'उसी डाकिए का बयान है, जो रात को तुम्हारे साथ यहाँ सोया था।'

विनय ने विस्मित होकर कहा—यह उसी डाकिए का बयान है!

'हाँ, उसने घड़ी रात रहे इसकी सूचना दी।'

दो सिपाहियों ने विनय के हाथों में हथकड़ी डाल दी, उन्हें एक घोड़े पर सवार कराया और जसवंतनगर की ओर चले।

17

विनयसिंह छः महीने से कारागार में पड़े हुए हैं। अधिकारियों को अब भी भ्रम है कि इन्हीं के इशारे से डाका पड़ा था। विनयसिंह पहले अन्य कैदियों के साथ रखे गये थे, लेकिन जब उन्होंने अपराधियों को उनकी ओर बहुत आकृष्ट होते देखा, तो इस भय से कि कहीं जेल में उपद्रव न हो जाये; उन्हें सबसे अलग एक काल-कोठरी में बंद कर दिया। चौबीस घंटे में केवल एक बार द्वार खुलता, रक्षक भोजन रखकर फिर द्वार बंद कर देता। वह अपने मन में कहते थे—यह कठिन व्रत निष्फल नहीं जा सकता। जब तक हम कठिनाइयाँ झेलना न सीखेंगे, जब तक हम भोग-विलास का परित्याग न करेंगे, हमसे देश का कुछ उपकार नहीं हो सकता। यही विचार उन्हें धैर्य देता रहता था।

किन्तु जब सोफ़िया की कलुषता की याद आ जाती, तो उनका सारा धैर्य, उत्साह और आत्मोत्सर्ग नैराश्य में विलीन हो जाता था। वह अपने को कितना ही समझाते कि सोफ़िया ने जो कुछ किया, विवश होकर किया होगा; पर इस युक्ति से उन्हें संतोष न होता था—क्या सोफ़िया स्पष्ट नहीं कह सकती थी कि मैं विवाह नहीं करना चाहती? विवाह के विषय में माता-पिता की इच्छा हमारे यहाँ निश्चयात्मक है; लेकिन ईसाइयों में स्त्री की इच्छा ही प्रधान समझी जाती है। जब सोफ़िया-जैसी विचारशील, आन पर जान देनेवाली, सिद्धान्त-प्रिय, उन्नत-हृदय युवती यों विचलित हो सकती है, तो दूसरी स्त्रियों से क्या आशा की जा सकती है?

एक दिन विनयसिंह रात के समय लेटे सोच रहे थे कि न जाने मेरे साथियों पर क्या गुजरी, मेरी ही तरह वे भी तो विपत्ति में नहीं फँस गये, किसी की कुछ खबर ही नहीं कि सहसा उन्हें अपने सिरहाने की ओर एक धमाके की आवाज़ सुनाई दी। वह चौंक पड़े, और कान लगाकर सुनने लगे। मालूम हुआ कि कुछ लोग दीवार खोद रहे हैं। विनय को आश्चर्य हुआ—ये कौन लोग हैं? अगर चोर हैं, तो जेल की दीवार तोड़ने से इन्हें क्या मिलेगा? शायद समझते हैं, जेल के दारोग़ा का यही मकान है। वह इसी हैस-बैस में थे कि अन्दर प्रकाश की एक झलक आयी। मालूम हो गया कि चोरों ने अपना काम पूरा कर लिया। सेंध के सामने जाकर बोले—तुम कौन हो? यह दीवार क्यों खोद रहे हो?

बाहर से आवाज़ आयी—हम आपके पुराने सेवक हैं। हमारा नाम वीरपालसिंह है।

विनय ने तिरस्कार के भाव से कहा—क्या तुम्हारे लिए किसी खजाने की दीवारें नहीं हैं, जो जेल की दीवार खोद रहे हो? यहाँ से चले जाओ, नहीं तो मैं शोर मचा दूँगा।

वीरपाल—महाराज, हमसे उस दिन बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिए। हमें न मालूम था कि केवल एक क्षण हमारे साथ रहने के कारण आपको यह कष्ट भोगना पड़ेगा, नहीं तो हम सरकारी खजाना न लूटते। आइए, आपके लिए घोड़ा हाज़िर है।

विनय—मैं अधर्मियों के हाथों अपनी रक्षा नहीं कराना चाहता। अगर तुम समझते हो कि मैं इतना बड़ा अपराध सिर पर रखे हुए जेल से भागकर अपनी जान बचाऊँगा, तो तुम धोखे में हो। मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है।

वीरपाल—अपरामी तो हम हैं, आप तो सर्वथा निरपराध हैं, आपके ऊपर तो अधिकारियों ने यह घोर अन्याय किया है।

विनय—जब तक न्यायालय मुझे मुक्त न करे, मैं यहाँ से किसी तरह नहीं जा सकता।

वीरपाल—यहाँ के न्यायालयों से न्याय की आशा रखना चिड़िया से दूध निकालना है। हम सब-के-सब इन्हीं अदालतों के मारे हुए हैं। मैंने कोई अपराध नहीं किया था, मैं अपने गाँव का मुखिया था; किन्तु मेरी सारी जायदाद केवल इसीलिए जब्त कर ली गयी कि मैंने एक असहाय युवती को इलाकेदार के हाथों से बचाया था।

विनय—तुम लोग उस दिन मुझसे बातें करते-करते बंदूक की आवाज़ सुनकर ऐसे भागे कि मुझे तुम पर अब विश्वास ही नहीं आता।

वीरपाल—महाराज, कुछ न पूछिए, बंदूक की आवाज़ सुनते ही हमें उन्माद-सा हो गया। हमें जब रियासत से बदला लेने का अवसर मिलता है, तो हम अपने को भूल जाते हैं। जब से सुना है कि आप हमारी सहायता करने के संदेह में गिरफ्तार किये गये हैं, तब से इसी दौड़-धूप में हैं कि आपको यहाँ से निकाल ले जायें। यह जगह आप-जैसे धर्मपरायण, निर्भीक और स्वाधीन पुरुषों के लिए उपयुक्त नहीं है।

विनयसिंह ने बड़े गर्व से उत्तर दिया—अगर तुम्हारी बातें अक्षरशः सत्य हों, तो भी मैं कोई ऐसा काम न करूँगा, जिससे रियासत की बदनामी हो। मुझे अपने भाइयों के साथ विष का प्याला पीना मंजूर है; पर रोकर उनको संकट में डालना मंजूर नहीं। इस राज्य को हम लोगों ने सदैव गौरव की दृष्टि से देखा है, महाराजा साहब को आज भी हम उसी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। फिर यहाँ की अदालत पर क्यों न विश्वास करें?

'धोखा खाइएगा।'

'इसकी कोई चिन्ता नहीं।'

'मेरे सिर से कलंक कैसे उतरेगा?'

'अपने सत्कार्यों से।'

वीरपाल समझ गया कि यह अपने सिद्धान्त से विचलित न होंगे। पाँचों आदमी घोड़ों पर सवार हो गये और एक क्षण में हेमंत के घने कुहरे ने उन्हें अपने परदे में छिपा लिया।

अब विनय सोचने लगे—प्रातःकाल जब लोग यह सेंध देखेंगे, तो दिल में क्या खयाल

करेंगे? उन्हें निश्चय हो जायेगा कि मैं डाकुओं से मिला हुआ हूँ और गुप्त रीति से भागने की चेष्टा कर रहा हूँ। लेकिन नहीं, जब देखेंगे कि मैं भागने का अवसर पाकर भी न भागा, तो उनका दिल मेरी तरफ़ हो जायेगा। यह सोचते हुए उन्होंने पत्थर के टुकड़े चुनकर सेंध को बंद करना शुरू किया। उनके पास केवल एक हलका-सा कम्बल था, और हेमंत की तुषार-सिक्त वायु इस सूराख से सन-सन आ रही थी। सेंध बंद करने के बाद वह लेट गये। प्रातःकाल जेलखाने में हलचल मच गयी। विनयसिंह ने सम्पूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। अधिकारियों को बड़ी चिन्ता हुई कि कहीं वे ही डाकू इन्हें निकाल न ले जायें। उनके हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं। निश्चय हो गया कि इन पर आज ही अभियोग चलाया जाये। सशस्त्र पुलिस उन्हें अदालत की ओर ले चली। हज़ारों आदमियों की भीड़ साथ हो गयी। सब लोग यही कह रहे थे—हुक्काम ऐसे सज्जन, सहृदय और परोपकारी पुरुष पर अभियोग चलाते हैं, बुरा करते हैं। बेचारे ने न जाने किस साइत में यहाँ क़दम रखे थे। हम तो अभागे हैं ही, हमें पिछले कर्मों का फल भोगने में अपने हाल पर छोड़ देते, व्यर्थ इस आग में कूदे। सहसा एक मोटर आयी और शोफर ने उतरकर पुलिस अफसर को एक पत्र दिया। सब लोग ध्यान से देख रहे थे कि देखें, अब क्या होता है। इतने में विनयसिंह मोटर पर सवार कराए गये और मोटर हवा हो गयी। सब लोग चकित रह गये।

जब मोटर कुछ दूर चली गयी, तो विनय ने शोफर से पूछा—मुझे कहाँ लिए जाते हो? शोफर ने कहा—आपको दीवान साहब ने बुलाया है।

विनय ने और कुछ न पूछा। उन्हें उस समय भय के बदले हर्ष हुआ कि दीवान साहब से मिलने का यह अच्छा अवसर मिला। अब उनसे यहाँ की स्थिति पर बातें होंगी।

एकाएक शोफर बोला—यह दीवान एक ही पाजी है। दया करना तो जानता ही नहीं। एक दिन बचा को इसी मोटर से ऐसा गिराऊँगा कि हड्डी-पसली का पता न लगेगा।

विनय—ज़रूर गिराओ, ऐसे अत्याचारियों की यही सजा है।

शोफर ने कुतूहलपूर्ण नेत्रों से विनय को देखा। उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। विनय के मुँह से ऐसी बात सुनने की उसे आशा न थी। बोला—आपकी भी यही इच्छा है?

विनय—क्या किया जाये, ऐसे आदमियों पर किसी बात का तो असर ही नहीं होता।

शोफर—अब तक मुझे यही शंका होती थी कि लोग मुझे हत्यारा कहेंगे; लेकिन जब आप-जैसे देव-पुरुष की यह इच्छा है, तो मुझे क्या डर?

विनय यह सुनकर ऐसा चौंके, मानो कोई भयंकर स्वप्न देखा हो। उन्हें ज्ञात हुआ कि मैंने एक द्वेषात्मक भाव का समर्थन करके कितना बड़ा अनर्थ किया। वह मन में पछता रहे थे कि मेरे मुँह से ऐसी बात निकली ही क्यों, और किसी भाँति कमान से निकले हुए तीर को फेर लाने का उपाय सोच रहे थे कि इतने में दीवान साहब का भवन आ गया। दीवान साहब दीवानखाने में विराजमान थे। खबर पाते ही विनय को बुला लिया।

दीवान साहब का डील ऊँचा, शरीर सुगठित और वर्ण गौर था। अधेड़ हो जाने पर भी उनकी मुखश्री किसी खिले हुए फूल के समान थी। सरदार नीलकंठसिंह नाम था। ऐसा तेजस्वी पुरुष विनयसिंह की निगाहों से कभी न गुजरा था।

दीवान साहब ने विनय को देखते ही मुस्कराकर उन्हें एक कुर्सी पर बैठने का संकेत किया और बोले—ये आभूषण तो आपकी देह पर बहुत शोभा नहीं देते; किन्तु जनता की दृष्टि में इनका जितना आदर है, उतना मेरे इन तमगों और पट्टियों का कदापि नहीं है। यह देखकर मुझे आपसे डाह हो, तो कुछ अनुचित है?

विनय ने समझा था, दीवान साहब जाते-ही-जाते गरज पड़ेंगे, लाल-पीली आँखें दिखाएँगे। अब जो दीवान साहब की सहृदयतापूर्ण बातें सुनीं, तो संकोच में पड़ गये। बोले—यह तो कोई ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं है, जिसके लिए आपको डाह करना पड़े।

दीवान साहब—(हँसकर) आपके लिए दुर्लभ नहीं है; पर मेरे लिए तो दुर्लभ है। मुझे मालूम हुआ कि आप कुँवर भरतसिंह के सुपुत्र हैं। उनसे मेरा पुराना परिचय है। कुछ तो इस नाते से कि आप मेरे पुराने मित्र के बेटे हैं और कुछ इस नाते से कि आपने इस युवावस्था में विषय-वासनाओं को त्यागकर लोक-सेवा का व्रत धारण किया है, मेरे दिल में आपके प्रति विशेष प्रेम और सम्मान है। व्यक्तिगत रूप से मैं आपकी सेवाओं को स्वीकार करता हूँ और इस थोड़े-से समय में आपने रियासत का जो कल्याण किया है, उसके लिए आपका कृतज्ञ हूँ। मुझे खूब मालूम है कि आप निरपराध हैं और डाकुओं से आपका कोई सम्बंध नहीं हो सकता। महाराजा साहब से भी आपके सम्बंध में घंटे-भर बातें हुईं। वह भी मुक्त कंठ से आपकी प्रशंसा करते हैं। लेकिन परिस्थितियाँ हमें आपसे यह याचना करने के लिए मजबूर कर रही हैं कि बहुत अच्छा हो, अगर आप...अगर आप प्रजा से अपने को अलग रखें।

विनय ने अपने उठते हुए क्रोध को दबाकर कहा—आपने मेरे विषय में जो सद्भाव प्रकट किये हैं, उनके लिए आपका कृतज्ञ हूँ। पर खेद है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। समाज की सेवा करना ही मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य है और समाज से पृथक् होकर मैं अपना व्रत भंग करने में असमर्थ हूँ।

दीवान साहब—अगर आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य यही है, तो आपको किसी रियासत में आना उचित न था। रियासतों को आप सरकार की हरमसरा समझिए। हम किसी की प्रेम-रस-पूर्ण दृष्टि को इधर उठने न देंगे। अगर ऐसा हो, तो हम अपने पद के अयोग्य समझे जायें। आप लोग साम्यवाद का डंका बजाते फिरते हैं। आपका कथन है; प्राणि-मात्र को खाने-पहनने और शांति से जीवन व्यतीत करने का समान स्वत्व है। इस हरमसरा में इन सिद्धान्तों और विचारों का प्रचार करके आप हमारी सरकार को बदगुमान कर देंगे, और उसकी आँखें फिर गईं, तो संसार में हमारा कहीं ठिकाना नहीं है।

विनय—हमारा अनुमान था कि हम अपनी निःस्वार्थ सेवा से आपको अपना हमदर्द बना लेंगे।

दीवान साहब—इसमें आपकी पूरी सफलता हुई है। हमको आपसे हार्दिक सहानुभूति है, लेकिन आप जानते ही हैं कि रेजिडेंट साहब की इच्छा के विरुद्ध हम तिनका तक नहीं हिला सकते।

विनय—आप रेजिडेंट के अनुचित हस्तक्षेप का विरोध क्यों नहीं करते?

दीवान साहब—इसलिए कि हम आपकी भाँति निःस्पृह और निःस्वार्थ नहीं हैं। सरकार

की रक्षा में हम मनमाने कर वसूल करते हैं, मनमाने कानून बनाते हैं, मनमाने दंड देते हैं, कोई चूँ नहीं कर सकता।

दीवान साहब की इस निर्लज्जता पर झुँझलाकर विनयसिंह ने कहा—इससे तो यह कहीं अच्छा था कि रियासतों का निशान ही न रहता।

दीवान साहब—इसीलिए तो हम आपसे विनय कर रहे हैं कि अब किसी और प्रांत की ओर अपनी दया-दृष्टि कीजिए।

विनय—अगर मैं जाने से इनकार करूँ?

दीवान साहब—तो मुझे बड़े दुःख के साथ आपको उसी न्यायालय के सिपुर्द करना पड़ेगा, जहाँ न्याय का खून होता है।

विनय—निरपराध?

दीवान साहब—आप पर डाकुओं की सहायता का अपराध लगा हुआ है।

विनय—अभी आपने कहा है कि आपको मेरे विषय में ऐसी शंका नहीं।

दीवान साहब—वह मेरी निजी राय थी, यह मेरी राजकीय सम्मति है।

विनय—आपको अख्तियार है।

विनयसिंह फिर मोटर पर बैठे, तो सोचने लगे—जहाँ ऐसे-ऐसे निर्लज्ज, अपनी अपकीर्ति पर बगलें बजानेवाले कर्णधार हैं, उस नौका को ईश्वर ही पार लगाए, तो लगे। चलो, अच्छा ही हुआ। जेल में रहने से माताजी को तस्कीन होगी। यहाँ से जान बचाकर भागता, तो वह मुझसे बिल्कुल निराश हो जातीं। अब उन्हें मालूम हो जायेगा कि उनका पत्र निष्फल नहीं हुआ। चलूँ, अब न्यायालय का स्वाँग भी देख लूँ।

18

सोफ़िया घर आयी, तो उसके आत्मगौरव का पतन हो चुका था; अपनी ही निगाहों में गिर गयी थी। उसे अब न रानी पर क्रोध था, न अपने माता-पिता पर। केवल अपनी आत्मा पर क्रोध था, जिसके हाथों उसकी इतनी दुर्गति हुई थी। उसने निश्चय किया, मन को पैरों से कुचल डालूँगी, उसका निशान मिटा दूँगी। इस आत्मदान के लिए वह कलुषता और कुटिलता का अपराध सिर पर लेने को तैयार थी। वह आत्मा से उस अपमान का बदला लेना चाहती थी, जो उसे रानी के हाथों सहना पड़ा था। उसने निश्चय कर लिया था, अपने को मि. क्लार्क के हाथों में सौंप दूँगी। आत्मदान का इसके सिवा और कोई साधन न था।

किन्तु उसका आत्मसम्मान कितना ही दलित हो गया हो, बाह्य सम्मान अपने पूर्ण ओज पर था। अपने घर में उसका इतना आदर-सत्कार कभी न हुआ था। मिसेज़ सेवक की आँखों में वह कभी इतनी प्यारी न थी। ईश्वरोपासना के विषय में भी अब उस पर अत्याचार न किया जाता था। वह अब अपनी इच्छा की स्वामिनी थी, और मिसेज़ सेवक यह देखकर आनंद से फूली न समाती थीं कि सोफ़िया सबसे पहले गिरजाघर पहुँच जाती थी। वह समझती थीं, मि. क्लार्क के सत्संग से यह सुसंस्कार हुआ है।

परन्तु सोफ़िया के सिवा यह और कौन जान सकता है कि उसके दिल पर क्या बीत रही है। उसे नित्य प्रेम का स्वाँग भरना पड़ता था, जिससे उसे मानसिक घृणा होती थी। उसे प्रेम और अनुराग के वे शब्द तन्मय होकर सुनने पड़ते थे, जो उसके हृदय पर हथौड़ों की चोटों की भाँति पड़ते थे। मिस्टर क्लार्क की बातें कभी-कभी इतनी रसमयी हो जाती थीं कि सोफ़ी का जी चाहता था कि इस कृत्रिम जीवन का अंत कर दूँ।

इसी प्रकार एक वर्ष से अधिक गुजर गया और मिसेज़ सेवक को अब संदेह होने लगा कि सोफ़िया कहीं हमें सब्ज बाग तो नहीं दिखा रही है? आखिर एक दिन उन्होंने सोफ़िया से कहा—मेरी समझ में नहीं आता, तू रात-दिन मि. क्लार्क के साथ बैठी-बैठी क्या किया करती है! क्या बात है? क्या वह प्रोपोज (प्रस्ताव) ही नहीं करते, या तू ही उनसे भागी-भागी फिरती है?

सोफ़िया शर्म से लाल होकर बोली—वह प्रोपोज ही नहीं करना चाहते, तो क्या मैं उनकी जबान हो जाऊँ?

मिसेज़ सेवक—यह तो हो ही नहीं सकता कि स्त्री चाहे और पुरुष प्रस्ताव न करे। वह तो आठों पहर अवसर देखा करता है। तू ही उन्हें फटकने न देती होगी।

सोफ़िया—मामा, ऐसी बातें करके मुझे लज्जित न कीजिए।

मिसेज़ सेवक—कसूर तुम्हारा है, और अगर तुम दो-चार दिन में मि. क्लार्क को प्रोपोज करने का अवसर न दोगी, तो फिर तुम्हें रानी साहिबा के पास भेज दूँगी और फिर बुलाने का नाम भी न लूँगी।

सोफ़ी थर्रा गयी। रानी के पास लौटकर जाने से मर जाना कहीं अच्छा था। उसने मन में ठान लिया—आज वह करूँगी, जो आज तक किसी स्त्री ने न किया होगा। साफ कह दूँगी, आप मेरे स्वामी हो सकते हैं, प्रियतम नहीं हो सकते। यह समझकर आप मुझे अंगीकार करते हों, तो कीजिए; वरना फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाइएगा।

संध्या हो गयी थी। माघ का महीना था; उस पर हवा, फिर बादल; सर्दी के मारे हाथ-पाँव अकड़े जाते थे। न कहीं आकाश का पता था, न पृथ्वी का। चारों तरफ़ कुहरा-ही-कुहरा नज़र आता था। रविवार था। ईसाई स्त्रियाँ और पुरुष साफ-सुथरे कपड़े और मोटे-मोटे ओवरकोट पहने हुए एक-एक करके गिरजाघर में दाखिल हो रहे थे। एक क्षण में जॉन सेवक, उनकी स्त्री, प्रभु सेवक और ईश्वर सेवक फ़िटन से उतरे। और लोग तुरंत अन्दर चले गये, केवल सोफ़िया बाहर रह गयी। सहसा प्रभु सेवक ने बाहर आकर पूछा—क्यों सोफ़ी, मिस्टर क्लार्क अन्दर गये?

सोफ़िया—हाँ, अभी-अभी गये हैं।

प्रभु सेवक—और तुम?

सोफ़िया ने दीन भाव से कहा—मैं भी चली जाऊँगी।

प्रभु सेवक—आज तुम बहुत उदास मालूम होती हो।

सोफ़िया की आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं। बोली—हाँ प्रभु, आज मैं बहुत उदास हूँ। आज मेरे जीवन में सबसे महान् संकट का दिन है, क्योंकि आज मैं क्लार्क को प्रोपोज करने के लिए मजबूर करूँगी। मेरा नैतिक और मानसिक पतन हो गया। अब मैं जो कुछ हूँ, वह अपने मुँह से कहते हुए मुझे स्वयं लज्जा आती है।

प्रभु सेवक कवि होते हुए भी उस भावना-शक्ति से वंचित था, जो दूसरों के हृदय में पैठकर उनकी दशा का अनुभव करती है। झुँझलाकर बोला—तो इसमें रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? मामा से साफ-साफ क्यों नहीं कह देतीं? उन्होंने तुम्हें मजबूर तो नहीं किया है?

सोफ़िया ने तिरस्कार करते हुए कहा—प्रभु, ऐसी बातों से दिल न दुःखाओ। तुम क्या जानो, मेरे दिल पर क्या गुजर रही है। आह! मेरी निष्ठुरता से विनय को कितना दुःख होगा, इसकी कल्पना ही से मेरे प्राण सूख जाते हैं। वह देखो, मि. क्लार्क बुला रहे हैं। शायद सरमन (उपदेश) शुरू होनेवाला है। चलना पड़ेगा, नहीं तो मामा जीता न छोड़ेंगी।

प्रभु सेवक तो क़दम बढ़ाते हुए जा पहुँचे; सोफ़िया दो-ही-चार क़दम चली थी कि एकाएक उसे सड़क पर किसी के गाने की आहट मिली। उसने सिर उठाकर चहारदीवारी के

ऊपर से देखा, एक अंधा आदमी, हाथ में खँजरी लिए, यह गीत गाता हुआ चला जाता हैः

भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै?

वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना,

क्यों निज मरजादा छोड़ै?

भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै?

क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिंता,

क्यों दुःख से नाता जोड़ै?

भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै?

तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,

क्यों धरम-नीति को तोड़ै?

भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै?

सोफ़िया ने अंधे को पहचान लिया; सूरदास था। वह इस गीत को कुछ इस तरह मस्त होकर गाता था कि सुननेवालों के दिल पर चोट-सी लगती थी। सोफ़िया तल्लीन होकर यह गीत सुनती रही। उसे इस पद में जीवन का सम्पूर्ण रहस्य कूट-कूटकर भरा हुआ मालूम होता था:

तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,

क्यों धरम-नीति को तोड़ै? भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै?

राग इतना सुरीला, इतना मधुर, इतना उत्साहपूर्ण था, कि एक समाँ-सा छा गया।

मि. क्लार्क ने आकर धीरे से सोफ़िया के कंधे पर हाथ रखा, तो वह चौंक पड़ी।

क्लार्क—लार्ड बिशप का सरमन समाप्त हो गया और तुम अभी तक यहीं खड़ी हो!

सोफ़िया—इतनी जल्द! मैं इस अंधे का गाना सुनने लगी। सरमन कितनी देर हुआ?

क्लार्क—आध घंटे से कम न हुआ होगा। लार्ड बिशप के सरमन संक्षिप्त होते हैं; पर अत्यंत मनोहर। मैंने ऐसा दिव्य ज्ञान में डूबा हुआ उपदेश आज तक न सुना था, इंग्लैंड में भी नहीं। खेद है, तुम न आयीं।

सोफ़िया—मुझे आश्चर्य होता है कि मैं यहाँ आध घंटे तक खड़ी रही!

इतने में मिस्टर ईश्वर सेवक अपने परिवार के साथ आकर खड़े हो गये। मिसेज़ सेवक ने क्लार्क को मातृस्नेह से देखकर पूछा—क्यों विलियम, सोफ़ी आज के सरमन के विषय में क्या कहती है?

क्लार्क—यह तो अन्दर गईं ही नहीं।

मिसेज़ सेवक ने सोफ़िया को अवहेलना की दृष्टि से देखकर कहा—सोफ़ी, यह तुम्हारे लिए शर्म की बात है।

सोफ़ी लज्जित होकर बोली—मामा, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैं इस अंधे का गाना सुनने के लिए ज़रा रुक गयी, इतने में सरमन समाप्त हो गया!

ईश्वर सेवक—बेटी, आज सरमन सुधा-तुल्य था, जिसने आत्मा को तृप्त कर दिया। जिसने नहीं सुना, वह उम्र-भर पछताएगा। प्रभु, मुझे अपने दामन में छिपा।

मिसेज़ सेवक—आश्चर्य है कि उस स्वर्गोपम सुधा-वृष्टि के सामने तुम्हें यह ग्रामीण गान अधिक प्रिय मालूम हुआ!

प्रभुसेवक—मामा, यह न कहिए। ग्रामीणों के गाने में कभी-कभी इतना रस होता है, जो बड़े-बड़े कवियों की रचनाओं में भी दुर्लभ है।

मिसेज़ सेवक—अरे, यह तो वही अंधा है, जिसकी ज़मीन हमने ले ली है। अभागे ने रुपये न लिए, अब गली-गली भीख माँगता फिरता है।

सहसा सूरदास ने उच्च स्वर में कहा—दुहाई है पंचो, दुहाई। सेवक साहब और राजा साहब ने मेरी ज़मीन जबरदस्ती छीन ली है। हम दुखियों की फरियाद कोई नहीं सुनता। दुहाई है!

'दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।

मुई खाल की साँस सों सार भसम ह्वै जाये।।'

क्लार्क ने मि. सेवक से पूछा—उसकी ज़मीन तो मुआवजा देकर ली गयी थी न? अब यह कैसा झगड़ा है?

मि. सेवक—उसने मुआवजा नहीं लिया। रुपये खजाने में जमा कर दिये गये हैं।

एक ईसाई बैरिस्टर ने, जो चतारी के राजा साहब के प्रतियोगी थे, सूरदास से पूछा—क्यों अंधे, कैसी ज़मीन थी? राजा साहब ने कैसे ले ली?

सूरदास—हुज़ूर, मेरे बाप-दादों की ज़मीन है। सेवक साहब वहाँ चुरुट बनाने का कारखाना खोल रहे हैं। उनके कहने से राजा साहब ने वह ज़मीन मुझसे छीन ली है।

ईसाई बैरिस्टर ने क्लार्क से कहा—मेरे विचार में व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी की ज़मीन पर कब्जा करना मुनासिब नहीं है।

क्लार्क—बहुत अच्छा मुआवजा दिया गया है।

बैरिस्टर—आप किसी को मुआवजा लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते, जब तक आप यह न सिद्ध कर दें कि आप ज़मीन को सार्वजनिक कार्य के लिए ले रहे हैं।

काशी आयरन वर्क्स के मालिक जॉन बर्ड ने, जो जॉन सेवक के प्रतिद्वंद्वी थे, कहा—बैरिस्टर साहब, क्या आपको नहीं मालूम कि सिगरेट का कारखाना खोलना परम परमार्थ है?

प्रोफेसर चार्ल्स सिमियन, जिन्होंने सिगरेट के विरोध में एक पैंफ्लेट लिखा था, बोले—अगर सिगरेट के कारखाने के लिए सरकार ज़मीन दिला सकती है, तो कोई कारण नहीं है कि चकलों के लिए न दिलाए। स्वास्थ्य-नाश का मुख्य कारण सिगरेट का बहुत प्रचार है। खेद है, उस पैम्फलेट की जनता ने कदर न की।

काशी रेलवे यूनियन के मंत्री मिस्टर नीलमणि ने कहा—ये सभी नियम पूँजीपतियों के लाभ के लिए बनाए गये हैं, और पूँजीपतियों को यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि उन नियमों का कहाँ व्यवहार करें। क्यों अंधे, तेरी ज़मीन कुल कितनी है?

सूरदास—हुज़ूर, दस बीघे से कुछ ज़्यादा होगी। बाप-दादों की यही निसानी है। पहले राजा साहब मुझसे मोल माँगते थे, जब मैंने न दी, तो जबरदस्ती ले ली। आपके सिवा किससे फरियाद करूँ? कोई सुनेगा तो सुनेगा, नहीं भगवान् तो सुनेंगे!

जॉन सेवक अब वहाँ पल भर भी न ठहर सके। वाद-विवाद हो जाने का भय था और संयोग से उनके सभी प्रतियोगी एकत्र हो गये थे। रास्ते में जॉन सेवक ने कहा—कहीं राजा साहब ने इस अंधे की फरियाद सुन ली, तो उनके हाथ-पाँव फूल जायेंगे।

मिसेज़ सेवक—पाजी आदमी है। इसे पुलिस के हवाले क्यों नहीं करा देते?

ईश्वर सेवक—नहीं बेटा, ऐसा भूलकर भी न करना; नहीं तो अखबारवाले इस बात का बतंगड़ बनाकर तुम्हें बदनाम कर देंगे। प्रभु, मेरा मुँह अपने दामन में छिपा और इस दुष्ट की जबान बंद कर दे।

मिसेज़ सेवक—चार दिन में आप ही शांत हो जायेगा। ठेकेदारों को ठीक कर लिया न?

जॉन सेवक—हाँ, काम तो शुरू हो जानेवाला है, मगर इस मूजी को चुप करना आसान नहीं है। मुहल्लेवालों को तो मैंने फोड़ लिया, वे सब इसकी मदद न करेंगे; मगर मुझे आशा थी, उधर से सहारा न पाकर इसकी हिम्मत टूट जायेगी। वह आशा पूरी न हुई।

इतने में राजा महेन्द्रकुमार की मोटर सामने आकर रुकी। राजा साहब बोले—आपसे खूब मुलाकात हुई। मैं आपके बँगले से लौटा आ रहा हूँ। आइए, हम और आप सैर कर आयें। मुझे आपसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।

जब जॉन सेवक मोटर पर आ बैठे, तो बातें होने लगीं। राजा साहब ने कहा—आपका सूरदास तो एक ही दुष्ट निकला। कल से सारे शहर में घूम-घूमकर गाता है और हम दोनों को बदनाम करता है।

जॉन सेवक—अभी चर्च में आ पहुँचा था। बस वही दुहाई देता था। प्रोफेसर सिमियन, मि. नीलमणि आदि महापुरुषों को तो आप जानते ही हैं, उसे और भी उकसा रहे हैं। शायद अभी वहीं खड़ा हो।

महेन्द्रकुमार—मिस्टर क्लार्क से तो कोई बातचीत नहीं हुई?

जॉन सेवक—थे तो वह भी, उनकी सलाह है कि अंधे को पागलखाने भेज दिया जाये। मैं मना न करता, तो वह उसी वक़्त थानेदार को लिखते।

महेन्द्रकुमार—आपने बहुत अच्छा किया, उन्हें मना कर दिया। उसे पागलखाने या जेलखाने भेज देना आसान है; लेकिन जनता को यह विश्वास दिलाना कठिन है कि उसके साथ अन्याय नहीं किया गया।

जॉन सेवक—मुझे तो यह अफ़सोस है कि मैंने मुहल्लेवालों को काबू में लाने के लिए बड़े-बड़े वादे कर लिए।

महेन्द्रकुमार—अजी, आपकी तो जीत-ही-जीत है; गया तो मैं। इतनी ज़मीन आपको दस हज़ार से कम में न मिलती। धर्मशाला बनवाने में आपके इतने ही रुपये लगेंगे। मिट्टी तो मेरी खराब हुई। चलिए ज़रा पाँड़ेपुर तक हो आयें।

पाँड़ेपुर पहुँचे, तो अँधेरा हो चला था। मोटर रुकी। दोनों महाशय उतरकर मंदिर पर आये। नायकराम लुंगी बाँधे हुए भंग घोंट रहे थे, दौड़े हुए आये। बजरंगी नाँद में पानी भर रहा था, आकर खड़ा हो गया। सलाम-बंदगी के पश्चात् जॉन सेवक ने नायकराम से कहा—अंधा तो बहुत बिगड़ा हुआ है।

नायकराम—सरकार, बिगड़ा तो इतना है कि जिस दिन डौंड़ी पिटी, उस दिन से घर नहीं आया। सारे दिन शहर में घूमता है; भजन गाता है और दुहाई मचाता है।

राजा साहब—तुम लोगों ने कुछ समझाया नहीं?

नायकराम—दीनबंमु, अपने सामने वह किसी को कुछ समझता ही नहीं।

राजा साहब—तुम लोग उसे समझा-बुझाकर यहाँ लाओ।

नायकराम—सरकार, समझाना-बुझाना तो मैं नहीं जानता, जो हुकुम हो, हाथ-पैर तोड़कर बैठा दूँ, आज ही चुप हो जायेगा।

राजा साहब—छी, छी, कैसी बातें करते हो! मैं देखता हूँ, यहाँ पानी का नल नहीं है। तुम लोगों को तो बहुत कष्ट होता होगा। मिस्टर सेवक, आप यहाँ नल पहुँचाने का ठेका ले लीजिए।

नायकराम—बड़ी दया है दीनबंधु, नल आ जाये तो क्या कहना है।

राजा साहब—तुम लोगों ने कभी इसके लिए दरख्वास्त ही नहीं दी।

नायकराम—सरकार, यह बस्ती हद-बाहर है।

राजा साहब—कोई हरज नहीं, नल लगा दिया जायेगा।

इतने में ठाकुरदीन ने आकर कहा—सरकार, मेरी भी कुछ खातिरी हो जाये।

यह कहकर उसने चाँदी के वरक में लिपटे हुए पान के बीड़े दोनों महानुभावों की सेवा में अर्पित किये। राजा साहब मुँह में पान रखते हुए बोले—क्या यहाँ लालटेनें नहीं हैं? अँधेरे में तो बड़ी तकलीफ होती होगी?

ठाकुरदीन बोला—सरकार, हम लोगों की कौन सुनता है? अब हुज़ूर की निगाह हो गयी है, तो लग जायेगी। बस, इसी मंदिर पर एक लालटेन लगा दी जाये।

राजा साहब—तुम लोग एक प्रार्थना-पत्र भेज दो।

ठाकुरदीन—हुज़ूर के प्रताप से दो-एक साधु-संत रोज ही आते रहते हैं। अपने से जो कुछ हो सकता है, उनका सेवा-सत्कार करता हूँ, नहीं तो यहाँ और कौन पूछने वाला है!

दोनों आदमी मोटर पर बैठनेवाले ही थे कि सुभागी एक लाल साड़ी पहने, घूँघट निकाले, आकर ज़रा दूर पर खड़ी हो गयी, मानो कुछ कहना चाहती है। राजा साहब ने पूछा—यह कौन है? क्या कहना चाहती है?

नायकराम—सरकार, एक पासिन है। क्या है सुभागी, कुछ कहने आयी है?

सुभागी—(धीरे से) कोई सुनेगा?

राजा साहब—हाँ, हाँ, कह, क्या कहती है?

सुभागी—कुछ नहीं मालिक, यही कहने आयी थी कि सूरदास के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। अगर उनकी फरियाद न सुनी गयी, तो वह मर जायेंगे।

जॉन सेवक—उसके मर जाने के डर से सरकार अपना काम छोड़ दे?

सुभागी—हुज़ूर, सरकार का काम परजा को पालना है कि उजाड़ना? जब से यह ज़मीन निकल गयी है; बेचारे को न खाने की सुध है, न पीने की। हम ग़रीब औरतों का तो वही एक आधार है।

भैरो भी आकर खड़ा हो गया था। बोला—हुज़ूर, सूरे न होता, तो यह आपके सामने खड़ी न होती। उसी ने जान पर खेलकर इसकी जान बचाई थी।

राजा साहब—जीवट का आदमी मालूम होता है।

नायकराम—जीवट क्या है सरकार, बस यह समझिए कि हत्या के बल जीतता है।

राजा साहब—बस, यह बात तुमने बहुत ठीक कही, हत्या ही के बल जीतता है। चाहूँ, आज पकड़वा दूँ; पर सोचता हूँ, अंधा है, उस पर क्या गुस्सा दिखाऊँ। तुम लोग उसे समझाओ।

एक घंटा रात जा चुकी थी। कुहरा और भी घना हो गया था। दूकानों के दीपकों के चारों तरफ़ कोई मोटा कागज-सा पड़ा हुआ जान पड़ता था। दोनों महाशय बिदा हुए; पर दोनों ही चिन्ता में डूबे हुए थे। राजा साहब सोच रहे थे कि देखें, लालटेन और पानी के नल का कुछ असर होता है या नहीं। जॉन सेवक को चिन्ता थी कि कहीं मुझे जीती जिताई बाजी न खोनी पड़े।

19

सोफ़िया अपनी चिंताओं में ऐसी व्यस्त हो रही थी कि सूरदास को बिल्कुल भूल-सी गयी थी। उसकी फरियाद सुनकर उसका हृदय काँप उठा। इस दीन प्राणी पर इतना घोर अत्याचार! उसकी दयालु प्रकृति यह अन्याय न सह सकी। सोचने लगी—सूरदास को इस विपत्ति से क्योंकर मुक्त करूँ? इसका उद्धार कैसे हो? अगर पापा से कहूँ तो हर्गिज़ न सुनेंगे।

बहुत सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया—चलकर इंदु से प्रार्थना करूँ। अगर वह राजा साहब से ज़ोर देकर कहेगी, तो सम्भव है, राजा साहब मान जायें।

इसी हैस-बैस में तीन दिन गुज़र गये। चौथे दिन प्रातःकाल वह इंदु से मिलने चली। सवारी किराए की थी। सोचती जाती थी—ज्यों ही अन्दर क़दम रखूँगी, इंदु दौड़कर गले लिपट जायेगी, शिकायत करेगी कि इतने दिनों के बाद क्यों आयी हो।

यही सोचते-सोचते वह राजा साहब के मकान पर पहुँच गयी और इंदु को खबर दी। उसे विश्वास था कि मुझे लेने के लिए इंदु खुद निकल आयेगी, किन्तु 15 मिनट इंतज़ार करने के बाद एक दासी आयी और उसे अन्दर ले गयी।

सोफ़िया ने जाकर देखा कि इंदु अपने बैठने के कमरे में दुशाला ओढ़े, अँगीठी के सामने एक कुर्सी पर बैठी हुई हैं। सोफ़िया ने कमरे में क़दम रखा, तब भी इंदु कुर्सी से न उठी, यहाँ तक कि सोफ़िया ने हाथ बढ़ाया, तब भी रुखाई से हाथ बढ़ा देने के सिवा इंदु मुँह से कुछ न बोली। सोफ़िया ने समझा, इसका जी अच्छा नहीं है। बोली—सिर में दर्द है क्या?

इंदु ने क्षीण स्वर में कहा—नहीं, अच्छी तो हूँ। इस सर्दी-पाले में तो तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ!

सोफ़िया मानशीला स्त्री थी। इंदु की इस निष्ठुरता से उसके दिल पर चोट-सी लगी। पहला विचार तो हुआ कि उलटे पाँव वापस जाऊँ; मगर यह सोचकर कि यह बहुत ही हास्यजनक बात होगी, उसने दुस्साहस करके एक कुर्सी खींची और उस पर बैठ गयी।

'आपसे मिले साल-भर से अधिक हो गया।'

'हाँ, मुझे कहीं आने-जाने की फ़ुरसत कम रहती है। मड़ियाहू की रानी साहब एक महीने में तीन बार आ चुकी हैं, मैं एक बार भी न जा सकी।'

सोफ़िया दिल में हँसती हुई व्यंग से बोली—जब रानियों को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त

होता, तो मैं किस गिनती में हूँ! क्या कुछ रियासत का काम भी देखना पड़ता है?

'कुछ नहीं, और सब कुछ। राजा साहब को जातीय कार्यों से अवकाश ही नहीं मिलता, तो घर का कारोबार देखनेवाला भी तो कोई चाहिए।'

सोफ़िया अभी तक न समझ सकी कि इंदु की अप्रसन्नता का कारण क्या है। बोली—आप बड़ी भाग्यशालिनी हैं कि इस तरह उनके सत्कार्यों में हाथ बँटा सकती हैं। राजा साहब की सुकीर्ति आज सारे शहर में छाई हुई है; लेकिन बुरा न मानिएगा, कभी-कभी वह भी मुँह-देखी कर जाते हैं और बड़ों के आगे छोटों की परवा नहीं करते।

'शायद उनकी यह पहली शिकायत है, जो मेरे कान में आयी है।'

'हाँ, दुर्भाग्यवश यह काम मेरे ही सिर पड़ा। सूरदास को तो आप जानती ही हैं। राजा साहब ने उसकी ज़मीन पापा को दे दी है। पिता के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से निकालना मेरे लिए लज्जास्पद है, यह समझती हूँ। फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इस मौके पर राजा साहब को एक दीन प्राणी पर ज़्यादा दया करनी थी।'

'तो तुम्हें अपने पिता को सन्मार्ग पर लाना चाहिए था। राजा साहब ने जो कुछ किया, तुम्हारी खातिर किया, और तुम्हीं उन पर इलजाम रखती हो? सूरदास पर यह अन्याय इसलिए किया कि तुमने संकट में विनय की रक्षा की है, और तुम अपने पिता की बेटी हो।'

सोफ़िया ये कठोर शब्द सुनकर तिलमिला गयी। बोली—अगर मैं जानती कि मेरी उस क्षुद्र सेवा का यों प्रतिकार किया जायेगा, तो शायद विनयसिंह के समीप न जाती। क्षमा कीजिए, मुझसे भूल हुई कि आपके पास यह शिकायत लेकर आयी।

इंदु कुछ नरम होकर बोली—आखिर तुम राजा साहब से क्या चाहती हो?

'मैं चाहती हूँ कि सूरदास की ज़मीन उसे लौटा दी जाये।'

'तुम्हें मालूम है, इसमें राजा साहब का कितना अपमान होगा? और जो कुछ हुआ, तुम्हारे...मि. क्लार्क की प्रेरणा से हुआ है?'

'यह तो नहीं जानती; क्योंकि इस विषय में मेरी उनसे कभी बातचीत नहीं हुई। लेकिन जानती भी, तो राजा साहब की मान-हानि के विचार से पहले राजा साहब ही से अनुनय-विनय करना उचित समझती। अपनी भूल अपने ही हाथों सुधर जाये, तो यह उससे कहीं अच्छा है कि कोई दूसरा उसे सुधारे।'

इंदु को चोट लगी। मि. क्लार्क के अधिकार पर इतना अभिमान! तनकर बोली—मैं नहीं समझती कि किसी राज्याधिकारी को बोर्ड के फैसले में भी दखल देने का मजाज़ है, और चाहे एक दिन अंधे पर अत्याचार ही क्यों न करना पड़े, राजा साहब अपने फैसले को बहाल रखने के लिए कोई बात उठा न रखेंगे।

सोफ़िया ने उत्तर न दिया। उठ खड़ी हुई और बोली—कष्ट के लिए क्षमा कीजिएगा।

इंदु अँगीठी की आग उकसाने लगी। सोफ़िया की ओर आँख उठाकर भी न देखा।

सोफ़िया ने उसी क्षण इस अपमान का पूरा; बल्कि पूरे से भी ज़्यादा बदला लेने का निश्चय कर लिया। उसने यह विचार न किया—सम्भव है, इस समय किसी कारण इसका मन

खिन्न रहा हो। उसने तो सोचा—ऐसी अभद्रता, ऐसी दुर्जनता के लिए दारुण-से-दारुण मानसिक कष्ट, बड़ी-से-बड़ी आर्थिक क्षति, तीव्र-से-तीव्र शारीरिक व्यथा का उज्र भी काफ़ी नहीं। इसने मुझे चुनौती दी है, स्वीकार करती हूँ।

दूसरे ही दिन से सोफ़िया ने अपनी कपट-लीला आरम्भ कर दी। मि. क्लार्क से उसका प्रेम बढ़ने लगा। दोनों अब निरंतर साथ नज़र आते, सोफ़िया दफ्तर में साहब का गला न छोड़ती, बार-बार चिट्ठियाँ लिखती—जल्द आओ, मैं तुम्हारी बाट जोह रही हूँ। और यह सारा प्रेमाभिनय केवल इसलिए था कि इंदु से अपमान का बदला लूँ।

एक दिन वह मि. क्लार्क को पाँड़ेपुर की तरफ़ सैर कराने ले गयी। जब मोटर गोदाम के सामने से होकर गुज़री, तो उसने ईंट और कंकड़ के ढेरों की ओर संकेत करके कहा—पापा बड़ी तत्परता से काम कर रहे हैं।

क्लार्क—हाँ, मुस्तैद आदमी हैं। मुझे तो उनकी श्रमशीलता पर डाह होती है।

सोफ़ी—कोई माने या न माने, मैं तो यही कहूँगी कि अंधे के साथ अन्याय हुआ।

क्लार्क—हाँ, अन्याय तो हुआ। मेरी तो बिल्कुल इच्छा न थी।

सोफ़ी—अस्वीकार कर देते।

क्लार्क—तुम नाराज़ न हो जातीं?

सोफ़ी—कदापि नहीं। आपने शायद मुझे अब तक नहीं पहचाना।

क्लार्क—तुम्हारे पापा ज़रूर नाराज़ हो जाते।

सोफ़ी—मैं और पापा एक नहीं हैं। मेरे और उनके आचार-व्यवहार में अन्तर है।

क्लार्क—इतनी बुद्धि होती, तो अब तक तुम्हें कब का पा गया होता। समझा, शायद यह अनुमति मेरे लिए हितकर हो।

सोफ़ी—सारांश मैं ही इस अन्याय की जड़ हूँ। राजा साहब ने मुझे प्रसन्न करने के लिए बोर्ड में यह प्रस्ताव रखा। आपने भी मुझी को प्रसन्न करने के लिए स्वीकृति प्रदान की।

क्लार्क—मैं न जानता था कि तुम इतनी न्यायप्रिय हो।

सोफ़ी—मेरी तारीफ करने से इस पाप का प्रायश्चित्त न होगा।

क्लार्क—मैं अंधे को किसी दूसरे गाँव में इतनी ही ज़मीन दिला दूँगा।

सोफ़िया—क्या उसी की ज़मीन उसे नहीं लौटाई जा सकती?

क्लार्क—कठिन है।

सोफ़िया—असम्भव तो नहीं है?

क्लार्क—असम्भव से कुछ ही कम है।

सोफ़िया—तो समझ गयी, असम्भव नहीं है, आपको यह प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा। कल ही उस प्रस्ताव को मंसूख कर दीजिए।

क्लार्क—प्रिये, तुम्हें मालूम नहीं, उसका क्या परिणाम होगा।

सोफ़िया—मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं किसी के लाभ या सम्मान-रक्षा के लिए अपने ऊपर पाप का भार क्यों लूँ? आपको अंधे की ज़मीन वापस करनी पड़ेगी।

ये बातें हो ही रही थीं कि सैयद ताहिरअली ने सोफ़िया को मोटर में बैठे जाते देखा, तो तुरंत आकर सामने खड़े हो गये और सलाम किया। सोफ़ी ने मोटर रोक दी और पूछा—कहिए मुंशीजी, इमारत बनने लगी?

ताहिर—जी हाँ, कल दाग-बेल पड़ेगी; पर मुझे यह बेल मुड़े चढ़ती नहीं नज़र आती।

सोफ़िया—क्यों? क्या कोई वारदात हो गयी?

ताहिर—हुज़ूर, जब से इस अंधे ने शहर में आह-फरियाद शुरू की है, तब से अजीब मुसीबतों का सामना हो गया है। आज सुबह कई सौ आदमी लाठियाँ लिए आ गये और गोदाम को घेर लिया। कुछ लोग सीमेंट और चूने के ढेरों को बखेरने लगे, कई आदमी पत्थर की सिलों को तोड़ने लगे। मैं तनहा क्या कर सकता था? दरवाज़ा बंद किये बैठा अल्लाह-अल्लाह कर रहा था कि किसी तरह हंगामा फ़रो हो। बारे दुआ कबूल हुई। ऐन उसी वक़्त अंधा न जाने किधर से आ निकला और बिजली की तरह कड़ककर बोला—'तुम लोग यह ऊधम मचाकर मुझे क्यों कलंक लगा रहे हो? आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी, लहू बहाने से मेरा चित्त शांत न होगा। परमात्मा से कहिए, मेरा दुःख मिटाए। जिन्होंने मुझ पर जुलुम किया है, उनके दिल में दया-धरम जागे, बस मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता।' इतना सुनते ही कुछ लोग तो हट गये; मगर कितने ही आदमी बिगड़कर बोले—तुम देवता हो, तो बने रहो; हम देवता नहीं हैं, हम तो जैसे के साथ तैसा करेंगे। यह कहकर वे लोग पत्थरों को उठा-उठाकर पटकने लगे। तब इस अंधे ने वह काम किया, जो औलिया ही कर सकते हैं। हुज़ूर, मुझे तो कामिल यकीन हो गया कि कोई फरिश्ता है। उसने ज़मीन से एक बड़ा-सा पत्थर का टुकड़ा उठा लिया और उसे अपने माथे के सामने रखकर बोला—अगर तुम लोग अभी भी मेरी विनती न सुनोगे, तो इसी दम इस पत्थर से सिर टकराकर जान दे दूँगा। उसके मुँह से इन बातों का निकलना था कि चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया।

सोफ़ी—उसे किसी से इन दुष्टों के आने की खबर मिल गयी होगी।

ताहिर—हुज़ूर, मेरा तो कयास है कि उसे इल्मे गैब है।

सोफ़ी—(मुस्कराकर) आपने पापा को इत्तिला नहीं दी?

ताहिर—हुज़ूर, मौका ही नहीं मिला। खुद बाल-बच्चों को तनहा छोड़कर नहीं जा सकता।

क्लार्क—यह अंधा ज़रूर कोई असाधारण पुरुष है।

सोफ़ी—तुम उससे दो-चार बातें करके देखो। उसके आध्यात्मिक और दार्शनिक विचार सुनकर चकित हो जाओगे। साधु भी है और दार्शनिक भी।

मोटर चली, तो सोफ़ी बोली—आप लोग ऐसे साधुजनों पर भी अन्याय करने से बाज नहीं आते, जो अपने शत्रुओं पर एक कंकड़ भी उठाकर नहीं फेंकता। प्रभु मसीह में भी तो यही गुण सर्वप्रधान था।

क्लार्क—प्रिये, अब लज्जित न करो। इसका प्रायश्चित्त निश्चय होगा।

सोफ़ी—राजा साहब इसका घोर विरोध करेंगे।

क्लार्क—थुह! उनमें इतना नैतिक साहस नहीं है।

मोटर सिगरा आ पहुँची। सोफ़िया उतर पड़ी। क्लार्क ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा, हाथ मिलाया और चले गये।

20

मि. क्लार्क ने मोटर से उतरते ही अरदली को हुक्म दिया—डिप्टी साहब को फौरन हमारा सलाम दो। नाजिर, अहलमद और अन्य कर्मचारियों को भी तलब किया गया। सब-के-सब घबराए—यह आज असमय क्यों तलबी हुई, कोई ग़लती तो नहीं पकड़ी गयी? बेचारों के हाथ-पाँव फूल गये।

डिप्टी साहब बिगड़े—मैं कोई साहब का जाती नौकर नहीं हूँ कि जब चाहा, तलब कर लिया। परन्तु साहब के सामने आते ही डिप्टी साहब का सारा गुस्सा उड़ गया, इशारों पर दौड़ने लगे। मि. क्लार्क ने सूरदास की ज़मीन की मिसिल मँगवाई, उसे बड़े गौर से पढ़वाकर सुना, तब डिप्टी साहब से राजा महेन्द्रकुमार के नाम एक परवाना लिखवाया, जिसका आशय यह था—पाँड़ेपुर में सिगरेट के कारखाने के लिए जो ज़मीन ली गयी, वह उस धारा के उद्देश्य के विरुद्ध है, इसलिए मैं अपनी अनुमति वापस लेता हूँ।

डिप्टी साहब ने दबी जबान से शंका की—हुज़ूर, अब आपको वह हुक्म मंसूख करने का मजाज नहीं; क्योंकि सरकार ने उसका समर्थन कर दिया है।

मिस्टर क्लार्क ने कठोर स्वर में कहा—हमीं सरकार हैं, हमने वह कानून बनाया है, हमको सब अख्तियार है। आप अभी राजा साहब को परवाना लिख दें, कल लोकल गवर्नमेंट को उसकी नकल भेज दीजिएगा। यहाँ बलवा हो जायेगा, तो हमको इंतज़ाम करना पड़ेगा, सूबे की सरकार यहाँ न आयेगी।

डिप्टी साहब वहाँ से उठे, तो मि. जॉन सेवक को इस हुक्म की सूचना दे दी। जॉन सेवक भोजन कर रहे थे। यह समाचार सुना, तो भूख गायब हो गयी। बोले—यह मि. क्लार्क को क्या सूझी?

मिसेज़ सेवक ने सोफ़ी की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा—तूने इनकार तो नहीं कर दिया? ज़रूर कुछ गोलमाल किया है।

सोफ़िया ने सिर झुकाकर कहा—बस, आपका गुस्सा मुझी पर रहता है, जो कुछ करती हूँ, मैं ही करती हूँ।

ईश्वर सेवक—प्रभु मसीह, इस गुनहगार को अपने दामन में छिपा। मैं आखिर तक मना करता रहा कि बुड्ढे की ज़मीन मत लो; मगर कौन सुनता है। राजा डरकर क्लार्क के पास

आया होगा।

प्रभु सेवक—मेरा भी यही विचार है। राजा साहब ने स्वयं मिस्टर क्लार्क से कहा होगा।

जॉन सेवक—मैं सोच रहा था, कल शांति-रक्षा के लिए पुलिस के जवान माँगूगा, इधर यह गुल खिला!

प्रभु सेवक—मैं तो समझता हूँ, हमारे लिए इस ज़मीन को छोड़ देना ही बेहतर होगा। आज सूरदास न पहुँच जाता, तो गोदाम की कुशल न थी, हज़ारों का सामान खराब हो जाता।

जॉन सेवक ने उनकी हँसी उड़ाते हुए कहा—हाँ, बहुत अच्छी बात है, हम सब मिलकर उस अंधे के पास चलें और उसके पैरों पर सिर झुकाएँ। तुमने मुझे समझा क्या है, वह नरम चारा नहीं हूँ, जिसे क्लार्क और महेंद्र खा जायेंगे!

प्रभु सेवक तो ऐसे सिटपिटाए कि फिर जबान न खुली। धीरे से उठकर चले गये। सोफ़िया भी एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गयी। फिर सोचने लगी—अगर पापा ने आंदोलन किया भी, तो उसका नतीजा कहीं बरसों में निकलेगा, और यही कौन कह सकता है कि क्या नतीजा होगा; अभी से उसकी क्या चिंता? उसके गुलाबी ओठों पर विजय-गर्व की मुस्कराहट दिखायी दी।

यह सोचते-सोचते सोफ़िया मेज़ पर बैठ गयी और इस वृत्तांत पर एक प्रहसन लिखने लगी। सोफ़िया ने आज तक कभी प्रहसन न लिखा था। किन्तु इस समय ईर्ष्या के उद्‌गार में उसने एक घंटे के अन्दर चार दृश्यों का एक विनोदपूर्ण ड्रामा लिख डाला।

प्रभु सेवक सो रहे थे। आधी रात बीत चुकी थी। सहसा सोफ़िया ने आकर जगाया, चौंककर उठ बैठे और यह समझकर कि शायद कमरे में चोर घुस आये हैं, द्वार की ओर दौड़े। सोफ़ी ने हँसते हुए उनका हाथ पकड़ लिया और पूछा—कहाँ भागे जाते हो? ज़रा मेरे कमरे में चलो, तुम्हें एक चीज़ सुनाऊँ। अभी लिखी है।

प्रभु सेवक—वाह-वाह! इतनी-सी बात के लिए नींद खराब कर दी। क्या फिर सबेरा न होता, क्या लिखा है?

सोफ़िया—एक प्रहसन है।

प्रभु सेवक—प्रहसन! कैसा प्रहसन? तुमने प्रहसन लिखने का कब से अभ्यास किया?

सोफ़िया—आज ही। बहुत जब्त किया कि सबेरे सुनाऊँगी; पर रहा न गया।

प्रभु सेवक सोफ़िया के कमरे में आये और एक ही क्षण में दोनों ने ठट्ठे मार-मारकर हँसना शुरू किया। प्रहसन के समाप्त होते-होते ठट्ठे की जगह खाँसी ने ले ली। खैरियत थी कि दोनों तरफ़ से द्वार बंद थे, नहीं तो उस निःस्तब्धता में सारा बँगला हिल जाता।

प्रभु सेवक—नाम भी खूब रखा, राजा मुछेन्द्रसिंह। महेन्द्र और मुछेन्द्र की तुक मिलती है! प्रभु सेवक—तुम प्रहसन लिखने में निपुण हो।

थोड़ी देर में दोनों अपने-अपने कमरे में सोये। सोफ़िया प्रातःकाल उठी और मि. क्लार्क का इंतज़ार करने लगी। नौ बजे तक क्लार्क का इंतज़ार करने के बाद सोफ़िया अधीर हो

उठी। इरादा किया, मैं ही चलूँ कि सहसा मि. जॉन सेवक आकर बैठ गये और सोफ़िया को क्रोधोन्मत्त नेत्रों से देखकर बोले—सोफ़ी, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। तुमने मेरे सारे मंसूबे खाक में मिला दिये।

सोफ़िया—मैंने क्या किया? मैं आपका आशय नहीं समझी।

जॉन सेवक—मेरा आशय यह है कि तुम्हारी ही दुष्प्रेरणा से मि. क्लार्क ने अपना पहला हुक्म रद्द किया है।

सोफ़िया—आपको भ्रम है।

जॉन सेवक—मैं बिना प्रमाण के किसी पर दोषारोपण नहीं करता। मैं अभी इंदुदेवी से मिलकर आ रहा हूँ। उन्होंने इसके प्रमाण दिये कि यह तुम्हारी करतूत है।

सोफ़िया—आपको विश्वास है कि इंदु ने मुझ पर जो इलज़ाम रखा है, वह ठीक है?

जॉन सेवक—उसे असत्य समझने के लिए मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है।

सोफ़िया—यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपनी बातों में वह नमक-मिर्च नहीं लगा सकती; लेकिन मैं इसका आपको विश्वास दिलाती हूँ कि इंदु ने हमारे और विलियम के बीच में द्वेष डालने के लिए यह स्वाँग रचा है।

जॉन सेवक ने भ्रम में पड़कर कहा—मेरी तरफ़ देख। क्या तू सच कह रही है?

सोफ़िया ने लाख यत्न किये कि पिता की ओर निश्शंक दृष्टि से देखे; किन्तु आँखें आप-ही-आप झुक गईं। मिस्टर जॉन सेवक ने उसकी लज्जा-पीड़ित आँखें देखीं और क्षुब्ध होकर बोले—आखिर तुमने क्या समझकर ये काँटे बोए?

सोफ़िया—आप मेरे ऊपर घोर अन्याय कर रहे हैं। आपको विलियम ही से इसका स्पष्टीकरण कराना चाहिए।

जॉन सेवक—अच्छा! तो तुमने मेरी नेकनामी के लिए यह चाल चली है? तुम्हारा बहुत अनुगृहीत हूँ। 'इसका फल तुम ईश्वर से पाओगी'—वह वाक्य कृपाण और भाले से ज़्यादा

घातक होता है। जब हम समझते हैं कि किसी दुष्कर्म का दंड देने के लिए भौतिक शक्ति काफ़ी नहीं है, तब हम आध्यात्मिक दंड का विधान करते हैं।

जॉन सेवक ये कोसने सुनाकर उठ गये। किन्तु सोफ़िया को इन दुर्वचनों से लेशमात्र भी दुःख न हुआ। उसने निश्चय किया-इस प्रहसन को आज ही प्रकाशित करूँगी। अगर एडीटर ने न छापा, तो स्वयं पुस्तकाकार छपवाऊँगी और मुफ्त बाँटूँगी।

ईश्वर सेवक ने जॉन सेवक की कठोर बातें सुनीं, तो बहुत नाराज़ हुए—न जाने तुम्हें अपने हानि-लाभ का ज्ञान कब होगा। तुम्हें इस अवसर पर इतने धैर्य और गम्भीरता से काम लेना था कि जितनी क्षति हो चुकी है, उसकी पूर्ति हो जाये। प्रभु मसीह, मुझे अपने दामन में छिपाओ और यह संकट टालो।

मिसेज़ सेवक—मैं तो इतनी मिन्नतों से उसे यहाँ लायी और तुम सारे किये-धरे पर पानी फेरे देते हो।

ईश्वर सेवक—प्रभु, मुझे आसमान की बादशाहत दे। अगर यही मान लिया जाये कि

सोफ़ी के इशारे से यह बात हुई, तो भी हमें उससे कोई शिकायत न होनी चाहिए, बल्कि मेरे दिल में तो उसका सम्मान और बढ़ गया है, उसे खुदा ने सच्ची रोशनी प्रदान की है, उसमें भक्ति और विश्वास की बरकत है।

जॉन सेवक—यह न भक्ति है और न धर्मानुराग, केवल दुराग्रह और द्वेष है।

ईश्वर सेवक ने इसका कुछ जवाब न दिया। अपनी लकड़ी टेकते हुए सोफ़ी के कमरे में आये और बोले—बेटी, मेरे आने से तुम्हारा कोई हरज तो नहीं हुआ?

सोफ़िया—नहीं-नहीं, आइए, बैठिए।

ईश्वर सेवक—ईसू, इस गुनाहगार को ईमान की रोशनी दे। अभी जॉन सेवक ने तुम्हें बहुत कुछ बुरा-भला कहा है, उन्हें क्षमा करो। बेटी, दुनिया में खुदा की जगह अपना पिता ही होता है, उसकी बातों का बुरा न मानना चाहिए।

सोफ़ी—मैं आपसे सच कहती हूँ, मुझे पापा की बातों का ज़रा भी मलाल नहीं है; लेकिन वह मुझ पर मिथ्या दोष लगाते हैं।

ईश्वर सेवक—बेटी, यह उनकी भूल है। मगर तुम अपने दिल से उन्हें क्षमा कर दो। आखिर आदमी जो कुछ करता है, अपने बाल-बच्चों के लिए ही तो करता है।

ईश्वर सेवक जब उठकर चले गये, तो प्रभु ने आकर पूछा—वह प्रहसन कहाँ भेजा?

सोफ़िया—अभी तो कहीं नहीं भेजा, क्या भेज ही दूँ?

प्रभु सेवक—ज़रूर-ज़रूर, मज़ा आ जायेगा, सारे शहर में धूम मच जायेगी।

सोफ़िया—ज़रा दो-एक दिन देख लूँ।

प्रभु सेवक—शुभ कार्य में विलम्ब न होना चाहिए, आज ही भेजो, मैंने भी आज अपनी कथा समाप्त कर दी। सुनाऊँ?

सोफ़िया—हाँ-हाँ, पढ़ो।

प्रभु सेवक ने अपनी कविता सुनानी शुरू की। एक-एक शब्द करुण रस में सराबोर था। कथा इतनी दर्दनाक थी कि सोफ़ी की आँखों से आँसू की झड़ी लग गयी। कविता समाप्त हो गयी, तो सोफ़ी ने कहा—मैंने कभी, अनुमान भी न किया था कि तुम इस रस का आस्वादन इतनी कुशलता से करा सकते हो! जी चाहता है, तुम्हारी कलम चूम लूँ। उफ! कितनी अलौकिक क्षमा है! ऐसे पवित्र, कोमल और ओजस्वी भाव तुम्हारी कलम से कैसे निकल आते हैं?

प्रभु सेवक—उसी तरह, जैसे इतने हास्योत्पादक और गर्वनाशक भाव तुम्हारी कलम से निकले। तुम्हारी रचना तुमसे कहीं नीची है।

सोफ़ी—मैं क्या, और मेरी रचना क्या। तुम्हारा एक-एक छंद बलि जाने के योग्य है। वास्तव में क्षमा मानवीय भावों में सर्वोपरि है। दया का स्थान इतना ऊँचा नहीं। दया वह दाना है, जो पोली धरती पर उगता है। इसके प्रतिकूल क्षमा वह दाना है, जो काँटों में उगता है। आश्चर्य है, तुममें क्षमा का लेश भी नहीं है!

प्रभु सेवक—सोफ़ी, भावों के सामने आचरण का कोई महत्त्व नहीं है। कवि का कर्मक्षेत्र

सीमित होता है, पर भावक्षेत्र अनंत और अपार है।

सोफ़ी—जिसके वचन और कर्म में इतना अन्तर हो, उसे किसी और नाम से पुकारना चाहिए।

प्रभु सेवक—नहीं सोफ़ी, यह बात नहीं है। कवि के भाव बतलाते हैं कि यदि उसे अवसर मिलता, तो वह क्या कुछ हो सकता था।

भोजन का समय आ गया। इसके बाद सोफ़ी ने ईश्वर सेवक को बाइबिल सुनाना शुरू किया। ईश्वर सेवक बाग में टहलने चले गये और प्रभु सेवक को सोफ़ी से गपशप करने का मौका मिला।

सोफ़ी—बड़े पापा एक बार पकड़ लेते हैं, तो फिर गला नहीं छोड़ते।

प्रभु—मुझसे बाइबिल पढ़ने को नहीं कहते। मुझसे तो क्षण-भर भी वहाँ न बैठा जाये।

सोफ़ी—क्या करूँ, उन पर दया आती है।

प्रभु सेवक—बना हुआ है। मतलब की बात पर कभी नहीं चूकता। यह सारी भक्ति केवल दिखाने की है।

सोफ़ी—यह तुम्हारा अन्याय है। उनमें और चाहे कोई गुण न हो, पर प्रभु मसीह पर उनका दृढ़ विश्वास है। चलो, कहीं सैर करने चलते हो?

प्रभु सेवक—कहाँ चलोगी?

सोफ़ी—पाँड़ेपुर की तरफ़ चलें। सूरदास मिल गया, तो उसे यह खबर सुनाएँगे।

प्रभु सेवक—फूला न समाएगा, उछल पड़ेगा।

दोनों ने सड़क पर आकर एक ताँगा किराए पर किया और पाँड़ेपुर चले। सूर्यास्त हो चुका था। ताँगा बरना नदी के पुल पर पहुँचा था कि अकस्मात् आदमियों की एक भीड़ दिखायी दी। सूरदास खंजरी बजाकर गा रहा था। सोफ़ी ने ताँगा रोक दिया और ताँगेवाले से कहा—जाकर उस अंधे को बुला ला।

एक क्षण में सूरदास लाठी टेकता हुआ आया और सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

सोफ़ी—मुझे पहचानते हो सूरदास?

सूरदास—हाँ, भला हुज़ूर ही को न पहचानूँगा!

सोफ़ी—तुमने तो हम लोगों को सारे शहर में खूब बदनाम किया।

सूरदास—फरियाद करने के सिवा मेरे पास और कौन बल था?

सोफ़ी—फरियाद का क्या नतीजा निकला?

सूरदास—मेरी मनोकामना पूरी हो गयी। हाकिमों ने मेरी ज़मीन मुझे दे दी।

प्रभु सेवक—मिस साहब ही ने बड़े साहब से कह-सुनकर तुम्हारी ज़मीन दिलवाई है। इनकी तुम्हारे ऊपर बड़ी दया है।

सोफ़ी—प्रभु, तुम बड़े पेट के हलके हो। यह कहने से क्या फ़ायदा कि मिस साहब ने ज़मीन दिलवाई है?

सूरदास—साहब, यह तो मैं उसी दिन जान गया था, जब मिस साहब से पहले-पहल

बातें हुई थीं। मुझे उसी दिन मालूम हो गया कि इनके चित्त में दया और धरम है।

सोफ़ी—सूरदास, यह मेरी सिफ़ारिश का फल नहीं, तुम्हारी तपस्या का फल है। राजा साहब को तुमने खूब छकाया। अब थोड़ी-सी कसर और है। ऐसा बदनाम कर दो कि शहर में किसी को मुँह न दिखा सकें, इस्तीफा देकर अपने इलाके की राह लें।

सूरदास—नहीं मिस साहब, यह खिलाड़ियों की नीति नहीं है। खिलाड़ी जीतकर हारनेवाले खिलाड़ी की हँसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है और हाथ जोड़कर कहता है —'भैया, अगर हमने खेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो, या कोई अनुचित व्योहार किया हो, तो हमें माफ़ करना।' मैं आज राजा साहब के पास गया था और उनके हाथ जोड़ आया। उन्होंने मुझे भोजन कराया। जब चलने लगा तो बोले, मेरा दिल तुम्हारी ओर से साफ है, कोई शंका मत करना।

सोफ़िया—ऐसे दिल के साफ तो नहीं हैं, मौका पाकर अवश्य दगा करेंगे, मैं तुमसे कहे देती हूँ।

सूरदास—नहीं मिस साहब, ऐसा मत कहिए। किसी पर संदेह करने से अपना चित्त मलिन होता है। जिस भगवान् ने अबकी बार सुना है, वही भगवान् फिर सुनेंगे।

प्रभु सेवक—और जो कोई मुआमला खड़ा करके क़ैद करा दिया तो?

सूरदास—(हँसकर) इसका फल उन्हें भगवान् से मिलेगा। मेरा धरम तो यही है कि जब कोई मेरी चीज़ पर हाथ बढ़ाए, तो उसका हाथ पकड़ लूँ।

सोफ़िया—लेकिन मैं तो राजा साहब को इतने सस्ते न छोड़ूँगी।

सूरदास—मिस साहब, आप विद्वान् होकर ऐसी बातें करती हैं, मुझे अचरज है।

इतने में किसी ने पुकारा—सूरदास, चलो ब्राह्मण लोग आ गये हैं।

सूरदास लाठी टेकता घाट की ओर चला। ताँगा भी चला।

प्रभु सेवक ने कहा—चलोगी मि. क्लार्क की तरफ़?

सोफ़िया ने कहा—नहीं, घर चलो।

रास्ते में कोई बातचीत नहीं हुई। सोफ़िया किसी विचार में मग्न थी। दोनों आदमी सिगरा पहुँचे, तो चिराग जल चुके थे।

21

सूरदास के आर्तनाद ने महेन्द्रकुमार की ख्याति और प्रतिष्ठा को जड़ से हिला दिया। वह आकाश से बातें करनेवाला कीर्ति-भवन क्षण-भर में धराशायी हो गया। यह सर्वमान्य नीति-सिद्धान्त था कि राजा भोक्ता है, प्रजा भोग्य है। यही सृष्टि का नियम था, लेकिन आज राजा और प्रजा में भोक्ता और भोग्य का सम्बंध नहीं है, अब सेवक और सेव्य का सम्बंध है।

रात के नौ बजे थे। राजा साहब अपने दीवानखाने में बैठे हुए इसी समस्या पर विचार कर रहे थे—लोग कितने कृतघ्न होते हैं; मैंने अपने जीवन के सात वर्ष उनकी निरंतर सेवा में व्यतीत कर दिये। उसका मुझे आज यह उपहार मिल रहा है कि एक अंधा भिखारी मुझे सारे शहर में गालियाँ देता फिरता है और कोई उसकी ज़बान नहीं पकड़ता, बल्कि लोग उसे उकसाते और उत्तेजित करते हैं।

सहसा अरदली ने आकर मि. क्लार्क का आज्ञा-पत्र उनके सामने रख दिया। राजा साहब ने चौंककर लिफाफा खोला, तो अवाक् रह गये।

चपरासी—हुज़ूर, कुछ जवाब देंगे?

राजा साहब—जवाब की ज़रूरत नहीं।

चपरासी—कुछ इनाम नहीं मिला। हुज़ूर ही...

राजा साहब ने उसे और कुछ न कहने दिया। जेब से एक रुपया निकालकर फेंक दिया। अरदली चला गया।

राजा साहब सोचने लगे—दुष्ट को इनाम माँगते शर्म भी नहीं आती, मानो मेरे नाम कोई धन्यवाद-पत्र लाये हैं। समझ में नहीं आता, क्लार्क ने क्यों अपना हुक्म मंसूख कर दिया। जॉन सेवक से किसी बात पर अनबन हो गयी क्या? शायद सोफ़िया ने क्लार्क को ठुकरा दिया। चलो, यह भी अच्छा ही हुआ।

वह कई दिन से इंदु से मिलने न गये थे। अन्दर जाते हुए डरते थे कि इंदु के तानों का क्या जवाब दूँगा। इंदु भी इस भय से उनके पास न आती थी कि कहीं फिर मेरे मुँह से कोई अप्रिय शब्द न निकल जाये। प्रत्येक दाम्पत्य-कलह के पश्चात् जब वह उसके कारणों पर शांत हृदय से विचार करती थी, तो उसे ज्ञात होता था कि मैं ही अपराधिन हूँ, और अपने दुराग्रह पर उसे हार्दिक दुःख होता था।

कई दिन तक मन में यह खिचड़ी पकाते रहने के कारण उसे सूरदास से चिढ़ हो गयी। सोचा—इसी अभागे के कारण मैं यह मनस्ताप भोग रही हूँ। इसी ने यह मनोमालिन्य पैदा कराया है।

इंदु दीन जनों पर दया कर सकती थी—दया में प्रभुत्व का भाव अंतर्हित है—न्याय न कर सकती थी, न्याय की भित्ति साम्य पर है। सोचती—यह उस बदमाश को पुलिस के हवाले क्यों नहीं कर देते?

वह इन्हीं कुत्सित विचारों में पड़ी हुई थी कि सोफ़िया ने आकर उसके सामने राजा साहब पर सूरदास के साथ अन्याय करने का अपराध लगाया, खुली हुई धमकी दे गयी। सोफ़िया के जाने के बाद वह क्रोध में भरी हुई राजा साहब से मिलने आयी; पर बाहर मालूम हुआ कि वह कुछ दिन के लिए इलाके पर गये हुए हैं। ये दिन उसने बड़ी बेचैनी में काटे। अफ़सोस हुआ कि गये और मुझसे पूछा भी नहीं!

राजा साहब जब इलाके से लौटे, तो उन्हें मि. क्लार्क का परवाना मिला। वह उस पर विचार कर रहे थे कि इंदु उनके पास आयी और बोली—इलाके पर गये और मुझे खबर तक न हुई, मानो मैं घर में हूँ ही नहीं।

राजा ने लज्जित होकर कहा—ऐसा ही एक ज़रूरी काम था। एक दिन की भी देर हो जाती, तो इलाके में फौजदारी हो जाती। मुझे अब अनुभव हो रहा है कि ताल्लुकेदारों के अपने इलाके पर न रहने से प्रजा को कितना कष्ट होता है।

'इलाके में रहते, तो कम-से-कम इतनी बदनामी तो न होती।'

'अच्छा, तुम्हें भी मालूम हो गया। तुम्हारा कहना न मानने में मुझसे बड़ी भूल हुई। इस अंधे ने ऐसी विपत्ति में डाल दिया कि कुछ करते-धरते नहीं बनता।'

'मैंने तो जब से सुना है कि अंधा तुम्हें बदनाम कर रहा है, तब से ऐसा क्रोध आ रहा है कि वश चले, तो उसे जीता चुनवा दूँ।

राजा साहब ने प्रसन्न होकर कहा—तो हम दोनों एक ही लक्ष्य पर आ पहुँचे।

'इस दुष्ट को ऐसा दंड देना चाहिए कि उम्र-भर याद रहे।'

'मिस्टर क्लार्क ने इसका फैसला कर दिया। सूरदास की ज़मीन वापस कर दी गयी।'

इंदु को ऐसा मालूम हुआ कि ज़मीन धँस रही है और मैं उसमें समाई जा रही हूँ। वह दीवार न थाम लेती, तो ज़रूर गिर पड़ती—सोफ़िया ने मुझे यों नीचा दिखाया है। चाहती है कि मैं उसके क़दम चूमूँ। कदापि नहीं।

उसने राजा साहब से कहा—अब आप क्या करेंगे?

'कुछ नहीं, करना क्या है। सच पूछो, तो मुझे इसका ज़रा भी दुःख नहीं है।'

'और हेठी कितनी हुई!'

'हेठी ज़रूर हुई; पर इस बदनामी से अच्छी है।'

इंदु का मुख-मंडल गर्व से तमतमा उठा। बोली—यह बात आपके मुँह से शोभा नहीं देती। यह नेकनामी-बदनामी का प्रश्न नहीं है, अपनी मर्यादा-रक्षा का प्रश्न है। आपकी कुल-

मर्यादा पर आघात हुआ है, उसकी रक्षा करना आपका परम धर्म है, चाहे उसके लिए न्याय के सिद्धान्तों की बलि ही क्यों न देनी पड़े। मि. क्लार्क की हस्ती ही क्या है, मैं किसी सम्राट् के हाथों भी अपनी मर्यादा की हत्या न होने दूँगी, चाहे इसके लिए मुझे अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि प्राण भी देना पड़े। आप तुरंत गवर्नर को मि. क्लार्क के न्याय-विरुद्ध हस्तक्षेप की सूचना दीजिए।

राजा साहब ने चिंतित स्वर में कहा—मि. क्लार्क से सदा के लिए विरोध हो जायेगा। मुझे आशा नहीं है कि उनके मुकाबले में गवर्नर मेरा पक्ष ले।

'अगर गवर्नर न सुनें, तो वाइसराय से अपील कीजिए। विलायत जाकर वहाँ के नेताओं से मिलिए। यह कोई छोटी बात नहीं है, आपके सिर पर एक महान् उत्तरदायित्व का भार आ पड़ा है, उसमें जौ-भर भी दबना आपको सदा के लिए कलंकित कर देगा।'

राजा साहब ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तुम्हें यहाँ के शिक्षितों का हाल मालूम नहीं है। तुम समझती होगी कि वे मेरी सहायता करेंगे, या कम-से-कम सहानुभूति ही दिखाएँगे; पर जिस दिन मैंने प्रत्यक्ष रूप से मि. क्लार्क की शिकायत की, उसी दिन से लोग मेरे घर आना-जाना छोड़ देंगे। कोई मुँह तक न दिखाएगा।

राजा साहब ने बहुत हीले-हवाले किये, परिस्थिति का बहुत ही दुराशापूर्ण चित्र खींचा, लेकिन इंदु अपने ध्येय से जौ-भर भी न टली। बोली—अगर मान लें कि आपकी सारी शंकाएँ पूरी हो जायें, आपका सम्मान मिट जाये, सारा शहर आपका दुश्मन हो जाये, हुक्काम आपको संदेह की दृष्टि से देखने लगें, यहाँ तक कि आपके इलाके के जब्त होने की नौबत भी आ जाये, तब भी मैं आपसे यही कहती जाऊँगी, अपने स्थान पर अटल रहिए। यही हमारा क्षात्र धर्म है। इस संग्राम में हमारी हार भी महान् विजय का स्थान पाएगी; क्योंकि वह पशु-बल की नहीं, आत्मबल की लड़ाई है। एक कर्मचारी के अन्याय की फ़रियाद सरकार के कानों में पहुँचाकर आप उस सुदृढ़ राजभक्ति का परिचय देंगे, सरकार की उस न्याय-रीति पर पूर्ण विश्वास की घोषणा करेंगे, जो साम्राज्य का आधार है। बालक माता के सामने रोये, हठ करे, मचले; पर माता की ममता क्षण-मात्र भी कम नहीं होती। मुझे तो निश्चय है कि सरकार न्याय की धाक जमाने के लिए आपका और भी सम्मान करेगी।

यह युक्ति राजा साहब को विचारणीय जान पड़ी। बोले—अच्छा, सोचूँगा। इतना कहकर चले गये।

दूसरे दिन सुबह जॉन सेवक राजा साहब से मिलने आये। उन्होंने भी यही सलाह दी कि इस मुआमले में ज़रा भी न दबना चाहिए। राजा साहब को कुछ ढाढ़स हुआ, एक से दो हुए। संध्या समय वह कुँवर साहब से सलाह लेने गये। उनकी भी यही राय हुई। डॉक्टर गांगुली तार द्वारा बुलाए गये। उन्होंने यहाँ तक ज़ोर दिया कि 'आप चुप भी हो जायेंगे, तो मैं व्यवस्थापक सभा में इस विषय को अवश्य उपस्थित करूँगा।'

राजा साहब इंदु से बोले—लो तुम्हारी ही सलाह पक्की रही। जान पर खेल रहा हूँ।

इंदु ने उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखकर कहा—ईश्वर ने चाहा तो आपकी विजय होगी।

22

सैयद ताहिरअली को पूरी आशा थी कि जब सिगरेट का कारखाना बनना शुरू हो जायेगा, तो मेरी कुछ-न-कुछ तरक्की हो जायेगी। मि. सेवक ने उन्हें इसका वचन दिया था। इस आशा के सिवा उन्हें अब तक ऋणों को चुकाने का कोई उपाय न नज़र आता था, जो दिनों-दिन बरसात की घास के समान बढ़ते जाते थे। वह स्वयं बड़ी किफायत से रहते थे। किन्तु वह खुद चाहे कितनी ही किफायत करें, घरवालों की ज़रूरत में काट-कपट करना न्याय-विरुद्ध समझते थे। जैनब और रकिया अपने लड़कों के लिए दूध लेना आवश्यक समझती थीं। कहतीं—यही तो लड़कों के खाने-पीने की उम्र है, इसी उम्र में तो उनकी हड्डियाँ चौड़ी-चकली होती हैं, दिल और दिमाग बढ़ते हैं। इस उम्र में लड़कों को मुकब्बी खाना न मिले, तो उनकी सारी ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है।

विपत्ति यह थी कि माहिर और जाबिर तो मिठाइयाँ खाकर ऊपर से दूध पीते और साबिर और नसीमा खड़े मुँह ताका करते। जैनब बेगम कहतीं—सबको खिलाकर खिलाएँ, तभी खिलाना कहलाये। सब कुछ तो उन्हीं की मुट्ठी में है, जो चाहें खिलाएँ, जैसे चाहें रखें; कोई हाथ पकड़नेवाला है? वे दोनों दिन-भर बकरी की तरह पान चबाया करतीं, कुल्सूम को भोजन के पश्चात् एक बीड़ा भी मुश्किल से मिलता था।

प्रातःकाल था। चमड़े की खरीद हो रही थी। सैकड़ों चमार बैठे चिलम पी रहे थे। यही एक समय था, जब ताहिरअली को अपने गौरव का कुछ आनंद मिलता था। एक चमार द्वार पर झाड़ू लगाता, एक उनका तख्त साफ करता, एक पानी भरता। इतने आदमियों को अपनी सेवा में तत्पर देखकर उन्हें मालूम होता था कि मैं भी कुछ हूँ।

इसी समय जगधर आकर बोला—मुंसीजी, हिसाब कब तक चुकता कीजिएगा? मैं कोई लखपती थोड़े ही हूँ कि रोज मिठाइयाँ देता जाऊँ, चाहे दाम मिलें या न मिलें। आप जैसे दो-चार गाहक और मिल जायें, तो मेरा दिवाला ही निकल जाये। यह देखिए कागद, हिसाब कर दीजिए।

देनदारों के लिए हिसाब का कागज यमराज का परवाना है। वे उसकी ओर ताकने का साहस नहीं कर सकते। हिसाब देखने का मतलब है, रुपये अदा करना।

ताहिरअली ने बड़ी नम्रता से कहा—भई, हिसाब सब मालूम है, अब बहुत जल्द तुम्हारा

बकाया साफ़ हो जायेगा। दो-चार दिन और सब्र करो।

जगधर—कहाँ तक सबर करूँ साहब? दो-चार दिन करते-करते तो महीनों हो गये।

ताहिर—बिरादर, आजकल ज़रा तंग हो गया हूँ, मगर अब जल्द कारखाने का काम शुरू होगा, मेरी भी तरक़्क़ी होगी। बस, तुम्हारी एक-एक कौड़ी चुका दूँगा।

जगधर—ना, आज तो मैं रुपये लेकर ही जाऊँगा। महाजन के रुपये न दूँगा, तो आज मुझे छटाँक-भर भी सौदा न मिलेगा। भगवान् जानते हैं, जो मेरे घर में टका भी हो।

चमारों के चौधरी को जगधर पर दया आ गयी। ताहिरअली से बोला—मुंशीजी, मेरा पावना इन्हीं को दे दीजिए, मुझे दो-चार दिन में दीजिएगा।

ताहिर—जगधर, मैं खुदा को गवाह करके कहता हूँ, मेरे पास रुपये नहीं हैं, खुदा के लिए दो-चार दिन ठहर जाओ।

जगधर—मुंसीजी, झूठ बोलना गाय खाना है, महाजन के रुपये आज न पहुँचे, तो कहीं का नहीं रहूँगा।

ताहिरअली ने घर में आकर कुल्सूम से कहा—मिठाईवाला सिर पर सवार है, किसी तरह टलता ही नहीं। क्या करूँ, रोकड़ में से दस रुपये निकालकर दे दूँ?

कुल्सूम ने चिढ़कर कहा—जिसके दाम आते हैं, वह सिर पर सवार होगा ही! अम्माँजान से क्यों नहीं माँगते?

ताहिर—इसी मारे तो मैं तुमसे बात कहता नहीं। रोकड़ से ले लेने में क्या हरज है? तनख्वाह मिलते ही जमा कर दूँगा।

कुल्सूम—खुदा के लिए कहीं यह गज़ब न करना। रोकड़ को काला साँप समझो। कहीं आज ही साहब रक़म की जाँच करने लगे तो?

ताहिर—अजी नहीं, साहब को इतनी फ़ुरसत कहाँ कि रोकड़ मिलाते रहें!

कुल्सूम—मैं अमानत की रक़म छूने को न कहूँगी। ऐसा ही है, तो नसीमा का तौक उतारकर कहीं गिरो रख दो, और तो मेरे किये कुछ नहीं हो सकता।

ताहिरअली को दुःख तो बहुत हुआ; पर करते क्या। नसीमा का तौक निकालते थे, और रोते थे।

तौक रूमाल में लिए हुए ताहिरअली बाहर निकले, और जगधर को अलग ले जाकर बोले—भई, इसे ले जाओ, कहीं गिरो रखकर अपना काम चलाओ। घर में रुपये नहीं हैं।

जगधर—उमार सौदा बेचना पाप है, पर करूँ क्या, नगद बेचने लगूँ, तो घूमता ही रह जाऊँ।

यह कहकर उसने सकुचाते हुए तौक ले लिया और पछताता हुआ चला गया।

जगधर को गये आध घंटा भी न गुज़रा था कि बजरंगी त्योरियाँ बदले हुए आकर बोला—मुंशीजी, रुपये देने हों, तो दीजिए, नहीं तो कह दीजिए, बाबा, हमसे नहीं हो सकता; बस, हम सबर कर लें।

ताहिर—बिरादर, जैसे इतने दिनों तक सब्र किया है, थोड़े दिन और करो। खुदा ने चाहा,

तो अबकी तुम्हारी एक पाई भी न रहेगी।

बजरंगी—तो किस दिन हिसाब कीजिएगा?

ताहिरअली असमंजस में पड़ गये, कौन-सा दिन बतलाएँ। देनदारों को हिसाब के दिन का उतना ही भय होता है, जितना पापियों को। ताहिरअली स्वभाव से खरे आदमी थे। आखिरकार बोले—दिन कौन-सा बताऊँ, चार-छः दिन में जब आ जाओगे, उसी दिन हिसाब हो जायेगा।

बजरंगी—मुंशीजी, मुझसे उड़नघाइयाँ न बताइए। मुझे भी सभी तरह के ग्राहकों से काम पड़ता है। मुझे कोई दिन बता दीजिए, जिसमें मेरा भी हरज न हो और आपको भी सुबीता हो।

ताहिर—दिन बता देने में मुझे कोई उज्र न होता, लेकिन बात यह है कि मेरी तनख्वाह मिलने की कोई तारीख मुकर्रर नहीं है; दो-चार दिनों का हेर-फेर हो जाता है। एक हफ्ते के बाद किसी लड़के को भी भेज दोगे, तो रुपये मिल जायेंगे।

बजरंगी—अच्छी बात है, आप ही का कहना सही। अगर अबकी वादाखिलाफी कीजिएगा, तो फिर माँगने न आऊँगा।

बजरंगी चला गया, तो ताहिरअली डींग मारने लगे—तुम लोग समझते होगे, ये लोग इतनी-इतनी तलब पाते हैं, घर में बटोरकर रखते होंगे, और यहाँ खर्च का यह हाल है कि आधा महीना भी नहीं खत्म होता और रुपये उड़ जाते हैं। शराफत रोग है, और कुछ नहीं।

एक चमार ने कहा—हुज़ूर, बड़े आदमियों का खर्च भी बड़ा होता है।

ताहिरअली के आँसू अच्छी तरह न पुँछने पाए थे कि सामने से ठाकुरदीन आता हुआ दिखायी दिया। बेचारे पहले ही से कोई बहाना सोचने लगे। इतने में उसने आकर सलाम किया और बोला—मुंशीजी, कारखाने में कब से हाथ लगेगा?

ताहिर—मसाला जमा हो रहा है। अभी इंजीनियर ने नक्शा नहीं बनाया है, इसी वजह से देर हो रही है।

ठाकुरदीन—इंजीनियर ने भी कुछ लिया होगा? (हिसाब का परत दिखाकर) ज़रा इधर भी एक निगाह हो जाये।

ताहिर—सब मालूम है, तुमने गलत थोड़े ही लिखा होगा।

ठाकुरदीन—ईमान है, तो सब कुछ है। साथ कोई न जायेगा। मुझे क्या हुकुम होता है?

ताहिर—दो-चार दिन की मुहलत दो।

ठाकुरदीन—जैसी आपकी मरजी। हुज़ूर, चोरी हो जाने से लाचार हो गया, नहीं तो दो-चार रुपयों की कौन बात थी। उस चोरी में तबाह हो गया। तो कब आऊँ?

ताहिर—तुम्हारे आने की ज़रूरत नहीं, मैं खुद भिजवा दूँगा।

ठाकुरदीन—जैसी आपकी खुशी, मुझे कोई उजर नहीं है। मुझे तगादा करते आप ही सरम आती है। सब न हो सके, तो थोड़ा-बहुत दे दीजिए।

ठाकुरदीन की विनम्रता और प्रफुल्लित सहृदयता ने ताहिरअली को मुग्ध कर दिया। तुरंत

संदूक खोला और पाँच रुपये निकालकर उसके सामने रख दिये। ठाकुरदीन ने रुपये उठाए नहीं, एक क्षण कुछ विचार करता रहा, तब बोला—ये आपके रुपये हैं कि सरकारी रोकड़ के हैं?

ताहिर—तुम ले जाओ, तुम्हें आम खाने से मतलब कि पेड़ गिनने से?

ठाकुरदीन—नहीं मुंशीजी, यह न होगा। अपने रुपये हों, तो दीजिए, मालिक की रोकड़ हो, तो रहने दीजिए; फिर आकर ले जाऊँगा।

ताहिरअली ने सजल नयन होकर कहा—रुपये लेते जाओ।

ठाकुरदीन उठ खड़ा हुआ और बोला—जब आपके पास हों, तब देना।

अब तक तो ताहिरअली को कारखाने के बनने की उम्मीद थी। इधर आमदनी बढ़ी, उधर मैंने रुपये दिये; लेकिन जब मि. क्लार्क ने अनिश्चित समय तक के लिए कारखाने का काम बन्द करवा दिया, तब ताहिरअली का अपने लेनदारों को समझाना मुश्किल हो गया।

तीसरा पहर था। ताहिरअली बरामदे में उदास बैठे हुए थे। सहसा भैरो आकर बैठ गया, और बोला—क्यों मुंशीजी, क्या सचमुच अब यहाँ कारखाना न बनेगा?

ताहिर—बनेगा क्यों नहीं, अभी थोड़े दिनों के लिए रुक गया है।

भैरो—मुझे तो आशा थी कि कारखाना बन गया, तो बिकरी-बट्टा बढ़ जायेगा; दूकान पर बिक्री बिलकुल मंदी है। मैं चाहता हूँ कि यहाँ सबेरे थोड़ी देर बैठा करूँ। मेरी थोड़ी-बहुत बिकरी हो जायेगी। आपको भी पान खाने के लिए कुछ नज़र कर दिया करूँगा।

किसी और समय ताहिरअली ने भैरो को डाँट बताई होती। ताड़ी की दूकान खोलने की आज्ञा देना उनके धर्म-विरुद्ध था। पर इस समय रुपये की चिन्ता ने उन्हें असमंजस में डाल दिया। सोचने लगे—क्या करूँ? इसमें मेरा क्या कसूर? मैं किसी बेजा खर्च के लिए शरा को नहीं तोड़ रहा हूँ, हालत ने मुझे बेबस कर दिया है। कुछ झेंपते हुए बोले—यहाँ ताड़ी की बिकरी न होगी।

भैरो—हुज़ूर, बिकरी तो ताड़ी की महक से होगी। नसेबाजों की ऐसी आदत होती है कि न देखें, तो चाहे बरसों न पिएँ, पर नसा सामने देखकर उनसे नहीं रहा जाता।

ताहिर—मगर साहब के हुक्म के बगैर मैं कैसे इजाजत दे सकता हूँ?

भैरो—मेरी समझ में तो साहब से पूछने की ज़रूरत ही नहीं। मैं कौन यहाँ दूकान रखूँगा। सबेरे एक घड़ा लाऊँगा, घड़ी-भर में बेचकर अपनी राह लूँगा।

ताहिर—नमकहरामी सिखाते हो, क्यों?

भैरो—हुज़ूर, इसमें नमकहरामी काहे की, अपने दाँव-घात पर कौन नहीं लेता?

सौदा पट गया। भैरो एकमुश्त 15 रुपये देने को राज़ी हो गया। जाकर सुभागी से बोला—देख, सौदा कर आया न! तू कहती थी, वह कभी न मानेंगे पर रुपये पर सभी लपक पड़ते हैं। मियाँ ने पहले तो दिखाने के लिए इधर-उधर किया, फिर 15 रुपये में राज़ी हो गये।

सुभागी पहले घर की मालकिन बनना चाहती थी, इसलिए रोज डंडे खाती थी। अब वह घर-भर की दासी बनकर मालकिन बनी हुई है। सास, जो उसकी सूरत से जलती थी, दिन में

सौ-सौ बार उसे आशीर्वाद देती है। सुभागी ने चटपट रुपये निकालकर भैरो को दिये। शायद दो बिछुड़े हुए मित्र इस तरह टूटकर गले न मिलते होंगे, जैसे ताहिरअली इन रुपयों पर टूटे। लेनदार अपने-अपने रुपये ले गये। ताहिरअली के सिर का बोझ हलका हुआ, मगर उन्हें बहुत रात तक नींद न आयी। आत्मा की आयु दीर्घ होती है। उसका गला कट जाये, पर प्राण नहीं निकलते।

23

जब तक सूरदास शहर में हाकिमों के अत्याचार की दुहाई देता रहा, उसके मुहल्ले वाले जॉन सेवक के हितैषी होने पर भी उससे सहानुभूति करते रहे। निर्बलों के प्रति स्वभावतः करुणा उत्पन्न हो जाती है। लेकिन सूरदास की विजय होते ही यह सहानुभूति स्पर्द्धा के रूप में प्रकट हुई। सारा मुहल्ला उससे मन-ही-मन खार खाने लगा। केवल एक ठाकुरदीन था, जो अब भी उसके पास आया-जाया करता था। उसे अब यकीन हो गया था कि सूरदास को अवश्य किसी देवता का इष्ट है, उसने ज़रूर कोई मंत्र सिद्ध किया है, नहीं तो उसकी इतनी कहाँ मजाल कि ऐसे-ऐसे प्रतापी आदमियों का सिर झुका देता।

सूरदास के स्वभाव में भी अब कुछ परिवर्तन हुआ। धैर्यशील वह पहले ही से था; पर न्याय और धर्म के पक्ष में कभी-कभी उसे क्रोध आ जाता था। अब उसमें अग्नि का लेशांश भी न रहा। मुहल्लेवाले राह चलते उसे छेड़ते, आवाज़ें कसते, ताने मारते; पर वह किसी को जवाब न देता, सिर झुकाए भीख माँगने जाता और चुपके से अपनी झोंपड़ी में आकर पड़ रहता। हाँ, मिठुआ के मिजाज़ न मिलते थे, किसी से सीधे मुँह बात न करता। लोग यहाँ तक कह जाते थे कि सूरदास ने ही उसे सिर चढ़ा लिया है, बछवा खूँटे ही के बल कूदता है।

आजकल सोफ़िया मि. क्लार्क के साथ सूरदास से अकसर मिला करती थी। वह नित्य उसे कुछ-न-कुछ देती और उसकी दिलजोई करती। पूछती रहती, मुहल्लेवाले या राजा साहब के आदमी तुम्हें दिक तो नहीं कर रहे हैं। सूरदास जवाब देता, मुझ पर सब लोग दया करते हैं, मुझे किसी से शिकायत नहीं है। एक बार किसी चोरी के सम्बंध में नायकराम के घर में तलाशी हो गयी। नायकराम को संदेह हुआ, सूरदास ने यह तीर मारा है। इसी भाँति एक बार भैरो से आबकारी के दारोग़ा ने जवाब तलब किया। इन लोगों के संदेह पर तो सूरदास को बहुत दुःख न हुआ, लेकिन जब सुभागी खुल्लमखुल्ला उसे लांछित करने लगी, तो उसे बहुत दुःख हुआ।

इस भाँति कई महीने गुज़र गये। एक दिन रात को सूरदास खा-पीकर लेटा हुआ था कि किसी ने आकर चुपके से उसका हाथ पकड़ा। सूरदास चौंका, पर सुभागी की आवाज़ पहचानकर बोला—क्या कहती है?

सुभागी—कुछ नहीं, ज़रा मड़ैया में चलो, तुमसे कुछ कहना है।

सूरदास उठा और सुभागी के साथ झोंपड़ी में आकर बोला—कह, क्या कहती है? अब तो तुझे भी मुझसे बैर हो गया है। गालियाँ देती फिरती है, चारों ओर बदनाम कर रही है। बतला, मैंने तेरे साथ कौन-सी बुराई की थी कि तेने मेरी बुराई पर कमर बाँध ली?

सुभागी ने करुणावरुद्ध कंठ से उत्तर दिया—मैं तुम्हारा जितना आदर करती हूँ, उतना और किसी का नहीं। तुम अगर देवता होते, तो भी इतनी ही सिरधा से तुम्हारी पूजा करती।

सूरदास—मैं साहब से किसकी शिकायत करता हूँ? जब ज़मीन निकल गयी थी, तब तो लोग मुझसे न चिढ़ते थे। अब ज़मीन छूट जाने से क्यों सब-के-सब मेरे दुसमन हो गये हैं? बता, मैं क्या घमंड करता हूँ?

सुभागी—मेरे मन का हाल भगवान जानते होंगे।

सूरदास—तो मुझे क्यों जलाया करती है?

सुभागी—इसलिए।

यह कहकर उसने एक छोटी-सी पोटली सूरदास के हाथ में रख दी। पोटली भारी थी। सूरदास ने उसे टटोला और पहचान गया। यह उसी की पोटली थी, जो चोरी गयी थी। अनुमान से मालूम हुआ कि रुपये भी उतने ही हैं। विस्मित होकर बोला—यह कहाँ मिली?

सुभागी—तुम्हारी मिहनत की कमाई है, तुम्हारे पास आ गयी। अब जतन से रखना।

सूरदास—मैं न रखूँगा। इसे ले जा।

सुभागी—क्यों? अपनी चीज़ लेने में कोई हरज है?

सूरदास—यह मेरी चीज़ नहीं; भैरो की चीज़ है। इसी के लिए भैरो ने अपनी आत्मा बेची है; महँगा सौदा लिया है। मैं इसे कैसे लू लूँ?

सुभागी—मैं ये सब बातें नहीं जानती। तुम्हारी चीज़ है, तुम्हें लेनी पड़ेगी। इतने दिनों से इसी के लिए माया रच रही हूँ। तुम न लोगे, तो इसे मैं क्या करूँगी?

यह कहकर सुभागी चली गयी। सूरदास को और तर्क-वितर्क करने का मौका न मिला। बड़े असमंजस में पड़ा—ये रुपये लूँ या क्या करूँ? यह थैली मेरी है या नहीं?

वह इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ था कि एकाएक 'चोर-चोर!' का शोर सुनाई दिया। पहली ही नींद थी। लोग गाफिल सो रहे थे। फिर आवाज़ आयी—'चोर-चोर!'

भैरो की आवाज़ थी। सूरदास समझ गया, सुभागी ने यह प्रपंच रचा है। इतने में बजरंगी की आवाज़ सुनाई दी—किमर गया, किधर? यह कहकर वह लाठी लिए अँधेरे में एक तरफ़ दौड़ा। नायकराम भी घर से निकले और 'किधर-किधर' करते हुए दौड़े। ज़रा देर में बहुत-से आदमी जमा हो गये। ठाकुरदीन ने पूछा—क्या-क्या ले गया? अच्छी तरह देख लेना, कहीं छत में न चिमटा हुआ हो।

सुभागी—हाय, मैं तो लुट गयी। अभी तो बैठी-बैठी अम्माँ का पाँव दबा रही थी। इतने में न जाने मुआ कहाँ से आ पहुँचा।

भैरो—(चिराग से देखकर) सारी जमा-जथा लुट गयी। हाय राम!

सुभागी—हाय, मैंने उसकी परछाईं देखी, तो समझी यही होंगे। जब उसने संदूक पर

हाथ बढ़ाया, तो भी समझी यही होंगे।

ठाकुरदीन—खपरैल पर चढ़कर आया होगा। मेरे यहाँ जो चोरी हुई थी, उसमें भी चोर सब खपरैल पर चढ़कर आये थे।

इतने में बजरंगी आया। सिर से रुधिर बह रहा था, बोला—मैंने उसे भागते देखा। लाठी चलाई। उसने भी वार किया। मैं तो चक्कर खाकर गिर पड़ा; पर उस पर भी ऐसा हाथ पड़ा है कि सिर खुल गया होगा।

सहसा नायकराम हाय-हाय करते आये और ज़मीन पर गिर पड़े। सारी देह खून से तर थी।

ठाकुरदीन—पण्डाजी, तुमसे भी उसका सामना हो गया क्या?

नायकराम—हाँ भई, यहीं गली में तो मिला। बड़ा भारी जवान था।

ठाकुरदीन—तभी तो अकेले दो आदमियों को घायल कर गया।

नायकराम—हाथ मेरा भी भरपूर पड़ा है। मैंने उसे गिरते देखा। सिर ज़रूर फट गया होगा। जब तक पकड़ूँ, निकल गया।

बजरंगी—हाथ तो मेरा भी ऐसा पड़ा है कि बच्चा को छठी का दूध याद आ गया होगा। चारों खाने चित गिरा था।

ठाकुरदीन—किसी जाने हुए आदमी का काम है। घर के भेदिए बिना चोरी नहीं होती।

बजरंगी—थाने में ज़रूर रपट करना।

भैरो—रपट ही करके थोड़े रह जाऊँगा। बच्चा से चक्की न पिसवाऊँ, तो कहना।

ठाकुरदीन—माल-का-माल ले गया, दो आदमियों को चुटैल कर गया। इसी से मैं चोरों के नगीच नहीं गया था। दूर ही से 'लेना-देना' करता रहा।

भैरो को बजरंगी पर शुभा न था, न नायकराम पर; उसे जगधर पर शुभा था। शुभा ही नहीं, पूरा विश्वास था। वह पड़ोसी होकर भी घटनास्थल पर सबसे पीछे पहुँचा था।

दूसरे दिन मुँह-अँधेरे भैरो ने कोतवाली में इत्तला दी। दोपहर तक दारोग़ाजी तहकीकात करने आ पहुँचे। जगधर की खानातलाशी हुई, कुछ न निकला। भैरो ने समझा, इसने माल कहीं छिपा दिया। अपनी दूकान पर बैठा हुआ सारे दिन इसी चोरी की चर्चा किया करता—क्या कहूँ, मुझे कभी ऐसी नींद न आती थी, उस दिन न जाने कैसे सो गया। अगर बँधवा न दूँ, तो नाम नहीं।

शनैः-शनैः भैरो को मुहल्ले-भर पर संदेह होने लगा। और, वह सभी पर क्रोध करने लगा, जलते तो लोग उससे पहले ही थे, अब सारा मुहल्ला उसका दुश्मन हो गया। यहाँ तक कि अंत में वह अपने घरवालों ही पर अपना क्रोध उतारने लगा। सुभागी पर फिर मार पड़ने लगी—तूने मुझे चौपट किया, तू इतनी बेखबर न होती, तो चोर कैसे घर में घुस आता? अब तक उसने अपनी माँ का हमेशा अदब किया था, पर अब उसकी भी ले-दे मचाता—तू कहा करती है, मुझे रात को नींद ही नहीं आती, रात भर जागती रहती हूँ। उस दिन तुझे कैसे नींद आ गयी? सारांश यह कि उसके दिल में किसी की इज्जत, किसी का विश्वास, किसी का स्नेह न

रहा।

एक दिन संध्या समय जगधर ताहिरअली के पास आकर खड़ा हो गया। ताहिरअली ने पूछा—कैसे चले जी?

जगधर—आपसे एक बात कहने आया हूँ। आबकारी के दारोग़ा अभी मुझसे मिले थे। पूछते थे—भैरो गोदाम पर दूकान रखता है कि नहीं? मैंने कहा—साहब, मुझे नहीं मालूम। तब चले गये, पर आजकल में वह इसकी तहकीकात करने ज़रूर आयेंगे।

ताहिरअली ने दूसरे ही दिन भैरो को वहाँ से भगा दिया।

इसके कई दिन बाद एक दिन, रात के समय सूरदास बैठा भोजन बना रहा था कि जगधर ने आकर कहा—क्यों सूरे, तुम्हारी अमानत तो तुम्हें मिल गयी न?

सूरदास ने अज्ञात भाव से कहा—कैसी अमानत?

जगधर—वही रुपये, जो तुम्हारी झोंपड़ी से उठ गये थे।

सूरदास—मेरे पास रुपये कहाँ थे?

जगधर—अब मुझसे न उड़ो, रत्ती-रत्ती बात जानता हूँ, और खुश हूँ कि किसी तरह तुम्हारी चीज़ उस पापी के चंगुल से निकल आयी। सुभागी अपनी बात की पक्की है।

सूरदास—जगधर, मुझे इस झमेले में न घसीटो, ग़रीब आदमी हूँ। भैरो के कान में ज़रा भी भनक पड़ गयी, तो मेरी जान तो पीछे लेगा, पहले सुभागी का गला घोंट देगा।

जगधर—मैं उससे कहने थोड़े ही जाता हूँ; पर बात हुई मेरे मन की।

सूरदास—तुम नाहक मेरी जान के पीछे पड़े हो।

जगधर—एक बार खिलखिलाकर हँस दो, तो मैं चला जाऊँ।

यह कहकर उसने सूरदास को गुदगुदाना शुरू किया। सूरदास विनोदशील आदमी था। ठट्ठे मारने लगा। शाम की मारी सुभागी इसी वक़्त बनिए की दूकान से जिंस लिए आ रही थी। सूरदास के घर से अट्टहास की आकाशभेदी ध्वनि सुनी, तो चकराई। अंधे कुएँ में पानी कैसा? आकर द्वार पर खड़ी हो गयी और सूरदास से बोली—आज क्या मिल गया है सूरदास, जो फूले नहीं समाते?

सूरदास ने हँसी रोककर कहा—मेरी थैली मिल गयी; चोर के घर में छिछोर पैठा।

सुभागी—तो सब माल अकेले हजम कर जाओगे?

सूरदास—नहीं, तुझे भी एक कंठी ला दूँगा, ठाकुरजी का भजन करना।

जगधर—इसे चाहे कंठा बनवाना या न बनवाना, इसकी बुढ़िया को एक नथ ज़रूर बनवा देना। पोपले मुँह पर नथ खूब खिलेगी, जैसे कोई बंदरिया नथ पहने हो।

इस पर तीनों ने ठट्ठा मारा। संयोग से भैरो भी उसी वक़्त थाने से चला आ रहा था। ठट्ठे की आवाज़ सुनी, तो झोंपड़ी के अन्दर झाँका, यह तिगड्डम देखा, तो आँखों में खून उतर आया, जैसे किसी ने कलेजे पर गरम लोहा रख दिया हो। सुभागी को कठोर-से-कठोर, अश्लील-से-अश्लील दुर्वचन कहे, जैसे कोई सूरमा अपनी जान बचाने के लिए अपने शस्त्रों का घातक-से-घातक प्रयोग करे—खबरदार, जो आज से मेरे घर में क़दम रखा, खून चूस

लूँगा।

यह कहता हुआ वह चला गया। सुभागी के काटो तो बदन में खून नहीं। मालूम हुआ, सिर पर बिजली गिर पड़ी। जगधर दिल में खुश हो रहा था, लेकिन सूरदास? आह! उसकी वही दशा थी, जो किसी सती की अपना सतीत्व खो देने के पश्चात् होती है। तीनों थोड़ी देर तक स्तम्भित खड़े रहे। अंत में जगधर ने कहा—सुभागी, अब तू कहाँ जायेगी?

सुभागी ने उसकी ओर विषाक्त नेत्रों से देखकर कहा—अपने घर जाऊँगी! और कहाँ?

यह कहकर सुभागी तुरंत अपने घर की ओर चली गयी। सूरदास ने हाँ-नहीं कुछ न कहा। उसके चले जाने के बाद जगधर बोला—सूरे तुम आज मेरे घर चलकर सो रहो। मुझे डर लग रहा है कि भैरो रात को कोई उपद्रव न मचाये।

सूरदास—भैरो को जितना नादान समझते हो, उतना वह नहीं है। तुमसे कुछ न बोलेगा; हाँ, सुभागी को जी-भर मारेगा।

जगधर—नशे में उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती।

सूरदास—मैं कहता हूँ, तुमसे कुछ न बोलेगा।

जगधर का भय शांत तो न हुआ; पर सूरदास की ओर से निराश होकर चला गया। सूरदास सारी रात जागता रहा। इतने बड़े लांछन के बाद उसे अब यहाँ रहना लज्जाजनक जान पड़ता था। अब मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाने के सिवा उसे और उपाय न सूझता था—मैंने तो कभी किसी की बुराई नहीं की, भगवान् मुझे क्यों यह दंड दे रहे हैं? पहले भी भैरो ने मुझ पर यही पाप लगाया था। लेकिन तब सारे मुहल्ले के लोग मुझे मानते थे, उसकी यह बात हँसी में उड़ गयी। अबकी तो सारा मुहल्ला मेरा दुश्मन है, लोग सहज ही में विश्वास कर लेंगे, मुँह में कालिख लग जायेगी। नहीं, अब यहाँ से भाग जाने ही में कुसल है। पर बेचारी सुभागी का क्या हाल होगा? भैरो अबकी उसे ज़रूर छोड़ देगा। चलकर एक बार भैरो से अकेले में सारी बातें साफ-साफ कह दूँ। जब तक उसका मन साफ न हो जाये, मेरा यहाँ से जाना उचित नहीं। सब कुछ आदि से अंत तक सच-सच कह दूँगा। तभी उसका मन साफ होगा। इस विचार से उसे बड़ी शांति मिली, जैसे किसी कवि को उलझी हुई समस्या की पूर्ति से होती है।

वह तड़के ही उठा और जाकर भैरो के दरवाज़े पर आवाज़ दी। भैरो सोया हुआ था। सुभागी बैठी रो रही थी। भैरो ने उसके घर पहुँचते ही उसकी यथाविधि ताड़ना की थी। सुभागी ने सूरदास की आवाज़ पहचानी। चौंकी कि यह इतने तड़के कैसे आ गया! कहीं दोनों में लड़ाई न हो जाये। सुभागी भैरो की मार खाती थी, घर से निकाली जाती थी, लेकन यह मजाल न थी कि कोई बाहरी आदमी भैरो को कुछ कहकर निकल जाये। उसने भैरो को जगाया नहीं, द्वार खोलकर पूछा—क्या है सूरे, क्या कहते हो?

सूरदास के मन में बड़ी प्रबल उत्कंठा हुई कि इससे पूछूँ, रात तुझ पर क्या बीती; लेकिन जब्त कर गया—मुझे इससे वास्ता? उसकी स्त्री है। चाहे मारे, चाहे दुलारे। बोला—भैरो क्या अभी सोते हैं? ज़रा जगा दे, उनसे कुछ बातें करनी हैं।

सुभागी—कौन बात है, मैं भी सुनूँ?

सूरदास—ऐसी ही एक बात है, ज़रा जगा तो दे।

सुभागी—और कभी तो इतने तड़के न आते थे, आज ऐसी कौन-सी बात है?

सूरदास ने चिढ़कर कहा—उसी से कहूँगा, तुझसे कहने की बात नहीं है।

सुभागी को पूरा विश्वास हो गया कि यह इस समय आपे में नहीं है। बोली—मुझे मारा-पीटा थोड़े ही था; बस वहीं जो कुछ कहा-सुना, वही कह-सुनकर रह गये।

सूरदास—न मारा होगा। मारता भी, तो मुझे क्या, तू उसकी घरवाली है; जो चाहे करे, तू जाकर उसे भेज दे। मुझे एक बात कहनी है।

जब अब भी सुभागी न गयी तो सूरदास ने भैरो का नाम लेकर ज़ोर-ज़ोर से पुकारना शुरू किया। कई हाँकों के बाद भैरो की आवाज़ सुनाई दी—कौन है, बैठो, आता हूँ।

सुभागी यह सुनते ही भीतर गयी और बोली—जाते हो, तो एक डंडा लेते जाओ, सूरदास है, कहीं लड़ने न आया हो।

भैरो—चल बैठ, लड़ाई करने आया है! मुझसे तिरिया-चरित्तर मत खेल।

सुभागी—मुझे उसकी त्योरियाँ बदली हुई मालूम होती हैं, इसी से कहती हूँ।

भैरो—यह क्यों नहीं कहती कि तू उसे चढ़ाकर लायी है। वह तो इतना कीना नहीं रखता। उसके मन में कभी मैल नहीं रहता।

यह कहकर भैरो ने अपनी लाठी उठाई और बाहर आया। अंधा शेर भी हो, तो उसका क्या भय? एक बच्चा भी उसे मार गिराएगा।

सूरदास ने कहा—यहाँ और कोई तो नहीं है? मुझे तुमसे भेद की बात करनी है।

भैरो—कोई नहीं है। कहो, क्या बात कहते हो?

सूरदास—तुम्हारे चोर का पता मिल गया।

भैरो—सच, जवानी क़सम?

सूरदास—हाँ, भगवान् से कहता हूँ, तुम्हारी थैली मेरे घर में ज्यों-की-त्यों पड़ी मिली।

भैरो—कहाँ है, ज़रा देखूँ तो?

सूरदास ने थैली कमर से निकालकर भैरो को दिखायी। भैरो ने लपककर थैली ले ली। ज्यों-की-त्यों बन्द थी।

भैरो को रुपये मिलने की इतनी खुशी न थी, जितनी चोर का नाम जानने की उत्सुकता। वह देखना चाहता था कि मैंने जिस पर शक किया था, वही है कि कोई और।

सूरदास—नाम जानकर क्या करोगे? तुम्हें माल से मतलब है कि चोर के नाम से?

भैरो—नहीं, तुम्हें क़सम है, बता दो, है इसी मुहल्ले का न?

सूरदास—हाँ, है तो मुहल्ले ही का; पर नाम न बताऊँगा।

भैरो—जवानी की क़सम खाता हूँ, उससे कुछ न कहूँगा।

सूरदास—मैं उसको वचन दे चुका हूँ कि नाम न बताऊँगा। नाम बता दूँ, और तुम अभी दंगा करने लगो, तब?

भैरो—विसवास मानो, मैं किसी से न बोलूँगा। जो क़सम कहो, खा जाऊँ।

सूरदास—अगर फिर गये, तो यहीं तुम्हारे द्वार पर सिर पटककर जान दे दूँगा।

भैरो—अपनी जान क्यों दे दोगे, मेरी जान ले लेना; चूँ न करूँगा।

सूरदास—देखो, तुमने क़सम खायी है।

भैरो—हाँ, भाई, क़सम से मुकरता थोड़ा ही हूँ।

सूरदास—तुम्हारी घरवाली और मेरी बहन सुभागी।

इतना सुनना था कि भैरो जैसे पागल हो गया। घर में दौड़ा हुआ गया और माँ से बोला—अम्माँ, इसी डाइन ने मेरे रुपये चुराए थे। सूरदास अपने मुँह से कह रहा है। बता, सूरदास झूठ कहता है कि सच?

सुभागी ने सिर झुकाकर कहा—सूरदास झूठ बोलते हैं।

उसके मुँह से बात पूरी न निकलने पायी थी कि भैरो ने लकड़ी खींचकर मारी। वार खाली गया। वह सुभागी के पीछे दौड़ा। सुभागी ने एक कोठरी में घुसकर भीतर से द्वार बंद कर लिया। भैरो ने द्वार पीटना शुरू किया। सारे मुहल्ले में हुल्लड़ मच गया, भैरो सुभागी को मारे डालता है। ठाकुरदीन ने भीतर जाकर पूछा—क्या है भैरो, क्यों किवाड़ तोड़े डालते हो? भले आदमी, कोई घर के आदमी पर इतना गुस्सा करता है!

भैरो—कैसा घर का आदमी जी! मेरे घर जो चोरी हुई थी, वह इसी चुड़ैल की करतूत थी। इसी ने रुपये चुराकर सूरदास को दिये थे।

ठाकुरदीन—सूरदास को!

भैरो—हाँ-हाँ, सूरदास को। बाहर तो खड़ा है, पूछते क्यों नहीं? उसने जब देखा कि अब चोरी न पचेगी, तो लाकर सब रुपये मुझे दे गया है।

बजरंगी—अच्छा, तो रुपये सुभागी ने चुराए थे!

लोगों ने भैरो को ठंडा किया और बाहर खींच लाये। यहाँ सूरदास पर टिप्पणियाँ होने लगीं। किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि साफ-साफ कहे? सब-के-सब डर रहे थे कि कहीं मेम साहब से शिकायत न कर दे। सूरदास को इतनी ग्लानि हो रही थी कि आकाश से वज्र गिरे और मैं यहीं जल-भुन जाऊँ।

ठाकुरदीन ने कहा—सूरे तो कभी ऐसा न था। आज से नहीं, लड़कपन से देखते हैं।

नायकराम—पहले नहीं था, अब हो गया। अब तो किसी को कुछ समझता ही नहीं।

ठाकुरदीन—प्रभुता पाकर सभी को मद हो जाता है, पर सूरे में तो मुझे कोई ऐसी बात नहीं दिखायी देती।

नायकराम—छिपा रुस्तम है! बजरंगी, मुझे तुम्हारे ऊपर सक था।

बजरंगी—(हँसकर) पण्डाजी, भगवान् से कहता हूँ, मुझे तुम्हारे ऊपर सक था।

भैरो—और मुझसे जो सच पूछो, तो जगधर पर सक था।

सूरदास सिर झुकाए चारों ओर से ताने और लताड़ें सुन रहा था। पछता रहा था—मैंने ऐसे कमीने आदमी से यह बात बताई ही क्यों। मैंने तो समझा था, साफ-साफ कह देने से

इसका दिल साफ हो जायेगा। उसका यह फल मिला!

जब भैरो के द्वार पर यह अभिनय होते हुए आध घंटे से अधिक हो गया, तो सूरदास के धैर्य का प्याला छलक पड़ा। एक सती पर इतना कलंक थोपा जा रहा है और मैं चुपचाप खड़ा सुनता हूँ। यह महापाप है। वह तनकर खड़ा हो गया और फटी हुई आँखें फाड़कर बोला—यारो, क्यों बिपत के मारे हुए दुखियों पर यह कीचड़ फेंक रहे हो, ये छुरियाँ चला रहे हो? कुछ तो भगवान् से डरो। मैंने तो भलमनसी की कि भैरो के रुपये उसे लौटा दिये। उसका मुझे यह फल मिल रहा है! भगवान् मेरी इससे भी ज़्यादा दुर्गत करें, अगर मैंने सुभागी को अपनी छोटी बहन के सिवा कभी कुछ और समझा हो। मेरा कसूर इतना ही है कि वह रात को मेरी झोंपड़ी में आयी थी। उस बखत जगधर वहाँ बैठा था। उससे पूछो कि हम लोगों में कौन-सी बातें हो रही थीं। अब इस मुहल्ले में मुझ-जैसे अंधे-अपाहिज आदमी का निबाह नहीं हो सकता। जाता हूँ; पर इतना कहे जाता हूँ कि एक दिन आवेगा, जब तुम लोगों को सब बातें मालूम हो जायेंगी, और तब तुम जानोगे कि अंधा निरपराध था।

यह कहकर सूरदास अपनी झोंपड़ी की तरफ़ चला गया।

24

सूरदास की ज़मीन वापस दिला देने के बाद सोफ़िया फिर मि. क्लार्क से तन गयी। दिन गुजरते जाते थे और वह मि. क्लार्क से दूरतर होती जाती थी। उसे अब सच्चे अनुराग के लिए अपमान, लज्जा, तिरस्कार सहने की अपेक्षा कृत्रिम प्रेम का स्वाँग भरना कहीं दुस्सह प्रतीत होता था। उसने अपने मन को बलात् विनय की ओर से खींचना चाहा था, अब उसका मन बड़े वेग से उनकी ओर दौड़ रहा था। जिन विचारों से प्रेरित होकर उसने विनय से मुँह फेरने और क्लार्क से विवाह करने का निश्चय किया था, वे अब उसे नितांत अस्वाभाविक मालूम होते थे। रानी जाह्नवी से तिरस्कृत होकर अपने मन का दमन करने के लिए उसने अपने ऊपर यह अत्याचार किया था। पर अब उसे नज़र ही न आता था कि मेरे आचरण में कलंक की कौन-सी बात थी, उसमें अनौचित्य कहाँ था। उसे आश्चर्य होता था कि मैंने विनय के स्थान पर क्लार्क को प्रतिष्ठित करने का फैसला कैसे किया। मि. क्लार्क में सद्गुणों की कमी नहीं, वह सुयोग्य हैं, शीलवान् हैं, उदार हैं, सहृदय हैं। वह किसी भी स्त्री को प्रसन्न रख सकते हैं, जिसे सांसारिक सुख-भोग की लालसा हो। लेकिन उनमें वह त्याग कहाँ, वह सेवा का भाव कहाँ, वह जीवन का उच्चादर्श कहाँ, वह आत्मसमर्पण कहाँ? इसी बीच में उसे कृष्ण का जीवन-चरित्र पढ़ने का अवसर मिला और उसने उस भक्ति की जड़ हिला दी, जो उसे प्रभु मसीह से थी। वह मन में दोनों महान् पुरुषों की तुलना किया करती। मसीह की दया की अपेक्षा उसे कृष्ण के प्रेम से अधिक शांति मिलती थी। ईसा की दया में आध्यात्मिकता थी, कृष्ण के प्रेम में भावुकता; ईसा की दया आकाश की भाँति अनंत थी, कृष्ण का प्रेम नवकुसुमित, एक देवता था, दूसरा मनुष्य; एक तपस्वी था, दूसरा कवि; एक में जागृति और आत्मज्ञान था, दूसरे में अनुराग और उन्माद; एक संयमी था, दूसरा भोगी। अब सोफ़िया का मन नित्य इसी प्रेम-क्रीड़ा में बसा रहता था, कृष्ण ने उसे मोहित कर लिया था, उसे अपनी वंशी की ध्वनि सुना दी थी।

मिस्टर क्लार्क का लौकिक शिष्टाचार अब उसे हास्यास्पद मालूम होता था। वह बाहर से मुस्कराते हुए आकर उसकी बग़ल में कुर्सी खींचकर बैठ जाते, और वह उनकी ओर आँखें उठाकर भी न देखती। मिसेज़ सेवक आग में ईंधन डालती रहती थीं—एक ओर क्लार्क को उकसातीं, दूसरी ओर सोफ़ी को समझातीं—तू समझती है, जीवन में ऐसे अवसर बार-बार

आते हैं, यह तेरी ग़लती है। मनुष्य को केवल एक अवसर मिलता है, और वही उसके भाग्य का निर्णय कर देता है।

मि. जॉन सेवक ने भी अपने पिता के आदेशानुसार दोरुखी चाल चलनी शुरू की। वह गुप्त रूप से तो राजा महेन्द्रकुमार सिंह की कल घुमाते रहते थे; पर प्रकट रूप से मिस्टर क्लार्क के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखते थे।

संध्या हो चुकी थी। सोफ़िया एक कुंज में खड़ी आप-ही-आप मुस्करा रही थी कि मिस्टर क्लार्क की मोटर आ पहुँची। वह सोफ़िया को बाग में देखकर सीधे उसके पास आये और एक कृपा-लोलुप दृष्टि से देखकर उसकी ओर हाथ बढ़ा दिया। सोफ़िया ने मुँह फेर लिया, मानो उनके बढ़े हुए हाथ को देखा ही नहीं।

एक क्षण बाद उसने हास्य-भाव से पूछा—आज कितने अपराधियों को दंड दिया?

मिस्टर क्लार्क झेंप गये। सकुचाते हुए बोले—प्रिये, यह तो रोज़ की बातें हैं, इनकी क्या चर्चा करूँ?

सोफ़ी—तुम यह कैसे निश्चय करते हो कि अमुक अपराधी वास्तव में अपराधी है? इसका तुम्हारे पास कोई यंत्र है?

क्लार्क—गवाह तो रहते हैं।

सोफ़ी—और उन्हीं गवाहों के बयान पर फैसला करते हो!

क्लार्क—इसके सिवा और उपाय ही क्या है!

सोफ़ी—तुम्हारी असमर्थता दूसरे की जान क्यों ले? इसीलिए कि तुम्हारे वास्ते मोटरकार, बँगला, भाँति-भाँति की शराब और विनोद के अनेक साधन जुटाए जायें?

क्लार्क ने हतबुद्धि की भाँति कहा—तो क्या नौकरी से इस्तीफा दे दूँ?

सोफ़िया—जब तुम जानते हो कि वर्तमान शासन-प्रणाली में इतनी त्रुटियाँ हैं, तो तुम उसका एक अंग बनकर निरपराधियों का खून क्यों करते हो?

क्लार्क—प्रिये, मैंने इस विषय पर कभी विचार नहीं किया।

सोफ़िया—और बिना विचार किये ही न्याय की हत्या किया करते हो। कितने निर्दयी हो!

क्लार्क—हम तो केवल कल के पुर्ज़े हैं, हमें ऐसे विचारों से क्या प्रयोजन?

सोफ़ी—क्या तुम्हें इसका विश्वास है कि तुमने कोई अपराध नहीं किया?

क्लार्क—यह दावा कोई मनुष्य नहीं कर सकता।

सोफ़ी—तो तुम इसीलिए दंड से बचे हुए हो कि तुम्हारे अपराध छिपे हुए हैं?

क्लार्क—यह स्वीकार करने को जी तो नहीं चाहता; पर स्वीकार करना पड़ेगा।

सोफ़ी—आश्चर्य है कि स्वयं अपराधी होकर तुम्हें दूसरे अपराधियों को दंड देते हुए ज़रा भी लज्जा नहीं आती!

क्लार्क—सोफ़ी, इसके लिए तुम फिर कभी मेरा तिरस्कार कर लेना। इस समय मुझे एक विषय में तुमसे सलाह लेनी है। खूब विचार करके राय देना। राजा महेन्द्रकुमार ने मेरे फैसले की अपील गवर्नर के यहाँ की थी, इसका ज़िक्र तो मैं तुमसे कर ही चुका हूँ। उस वक़्त मैंने

समझा था, गवर्नर अपील पर ध्यान न देंगे। किन्तु 6-7 महीनों में परिस्थिति कुछ ऐसी हो गयी है, राजा साहब ने अपनी कुल-मर्यादा, दृढ़ संकल्प और तर्क-बुद्धि से इतनी अच्छी तरह काम लिया है कि अब शायद फैसला मेरे खिलाफ होगा। अगर राजा साहब की अपील वापस कर दी गयी, तो दूसरे ही दिन देश में कुहराम मच जायेगा और समाचार-पत्रों को विदेशी राज्य के एक नए अत्याचार पर शोर मचाने का वह मौका मिल जायेगा जो वे नित्य खोजते रहते हैं। इसलिए गवर्नर ने मुझसे पूछा है कि यदि राजा साहब के आँसू पोंछे जायें, तो तुम्हें कुछ दुःख तो न होगा? मेरी समझ में नहीं आता, इसका क्या उत्तर दूँ।

सोफ़ी—क्या इसका निर्णय करना मुश्किल है?

क्लार्क—हाँ, क्योंकि जन-सम्मति से राज्य करने की जो व्यवस्था हम लोगों ने खुद की है, उसे पैरों-तले कुचलना बुरा मालूम होता है। राजा कितना ही सबल हो, पर न्याय का गौरव रखने के लिए कभी-कभी राजा को भी सिर झुकाना पड़ता है। गवर्नर ने मुझे इस अपराध के लिए दंड भी दिया है। वह मुझे यहाँ से हटा देना चाहते हैं।

सोफ़िया—क्या तुम्हें इतना दबना पड़ेगा?

क्लार्क—हाँ, मैं रियासत का पोलिटिकल एजेंट बना दिया जाऊँगा, यह पद बड़े मज़े का है। राजा तो केवल नाम के लिए होता है, सारा अख्तियार तो एजेंट ही के हाथों में रहता है। हममें जो बड़े भाग्यशाली होते हैं, उन्हीं को यह पद प्रदान किया जाता है।

सोफ़िया—तब तो तुम बड़े भाग्यशाली हो।

मिस्टर क्लार्क इस व्यंग से मन में कटकर रह गये। उन्होंने समझा था, सोफ़ी यह समाचार सुनकर फूली न समाएगी, और तब मुझे उससे यह कहने का अवसर मिलेगा कि यहाँ से जाने के पहले हमारा दाम्पत्य सूत्र में बँध जाना आवश्यक है। वह सोचने लगे—इसकी सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना मैंने अपनी इच्छा प्रकट कर दी, कहीं यह तो इसे बुरा नहीं लगा? बोले—यह तो तुम्हारे फैसले पर निर्भर है।

सोफ़ी ने उदासीन भाव से उत्तर दिया—इन विषयों में तुम मुझसे चतुर हो।

क्लार्क—मैं तुम्हारी सलाह पूछता हूँ और तुम मुझी पर छोड़ती जाती हो।

सोफ़ी—अगर मेरी सलाह से तुम्हारा अहित हो, तो?

क्लार्क ने बड़ी वीरता से उत्तर दिया—सोफ़ी, मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकता हूँ?

सोफ़ी—(हँसकर) इसके लिए मैं तुम्हारी बहुत अनुगृहीत हूँ।

इतने में मिसेज़ सेवक वहाँ आ गईं और क्लार्क से हँस-हँसकर बातें करने लगीं। सोफ़ी अपने कमरे में चली आयी। देखा, तो प्रभु सेवक वहाँ बैठे हैं। सोफ़ी ने कहा—इन हजरत को अब यहाँ से बोरिया-बँधना सँभालना पड़ेगा। किसी रियासत के एजेंट होंगे।

प्रभु सेवक—(चौंककर) कब?

सोफ़ी—बहुत जल्द। राजा महेन्द्रकुमार इन्हें ले बीते।

प्रभु सेवक—तब तो तुम यहाँ थोड़े ही दिनों की मेहमान हो!

सोफ़ी—मैं इनसे विवाह न करूँगी।

प्रभु सेवक—सच?

सोफ़ी—हाँ, मैं कई दिन से यह फैसला कर चुकी हूँ, पर तुमसे कहने को डरती थी।

प्रभु सेवक—मेरी समझ में नहीं आता कि तुम मुझ पर इतना अविश्वास क्यों करती हो? जहाँ तक मुझे याद है, मैंने तुम्हारी बात किसी से नहीं कही।

सोफ़ी—क्षमा करना प्रभु! न जाने क्यों मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आता। तुममें अभी कुछ ऐसा लड़कपन है, कुछ ऐसे खुले हुए निर्द्वन्द्व मनुष्य हो कि तुमसे कोई बात कहते उसी भाँति डरती हूँ, जैसे कोई आदमी वृक्ष की पतली टहनी पर पैर रखते डरता है।

प्रभु सेवक—अच्छी बात है, यों ही मुझसे डरा करो। वास्तव में मैं कोई बात सुन लेता हूँ, तो मेरे पेट में चूहे दौड़ने लगते हैं और जब तक किसी से कह न लूँ, मुझे चैन ही नहीं आता। खैर, मैं तुम्हें इस फैसले पर बधाई देता हूँ। मैंने कितने ही मनुष्यों को अपनी रचना सुनाई होगी, पर विनय-जैसा मर्मज्ञ और किसी को नहीं पाया।

सोफ़ी—तुम इधर कभी कुँवर साहब की तरफ़ नहीं गये थे?

प्रभु सेवक—आज गया था और वहीं से चला आ रहा हूँ। विनयसिंह बड़ी विपत्ति में पड़ गये हैं। उदयपुर के अधिकारियों ने उन्हें जेल में डाल रखा है।

सोफ़िया के मुख पर क्रोध या शोक का कोई चिह्न दिखायी दिया। उसने यह न पूछा, क्यों गिरफ्तार हुए? क्या अपराध था? ये सब बातें उसने अनुमान कर लीं। केवल इतना पूछा—रानीजी तो वहाँ नहीं जा रही हैं?

प्रभु सेवक—न! कुँवर साहब और डॉक्टर गांगुली, दोनों जाने को तैयार हैं; पर रानी किसी को नहीं जाने देतीं। कहती हैं, विनय अपनी मदद आप कर सकता है।

सोफ़िया थोड़ी देर तक गम्भीर विचार में स्थिर बैठी रही। सहसा उसने सिर उठाया और निश्चयात्मक भाव से बोली—मैं उदयपुर जाऊँगी।

प्रभु सेवक—वहाँ जाकर क्या करोगी?

सोफ़ी—यह नहीं कह सकती कि वहाँ जाकर क्या करूँगी। अगर और कुछ न कर सकूँगी, तो कम-से-कम जेल में रहकर विनय की सेवा तो करूँगी, अपने प्राण तो उन पर निछावर कर दूँगी। मैंने उनके साथ जो छल किया है, वह नित्य मेरे हृदय में काँटे की भाँति चुभा करता है। मैं अब उस छल का प्रायश्चित्त करूँगी।

यह कहकर सोफ़िया ने खिड़की से झाँका, तो मि. क्लार्क अभी तक खड़े मिसेज़ सेवक से बातें कर रहे थे। मोटरकार भी खड़ी थी। वह तुरंत बाहर आकर मि. क्लार्क से बोली—विलियम, आज मामा से बातें करने ही में रात खत्म कर दोगे? मैं सैर करने के लिए तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूँ। क्लार्क लज्जित होकर बोले—प्रिये, क्षमा करो, मुझे याद ही न रही, बातों में देर हो गयी।

क्लार्क सोफ़िया का हाथ पकड़कर मोटर की तरफ़ चले। पर अब भी उन्हें शंका हो रही थी कि मेरे हाथ में जो नाज़ुक कलाई है, वह कोई वस्तु है या केवल कल्पना और स्वप्न।

जब मोटर चली, तो सोफ़िया ने कहा—एजेंट के अधिकार तो बड़े होते हैं, वह चाहे तो किसी रियासत के भीतरी मुआमिलों में भी हस्तक्षेप कर सकता है, क्यों?

क्लार्क ने प्रसन्न होकर कहा—उसका अधिकार सर्वत्र, यहाँ तक कि राजा के महल के अन्दर भी, होता है। रियासत का कहना ही क्या, वह राजा के खाने-सोने, आराम करने का समय तक नियत कर सकता है। राजा किससे मिले, किससे दूर रहे, किसका आदर करे, किसकी अवहेलना करे, ये सब बातें एजेंट के अधीन हैं। बस, यों समझो कि वह रियासत का खुदा होता है।

सोफ़िया—तब तो वहाँ सैर-सपाटे का खूब अवकाश मिलेगा। यहाँ की भाँति दिन-भर दफ्तर में तो न बैठना पड़ेगा?

क्लार्क—वहाँ कैसा दफ्तर, एजेंट का काम दफ्तर में बैठना नहीं है।

सोफ़िया—अच्छा, जिस रियासत में चाहो, जा सकते हो?

क्लार्क—हाँ, कुछ लिखा-पढ़ी करनी पड़ेगी। तुम कौन-सी रियासत पसंद करोगी?

सोफ़िया—मुझे तो पहाड़ी देशों से विशेष प्रेम है। पहाड़ों के दामन में बसे हुए गाँव, पहाड़ों की गोद में चरनेवाली भेड़ें और पहाड़ों से गिरनेवाले जल-प्रपात, ये सभी दृश्य मुझे काव्यमय प्रतीत होते हैं। कौन-कौन-सी रियासतें पहाड़ों में हैं?

क्लार्क—भरतपुर, जोधपुर, कश्मीर, उदयपुर...

सोफ़िया—बस, तुम उदयपुर के लिए लिखो। मैंने इतिहास में उदयपुर की वीरकथाएँ पढ़ी हैं और तभी से मुझे उस देश को देखने की बड़ी लालसा है।

क्लार्क—हाँ, वे वृत्तांत मैंने भी इतिहास में देखे हैं। ऐसी वीर जाति का जितना सम्मान किया जाये, कम है। इसीलिए उदयपुर का राजा हिंदू राजों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है।

सोफ़िया—तुम आज ही उदयपुर के लिए लिखो और सम्भव हो, तो हम लोग एक मास के अन्दर यहाँ से प्रस्थान कर दें।

क्लार्क—लेकिन कहते हुए डर लगता है...तुम मेरा आशय समझ गयी होगी...यहाँ से चलने के पहले मैं तुमसे वह चिर-सिंचित...मेरा जीवन...

सोफ़िया ने मुस्कराकर कहा—समझ गयी, उसके प्रकट करने का कष्ट न उठाओ। इतनी मंदबुद्धि नहीं हूँ; लेकिन मेरी निश्चय-शक्ति अत्यन्त शिथिल है, यहाँ तक कि सैर करने के लिए चलने का निश्चय भी मैं घंटों के सोच-विचार के बाद करती हूँ। ऐसे महत्त्व के विषय में, जिसका सम्बन्ध जीवन-पर्यंत रहेगा, मैं इतनी जल्द कोई फैसला नहीं कर सकती। अभी मेरा और तुम्हारा परिचय केवल एक वर्ष का है। अब तक मैं तुम्हारे लिए केवल एक रहस्य हूँ। क्यों, हूँ या नहीं?

क्लार्क—हाँ सोफ़ी! वास्तव में अभी मैं तुम्हें अच्छी तरह नहीं पहचान पाया हूँ।

सोफ़िया—फिर ऐसी दशा में तुम्हीं सोचो, हम दोनों का दाम्पत्य सूत्र में बँध जाना कितनी बड़ी नादानी है। मेरे दिल की जो पूछो, तो मुझे एक सहृदय, सज्जन विचारशील और सच्चरित्र पुरुष के साथ मित्र बनकर रहना, उसकी स्त्री बनकर रहने से कम आनंददायक नहीं

मालूम होता। तुम्हारा क्या विचार है, यह मैं नहीं जानती, लेकिन मैं सहानुभूति और सहवास को वासनामय सम्बंध से कहीं महत्त्वपूर्ण समझती हूँ।

क्लार्क—किन्तु सामाजिक और धार्मिक प्रथाएँ ऐसे सम्बंधों को...

सोफ़िया—हाँ, ऐसे सम्बंध अस्वाभाविक होते हैं और साधारणतः उन पर आचरण नहीं किया जा सकता लेकिन जब तक हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ न लें, जब तक हमारे अंतःकरण एक दूसरे के सामने आईने न बन जायें, उस समय तक मैं ऐसे ही सम्बंध को आवश्यक समझती हूँ।

क्लार्क—मैं तुम्हारी इच्छाओं का दास हूँ। केवल इतना कह सकता हूँ कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन वह घर है, जिसमें कोई रहनेवाला नहीं; वह दीपक है, जिसमें उजाला नहीं; वह कवित्त है, जिसमें रस नहीं।

सोफ़िया—बस, बस। यह प्रेमियों की भाषा केवल प्रेम-कथाओं के ही लिए शोभा देती है। यह लो, पाँड़ेपुर आ गये। सूरदास चला गया होगा। यह हाल सुनेगा, तो उस ग़रीब का दिल टूट जायेगा।

क्लार्क—उसके निर्वाह का कोई और प्रबंध कर दूँ?

सोफ़िया—इस भूमि से उसका निर्वाह नहीं होता था—केवल मुहल्ले के जानवर चरा करते थे। वह ग़रीब है, भिखारी है, पर लोभी नहीं। मुझे तो कोई साधु मालूम होता है।

क्लार्क—अंमे कुशाग्र बुद्धि और धार्मिक होते हैं।

सोफ़िया—मुझे तो उसके प्रति श्रद्धा हो गयी है। देखो, पापा ने काम शुरू कर दिया।

क्लार्क—तुम्हारे पापा बड़े चतुर आदमी हैं। ऐसे ही प्राणी संसार में सफल होते हैं। कम-से-कम मैं तो यह दोरुखी चाल न चल सकता।

सोफ़िया—देख लेना, दो-ही-चार वर्षों में मुहल्ले में कारखाने के मज़दूरों के मकान होंगे, यहाँ का एक मनुष्य भी न रहने पाएगा।

क्लार्क—पहले तो अंधे ने बड़ा शोर-गुल मचाया था। देखें, अब क्या करता है?

सोफ़िया—मुझे तो विश्वास है कि वह चुप होकर कभी न बैठेगा, चाहे इस ज़मीन के पीछे जान ही क्यों न चली जाये।

क्लार्क—नहीं प्रिये, ऐसा कदापि न होने पाएगा। जिस दिन यह नौबत आयेगी, सबसे पहले सूरदास के लिए मेरे कंठ से जय-ध्वनि निकलेगी, सबसे पहले मेरे हाथ उस पर फूलों की वर्षा करेंगे।

सोफ़िया ने क्लार्क को आज पहली बार सम्मानपूर्ण प्रेम की दृष्टि से देखा।

25

साल-भर तक राजा महेन्द्रकुमार और मिस्टर क्लार्क में निरंतर चोटें चलती रहीं। पत्र का पृष्ठ रणक्षेत्र था। मनों स्याही बह गयी, कितनी ही कलमें काम आयीं। राजा साहब बार-बार हतोत्साह हो जाते, सरकार से मेरा मुकाबला करना चींटी का हाथी से मुकाबला करना है। लेकिन मिस्टर जॉन सेवक और उनसे अधिक इंदु उन्हें ढाढ़स देती रहती थी।

रात के नौ बज गये थे। विनयसिंह को कारावास-दंड का समाचार पाकर कुँवर साहब ने अपने हितैषियों को इस स्थिति पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया था। डॉक्टर गांगुली, जॉन सेवक, प्रभु सेवक, राजा महेन्द्रकुमार और कई अन्य सज्जन आये हुए थे। इंदु भी राजा साहब के साथ आयी थी और अपनी माता से बातें कर रही थी। कुँवर साहब ने नायकराम को बुला भेजा था और वह कमरे के द्वार पर बैठे हुए तम्बाकू मल रहे थे।

महेन्द्रकुमार बोले—रियासतों पर सरकार का बड़ा दबाव है। वे अपंग हैं और सरकार के इशारे पर चलने के लिए मजबूर हैं।

भरतसिंह ने खंडन किया—जिससे किसी का उपकार न हो और जिसके व्यक्तित्व का आधार ही अपकार पर हो, उसका निशान जितनी जल्द मिट जाये, उतना ही अच्छा।

डॉक्टर गांगुली—वहाँ का हाकिम लोग खुद पतित है। डरता है कि रियासत में स्वाधीन विचारों का प्रचार हो जायेगा, तो हम प्रजा को कैसे लूटेगा। राजा मसनद लगाकर बैठा रहता है, उसका नौकर-चाकर मनमाना राज करता है।

जॉन सेवक ने पक्षपात-रहित होकर कहा—सरकार किसी रियासत को अन्याय करने के लिए मजबूर नहीं करती। हाँ, चूँकि वे अशक्त हैं, अपनी रक्षा आप नहीं कर सकतीं, इसलिए ऐसे कामों में ज़रूरत से ज़्यादा तत्पर हो जाती हैं, जिनसे सरकार के प्रसन्न होने का उन्हें विश्वास होता है।

भरतसिंह—विनय कितना नम्र, सुशील, सुधीर है, यह आप लोगों से छिपा नहीं। मुझे इसका विश्वास ही नहीं हो सकता कि उसकी जात से किसी का अहित हो सकता है।

प्रभु सेवक कुँवर साहब के मुँह लगे हुए थे। अब तक जॉन सेवक के भय से न बोले थे; पर अब न रहा गया। बोले—क्यों, क्या पुलिस से चोरों का अहित नहीं होता? क्या साधुओं से दुर्जनों का अहित नहीं होता? विनय ने दलित किसानों की सेवा करनी चाही थी। उसी का यह

उन्हें उपहार मिला है। उदयपुर के दरबार को कोई अधिकार नहीं है कि वह किसी को रियासत से निकल जाने पर मजबूर करे।

डॉक्टर गांगुली—उदयपुर ऐसा हुक्म दे सकता है। उसको अधिकार है।

प्रभु सेवक—मैं उसे स्वीकार नहीं करता। जिस आज्ञा का आधार केवल पशु-बल हो, उसका पालन करना आवश्यक नहीं। अगर उदयपुर में कोई उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार होती और वह बहुमत से यह हुक्म देती, तो दूसरी बात थी। लेकिन जब कि प्रजा ने कभी दरबार से यह इच्छा नहीं की, बल्कि वह विनयसिंह पर जान देती है, तो केवल अधिकारियों की स्वेच्छा हमको उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।

डॉक्टर गांगुली—हम दरबार से लड़ नहीं सकता।

प्रभु सेवक—प्रजा को अपने स्वत्व की रक्षा के लिए उत्तेजित तो कर सकते हैं।

भरतसिंह—इसका परिणाम विद्रोह के सिवा और क्या हो सकता है, और विद्रोह का दमन करने के लिए दरबार सरकार से सहायता लेगा। हज़ारों बेकसों का खून हो जायेगा।

प्रभु सेवक—जब तक हम खून से डरते रहेंगे, हमारे स्वत्व भी हमारे पास आने से डरते रहेंगे। उनकी रक्षा भी तो खून ही से होगी।

जॉन सेवक से अब जब्त न हुआ। बोले—तुम-जैसे भावुक युवकों को ऐसे गहन राजनीतिक विषयों पर कुछ करने के पहले अपने शब्दों को खूब तौल लेना चाहिए। यह अवसर शांत और शीतल विचार से काम लेने का है।

प्रभु सेवक ने दबी जबान से कहा; मानो मन में यह कह रहा है—शीतल विचार कायरता का दूसरा नाम है।

डॉक्टर गांगुली—मेरे विचार में भारतीय सरकार की सेवा में डेपुटेशन जाना चाहिए।

भरतसिंह—सरकार कह देगी, हमें दरबार के आंतरिक विषय में दखल देने का अधिकार नहीं।

महेन्द्रकुमार—दरबार ही के पास क्यों न डेपुटेशन भेजा जाये?

जॉन सेवक—हाँ, यही मेरी भी सलाह है। राज्य के विरुद्ध आंदोलन करना राज्य को निर्बल बना देता है और प्रजा को उद्दंड। संसार ने तीन दशाब्दियों तक जनवाद की परीक्षा की और अंत में हताश हो गया।

कुँवर भरतसिंह जनवाद के बड़े पक्षपाती थे। अपने सिद्धान्त का खंडन होते देखकर बोले—फूस का झोंपड़ा बनाकर आप अग्नि-ज्वाला से निशंक रह ही नहीं सकते। जनवाद आदर्श व्यवस्था न हो; पर संसार अभी उससे उत्तम कोई शासन-विधान नहीं निकाल सका है। स्वाधीनता का मूल्य रक्त है। जब हममें उसे देने की शक्ति ही नहीं है, तो व्यर्थ में कमर क्यों बाँधें?

प्रभु सेवक—यह तो बहुत मुश्किल है कि आँखों से अपना घर लुटते देखूँ और मुँह न खोलूँ।

भरतसिंह—हाँ, बहुत मुश्किल है, पर अपनी वृत्तियों को साधना पड़ेगा। यह हमारे लिए

घोर लज्जा की बात है कि हम शिक्षा, ऐश्वर्य या धन के बल पर शासकों के दाहिने हाथ बनकर प्रजा का गला काटें और इस बात पर गर्व करें कि हम हाकिम हैं।

जॉन सेवक—शिक्षित वर्ग सदैव से राज्य का आश्रित रहा है और रहेगा। राज्य-विमुख होकर वह अपना अस्तित्व नहीं मिटा सकता।

भरतसिंह—यही तो सबसे बड़ी विपत्ति है। शिक्षित वर्ग जब तक शासकों का आश्रित रहेगा, हम अपने लक्ष्य के जौ भर भी निकट न पहुँच सकेंगे।

राजा महेंद्रसिंह बगलें झाँक रहे थे कि यहाँ से खिसक जाने का कोई मौका मिल जाये। इस वाद-विवाद का अंत करने के इरादे से बोले—तो आप लोगों ने क्या निश्चय किया? दरबार की सेवा में डेपुटेशन भेजा जायेगा?

डॉक्टर गांगुली—हम खुद जाकर विनय को छुड़ा लायेगा।

भरतसिंह—अगर बधिक ही से प्राण-याचना करनी है, तो चुप रहना ही अच्छा, कम-से-कम बात तो बनी रहेगी।

डॉक्टर गांगुली—फिर वही Pessimism का बात। हम विनय को समझाकर उसे यहाँ आने पर राज़ी कर लेगा।

रानी जाह्नवी ने इधर आते हुए इस वाक्य के अंतिम शब्द सुन लिए। गर्वसूचक भाव से बोलीं—नहीं डॉक्टर गांगुली, आप विनय पर यह कृपा न कीजिए। इसमें उसको सहायता देना उसके भविष्य को नष्ट करना है। अगर उसने प्राण-भय से इस अन्याय को स्वीकार कर लिया, तो सबसे पहले मैं ही उसके माथे पर कालिमा का टीका लगा दूँगी।

एक क्षण के बाद भरतसिंह ने रानी के शब्दों का भावार्थ किया—मेरे खयाल में अभी विनयसिंह को उसी दशा में छोड़ देना चाहिए। यह उसकी परीक्षा है।

गांगुली—रानी हमारी देवी हैं। हम उनके सामने कुछ नहीं कह सकता। हमको पूरा आशा है कि हमारा सरकार ज़रूर बोलेगा।

रानी—सरकार की न्यायशीलता का एक दृष्टांत तो आपके सामने ही है। अगर अब भी आपको उस पर विश्वास हो, तो मैं यही कहूँगी कि आपको कुछ दिनों किसी औषधि का सेवन करना पड़ेगा।

गांगुली—दो-चार दिन में यह बात मालूम हो जायेगा। सरकार को भी तो अपनी नेकनामी-बदनामी का डर है।

महेन्द्रकुमार बहुत देर के बाद बोले—राह देखते-देखते तो आँखें पथरा गईं। हमारी आशा इतनी चिरंजीवी नहीं।

सहसा टेलीफोन की घंटी बोली। कुँवर साहब ने पूछा—कौन महाशय हैं?

'मैं हूँ प्राणनाथ। मिस्टर क्लार्क का तबादला हो गया।'

डॉक्टर गांगुली—अब बोलिए, मेरा बात सच हुआ कि नहीं? आप लोग कहता था, सरकार का नीयत बिगड़ा हुआ है। पर हम कहता था, उसको हमारा बात मानना पड़ेगा।

रानी—सरकार ने इतने नैतिक साहस से शायद पहली ही बार काम लिया है।

गांगुली—अब वह ज़माना नहीं है, जब सरकार प्रजा-मत की उपेक्षा कर सकता था। अब काउंसिल का प्रस्ताव उसे मानना पड़ता है।

भरतसिंह—जमाना तो वही है, और सरकार की नीति में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इसमें ज़रूर कोई-न-कोई राजनीतिक रहस्य है।

नायकराम अब तक चुपचाप बैठे हुए थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि लोग सफलता का सेहरा अपने-अपने सिर बाँध रहे हैं। ऐसे अवसर पर भला वह कब चूकनेवाले थे। बोले—सरकार, यहाँ भी गाफिल बैठनेवाले नहीं हैं। सिविल सारजंट के कान में यह बात डाल दी थी कि राजा साहब की ओर से पूरा एक हज़ार लठैत जवान तैयार बैठा हुआ है। उनका हुक्म बहाल न हुआ, तो खून-खच्चर हो जायेगा, शहर में तूफान आ जायेगा। उन्होंने लाट साहब से यह बात ज़रूर ही कही होगी।

महेन्द्रकुमार—मैं तो समझता हूँ, यह तुम्हारी धमकियों ही की करामात है।

नायकराम—धर्मावतार, धमकियाँ कैसी, खून की नदी बह जाती।

प्रभु सेवक ने हास्य-भाव से कहा—सच पूछिए, तो यह उस कविता का फल है, जो मैंने 'हिंदुस्तान-रिव्यू' में लिखी थी।

रानी—प्रभु, तुमने यह चपत खूब लगाई। डॉक्टर गांगुली अपना सिर सुहला रहे हैं। क्यों डॉक्टर, बैठी या नहीं?

यह कहती हुई जाह्नवी अन्दर चली गईं; पर उनके जाते ही इस तिरस्कार का असर भी जाता रहा, लोग फिर वही राग अलापने लगे।

महेन्द्रकुमार के पेट में चूहे दौड़ रहे थे कि इंदु से भी इस सुख-सम्वाद पर बातें करूँ। यों तो बहुत ही गम्भीर पुरुष थे; पर इस विजय ने बालोचित उल्लास से विह्वल कर दिया था। रानी के जाने के ज़रा देर बार वह विहसित मुख, प्रसन्न चित्त, अन्दर दाखिल हुए। इंदु रानी के पास बैठी हुई थी। खड़ी होकर बोली—आखिर साहब बहादुर को बोरिया-बँधना सँभालना पड़ा न!

महेन्द्रकुमार सिंह रानी के सामने अपना कुत्सित आनंद न प्रकट कर सके। बोले—हाँ, अब तो टलना ही पड़ेगा।

इंदु—अब कल मैं इन लेडी साहब का कुशल-समाचार पूछूँगी, जो धरती पर पाँव न रखती थीं, अपने आगे किसी को कुछ समझती ही न थीं। बुलाकर दावत करूँ?

महेन्द्रकुमार—कभी न आयेगी, और ज़रूरत ही क्या है!

इंदु—ज़रूरत क्यों नहीं! झेंपेगी तो, सिर तो नीचा हो जायेगा। अम्माँ, आपने तो देखा है, सोफ़िया पहले कितनी नम्र और मिलनसार थी; लेकिन क्लार्क से विवाह की बातचीत होते ही मिजाज़ आसमान पर चढ़ गया।

रानी ने गम्भीर भाव से कहा—बेटी, यह तुम्हारा भ्रम है। सोफ़िया मिस्टर क्लार्क से कभी विवाह न करेगी। अगर मैं आदमियों को कुछ पहचान सकती हूँ तो देख लेना, मेरी बात ठीक उतरती है या नहीं।

इंदु—अम्माँ, क्लार्क से उसकी मँगनी हो गयी है। सम्भव है, गुप्त रूप से विवाह भी हो गया हो। देखती नहीं हो, दोनों कितने घुले-मिले रहते हैं।

रानी—कितने ही घुले-मिले रहें; पर उनका विवाह न हुआ है, न होगा। मैं अपनी संकीर्णता के कारण सोफ़िया की कितनी ही उपेक्षा करूँ; किन्तु वह सती है, इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं। उसे लज्जित करके तुम पछताओगी।

इंदु—अगर वह इतनी उदार है, तो आपके बुलाने से अवश्य आयेगी।

रानी—हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है।

इंदु—तो बुला भेजिए, मुझे दावत का प्रबंध क्यों न करना पड़े?

रानी—तुम यहाँ बुलाकर उसका अपमान करना चाहती हो। मैं तुमसे अपने हृदय की बात कहती हूँ, अगर वह ईसाइन न होती, तो आज के पाँचवें वर्ष मैं उससे विनय का विवाह करती और इसे अपना धन्य भाग समझती।

इंदु को ये बातें कुछ अच्छी न लगीं। उठकर अपने कमरे में चली गयी। एक क्षण में महेन्द्रकुमार भी वहाँ पहुँच गये और दोनों डींगें मारने लगे।

उधर दीवानखाने से भी सभा उठ गयी। लोग अपने-अपने घर गये। जब एकांत हो गया, तो कुँवर साहब ने नायकराम को बुलाकर कहा—पण्डाजी, तुमसे मैं एक काम लेना चाहता हूँ, करोगे?

नायकराम—सरकार, हुकुम हो, तो सिर देने को हाजिर हैं। ऐसी क्या बात है भला?

कुँवर—देखो, दुनियादारी मत करो। मैं जो काम लेना चाहता हूँ, वह सहज नहीं। बहुत समय, बहुत बुद्धि, बहुत बल व्यय करना पड़ेगा। मैं तुम्हें जानता हूँ और तुम मुझे जानते हो। इसलिए साफ बातचीत होनी चाहिए।

नायकराम—सरकार, आपसे दुनियादारी करके भगवान् को क्या मुँह दिखाऊँगा! अगर मेरे काबू की बात होगी, तो पूरी करूँगा, चाहे जान ही पर क्यों न आ बने।

कुँवर—विनय को छुड़ाकर ला सकते हो?

नायकराम—दीनबंधु, अगर प्राण देकर भी ला सकूँगा, तो उठा न रखूँगा।

कुँवर—तुम जानते हो, मैंने तुमसे यह सवाल क्यों किया! मेरे यहाँ सैकड़ों आदमी हैं। खुद डॉक्टर गांगुली जाने को तैयार हैं। महेंद्र को भेज दूँ, तो वह भी चले जायेंगे। लेकिन इन लोगों के सामने मैं अपनी बात नहीं छोड़ना चाहता। उदयपुर के अमले और कर्मचारी देवता नहीं, उन्हें लालच देकर जेल में जा सकते हो, विनयसिंह से मिल सकते हो, अमलों की मदद से उन्हें बाहर ला सकते हो, यह कुछ कठिन नहीं। कठिन है विनय को आने पर राज़ी करना। बोलो, कर सकते हो यह काम? इसका मेहनताना एक बूढ़े बाप के आशीर्वाद के साथ और जो कुछ चाहोगे, पेश करूँगा।

नायकराम—महाराज, कल चला जाऊँगा। भगवान् ने चाहा, तो उन्हें साथ लाऊँगा, नहीं तो फिर मुँह न दिखाऊँगा।

कुँवर—नहीं पण्डाजी, जब उन्हें मालूम हो जायेगा कि मैं कितना विकल हूँ, तो वह चले

आयेंगे; वह अपने बाप की जान को सिद्धान्त पर बलिदान न करेंगे। पण्डाजी, सोचो, जिस आदमी ने हमेशा मखमली बिछौनों पर आराम किया हो, उसे इस काठ के तख्त पर आराम मिल सकता है? आह! ये सब जाह्नवी के बोए हुए काँटे हैं। उसी के कारण मेरा प्यारा विनय मेरे हाथों से निकला जाता है, ऐसा पुत्र-रत्न खोकर यह संसार मेरे लिए नरक हो जायेगा। तुम कल जाओगे? मुनीम से जितने रुपये चाहो, ले लो।

नायकराम—आपके अकबाल से किसी बात की कमी नहीं। आपकी दया चाहिए, आपने जो त्याग किया है, वह कोई दूसरा करता, तो आँख निकल पड़ती।

कुँवर—यह तो मानी हुई बात है कि तुम गये, तो विनय को लेकर ही लौटोगे। अब यह बताओ कि मैं तुम्हें क्या दक्षिणा दूँ? तुम्हारी सबसे बड़ी अभिलाषा क्या है?

नायकराम—सरकार की कृपा बनी रहे, मेरे लिए यह कुछ कम नहीं।

कुँवर—तो इसका आशय यह है कि तुम मेरा काम नहीं करना चाहते?

नायकराम—सरकार, ऐसी बात न कहें। आप मुझे पालते हैं, आपका हुकुम न बजा लाऊँगा, तो भगवान् को क्या मुँह दिखाऊँगा।

कुँवर—नहीं भाई, मैं तुम्हें सेंत में इतना कष्ट नहीं देना चाहता। तुम्हारे कै लड़के हैं?

नायकराम ने सिर झुकाकर कहा—धर्मावतार, अभी तो ब्याह ही नहीं हुआ।

कुँवर—अरे, यह क्या बात है! आधी उम्र गुज़र गयी और तुम कुँआरे ही बैठे हो!

नायकराम—सरकार, तकदीर के सिवा और क्या कहूँ!

इन शब्दों में इतनी मर्मांतक वेदना भरी हुई थी कि कुँवर साहब पर नायकराम की चिरसंचित अभिलाषा प्रकट हो गयी। बोले—तो तुम घर में अकेले ही रहते हो?

नायकराम—हाँ, धर्मावतार, भूत की भाँति अकेला ही पड़ा रहता हूँ।

कुँवर—(मुस्कराकर) तो तुम्हारा विवाह कहीं ठहरा दूँ।

नायकराम—महाराज, ऐसी तकदीर कहाँ?

कुँवर—तकदीर मैं बना दूँगा, मगर यह क़ैद तो नहीं है कि कन्या ऊँचे कुल की हो?

नायकराम—दीनबंधु, कन्याओं के लिए ऊँचा-नीचा कुल नहीं देखा जाता। कन्या और गऊ तो पवित्र हैं। ब्राह्मण के घर आकर और भी पवित्र हो जाती हैं।

कुँवर—अच्छी बात है, ईश्वर ने चाहा, तो लौटते ही दूल्हा बनोगे। तुमने पहले कभी चर्चा ही नहीं की।

नायकराम—सरकार, यह बात आपसे क्या कहता। अपने हेलियों-मेलियों के सिवा और किसी से चर्चा नहीं की। कहते लाज आती है। भगवान् के आसरे बैठा हूँ।

कुँवर—तो कल किस गाड़ी से जाओगे?

नायकराम—हुज़ूर, डाक से चला जाऊँगा।

कुँवर—ईश्वर करे, जल्द लौटो। मेरी आँखें, तुम्हारी ओर रहेंगी। यह लो, खर्च के लिए लेते जाओ।

यह कहकर कुँवर साहब ने मुनीम को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा। मुनीम ने

नायकराम को अपने साथ आने का इशारा किया और अपनी गद्दी पर बैठकर बोला—बोलो, कितना हमारा, कितना तुम्हारा?

नायकराम—क्या यह भी कोई दक्षिणा है?

मुनीम—रक़म तो तुम्हारे हाथ जाती है?

नायकराम—मेरे हाथ में नहीं आती, विनयसिंह के पास भेजी जा रही है। बच्चा, मुसीबत में भी मालिक से नमकहरामी करते हो!

मुनीम ने लज्जित होकर नोटों का एक पुलिंदा नायकराम को दे दिया। नायकराम ने गिनकर नोटों को कमर में बाँधा और मुनीम से बोले—मेरी कुछ दक्षिणा दिलवाते हो?

मुनीम—कैसी दक्षिणा?

नायकराम—नगद रुपयों की। नौकरी प्यारी है कि नहीं? जानते हो, यहाँ से निकाल दिये जाओगे, तो कहीं भीख न मिलेगी। अगर भला चाहते हो, तो पचास रुपये की गड्डी बाएँ हाथ से बढ़ा दो, नहीं तो जाकर कुँवर साहब से जड़े देता हूँ।

मुनीम—यहाँ मेरे पास कहाँ है! यह तो सरकारी रक़म है।

नायकराम—अच्छा, तो हैंडनोट लिख दो।

मुनीम ने नायकराम की त्योरियों से भाँप लिया कि यह अब बिना दक्षिणा लिए न छोड़ेगा। चुपके से 25 रुपये निकालकर उसके हाथ में रखे और बोला—पंडित, अब दया करो, ज़्यादा न सताओ।

नायकराम ने रुपये मुट्ठी में किये और बोले—बचा, अब किसी को न सताना, मैं तुम्हारी टोह में रहूँगा।

नायकराम चले गये, तो मुनीम ने मन में कहा—ले जाओ, समझ लेंगे, खैरात किया।

कुँवर भरतसिंह उस वक़्त दीवानखाने के द्वार पर खड़े थे। आज वायु की शीतलता में आनंद न था। कुँवर साहब कई मिनट तक खड़े रोते रहे। विनय के लिए उनके अंतःकरण से इस भाँति शुभेच्छाएँ निकल रही थीं, जैसे उषाकाल में बाल-सूर्य की स्निग्ध, मधुर, मंद, शीतल किरणें निकलती हैं।

26

अरावली की हरी-भरी झूमती हुई पहाड़ियों के दामन में जसवंतनगर यों शयन कर रहा है, जैसे बालक माता की गोद में। प्रभात की स्वर्ण-किरणों में नहाकर माता का स्नेह-सुंदर गात निखर गया है और बालक भी अंचल से मुँह निकाल-निकालकर माता के स्नेह-प्लावित मुख की ओर देखता है, हुमुकता है और मुस्कराता है; पर माता बार-बार उसे अंचल से ढँक लेती है कि कहीं उसे नज़र न लग जाये।

सहसा तोप के छूटने की कर्ण-कटु ध्वनि सुनाई दी। फिर तो लगातार तोपें छूटने लगीं। आज रियासत के नए पोलिटिकल एजेंट यहाँ आ रहे हैं। उन्हीं के अभिवादन में सलामियाँ उतारी जा रही हैं।

मिस्टर क्लार्क और सोफ़िया को यहाँ आये एक महीना गुज़र गया। जागीरदारों की मुलाकातों, दावतों, नज़रानों से इतना अवकाश ही न मिला कि आपस में कुछ बातचीत हो। आखिर जब पूरा महीना खत्म हो गया, तो एक दिन सोफ़िया ने क्लार्क से कहा—इन दावतों का ताँता तो लगा ही रहेगा, और बरसात बीती जा रही है। अब यहाँ जी नहीं लगता, ज़रा पहाड़ी प्रांतों की सैर करनी चाहिए। पहाड़ियों में खूब बहार होगी। क्लार्क भी सहमत हो गये।

एक सप्ताह से दोनों रियासतों की सैर कर रहे हैं। रियासत के दीवान सरदार नीलकंठ राव भी साथ हैं। जहाँ ये लोग पहुँचते हैं, बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत होता है, सलामियाँ उतारी जाती हैं, मान-पत्र मिलते हैं, मुख्य-मुख्य स्थानों की सैर कराई जाती है। पाठशालाओं, चिकित्सालयों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का निरीक्षण किया जाता है। सोफ़िया को जेलखानों के निरीक्षण का बहुत शौक है। वह बड़े ध्यान से कैदियों को, उनके भोजनालयों को, जेल के नियमों को देखती है और क़ैदखानों के सुधार के लिए कर्मचारियों से विशेष आग्रह करती है। आज जसवंतनगर के मेज़बानों को सेवा-सत्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और सारा कस्बा, अर्थात् वहाँ के राजकर्मचारी, पगड़ियाँ बाँधे इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं। किसी के होश-हवास ठिकाने नहीं हैं, जैसे नींद में किसी ने भेड़ियों का स्वप्न देखा हो। सड़कों के दोनों तरफ़ सशस्त्र सिपाहियों की सफें खड़ी कर दी गयी हैं कि प्रजा की अशांति का कोई चिह्न भी न नज़र आने पाए। सभाएँ करने की मनाही कर दी गयी है।

कस्बे का गश्त करके सोफ़ी, क्लार्क, सरदार नीलकंठ और दो-एक उच्च कर्मचारी तो

राजभवन में आकर बैठे, और लोग बिदा हो गये। मेज़ पर चाय लाई गयी। मि. क्लार्क ने बोतल से शराब उड़ेली, तो सरदार साहब, जिन्हें इसकी दुर्गंध से घृणा थी, खिसककर सोफ़िया के पास आ बैठे और बोले—जसवंतनगर आपको कैसा पसंद आया?

सोफ़िया—बहुत ही रमणीक स्थान है। पहाड़ियों का दृश्य अत्यंत मनोहर है। शायद कश्मीर के सिवा ऐसी प्राकृतिक शोभा और कहीं न होगी। नगर की सफाई से चित्त प्रसन्न हो गया। मेरा तो जी चाहता है, यहाँ कुछ दिनों रहूँ।

नीलकंठ डरे। एक-दो दिन तो पुलिस और सेना के बल से नगर को शांत रखा जा सकता है, पर महीने-दो महीने किसी तरह नहीं। असम्भव है। बोले—यहाँ की बाह्य छटा के धोखे में न आइए। जलवायु बहुत खराब है। आगे आपको इससे कहीं सुंदर स्थान मिलेंगे।

सोफ़िया—कुछ भी हो, मैं यहाँ दो हफ़्ते अवश्य ठहरूँगी। क्यों विलियम, तुम्हें यहाँ से जाने की कोई जल्दी तो नहीं है?

क्लार्क—तुम यहाँ रहो, तो मैं दफन होने को तैयार हूँ।

सोफ़िया—लीजिए सरदार साहब, विलियम को कोई आपत्ति नहीं है।

नीलकंठ—फिर भी मैं आपसे यही अर्ज़ करूँगा कि जसवंतनगर बहुत अच्छी जगह नहीं है। जलवायु की विषमता के अतिरिक्त यहाँ की प्रजा में अशांति के बीज अंकुरित हो गये हैं।

सोफ़िया—तब तो हमारा यहाँ रहना और भी आवश्यक है। गवर्नमेंट ने रियासतों को आंतरिक स्वाधीनता प्रदान कर दी है। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि रियासतों में अराजकता के कीटाणुओं को सेये जाने दिया जाये।

सरदार साहब के हाथ-पाँव फूल गये। सोफ़िया से उन्होंने यह बात निश्शंक होकर कही थी। उसकी विनयशीलता से उन्होंने समझ लिया था कि मेरी नज़र-भेंट ने अपना काम कर दिखाया। यह फटकार पड़ी, तो आँखें चौंधिया गईं। कातर स्वर में बोले—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यद्यपि रियासत पर इस स्थिति का उत्तरदायित्व है; पर हमने यथासाध्य इसके रोकने की चेष्टा की और अब भी कर रहे हैं। यह बीज उस दिशा से आया, जिधर से उसके आने की सम्भावना न थी। बनारस के रईस कुँवर भरतसिंह के स्वयंसेवकों ने कुछ ऐसे कौशल से काम लिया कि हमें खबर तक न हुई। डाकुओं से धन की रक्षा की जा सकती है, पर साधुओं से नहीं। विशेषतः कुँवर साहब का पुत्र अत्यंत कुटिल प्रकृति का युवक है। उसने इस प्रांत में अपने विद्रोहात्मक विचारों का यहाँ तक प्रचार किया कि इसे विद्रोहियों का अखाड़ा बना दिया। विनयसिंह तो किसी तरह गिरफ्तार हो गया; पर उसके अन्य सहयोगी अभी तक इलाके में छिपे हुए प्रजा को उत्तेजित कर रहे हैं। कई बार यहाँ सरकारी खजाना लुट चुका है। कई बार विनय को जेल से निकाल ले जाने का दुष्प्रयत्न किया जा चुका है। मुझे विवश होकर आपसे यह वृत्तांत कहना पड़ा। मैं आपको यहाँ ठहरने की कदापि राय न दूँगा। अब आप स्वयं समझ सकती हैं कि हम लोगों ने जो कुछ किया, उसके सिवा और क्या कर सकते थे।

सोफ़िया ने बड़ी चिन्ता के भाव से कहा—दशा उससे कहीं भयंकर है, जितना मैं समझती थी। इस अवस्था में विलियम का यहाँ से जाना कर्त्तव्य के विरुद्ध होगा। क्यों

विलियम, तुम्हें यहाँ रहने में कोई आपत्ति तो नहीं है? यहाँ की रिपोर्ट भी तो करनी पड़ेगी।

क्लार्क ने एक चुस्की लेकर कहा—तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं नरक में भी स्वर्ग का सुख ले सकता हूँ। रहा रिपोर्ट लिखना, वह तुम्हारा काम है।

नीलकंठ—मेरी आपसे सविनय प्रार्थना है कि रियासत को सँभालने के लिए कुछ और समय दीजिए। अभी रिपोर्ट करना हमारे लिए घातक होगा।

इधर तो यह अभिनय हो रहा था, सोफ़िया प्रभुत्व के सिंहासन पर विराजमान थी, ऐश्वर्य चँवर हिलाता था, अष्टसिद्धि हाथ बाँधे खड़ी थी। उधर विनय अपनी अँधेरी कालकोठरी में म्लान और क्षुब्ध बैठा हुआ नारी जाति की निष्ठुरता और असहृदयता पर रो रहा था। जेल कर्मचारी कैदियों को पढ़ा रहे थे—मेम साहब पूछें, तुम्हें क्या शिकायत है, तो सब लोग एक स्वर से कहना, हुज़ूर के प्रताप से हम बहुत सुखी हैं और हुज़ूर के जान-माल की खैर मनाते हैं।

किन्तु विनय के कमरे में अभी तक सफाई नहीं हुई। नया कम्बल पड़ा हुआ है, छुआ तक नहीं गया। कुरता ज्यों-का-त्यों तह किया हुआ रखा है। उसके शरीर के एक-एक रोम से, मस्तिष्क के एक-एक अणु से, हृदय की एक-एक गति से यही आवाज़ आ रही है—सोफ़िया! उसके सामने क्योंकर जाऊँगा। उसने सोचना शुरू किया—सोफ़िया यहाँ क्यों आ रही है? क्या मेरा अपमान करना चाहती है? सोफ़ी, जो दया और प्रेम की सजीव मूर्ति थी, क्या वह मुझे क्लार्क के सामने बुलाकर पैरों से कुचलना चाहती है? नहीं, वह इतनी वज्र-हृदया नहीं है, उसका हृदय इतना कठोर नहीं हो सकता। यह सब मि. क्लार्क की शरारत है, वह मुझे सोफ़ी के सामने लज्जित करना चाहते हैं; पर मैं उन्हें यह अवसर न दूँगा, मैं उनके सामने जाऊँगा ही नहीं, मुझे बलात् ले जाये; जिसका जी चाहे।

सहसा जेल का दारोग़ा आकर कर्कश स्वर में बोला—तुमने कमरे की सफाई नहीं की! अरे, तुमने तो अभी कुरता भी नहीं बदला, कम्बल तक नहीं बिछाया! तुम्हें हुक्म मिला या नहीं?

विनय—हुक्म तो मिला, मैंने उसका पालन करना आवश्यक नहीं समझा।

दारोग़ा ने और गरम होकर कहा—इसका यही नतीजा होगा कि तुम्हारे साथ भी और कैदियों का-सा सलूक किया जाये।

विनय—यह बतलाइए कि मुझे पोलिटिकल एजेंट के सामने तो न जाना पड़ेगा? अगर आप मुझ पर इतनी रियायत करें कि मुझे साहब के सामने जाने पर मजबूर न करें, तो मैं आपका हुक्म मानने को तैयार हूँ।

दारोग़ा—कैसे बेसिर-पैर की बातें करते हो, मेरा कोई अख्तियार है? तुम्हें जाना पड़ेगा।

विनय ने बड़ी नम्रता से कहा—मैं आपका यह एहसान कभी न भूलूँगा।

किसी दूसरे अवसर पर दारोग़ाजी शायद जामे से बाहर हो जाते, पर आज कैदियों को खुश रखना ज़रूरी था। बोले—मगर भाई, यह रिआयत करनी मेरी शक्ति से बाहर है। मुझ पर न जाने क्या आफत आ जाये। सच पूछो तो जो कुछ हैं, वह मेम साहब ही हैं। कहीं वह बिगड़ गईं, तो तुम्हारी मियाद तो दूनी हो ही जायेगी, हम भी पिस जायेंगे।

विनय—मालूम होता है, मेम साहब का बड़ा दबाव है।

दारोग़ा—दबाव! अजी, यह कहो कि मेम साहब ही पोलिटिकल एजेंट हैं। साहब तो केवल हस्ताक्षर करने-भर को हैं।

विनय—आप मेरे साथ इतनी रिआयत कीजिए कि मुझे उनके सामने जाने के लिए मजबूर न कीजिए। हाँ, अगर वह मुझे नाम लेकर बुलाएँगी, तो मैं चला जाऊँगा।

दारोग़ा—सरदार साहब मुझे जीता निगल जायेंगे।

विनय—मगर करना आपको यही पड़ेगा। मैं अपनी खुशी से कदापि न जाऊँगा।

दारोग़ा—मैं बुरा आदमी हूँ, मुझे दिक मत करो। मैंने इसी जेल में बड़े-बड़ों की गरदनें ढीली कर दी हैं।

विनय—अपने को कोसने का आपको अधिकार है; पर आप जानते हैं, मैं जब्र के सामने सिर झुकानेवाला नहीं हूँ।

दारोग़ा—भाई, तुम विचित्र प्राणी हो, उसके हुक्म से सारा शहर खाली कराया जा रहा है, और फिर भी अपनी जिद किये जाते हो।

विनय—क्या शहर खाली कराया जा रहा है? यह क्यों?

दारोग़ा—मेम साहब का हुक्म है, और क्या, जसवंतनगर पर उनका कोप है। जब से उन्होंने यहाँ की वारदातें सुनी हैं, मिजाज़ बिगड़ गया है। हुक्म हुआ है कि एक सप्ताह तक कोई जवान आदमी कस्बे में न रहने पाए। भय है कि कहीं उपद्रव न हो जाये, सदर से मदद माँगी गयी है।

दारोग़ा ने स्थिति को इतना बढ़ाकर बयान किया, इससे उनका उद्देश्य विनयसिंह पर प्रभाव डालना था और उनका उद्देश्य पूरा हो गया। विनयसिंह को चिन्ता हुई कि कहीं मेरी अवज्ञा से क्रुद्ध होकर अधिकारियों ने मुझ पर और भी अत्याचार करने शुरू किये और जनता को यह खबर मिली, तो वह बिगड़ खड़ी होगी और उस दशा में मैं उन हत्याओं के पाप का भागी ठहरूँगा। नहीं, हालत नाज़ुक है। मुझे इस वक़्त धैर्य से काम लेना चाहिए। दारोग़ा से पूछा—मेम साहब यहाँ किस वक़्त आयेंगी?

दारोग़ा—उनके आने का कोई ठीक समय थोड़े ही है। इसी से तो कहता हूँ कि कमरे की सफाई कर डालो; कपड़े बदल लो; कौन जाने, आज ही आ जायें।

विनय—अच्छी बात है; आप जो कुछ कहते हैं, सब कर लूँगा।

दारोग़ा—सलामी के वक़्त आने से इनकार तो न करोगे?

विनय—जी नहीं; आप मुझे सबसे पहले आँगन में मौजूद पाएँगे।

दारोग़ा—मेरी शिकायत तो न करोगे?

विनय—शिकायत करना मेरी आदत नहीं, इसे आप खूब जानते हैं।

दारोग़ा चला गया। अँधेरा हो चला था। विनय ने अपने कमरे में झाड़ू लगाई, कपड़े बदले, कम्बल बिछा दिया। वह कोई ऐसा काम नहीं करना चाहते थे, जिससे किसी की दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हो; वह अपनी निरपेक्षता से हुक्काम के संदेहों को दूर कर देना चाहते

थे। विनय लेटे, तो सोचने लगे—सोफ़ी का यह रूपांतर क्योंकर हो गया? वही लज्जा और विनय की मूर्ति, वही सेवा और त्याग की प्रतिमा आज निरंकुशता की देवी बनी हुई है!

इस हैस-बैस में रात कट गयी। अभी कर्मचारियों की नींद भी न खुली थी कि मोटर की आवाज़ ने आगंतुकों की सूचना दी। दारोग़ा, डॉक्टर, वार्डर, चौकीदार हड़बड़ाकर निकल पड़े। पहली घंटी बजी, क़ैदी मैदान में निकल आये, उन्हें कतारों में खड़े होने का हुक्म दिया गया, और उसी क्षण सोफ़िया, मिस्टर क्लार्क और सरदार नीलकंठ जेल में दाखिल हुए।

सोफ़िया ने आते ही कैदियों पर निगाह डाली। उस दृष्टि में प्रतीक्षा न थी, उत्सुकता न थी, भय था, विकलता थी, अशांति थी। जिस आकांक्षा ने उसे बरसों रुलाया था, जो उसे यहाँ तक खींच लायी थी, जिसके लिए उसने अपने प्राणप्रिय सिद्धान्तों का बलिदान किया था, उसी को सामने देखकर वह इस समय कातर हो रही थी। सहसा उसने विनय को सिर झुकाए खड़े देखा। हृदय में प्रेम का एक प्रचंड आवेग हुआ, नेत्रों में अँधेरा छा गया। सोफ़ी के मन में अनिवार्य इच्छा हुई कि विनय के पैरों पर गिर पड़ूँ, उसे अश्रु-जल से धोऊँ, उसे गले से लगाऊँ। अकस्मात् विनयसिंह मूर्च्छित होकर गिर पड़े, एक आर्तध्वनि थी, जो एक क्षण तक प्रवाहित होकर शोकावेग से निशब्द हो गयी। सोफ़ी तुरंत विनय के पास जा पहुँची। चारों तरफ़ शारे मच गया। जले का डॉक्टर दौड़ा। दारोग़ा पागलों की भाँति उछल-कूद मचाने लगा—अब नौकरों की खैरियत नहीं। मेम साहब पूछेंगी, इसकी हालत इतनी नाज़ुक थी, तो इसे चिकित्सालय में क्यों नहीं रखा; बड़ी मुसीबत में फँसा।

दारोग़ा तो अपनी जान की ख़ैर मना रहा था, उधर सरदार साहब मिस्टर क्लार्क से कह रहे थे—यह वही युवक है, जिसने रियासत में ऊधम मचा रखा है। सोफ़ी ने डॉक्टर से घुड़ककर कहा, हट जाओ, और विनय को उठवाकर दफ़्तर में लायी। आज वहाँ बहुमूल्य गलीचे बिछे हुए थे। तजवीज़ थी कि निरीक्षण के बाद साहब यहाँ नाश्ता करेंगे। सोफ़ी ने विनय को कालीन के फ़र्श पर लिटा दिया और सब आदमियों को वहाँ से हट जाने का इशारा किया। उसकी करुणा और दया प्रसिद्ध थी, किसी को आश्चर्य न हुआ। जब कमरे में कोई न रहा, तो सोफ़ी ने खिड़कियों पर परदे डाल दिये और विनय का सिर अपनी जाँघ पर रखकर अपनी रूमाल उस पर झलने लगी। आँसू की गरम-गरम बूँदें उसकी आँखों से निकल-निकलकर विनय के मुख पर गिरने लगीं। विनय चौंककर उठे नहीं; यही तो प्रेम-योगियों की सिद्धि है, यही तो उनका स्वर्ग है, यही तो उनकी अभिलाषाओं का अंत है, इस स्वर्गीय आनंद में तृप्ति कहाँ! विनय के मन में करुण भावना जागृत हुई—काश, इसी भाँति प्रेम-शय्या पर लेटे हुए सदैव के लिए ये आँखें बंद हो जातीं!

एकाएक उन्हें याद आ गया, सोफ़ी को स्पर्श करना भी मेरे लिए वर्जित है। उन्होंने तुरंत अपना सिर उसकी जाँघ पर से खींच लिया और अवरुद्ध कंठ से बोले—मिसेज़ क्लार्क, आपने मुझ पर बड़ी दया की, इसके लिए आपका अनुगृहीत हूँ।

सोफ़िया ने तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—अनुग्रह गालियों के रूप में नहीं प्रकट किया जाता।

विनय ने विस्मित होकर कहा—ऐसा घोर अपराध मुझसे कभी नहीं हुआ।

सोफ़िया—ख्वाहमखाह किसी के साथ मेरा सम्बंध जोड़ना गाली नहीं तो क्या है?

विनय—मिस्टर क्लार्क?

सोफ़िया—क्लार्क को मैं तुम्हारी जूतियों का तस्मा खोलने के योग्य भी नहीं समझती।

विनय—लेकिन अम्माँजी ने...।

सोफ़िया—तुम्हारी अम्माँजी ने झूठ लिखा और तुमने उस पर विश्वास करके मुझ पर घोर अन्याय किया। कोयल आम न पाकर भी निम्बौड़ियों पर नहीं गिरती।

इतने में क्लार्क ने आकर पूछा—इस क़ैदी की क्या हालत है? डॉक्टर आ रहा है, वह इसकी दवा करेगा। चलो, देर हो रही है।

सोफ़िया ने रुखाई से कहा—तुम जाओ, मुझे फ़ुरसत नहीं।

क्लार्क—खैर, मैं थोड़ी देर और ठहरूँगा।

यह कहकर वह बाहर चले गये, तब सोफ़ी ने विनय के माथे से पसीना पोंछते हुए कहा—विनय, मैं डूब रही हूँ, मुझे बचा लो। मैंने रानीजी की शंकाओं को निवृत्त करने के लिए यह स्वाँग रचा था।

विनय ने अविश्वाससूचक भाव से कहा—तुम यहाँ क्लार्क के साथ क्यों आयीं और उनके साथ कैसे रहती हो?

सोफ़िया का मुख-मंडल लज्जा से आरक्त हो गया। बोली—विनय, यह मत पूछो, मगर मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ, मैंने जो कुछ किया, तुम्हारे लिए किया। तुम्हें इस क़ैद से निकालने के लिए मुझे इसके सिवा और कोई उपाय न सूझा। अगर तुम इस वक़्त कहो, सोफ़ी, तू मेरे साथ जेल में रह, तो मैं यहाँ आकर तुम्हारे साथ रहूँगी। मैंने तुम्हारा दामन पकड़ लिया है और अब उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकती; चाहे तुम ठुकरा ही क्यों न दो। विनय, यह ईश्वरीय विधान है, यह उसकी ही प्रेरणा है।

विनय ने सोफ़ी के दिल की थाह लेने के लिए कहा—अगर यह ईश्वरीय विधान है, तो उसने हमारे और तुम्हारे बीच में यह दीवार क्यों खड़ी कर दी है?

सोफ़िया—यह दीवार ईश्वर ने नहीं खड़ी की, आदमियों ने खड़ी की है।

विनय—कितनी मज़बूत है!

सोफ़िया—हाँ, मगर दुर्भेद्य नहीं।

विनय ने सोफ़ी का हाथ अपने हाथ में लिया, और उसकी ओर प्रेम-विह्वल नेत्रों से देखकर बोले—तो आज से तुम मेरी हो, और मैं तुम्हारा हूँ।

सोफ़ी का मस्तक विनय के हृदय-स्थल पर झुक गया, नेत्रों से जल-वर्षा होने लगी, जैसे काले बादल धरती पर झुककर एक क्षण में उसे तृप्त कर देते हैं। उसके मुख से एक शब्द भी न निकला। अब उसका लक्ष्य निश्चित था। वह अब हवा के झोकों या लहरों के प्रवाह के साथ डावाँडोल न होगी, वरन् सुव्यवस्थित रूप से अपने पथ पर चलेगी।

विनय भी दोनों पर खोले हुए आनंद के आकाश में उड़ रहे थे। वहाँ की वायु में सुगंध थी, प्रकाश में प्राण, किसी ऐसी वस्तु का अस्तित्व न था, जो देखने में अप्रिय, सुनने में कटु, छूने

में कठोर हो। इस सुख-स्वप्न के सामने यह त्याग और तप का जीवन कितना नीरस, कितना निराशाजनक था, यह अँधेरी कोठरी कितनी भयंकर!

सहसा क्लार्क ने फिर आकर कहा—डार्लिंग, अब विलम्ब न करो, बहुत देर हो रही है, सरदार साहब आग्रह कर रहे हैं।

सोफ़ी उठ खड़ी हुई और विनय की ओर से मुँह फेरकर करुण-कम्पित स्वर में बोली—घबराना नहीं, मैं कल फिर आऊँगी।

विनय को ऐसा जान पड़ा, मानो नाड़ियों में रक्त सूखा जा रहा है। सोफ़ी द्वार तक आयी, फिर रूमाल लेने के बहाने लौटकर विनय के कान में बोली—मैं कल फिर आऊँगी और तब हम दोनों यहाँ से चले जायेंगे। मैं तुम्हारी तरफ़ से सरदार नीलकंठ से कह दूँगी कि वह क्षमा माँगते हैं।

सोफ़ी के चले जाने के बाद भी ये आतुर, उत्सुक, प्रेम में डूबे हुए शब्द किसी मधुर संगीत के अंतिम स्वरों की भाँति विनय के कानों में गूँजते रहे। किन्तु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिए विवश हुआ। जेल के डॉक्टर ने आकर उसे दफ़्तर ही में एक पलंग पर लिटा दिया और पुष्टिकारक औषधियाँ सेवन कराईं।

विनय ने उन्हें विश्वास दिलाया कि आपके बिदा होते ही मुझे नींद आ जायेगी। डॉक्टर अपने अपराधों की क्षमा माँगते हुए चले गये। इसी बहाने से विनय ने दारोग़ा को भी खिसकाया, जो आज शील और दया के पुतले बने हुए थे। सरदार साहब ने चलते समय उन्हें जता दिया था कि इनके सेवा-सत्कार में कोई कसर न रखना, नहीं तो मेम साहब जहन्नुम में भेज देंगी।

शांत विचार के लिए एकाग्रता उतनी ही आवश्यक है, जितनी ध्यान के लिए। विनय को अब विचार हुआ—अम्माँजी को यह हाल मालूम हुआ, तो वह अपने मन में क्या कहेंगी। मुझसे उनकी कितनी मनोकामनाएँ सम्बद्ध हैं। सोफ़ी के प्रेम-पाश से बचने के लिए उन्होंने मुझे निर्वासित किया, इसीलिए उन्होंने सोफ़ी को कलंकित किया। उनका हृदय टूट जायेगा। दुःख तो पिताजी को भी होगा; पर वे मुझे क्षमा कर देंगे, उन्हें मानवीय दुर्बलताओं से सहानुभूति है।

शनैः-शनैः भावनाओं ने जीवन की सुख-सामग्रियाँ जमा करनी शुरू कीं—चलकर देहात में रहूँगा। वहीं एक छोटा-सा मकान बनवाऊँगा, साफ, खुला हुआ, हवादार, ज़्यादा टीमटाम की ज़रूरत नहीं। वहीं हम दोनों सबसे अलग शांति से निवास करेंगे। मैं बगीचे में काम करूँगा, क्यारियाँ बनाऊँगा, कलमें लगाऊँगा और सोफ़ी को अपनी दक्षता से चकित कर दूँगा। गुलदस्ते बनाकर उसके सामने पेश करूँगा और हाथ बाँधकर कहूँगा—सरकार, कुछ इनाम मिले। फलों की डालियाँ लगाऊँगा और कहूँगा—रानीजी, कुछ निगाह हो जाये। कभी-कभी सोफ़ी भी पौधों को सींचेगी। हम एक क्षण के लिए अलग न होंगे। कभी-कभी प्रभु सेवक भी आयेंगे। ओह! कितना सुखमय जीवन होगा!

सोफ़ी और क्लार्क की आज संध्या समय एक जागीरदार के यहाँ दावत थी। जब मेज़ें सज गईं और एक हैदराबाद के मदारी ने अपने कौतुक दिखाने शुरू किये, तो सोफ़ी ने मौका

पाकर सरदार नीलकंठ से कहा—उस क़ैदी की दशा मुझे चिंताजनक मालूम होती है। उसके हृदय की गति बहुत मंद हो गयी है। क्यों विलियम, तुमने देखा, उसका मुख कितना पीला पड़ गया था?

क्लार्क ने आज पहली बार आशा के विरुद्ध उत्तर दिया—मूर्च्छा में बहुधा मुख पीला हो जाता है।

सोफ़ी—वही तो मैं भी कह रही थी कि उसकी दशा अच्छी नहीं, नहीं तो मूर्च्छा ही क्यों आती। अच्छा हो कि आप उसे किसी कुशल डॉक्टर के सिपुर्द कर दें। मेरे विचार में अब वह अपने अपराध की काफ़ी सज़ा पा चुका है, उसे मुक्त कर देना उचित होगा।

नीलकंठ—मेम साहब, उसकी सूरत पर न जाइए। आपको ज्ञात नहीं, यहाँ जनता पर उसका कितना प्रभाव है। वह रियासत में इतनी प्रचंड अशांति उत्पन्न कर देगा कि उसे दमन करना कठिन हो जायेगा।

क्लार्क—ऐसे विद्रोही को क़ैद रखना ही अच्छा है।

सोफ़ी ने उत्तेजित होकर कहा—मैं इसे घोर अन्याय समझती हूँ और मुझे आज पहली बार यह मालूम हुआ कि तुम इतने हृदय-शून्य हो!

क्लार्क—मुझे तुम्हारा जैसा दयालु हृदय रखने का दावा नहीं।

सोफ़ी ने क्लार्क के मुख को जिज्ञासा की दृष्टि से देखा। यह गर्व, यह आत्मगौरव कहाँ से आया? तिरस्कार भाव से बोली—एक मनुष्य का जीवन इतनी तुच्छ वस्तु नहीं।

क्लार्क—साम्राज्य-रक्षा के सामने एक व्यक्ति के जीवन की कोई हस्ती नहीं। जिस दया से, जिस सहृदयता से किसी दीन प्राणी का पेट भरता हो, उसके शारीरिक कष्टों का निवारण होता हो, उसका मैं कायल हूँ, और मुझे गर्व है कि मैं उस सम्पत्ति से वंचित नहीं हूँ; लेकिन जो सहानुभूति साम्राज्य की जड़ खोखली कर दे, विद्रोहियों को सर उठाने का अवसर दे, उसे मैं अदूरदर्शिता ही नहीं, पागलपन समझता हूँ।

सोफ़ी के मुख-मंडल पर एक अमानुषीय तेजस्विता की आभा दिखायी दी, पर उसने जब्त किया। नर्म होकर बोली—हाँ, इस विचार-दृष्टि से बेशक वैयक्तिक जीवन का कोई मूल्य नहीं रहता। मगर फिर भी इतना कह सकती हूँ कि अगर वह मुक्त कर दिया जाये, तो फिर इस रियासत में क़दम न रखेगा, और वह अपनी बात का धनी है।

नीलकंठ—क्या आपसे उसने वादा किया है?

सोफ़ी—हाँ, वादा ही समझिए, मैं उसकी जमानत कर सकती हूँ।

क्लार्क—जब तक उसका लिखित प्रार्थना-पत्र मेरे सामने न आये, मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता।

सोफ़ी—प्रार्थना-पत्र का विषय क्या होगा?

क्लार्क—सबसे पहले वह अपना अपराध स्वीकार करे और अपनी राजभक्ति का विश्वास दिलाने के बाद हलफ लेकर कहे कि इस रियासत में फिर क़दम न रखूँगा। उसके साथ जमानत भी होनी चाहिए। जो नकद रुपये हों, या प्रतिष्ठित आदमियों की जमानत।

दावत के बाद सोफ़ी राजभवन में आयी, तो सोचने लगी—यह समस्या क्योंकर हल हो? यों तो मैं विनय की मिन्नत-समाजत करूँ, तो वह रियासत से चले जाने पर राज़ी हो जायेंगे; लेकिन कदाचित् वह लिखित प्रतिज्ञा न करेंगे। अगर किसी भाँति मैंने रो-धोकर उन्हें इस बात पर राज़ी कर लिया, तो यहाँ कौन प्रतिष्ठित आदमी उनकी जमानत करेगा? मज़ा तो जब है कि लिखित प्रार्थना-पत्र और जमानत की कोई शर्त ही न रहे। वह अवैध रूप से मुक्त कर दिये जायें। इसके सिवा कोई उपाय नहीं।

राजभवन विद्युत-प्रकाश से ज्योतिर्मय हो रहा था। भवन के बाहर चारों तरफ़ सावन की काली घटा थी और अथाह अंधकार। सोफ़ी अपने सजे हुए कमरे में आईने के सामने बैठी हुई उन सिद्धियों को जगा रही है, जिनकी शक्ति अपार है—आज उसने मुद्दत के बाद बालों में फूल गूँथे हैं, फीरोजी रेशम की साड़ी पहनी है और कलाइयों में कंगन धारण किये हैं। आज उसने मिस्टर क्लार्क के साम्राज्यवाद को विजय करने का निश्चय किया है, वह आज अपनी सौंदर्य-शक्ति की परीक्षा करेगी।

रिमझिम बूँदें गिर रही थीं, मानो मौलसिरी के फूल झड़ रहे हों। सोफ़िया प्यानो पर बैठ गयी और एक दिल को मसोसनेवाला राग गाने लगी। मिस्टर क्लार्क आकर एक कोच पर बैठ गये और तन्मय होकर सुनने लगे, मानो किसी दूसरे ही संसार में पहुँच गये हैं। संगीत से कल्पना चित्रमय हो जाती है।

जब तक सोफ़ी गाती रही, मिस्टर क्लार्क बैठे सिर धुनते रहे। जब वह चुप हो गयी, तो उसके पास गये और उसकी कुर्सी की बाँहों पर हाथ रखकर, उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर बोले—इन उँगलियों को हृदय में रख लूँगा।

सोफ़ी—हृदय कहाँ है?

क्लार्क ने छाती पर हाथ रखकर कहा—यहाँ तड़प रहा है।

सोफ़ी—शायद हो, मुझे तो विश्वास नहीं आता।

क्लार्क—सम्भव है, ऐसा ही हो। पर ईश्वर ने जो कसर रखी थी, वह तुम्हारे मधुर स्वर ने पूरी कर दी। शायद उसमें सृष्टि करने की शक्ति है।

सोफ़ी—अगर मुझमें यह विभूति होती, तो आज मुझे एक अपरिचित व्यक्ति के सामने लज्जित न होना पड़ता।

क्लार्क ने अधीर होकर कहा—क्या मैंने तुम्हें लज्जित किया? मैंने!

सोफ़ी—जी हाँ, आपने। मुझे आज तुम्हारी निर्दयता से जितना दुःख हुआ, उतना शायद और कभी न हुआ था। मुझे बाल्यावस्था से यह शिक्षा दी गयी है कि प्रत्येक जीव पर दया करनी चाहिए, मुझे बताया गया है कि यही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है। सबसे बड़ा दुःख मुझे इस बात का है कि अनजान आदमी के सामने मेरा अपमान हुआ।

क्लार्क—खुदा जानता है सोफ़ी, मैं तुम्हारा कितना आदर करता हूँ। हाँ, इसका खेद मुझे अवश्य है कि मैं तुम्हारी उपेक्षा करने के लिए बाध्य हुआ। इसका कारण तुम जानती ही हो। हमारा साम्राज्य तभी तक अजेय रह सकता है, जब तक प्रजा पर हमारा आतंक छाया रहे, जब तक हमारे न्याय पर उसका अटल विश्वास हो। जिस दिन प्रजा के दिल से हमारे प्रति

विश्वास उठ जायेगा, उसी दिन हमारे साम्राज्य का अंत हो जायेगा।

सोफ़ी—अगर तुम्हारा खयाल है कि मुझे साम्राज्य से इतना प्रेम नहीं, जितना तुम्हें है, और मैं उसके लिए इतने बलिदान नहीं सह सकती, जितने तुम कर सकते हो, तो तुमने मुझे बिलकुल नहीं समझा। समझते हो, मैं गा रही हूँ। यह गाना नहीं, रोना है। जब दाम्पत्य के द्वार पर यह दशा हो रही है, जहाँ फूलों से, हर्षनादों से, प्रेमालिंगनों से, मृदुल हास्य से मेरा अभिवादन होना चाहिए था, तो मैं अन्दर क़दम रखने का क्योंकर साहस कर सकती हूँ? तुमने मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मैं अपने को धन्यवाद देती हूँ कि मैंने विवाह के विषय में इतनी दूर-दृष्टि से काम लिया।

यह कहते-कहते सोफ़ी की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। शोकाभिनय में भी बहुधा यथार्थ शोक की वेदना होने लगती है। मिस्टर क्लार्क खेद और असमर्थता का राग अलापने लगे; पर न उपयुक्त शब्द ही मिलते थे, न विचार। बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा—सोफ़ी, मुझे क्षमा करो, वास्तव में मैं न समझता था कि इस ज़रा-सी बात से तुम्हें इतनी मानसिक पीड़ा होगी।

सोफ़ी—इसकी मुझे कोई शिकायत नहीं। तुम मेरे गुलाम नहीं हो कि मेरे इशारों पर नाचो। मुझमें वे गुण नहीं, जो पुरुषों का हृदय खींच लेते हैं, न वह रूप है, न वह छवि है, न वह उद्दीपन-कला। दुःख केवल इस बात का है कि उस आदमी ने तो मेरे एक इशारे पर मेरी बात मान ली और तुम इतना अनुनय-विनय करने पर भी इनकार करते जाते हो। शायद तुम उससे बड़े सिद्धान्तवादी हो। मेरी सवारी का प्रबन्ध कर दो, मैं कल ही चली जाऊँगी और फिर अपनी नादानियों से तुम्हारे मार्ग का कंटक बनने न आऊँगी।

मिस्टर क्लार्क ने घोर आत्मवेदना के साथ कहा—डार्लिंग, तुम नहीं जानतीं, यह कितना भयंकर आदमी है। हम क्रांति से, षड्यंत्रों से, संग्राम से इतना नहीं डरते, जितना इस भाँति के धैर्य और धुन से। मैं भी मनुष्य हूँ सोफ़ी, यद्यपि इस समय मेरे मुँह से यह दावा समयोचित नहीं पर कम-से-कम उस पवित्र आत्मा के नाम पर, जिसका मैं अत्यंत दीनभक्त हूँ, मुझे यह कहने का अधिकार है—मैं उस युवक का हृदय से सम्मान करता हूँ। उसके दृढ़ संकल्प की, उसके साहस की, उसकी सत्यवादिता की दिल से प्रशंसा करता हूँ।

सोफ़ी को ज्ञात हो गया कि मेरी धमकी सर्वथा निष्फल नहीं हुई। विवशता का शब्द जबान पर, खेद का भाव मन में आया, और अनुमति की पहली मंजिल पूरी हुई। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि इस समय मेरे हाव-भाव का इतना असर नहीं हो सकता, जितना बलपूर्ण आग्रह था। सोफ़ी ने कटाक्ष करते हुए कहा—अगर तुम्हारा जातीय कर्त्तव्य तुम्हें प्यारा है, तो मुझे भी आत्मसम्मान प्यारा है।

यह कहकर वह स्वामिनी-भाव से मेज़ के पास गयी और एक डाकेट का पत्र निकाला, जिस पर एजेंट आज्ञा-पत्र लिखा करता था।

क्लार्क—क्या करती हो सोफ़ी? खुदा के लिए जिद मत करो।

सोफ़ी—जेल के दारोग़ा के नाम हुक्म लिखूँगी।

यह कहकर वह टाइपराइटर पर बैठ गयी।

क्लार्क—यह अनर्थ न करो सोफ़ी, ग़ज़ब हो जायेगा।

सोफ़ी—मैं गज़ब से क्या, प्रलय से भी नहीं डरती।

सोफ़ी ने एक-एक शब्द का उच्चारण करते हुए आज्ञा-पत्र टाइप किया। उसने एक जगह जान-बूझकर एक अनुपयुक्त शब्द टाइप कर दिया, जिसे एक सरकारी पत्र में न आना चाहिए। क्लार्क ने टोका—यह शब्द मत रखो।

सोफ़ी—क्यों, धन्यवाद न दूँ?

क्लार्क—आज्ञा-पत्र में धन्यवाद का क्या ज़िक्र? कोई निजी थोड़े ही है।

सोफ़ी ने सम्पूर्ण आज्ञा-पत्र पढ़कर सुनाया।

क्लार्क—जो चाहो करो। जब तुम्हें अपनी ज़िद के आगे कुछ बुरा-भला नहीं सूझता, तो क्या कहूँ?

सोफ़ी—कहीं और तो इसकी नक़ल न होगी?

क्लार्क—मैं कुछ नहीं जानता।

यह कहकर मि. क्लार्क अपने शयन-गृह की ओर जाने लगे। सोफ़ी ने कहा—आज इतनी जल्दी नींद आ गयी?

क्लार्क—हाँ, अब सोऊँगा। तुम्हारे इस पत्र से रियासत में तहलका पड़ जायेगा।

सोफ़ी—अगर तुम्हें इतना भय है, तो मैं इस पत्र को फाड़े डालती हूँ। इतना नहीं गुदगुदाना चाहती कि हँसी के बदले रोना आ जाये। बैठते हो, या देखो, यह लिफाफा फाड़ती हूँ।

क्लार्क कुर्सी पर उदासीन भाव से बैठ गये और बोले—लो बैठ गया, क्या कहती हो?

सोफ़ी—कहती कुछ नहीं हूँ, धन्यवाद का गीत सुनते जाओ।

क्लार्क—मन्यवाद की ज़रूरत नहीं।

सोफ़ी ने फिर गाना शुरू किया और क्लार्क चुपचाप बैठे सुनते रहे। उनके मुख पर करुण प्रेमाकांक्षा झलक रही थी। इस आकांक्षा ने उन्हें साम्राज्य की चिन्ता से मुक्त कर दिया —आह! काश, अब भी मालूम हो जाता कि तू इतनी बड़ी भेंट पाकर प्रसन्न हो गयी! सोफ़ी ने सहसा प्यानो बंद कर दिया और बिना कुछ बोले हुए अपने शयनागार में चली गयी। क्लार्क वहीं बैठे रहे, जैसे कोई थका हुआ मुसाफिर अकेला किसी वृक्ष के नीचे बैठा हो।

सोफ़ी ने सारी रात भावी जीवन के चित्र खींचने में काटी, पर इच्छानुसार रंग न दे सकी। उसकी धार्मिकता अब अपने जीवन में ईश्वरीय व्यवस्था का रूप देखती थी। अब ईश्वर ही उसका कर्णधार था, वह अपने कर्माकर्म के गुणदोष से मुक्त थी।

प्रातःकाल वह उठी, तो मि. क्लार्क सो रहे थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उसने शोफर को बुलाकर मोटर तैयार करने का हुक्म दिया और एक क्षण में जेल की तरफ़ चली, जैसे कोई बालक पाठशाला से घर की तरफ़ दौड़े।

उसके जेल पहुँचते ही हलचल-सी पड़ गयी। दारोग़ाजी ने उतावली में उलटी अचकन पहनी और बेतहाशा दौड़े। डॉक्टर साहब नंगे पाँव भागे, याद न आया कि रात को जूते कहाँ

रखे थे। विनयसिंह बहुत रात गये सोये थे और अभी तक मीठी नींद के मज़े ले रहे थे। दारोग़ा ने जाकर सोफ़ी को सलाम किया और वह उन्हें लिए विनय के कमरे में आयी। देखा, तो नींद में है। ओठों पर हलकी-सी मुस्कराहट है; मानो फूल पर किरणें चमक रही हों। सोफ़ी को विनय आज तक कभी इतना सुंदर न मालूम हुआ था।

सोफ़ी ने डॉक्टर से पूछा—रात को इसकी कैसी दशा थी?

डॉक्टर—हुज़ूर, कई बार मूर्च्छा आयी; पर मैं एक क्षण के लिए भी यहाँ से न टला। जब इन्हें नींद आ गयी, तो मैं भोजन करने चला गया। अब तो इनकी दशा बहुत अच्छी मालूम होती है।

सोफ़ी—हाँ, मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है। आज वह पीलापन नहीं है। मैं अब इससे यह पूछना चाहती हूँ कि इसे किसी दूसरी जेल में क्यों न भिजवा दूँ। यहाँ की जलवायु इसके लिए अनुकूल नहीं है। पर आप लोगों के सामने यह अपने मन की बातें न कहेगा। आप लोग ज़रा बाहर चले जायें, तो मैं इसे जगाकर पूछ लूँ, और इसका ताप भी देख लूँ।

जब कमरे में एकांत हो गया, तो सोफ़ी ने विनय का सिर उठाकर अपनी जाँघ पर रख लिया और धीरे-धीरे उसका माथा सहलाने लगी। विनय की आँखें खुल गईं। इस तरह झपटकर उठा, जैसे नींद में किसी नदी से फिसल पड़ा हो।

सोफ़ी ने मुस्कराकर कहा—तुम अभी तक सो रहे हो; मेरी आँखों की तरफ़ देखो, रात-भर नहीं झपकीं।

विनय—संसार का सबसे उज्ज्वल रत्न पाकर भी मीठी नींद न लूँ, तो मुझ-सा भाग्यहीन और कौन होगा?

सोफ़ी—मैं तो उससे भी उज्ज्वल रत्न पाकर और भी चिंताओं में फँस गयी। अब यह भय है कि कहीं वह हाथ से न निकल जाये। अच्छा, अब तैयार हो जाओ।

विनय—किस बात के लिए?

सोफ़ी—भूल गये? इस अंधकार से प्रकाश में आने के लिए, इस काल-कोठरी से बिदा होने के लिए। मैं मोटर लायी हूँ; तुम्हारी मुक्ति का आज्ञा-पत्र मेरी जेब में है। कोई अपमानसूचक शर्त नहीं है। केवल उदयपुर राज्य में बिना आज्ञा के न आने की प्रतिज्ञा ली गयी है। आओ, चलें। मैं तुम्हें रेल के स्टेशन तक पहुँचाकर लौट जाऊँगी। तुम दिल्ली पहुँचकर मेरा इंतज़ार करना। एक सप्ताह के अन्दर मैं तुमसे दिल्ली में आ मिलूँगी, और फिर विधाता भी हमें अलग न कर सकेगा।

विनयसिंह की दशा उस बालक की-सी थी, जो मिठाइयों के खोंचे को देखता है, पर इस भय से कि अम्माँ मारेंगी, मुँह खोलने का साहस नहीं कर सकता। सजल नेत्र होकर बोला—सोफ़ी, मैं भाग्यहीन आदमी हूँ, मुझे इसी दशा में रहने दो। मेरे साथ अपने जीवन का सर्वनाश न करो। मैं इस योग्य नहीं कि तुम..।

सोफ़ी ने बात काटकर कहा—विनय, मैं विपत्ति ही की भूखी हूँ। अगर तुम सुख-सम्पन्न होते, अगर तुम्हारा जीवन विलासमय होता, तो कदाचित् मैं तुम्हारी तरफ़ से मुँह फेर लेती। तुम्हारे सत्साहस और त्याग ही ने मुझे तुम्हारी तरफ़ खींचा है।

विनय—अम्माँजी को तुम जानती हो, वह मुझे कभी क्षमा न करेंगी।

सोफ़ी—तुम्हारे प्रेम का आश्रय पाकर मैं उनके क्रोध को शांत कर लूँगी। जब वह देखेंगी कि मैं तुम्हारे पैरों की जंजीर नहीं, तुम्हारे पीछे उड़नेवाली रज हूँ, तो उनका हृदय पिघल जायेगा।

विनय ने सोफ़ी को स्नेहपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—तुम उनके स्वभाव से परिचित नहीं हो। वह हिन्दू-धर्म पर जान देती हैं।

सोफ़ी—मैं भी हिन्दू-धर्म पर जान देती हूँ। जो आत्मिक शांति मुझे और कहीं न मिली, वह गोपियों की प्रेम-कथा में मिल गयी।

विनय ने मुस्कराकर कहा—उस छलिया ने तुम पर भी जादू डाल दिया? मेरे विचार में तो कृष्ण की प्रेम-कथा सर्वथा भक्त-कल्पना है।

सोफ़ी—हो सकती है। प्रभु मसीह को भी तो कल्पित कहा जाता है। शेक्सपियर भी तो कल्पना-मात्र है।

विनय—सोफ़ी मेरा मन कह रहा है कि मैं तुम्हारी सरल हृदयता से अनुचित लाभ उठा रहा हूँ। माताजी ने बहुत सोच-समझकर मुझे यह व्रत दिया है। मुझे भय होता है कि एक बार मैं इस बंधन से मुक्त हुआ, तो वासना मुझे इतने वेग से बहा ले जायेगी कि फिर शायद मेरे अस्तित्व का पता ही न चले। सोफ़ी, मुझे इस कठिनतम परीक्षा में न डालो। हाँ, मुझ पर इतनी दया अवश्य करो कि आज यहाँ से किसी दूसरी जगह प्रस्थान कर दो।

सोफ़ी—क्या मुझसे इतनी दूर भागना चाहते हो?

विनय—नहीं-नहीं, इसका और ही कारण है। न जाने क्योंकर यह विज्ञप्ति निकल गयी है कि जसवंतनगर एक सप्ताह के लिए खाली कर दिया जाये। कोई जवान आदमी कस्बे में न रहने पाए।

सोफ़ी और क्लार्क का परस्पर तर्क-वितर्क सुनकर सरदार नीलकंठ ने तत्काल यह हुक्म जारी कर दिया था। उन्हें निश्चय था कि मेम साहब के सामने साहब की एक न चलेगी और विनय को छोड़ना पड़ेगा। इसलिए पहले ही से शांति-रक्षा का उपाय करना आवश्यक था। सोफ़ी ने विस्मित होकर पूछा—क्या ऐसा हुक्म दिया गया है?

विनय—हाँ, मुझे खबर मिली है। कोई चपरासी कहता था।

सोफ़ी—मुझे ज़रा भी खबर नहीं। मैं अभी जाकर पता लगाती हूँ और इस हुक्म को मंसूख करा देती हूँ। यह सब तो हो जायेगा, पर तुम्हें अभी मेरे साथ चलना पड़ेगा।

विनय—नहीं सोफ़ी, मुझे क्षमा करो। तुम मेरे लिए आदर्श हो। तुम्हारे प्रेम का आनंद मैं कल्पना ही द्वारा ले सकता हूँ। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। मेरी तुमसे यही अंतिम प्रार्थना है कि मुझे भूल जाओ।

सोफ़ी ने गम्भीर भाव से कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं तुम्हें जितना सरल हृदय समझती थी, तुम उससे कहीं बढ़कर कूटनीतिज्ञ हो। मैं तुम्हारा आशय समझती हूँ, और इसलिए कहती हूँ, जैसी तुम्हारी इच्छा। पर शायद तुम्हें मालूम नहीं कि युवती का हृदय

बालक के समान होता है। उसे जिस बात के लिए मना करो, उसी तरफ़ लपकेगा। अगर तुमने यही निश्चय किया है कि इस कारागार में रहकर तुम अपने जीवन के उद्देश्य को अधिक सफलता के साथ पूरा कर सकते हो, तो इस फैसले के आगे सिर झुकाती हूँ। इस विराग ने मेरी दृष्टि में तुम्हारे आदर को कई गुना बढ़ा दिया है। अब जाती हूँ। कल शाम को फिर आऊँगी। क्लार्क कहेगा, मैं कहता था, वह राज़ी न होगा, कदाचित् व्यंग्य करे; पर कोई चिन्ता नहीं, कोई बहाना कर दूँगी।

यह कहते-कहते धीरे से विनयसिंह का हाथ दबाया और द्वार की ओर चली; पर बाहर जाकर फिर लौट आयी और अत्यंत दीन भाव से बोली—विनय, तुमसे एक बात पूछती हूँ। मुझे आशा है, तुम साफ-साफ बतला दोगे। मैं क्लार्क के साथ यहाँ आयी, उससे कौशल किया, उसे झूठी आशाएँ दिलाईं और अब उसे मुगालते में डाले हुए हूँ। तुम इसे अनुचित तो नहीं समझते, तुम्हारी दृष्टि में मैं कलंकिनी तो नहीं हूँ?

विनय जानता था कि सोफ़ी ने जो कुछ किया है, वह एक धार्मिक तत्त्व के अधीन होकर। वह इसे ईश्वरीय प्रेरणा समझ रही है। अगर ऐसा न होता, तो शायद अब तक वह हताश हो गयी होती। श्रद्धापूर्ण तत्परता से बोले—सोफ़ी, तुम यह प्रश्न करके अपने ऊपर और उससे अधिक मेरे ऊपर अन्याय कर रही हो। मेरे लिए तुमने अब तक त्याग-ही-त्याग किये हैं, सम्मान, समृद्धि, सिद्धान्त एक की भी परवा नहीं की।

यह कहते-कहते वह रुक गया। सोफ़ी बोली—कुछ और कहना चाहते हो, रुक क्यों गये? यही न कि तुम्हें मेरा क्लार्क के साथ रहना अच्छा नहीं लगता। जिस दिन मुझे निराशा हो जायेगी कि मैं मिथ्याचरण से तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकती, उसी दिन मैं क्लार्क को पैरों से ठुकरा दूँगी। इसके बाद तुम मुझे प्रेम-योगिनी के रूप में देखोगे, जिसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य होगा तुम्हारे ऊपर समर्पित हो जाना।

27

नायकराम मुहल्लेवालों से बिदा होकर उदयपुर रवाना हुए। रेल के मुसाफिरों को बहुत जल्द उनसे श्रद्धा हो गयी। जिस मुसाफिर को देखते, जगह नहीं मिल रही है, इधर-उधर भटक रहा है, जिस कमरे में जाता है, धक्के खाता है, उसे बुलाकर अपनी बगल में बैठा लेते। फिर ज़रा देर में सवालों का ताँता बाँध देते—कहाँ मकान है? कहाँ जाते हो? कितने लड़के हैं? क्या कारोबार होता है? इन प्रश्नों का अंत इस अनुरोध पर होता कि मेरा नाम नायकराम पण्डा है; जब कभी कासी आओ, मेरा नाम पूछ लो, बच्चा-बच्चा जानता है; दो दिन, चार दिन, महीने, जब तक इच्छा हो, आराम से कासीवास करो।

दिल्ली पहुँचे, तो कई नए मुसाफिर गाड़ी में आये। आर्य समाज के किसी उत्सव में जा रहे थे। नायकराम ने उनसे वही जिरह शुरू की।

रेल के स्टेशन पर वह ज़रूर उतरते और रेल के कर्मचारियों का परिचय प्राप्त करते। कोई उन्हें पान खिला देता, कोई जलपान करा देता। सारी यात्रा समाप्त हो गयी, पर वह लेटे तक नहीं, ज़रा भी आँख नहीं झपकी। तीसरे दिन वह उदयपुर पहुँच गये और रियासत के अधिकारियों से मिलते-जुलते, घूमते-घामते जसवंतनगर में दाखिल हुए। देखा, मिस्टर क्लार्क का डेरा पड़ा हुआ है। बाहर से आने-जानेवालों की बड़ी जाँच-पड़ताल होती है, नगर का द्वार बन्द-सा है, लेकिन पंडे को कौन रोकता? रात को तो धर्मशाला में ठहरे, सबेरा होते ही जेल के दारोग़ा के मकान में जा पहुँचे। दारोग़ाजी सोफ़ी को बिदा करके आये थे और नौकर पर बिगड़ रहे थे कि तूने हुक्का क्यों नहीं भरा, इतने में बरामदे में पण्डाजी की आहट पाकर बाहर निकल आये। उन्हें देखते ही नायकराम ने गंगा-जल की शीशी निकाली और उनके सिर पर जल छिड़क दिया।

दारोग़ाजी ने अन्यमनस्क होकर कहा—कहाँ से आते हो?

नायकराम—महाराज, अस्थान तो परागराज है; पर आ रहा हूँ बड़ी दूर से। इच्छा हुई, इधर भी जजमानों को आसीरबाद देता चलूँ।

दारोग़ाजी का लड़का, जिसकी उम्र चौदह-पंद्रह वर्ष की थी, निकल आया। नायकराम ने उसे नख से शिख तक बड़े ध्यान से देखा, मानो उसके दर्शनों से हार्दिक आनंद प्राप्त हो रहा है और तब दारोग़ाजी से बोले—यह आपके चिरंजीव पुत्र हैं न? पिता-पुत्र की सूरत कैसी

मिलती है दूर से ही पहचाना जाये। छोटे ठाकुर साहब, क्या पढ़ते हो?

लड़के ने कहा—अँगरेज़ी पढ़ता हूँ।

दारोग़ा—अभी तो हाल ही में अँगरेज़ी शुरू की है, उस पर भी पढ़ने में मन नहीं लगाते, अभी थोड़ी ही पढ़ी है।

लड़के ने समझा, मेरा अपमान हो रहा है। बोला—तुमसे तो ज़्यादा पढ़ा हूँ।

नाकयराम—इसकी कोई चिन्ता नहीं, सब आ जायेगा, अभी इनकी औस्था ही क्या है। भगवान की इच्छा होगी, तो कुल का नाम रोसन कर देंगे। आपके घर पर कुछ जगह-ज़मीन भी है?

दारोग़ाजी ने अब समझा। अकड़कर कुर्सी पर बैठ गये और बोले—हाँ, चित्तौर के इलाके में कई गाँव हैं। पुरानी जागीर है। मेरे पिता महाराना के दरबारी थे।

नायकराम—जागीरदार का क्या कहना! जो जागीरदार, वही राजा; नाम का फरक है। असली राजा तो जागीरदार ही होते हैं, राज तो नाम के हैं।

दारोग़ा—बराबर राजकुल से आना-जाना लगा रहता है।

नायकराम—अभी इनकी कहीं बातचीत तो नहीं हो रही है?

दारोग़ा—अजी, लोग तो जान खा रहे हैं, रोज एक-न-एक जगह से संदेशा आता रहता है; पर मैं सबों को टका-सा जवाब देता हूँ। जब तक लड़का पढ़-लिख न ले, तब तक उसका विवाह कर देना नादानी है।

नायकराम—यह आपने पक्की बात कही। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए, कई जगह जाना है। जब तक मैं लौटकर न आऊँ, किसी को जवाब न दीजिएगा। ऐसी कन्या आपको न मिलेगी और न ऐसा उत्तम कुल ही पाइएगा।

दारोग़ा—वाह-वाह! इतनी जल्दी चले जाइएगा? कम-से-कम भोजन तो कर लीजिए। कुछ हमें भी तो मालूम हो कि आप किस का संदेसा लाये हैं? वह कौन हैं; कहाँ रहते हैं?

नायकराम—सब कुछ मालूम हो जायेगा, पर अभी बताने का हुक्म नहीं है।

दारोग़ा ने लड़के से कहा—तिलक, अन्दर जाओ, पंडितजी के लिए पान बनवा लाओ, कुछ नाश्ता भी लेते आना।

यह कहकर तिलक के पीछे-पीछे खुद अन्दर चले गये और गृहिणी से बोले—लो कहीं से तिलक के ब्याह का संदेसा आया है। नाश्ते के लिए कुछ नहीं है? अभी कल ही एक क़ैदी के घर से मिठाइयों का पूरा थाल आया था, क्या हो गया?

स्त्री—लड़कों से पूछो, क्या हो गया। मैं तो हाथ से छूने की भी क़सम खाती हूँ। जिसका जी चाहता है, निकालकर खाता है। कल से किसी ने रोटियों की ओर नहीं ताका।

दारोग़ा—तो आख़िर तुम किस मरज की दवा हो? तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जो चीज़ घर में आये, उसे यत्न से रखो, हिसाब से खर्च करो। वह लौंडा कहाँ गया?

स्त्री—तुम्हीं ने तो अभी उसे डाँटा था, बस चला गया। कह गया है कि घड़ी-घड़ी की डाँट-फटकार बरदाश्त नहीं हो सकती।

दारोग़ा—यह और मुसीबत हुई। ये छोटे आदमी दिन-दिन सिर चढ़ते जाते हैं, कोई कहाँ तक इनकी खुशामद करे, अब कौन बाजार से मिठाइयाँ लाये? तुम्हीं चले जाओ तिलक!

तिलक—लोग देखेंगे हजरत मिठाई लिए जाते हैं।

दारोग़ा—तो इसमें क्या गाली है, किसी के घर चोरी तो नहीं कर रहे हो? बुरे काम से लजाना चाहिए, अपना काम करने में क्या लाज?

तिलक यों तो लाख सिर पटकने पर भी बाज़ार न जाते, पर इस वक़्त अपने विवाह की खुशी थी, चले गये। दारोग़ाजी ने तश्तरी में पान रखे और नायकराम के पास लाये।

नायकराम—सरकार, आपके घर पान नहीं खाऊँगा।

दारोग़ा—अजी, अभी क्या हरज है, अभी तो कोई बात भी नहीं हुई।

नायकराम—मेरा मन बैठ गया, तो सब ठीक समझिए।

दारोग़ा—यह तो आपने बुरी पख लगायी। यह बात नहीं हो सकती कि आप हमारे द्वार पर आयें और हम बिना यथेष्ट आदर-सत्कार किये आपको जाने दें।

नायकराम—इसी से मैं यह संदेसा लेकर आने से इनकार कर रहा था। जिस भले आदमी के द्वार पर जाइए, वह भोजन और दच्छिना के बगैर गला नहीं छोड़ता। इसी से तो आजकल कुछ लबाड़ियों ने बर खोजने को ब्यौसाय बना लिया है।

दारोग़ा—ऐसे धूर्त्त यहाँ नित्य ही आया करते हैं; पर मैं तो पानी को भी नहीं पूछता।

नायकराम—मैं जानता कि आप इस तरह पीछे पड़ जायेंगे, तो लबाड़ियों ही की-सी बातचीत करता। गला तो छूट जाता।

दारोग़ा—यहाँ ऐसा अनाड़ी नहीं हूँ, उड़ती चिड़िया पहचानता हूँ।

नायकराम डट गये। दोपहर होते-होते बच्चे-बच्चे से उनकी मैत्री हो गयी। दारोग़ाइन ने भी पालागन कहला भेजा। दारोग़ा तो दस बजे दफ्तर चले गये। नायकराम के लिए पूरियाँ-कचौरियाँ, चटनी, हलवा बड़ी विधि से बनाया गया। पंडितजी ने भीतर जाकर भोजन किया। शाम को दारोग़ाजी दफ्तर से लौटे, तो पंडितजी शान से मसनद लगाए बैठे हुए थे और पड़ोस के कई आदमी उन्हें घेरे खड़े थे।

दारोग़ा ने कुर्सी पर लेटकर कहा—यह पद तो इतना ऊँचा नहीं, और न ही वेतन ही कुछ ऐसा अधिक मिलता है, पर काम इतना ज़िम्मेदारी का है कि केवल विश्वासपात्रों को ही मिलता है। अब आज-ही-कल देखिए, काशी के कोई करोड़पति राजा हैं महाराजा भरतसिंह, उनका पुत्र राजविद्रोह के अभियोग में फँस गया है। हुक्काम तक उसका इतना आदर करते हैं कि बड़े साहब की मेम साहब दिन में दो-दो बार उसका हाल-चाल पूछने आती हैं और सरदार नीलकंठ बराबर पत्रों द्वारा उसका कुशल-समाचार पूछते रहते हैं।

नायकराम—अच्छा! क्या राजा भरतसिंह का पुत्र यहीं क़ैद है?

दारोग़ा—और यहाँ सरकार को किस पर इतना विश्वास है?

नायकराम—आप-जैसे महात्माओं के दरसन दुरलभ हैं। किन्तु बुरा न मानिए, तो कहूँ, बच्चों का भी ध्यान रखना चाहिए। आदमी घर से पैसे कमाने ही के लिए निकलता है।

दारोग़ा—अरे, तो क्या कोई क़सम खायी है, पर किसी का गला नहीं दबाता। चलिए, आपको जेलखाने की सैर कराऊँ।

यह कहकर दारोग़ा मुस्कराये। वह नायकराम को किसी बहाने से यहाँ से टालना चाहते थे। सोचा, अपने हाथ चिलम भरनी पड़ेगी, बिछावन बिछाना पड़ेगा, घर का परदा खुल जायेगा। इन्हें वहाँ ठहरा दूँगा, खाना भिजवा दूँगा, परदा ढका रह जायेगा।

नायकराम—चलिए, कौन जाने, कभी आपकी सेवा में आना ही पड़े। पहले से ठौर-ठिकाना देख लूँ। महाराजा साहब के लड़के ने कौन कसूर किया था?

दारोग़ा—क़सूर कुछ नहीं था, बस हाकिमों की जिद है। यहाँ देहातों में घूम-घूमकर लोगों को उपदेश करता था, बस, हाकिमों को उस पर संदेह हो गया कि यह राजविद्रोह फैला रहा है। यहाँ लाकर क़ैद कर दिया। मगर आप तो अभी उसे देखिएगा ही, ऐसा गम्भीर, शांत, विचारशील आदमी आज तक मैंने नहीं देखा।

नायकराम दिल में खुश था कि बड़ी अच्छी साइत में चला था कि भगवान् आप ही सब द्वार खोल देते हैं। देखूँ, अब विनयसिंह से क्या बात होती है। यों तो वह न जायेंगे, पर रानीजी की बीमारी का बहाना करना पड़ेगा। वह राज़ी हो जायें, यहाँ से निकाल ले जाना तो मेरा काम है।

28

सोफ़िया के चले जाने के बाद विनय के विचार-स्थल में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं। मन एक भीरु शत्रु है, जो सदैव पीठ के पीछे से वार करता है। जब तक सोफ़ी सामने बैठी थी, उसे सामने आने का साहस न हुआ। सोफ़ी के पीठ फेरते ही उसने ताल ठोकनी शुरू की —न जाने मेरी बातों का सोफ़िया पर क्या असर हुआ। कहीं वह यह तो नहीं समझ गयी कि मैंने जीवन-पर्यंत के लिए सेवा-व्रत धारण कर लिया है। मुझे वह मन में कितना निष्ठुर, कितना भीरु, कितना हृदय-शून्य समझ रही होगी। आह! मैंने अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारी। कहीं वह मेरी शिथिलता से अप्रसन्न होकर मुझसे सदा के लिए विरक्त न हो जाये! यदि मेरे सेवा-व्रत, मातृभक्ति और संकोच का यह परिणाम हुआ, तो यह जीवन दुस्सह हो जायेगा।

आह! कितना अनुपम सौंदर्य है! उच्च शिक्षा और विचार से मुख पर कैसी आध्यात्मिक गम्भीरता आ गयी है! मालूम होता है, कोई देवी इंद्रलोक से उतर आयी है, मानो बहिर्जगत् से उसका कोई सम्बंध ही नहीं, अंतर्जगत् ही में विचरती है। यह मेरे लिए जीवन और मरण का प्रश्न है। उसके बगैर मेरा जीवन एक सूखे वृक्ष की भाँति होगा, जिसे जल की अविरत वर्षा भी पल्लवित नहीं कर सकती। मेरे जीवन की उपयोगिता, सार्थकता ही लुप्त हो जायेगी। जीवन रहेगा, पर आनन्दविहीन, प्रेमविहीन, उद्देश्यविहीन!

विनय इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि दारोग़ाजी आकर बैठ गये और बोले—मालूम होता है, अब यह बला सिर से जल्द ही टलेगी। सरदार साहब ने शहर में डौंड़ी फिरवा दी है कि अब किसी को कस्बे से बाहर जाने की ज़रूरत नहीं। मालूम होता है, मेम साहब ने यह हुक्म दिया है।

विनय—मेम साहब बड़ी विचारशील महिला हैं।

दारोग़ा—यह बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो अवश्य उपद्रव हो जाता और सैकड़ों जानें जातीं।

विनय—आपको खूब मालूम है कि वह कल यहाँ से चली जायेंगी?

दारोग़ा—और क्या सुनी-सुनाई कहता हूँ? हाकिमों की बातों की घंटो टोह लगती है।

विनय—यहाँ फिर न आयेंगी?

दारोग़ा—तुम तो इतने अधीर हो रहे हो, मानो उन पर आसक्त हो।

विनय ने लज्जित होकर कहा—मुझसे उन्होंने कहा था कि कल तुम्हें देखने आऊँगी।

दारोग़ा—कह दिया होगा, पर अब उनकी तैयारी है। यहाँ तो खुश हैं कि बेदाग बच गये, नहीं तो और सभी जगह जेलरों पर जुरमाने किये हैं।

दारोग़ाजी चले गये, तो विनय सोचने लगा—सोफ़िया ने कल आने का वादा किया था। क्या अपना वादा भूल गयी? अब न आयेगी? यदि एक बार आ जाती, तो मैं उसके पैरों पर गिरकर कहता, सोफ़ी, मैं अपने होश में नहीं हूँ।

ज्यों-ज्यों दिन गुज़रता था, विनय की व्यग्रता बढ़ती जाती थी। सूर्यास्त हो रहा था। विनय सिर झुकाए दफ्तर के सामने टहल रहा था। सहसा उसे ध्यान आया—क्यों न फिर बेहोशी का बहाना करके गिर पड़ूँ। यहाँ सब लोग घबरा जायेंगे और ज़रूर सोफ़ी को मेरी खबर मिल जायेगी। अगर उसकी मोटर तैयार होगी, तो एक बार मुझे देखने आ जायेगी। पर यहाँ तो स्वाँग भरना भी नहीं आता।

जब अँधेरा हो गया, तो उसे सोफ़ी पर क्रोध आने लगा—जब आज ही यहाँ से जाना था, तो उसने मुझसे कल आने का वादा ही क्यों किया, मुझसे जान-बूझकर झूठ क्यों बोली? उसे खुद समझ जाना चाहिए था कि यह इस वक़्त अस्थिर चित्त हो रहा है। वह उस अंतर्द्वंद्व को जानती है, जो मेरे हृदय में इतना भीषण रूप धारण किये हुए है। एक ओर प्रेम और श्रद्धा है, तो दूसरी ओर अपनी प्रतिज्ञा, माता की अप्रसन्नता का भय और लोक-निंदा की लज्जा। इतने विरुद्ध भावों के समागम से यदि कोई अनर्गल बातें करने लगे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या। उसे इस दशा में मुझसे खिन्न न होना चाहिए था।

इतने में दारोग़ाजी फिर आये। पर अब की वह अकेले न थे, उनके साथ एक पंडितजी भी थे। विनयसिंह को ख्याल आया कि मैंने इन पंडितजी को कहीं देखा है; पर याद न आता था, कहाँ देखा है। दारोग़ाजी देर तक खड़े पंडितजी से बातें करते रहे। विनय ने समझा, मुझे धोखा हुआ, कोई और आदमी होगा। रात को सब क़ैदी खा-पीकर लेटे। चारों ओर के द्वार बंद कर दिये गये। विनय थरथरा रहा था कि मुझे भी अपनी कोठरी में जाना पड़ेगा; पर न जाने क्यों, उसे वहीं पड़ा रहने दिया गया।

विनय उसी उद्विग्न दशा में खड़ा सोच रहा था, कैसे यहाँ से निकलूँ। सहसा सामने से एक आदमी आता हुआ दिखायी दिया। विनय ने समझा, कोई चौकीदार होगा। डरा कि मुझे यहाँ खड़ा देखकर कहीं उसके दिल में संदेह न हो जाये। धीरे-से कमरे की ओर चला।

विनय कमरे में गये ही थे कि पीछे से वह आदमी भी अन्दर आ पहुँचा। विनय ने चौंककर पूछा—कौन?

नायकराम बोले—आपका गुलाम हूँ, नायकराम पण्डा!

विनय—तुम यहाँ कहाँ? आज तुम्हीं तो दारोग़ा के साथ पगड़ी बाँधे खड़े थे?

नायकराम—आप ही के पास तो आया हूँ।

विनय—कब आये, कब? वहाँ तो सब कुशल है?

नायकराम—हाँ, सब कुशल ही है। कुँवर साहब ने जब से आपका हाल सुना है, बहुत

घबराए हुए हैं, रानीजी बीमार हैं।

विनय—अम्माँजी कब से बीमार हैं?

नायकराम—कोई एक महीना होने आता है। बस, घुली जाती हैं। न कुछ खाती हैं, न पीती हैं, न किसी से बोलती हैं। न जाने कौन रोग है कि किसी बैद, हकीम, डॉक्टर की समझ ही में नहीं आता। दूर-दूर के डॉक्टर बुलाये गये हैं, पर मरज की थाह किसी को नहीं मिलती। ऐसी घुल गयी हैं कि देखते डर लगता है। मुझे देखा, तो धीरे से बोलीं—पण्डाजी, अब डेरा कूच है। मैं खड़ा-खड़ा रोता रहा।

विनय ने सिसकते हुए कहा—हाय ईश्वर! मुझे माता के दर्शन भी न होंगे क्या?

नायकराम—मैंने जब बहुत पूछा, सरकार किसी को देखना चाहती हैं, तो आँखों में आँसू भरकर बोलीं, एक बार विनय को देखना चाहती हूँ, पर भाग्य में देखना बदा नहीं है, न जाने उसका क्या हाल होगा।

विनय इतना रोये कि हिचकियाँ बँध गईं। बोले—अम्माँजी को कभी किसी ने रोते नहीं देखा था। अब चित्त व्याकुल हो रहा है। कैसे उनके दर्शन पाऊँगा?

नायकराम—मैंने पूछा, हुक्म हो, तो जाकर उन्हें लिवा लाऊँ? इतना सुनना था कि वह जल्दी से उठकर बैठ गईं और मेरा हाथ पकड़कर बोलीं—तुम उसे लिवा लाओगे? नहीं, वह न आयेगा, वह मुझसे रूठा हुआ है। उसे साथ लाओ, तो तुम्हारा बड़ा उपकार होगा। अब विलम्ब न कीजिए, कहीं ऐसा न हो कि माता की लालसा मन ही में रह जाये, नहीं तो आपको जनम-भर पछताना पड़ेगा।

विनय—कैसे चलूँगा।

नायकराम—इसकी चिन्ता मत कीजिए, ले तो मैं चलूँगा। जब यहाँ तक आ गया, तो यहाँ से निकलना क्या मुसकिल है।

विनय कुछ सोचकर बोले—पण्डाजी, मैं तो चलने को तैयार हूँ; पर भय यही है कि कहीं अम्माँजी नाराज़ न हो जायें, तुम उनके स्वभाव को नहीं जानते।

नायकराम—इसका कोई भय नहीं है। उन्होंने तो कहा है कि जैसे बने, वैसे लाओ।

विनय—तो चलो, कैसे चलते हो?

नायकराम—दिवाल फांदकर निकल जायेंगे, यह कौन मुसकिल है!

विनयसिंह को शंका हुई कि कहीं किसी की निगाह पड़ गयी, तो! सोफ़ी यह सुनेगी, तो क्या कहेगी? किसी तरह सोफ़ी को यह खबर दी जा सकती, तो वह अवश्य आज्ञा-पत्र भेज देती; पर यह बात नायकराम से कैसे कहूँ।

विनय—पकड़े गये, तो!

नायकराम—पकड़ेगा कौन? यहाँ कच्ची गोली नहीं खेले हैं। यह देखो, सामने कई ईंटें दिवाल से मिलाकर रखी हुई हैं। मैं ईंटों पर खड़ा हो जाऊँगा। आप मेरे कंधे पर चढ़कर इस रस्सी को लिए हुए दिवाल पर चढ़ जाइएगा। रस्सी उस तरफ़ फेंक दीजिएगा। मैं इसे इधर मजबूत पकड़े रहूँगा, आप उधर धीरे से उतर जाइएगा। फिर वहाँ आप रस्सी को मजबूत

पकड़े रहिएगा, मैं भी इधर से चला आऊँगा। रस्सी बड़ी मजबूत है, टूट नहीं सकती। मगर हाँ, छोड़ न दीजिएगा, नहीं तो मेरी हड्डी-पसली टूट जायेगी।

यह कहकर नायकराम रस्सी का पुलिंदा लिए हुए ईंटों के पास जाकर खड़े हो गये। विनय भी धीरे-धीरे चले। सहसा किसी चीज़ के खटकने की आवाज़ आयी। विनय ने चौंककर कहा—भाई, मैं न जाऊँगा। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। माताजी के दर्शन करना मेरे भाग्य में नहीं है।

नायकराम—घबराइए मत, कुछ नहीं है। मरद होकर फँसने से इतना डरते हो! फँस ही गये, तो कौन चूड़ियाँ मैली हो जायेंगी! दुसमन की क़ैद से भागना लज्जा की बात नहीं।

यह कहकर वह ईंटों पर खड़ा हो गया और विनय से बोला—मेरे कंधे पर आ जाओ।

विनय—कहीं तुम गिर पड़े, तो?

नायकराम—तुम्हारे जैसे पाँच सवार हो जायें, तो लेकर दौड़ूँ।

यह कहकर उसने विनय का हाथ पकड़कर उसे अपने कंधे पर ऐसी आसानी से उठा लिया, मानो कोई बच्चा है।

विनय—कोई आ रहा है।

नायक—आने दो। यह रस्सी कमर में बाँध लो और दिवाल पकड़कर चढ़ जाओ।

अब विनय ने हिम्मत मजबूत की। यही निश्चयात्मक अवसर था। सिर्फ एक छलाँग की ज़रूरत थी। ऊपर पहुँच गये, तो बेड़ा पार है; न पहुँच सके तो अपमान, लज्जा, दंड सब कुछ है। दीवार पर चढ़ने में हाथों के सिवा और किसी चीज़ से मदद न मिल सकती थी। विनय दुर्बल होने पर भी मजबूत आदमी थे। छलाँग मारी और बेड़ा पार हो गया; दीवार पर जा पहुँचे और रस्सी पकड़कर नीचे उतर पड़े। फिर नायकराम को इशारा किया। वह मँजा हुआ खिलाड़ी था। एक क्षण में नीचे आ पहुँचा।

विनय—तुम इस काम में निपुण हो। मैं कभी न निकल सकता। किधर चलोगे?

नायकराम—सबसे पहले तो देवी के मंदिर चलूँगा, वहाँ से फिर मोटर पर बैठकर इसटेसन की ओर। ईश्वर ने चाहा, तो आज के तीसरे दिन घर पहुँच जायेंगे।

विनय—सबेरा होते ही दौड़-धूप शुरू हो जायेगी।

नायकराम—तब तक हम लोग यहाँ से सौ कोस पर होंगे।

विनय—घर से भी तो वारंट द्वारा पकड़ मँगा सकते हैं।

नायकराम—वहाँ की चिन्ता मत करो। वह अपना राज है।

आज सड़क पर बड़ी हलचल थी। सैकड़ों आदमी लालटेनें लिए कस्बे में छावनी की तरफ़ जा रहे थे। एक गोल इधर से आता था, दूसरा उधर से। विनयसिंह को कुतूहल हुआ, आज यह भीड़-भाड़ कैसी! किन्तु किसी से कुछ पूछ न सकते थे कि कहीं वह पहचान न जाये।

नायकराम—देवी के मंदिर तक तो पैदल ही चलना पड़ेगा।

विनय—पहले इन आदमियों से तो पूछो, कहाँ दौड़े जा रहे हैं। मुझे तो ऐसा मालूम हो

रहा है कि कहीं कुछ गड़बड़ हो गयी।

नायकराम—होगी, हमें इन बातों से क्या मतलब? चलो, अपनी राह चलें।

विनय—नहीं-नहीं, ज़रा पूछो तो क्या बात है?

नायकराम ने एक आदमी से पूछा, तो ज्ञात हुआ कि नौ बजे के समय एजेंट साहब अपनी मेम साहब के साथ मोटर पर बैठे हुए बाज़ार की तरफ़ से निकले। मोटर बड़ी तेज़ी से जा रही थी। चौराहे पर पहुँची, तो एक आदमी, जो बाईं ओर से आ रहा था, मोटर के नीचे दब गया। साहब ने आदमी को दबते हुए देखा; पर मोटर को रोका नहीं। बाज़ार के इस सिरे तक आते-आते मोटर को बहुत-से आदमियों ने घेर लिया। साहब ने आदमियों को डाँटा कि अभी हट जाओ। जब लोग न हटे, तो उन्होंने पिस्तौल चला दी। एक आदमी तुरंत गिर पड़ा। अब लोग क्रोधोन्माद की दशा में साहब के बँगले पर जा रहे थे।

विनय ने पूछा—वहाँ जाने की क्या ज़रूरत है?

एक आदमी—जो कुछ होना है, वह हो जायेगा। यही न होगा, मारे जायेंगे। एक दिन तो मरना है ही। दस-पाँच आदमी मर गये, तो कौन संसार सूना हो जायेगा?

विनय के होश उड़ गये। यकीन हो गया कि आज कोई उपद्रव अवश्य होगा। नायकराम से बोले—पण्डाजी, ज़रा बँगले तक होते चलें।

नायकराम—किसके बँगले तक?

विनय—पोलिटिकल एजेंट के।

नायकराम—वहाँ जाकर क्या कीजिएगा? ये जानें, वह जानें, हमसे-आपसे मतलब?

विनय—कुछ भी हो, मैं यहाँ यह हंगामा होते देखकर स्टेशन नहीं जा सकता।

नायकराम—रानीजी तिल-तिल पर पूछती होंगी।

विनय—तो यहाँ कौन दो-चार दिन लग जाते हैं। तुम यहीं ठहरो, मैं अभी आता हूँ।

नायकराम—जब तुम्हें कोई भय नहीं है, तो यहाँ कौन रोनेवाला बैठा हुआ है।

यह कहकर नायकराम ने एक दो नलीवाली पिस्तौल कमर से निकालकर विनय के हाथ में रख दी। विनय पिस्तौल लिए हुए आगे बढ़ा। जब राजभवन के निकट पहुँचे, तो इतनी भीड़ देखी कि एक-एक क़दम चलना मुश्किल हो गया, और भवन से एक गली के टप्पे पर तो उन्हें विवश होकर रुकना पड़ा। भवन के सामने, ऊँचे चबूतरे पर खड़ी होकर सोफ़ी कुछ कह रही थी; पर इस हुल्लड़ में उसकी आवाज़ सुनाई न देती थी।

सहसा सोफ़िया ने दोनों हाथ ऊपर उठाए। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सोफ़ी ने उच्च और कम्पित स्वर में कहा—मैं अंतिम बार तुम्हें चेतावनी देती हूँ कि यहाँ से शांति के साथ चले जाओ, नहीं तो सैनिकों को विवश होकर गोली चलानी पड़ेगी।

वीरपालसिंह ने सामने आकर कहा—प्रजा अब ऐसे अत्याचार नहीं सह सकती।

सोफ़ी—अगर लोग सावधानी से रास्ता चलें, तो ऐसी दुर्घटना क्यों हो!

वीरपाल—मोटरवालों के लिए भी कोई कानून है या नहीं।

सोफ़ी—उनके लिए कानून बनाना तुम्हारे अधिकार में नहीं है।

वीरपाल—हम कानून नहीं बना सकते, पर अपनी प्राण-रक्षा तो कर सकते हैं?

सोफ़ी—तुम विद्रोह करना चाहते हो और उसके कुफल का भार तुम्हारे सिर पर होगा।

वीरपाल—हम विद्रोही नहीं हैं, मगर यह नहीं हो सकता कि हमारा एक भाई किसी मोटर के नीचे दब जाये, चाहे वह मोटर महारानी ही की क्यों न हो, और हम मुँह न खोलें।

सोफ़ी—वह संयोग था।

वीरपाल—सावमानी उस संयोग को टाल सकती थी। अब हम उस वक़्त तक यहाँ से न जायेंगे, जब तक हमें वचन न दिया जायेगा कि भविष्य में ऐसी दुर्घटनाओं के लिए अपराधी को उचित दंड मिलेगा, चाहे वह कोई हो।

सोफ़ी—संयोग के लिए कोई वचन नहीं दिया जा सकता। लेकिन...

सोफ़ी कुछ और कहना चाहती थी कि किसी ने एक पत्थर उसकी तरफ़ फेंका, जो उसके सिर में इतनी ज़ोर से लगा कि वह वहीं सिर थामकर बैठ गयी। यदि विनय तत्क्षण किसी ऊँचे स्थान पर खड़े होकर जनता को आश्वासन देते, तो कदाचित् उपद्रव न होता, लोग शांत होकर चले जाते। किन्तु जो पत्थर सोफ़ी के सिर में लगा, वही कई गुने आघात के साथ विनय के हृदय में लगा। भीड़ को बलपूर्वक हटाता, आदमियों को ढकेलता, कुचलता सोफ़ी के बगल में जा पहुँचा, पिस्तौल कमर से निकाली और वीरपालसिंह पर गोली चला दी। फिर क्या था, सैनिकों को मानो हुक्म मिल गया, उन्होंने बंदूकें छोड़नी शुरू कीं। कुहराम मच गया, लेकिन फिर भी कई मिनट तक लोग वहीं खड़े गोलियों का जवाब ईंट-पत्थर से देते रहे। दो-चार बंदूकें इधर से भी चलीं। वीरपाल बाल-बाल बच गया और विनय को निकट होने के कारण पहचानकर बोला—आप भी उन्हीं में हैं?

चारों तरफ़ से आवाज़ें आने लगीं—विनयसिंह हैं, यह कहाँ से आ गये, यह भी उधर मिल गये, इन्हीं ने तो पिस्तौल छोड़ी है!

—बना हुआ था। घर का भेदी लंका ढाहे।

—शायद शर्त पर छोड़े गये हैं।

—दगाबाज है।

—इतना बड़ा आदमी और थोड़े-से धन के लिए ईमान बेच बैठा!

बंदूकों के सामने निहत्थे लोग कब तक ठहरते! मगर वीरपालसिंह और उसके साथ के पाँचों सवार, जिनके हाथों में बंदूकें थीं, राजभवन के पीछे की ओर से विनयसिंह के सिर पर आ पहुँचे। विनय ने पीछे की तरफ़ घोड़ों की टाप सुनी, तो चौंके, पिस्तौल चलाई, पर वह खाली थी।

वीरपाल ने व्यंग करके कहा—आप तो प्रजा के मित्र बनते थे?

विनय—तुम जैसे हत्यारों की सहायता करना मेरा नियम नहीं है।

वीरपाल—मगर हम उससे अच्छे हैं, जो प्रजा की गरदन पर अधिकारियों से मिलकर छुरी चलाये।

विनय क्रोधावेश में बाज की तरह झपटे कि उसके हाथ से बंदूक छीन लें, किन्तु वीरपाल

के एक सहयोगी ने झपटकर विनयसिंह को नीचे गिरा दिया, दूसरा साथी तलवार लेकर उसी तरफ़ लपका ही था कि सोफ़ी, जो अब तक चेतना-शून्य दशा में भूमि पर पड़ी थी, चीख मारकर उठी और विनयसिंह से लिपट गयी। तलवार अपने लक्ष्य पर न पहुँचकर सोफ़ी के माथे पर पड़ी। इतने में नायकराम लाठी लिए हुए आ पहुँचा और लाठियाँ चलाने लगा। दो विद्रोही आहत होकर गिर पड़े। वीरपाल अब तक हतबुद्धि की भाँति खड़ा था। यह सब कुछ उसकी आँखों के सामने, पर उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रहा था। पर अब अपने साथियों को देखकर वह तटस्थ न रह सका। उसने बंदूक का कुंदा तौलकर इतनी ज़ोर से नायकराम के सिर में मारा कि उसका सिर फट गया और एक पल में उसके तीनों साथी अपने आहत साथियों को लेकर भाग निकले। विनयसिंह सँभलकर उठे, तो देखा कि बगल में नायकराम खून से तर अचेत पड़ा है और सोफ़ी का कहीं पता नहीं।

मिस्टर क्लार्क कहाँ थे? तूफान उठा और गया, आग लगी और बुझी, पर उनका कहीं पता तक नहीं। वह शराब के नशे में मस्त, दीन-दुनिया से बेखबर, अपने शयनागार में पड़े हुए थे। विद्रोहियों का शोर सुनकर सोफ़ी भवन से बाहर निकल आयी थी। उसने शांत उपायों से शांति-रक्षा करनी चाही थी और उसी का यह फल था।

विनय ने नायकराम को देखा। नाड़ी का पता न था, आँखें पथरा गयी थीं। चिन्ता, शोक और पश्चात्ताप से चित्त इतना विकल हुआ कि वह रो पड़े।

29

मिस्टर विलियम क्लार्क अपने अन्य स्वदेश-बंधुओं की भाँति सुरापान के भक्त थे, पर उसके वशीभूत न थे। वह भारतवासियों की भाँति पीकर छकना न जानते थे। पर आज सोफ़ी ने जान-बूझकर उन्हें मात्रा से अधिक पिला दी थी। सोफ़ी ने विनय से कल मिलने का वादा किया था, पर उनकी बातें उसे एक क्षण के लिए भी चैन न लेने देती थीं। वह सोचती थी—विनय ने आज ये नये बहाने क्यों ढूँढ़ निकाले? मैंने उनके लिए धर्म की भी परवा न की, फिर भी वह मुझसे भागने की चेष्टा कर रहे हैं। अब मेरे पास और कौन-सा उपाय है?

दिन-भर इन्हीं विचारों में व्यग्र रहने के बाद संध्या को वह इतनी व्याकुल हुई कि उसने रात ही को विनय से फिर मिलने का निश्चय किया। उसने क्लार्क को शराब पिलाकर इसीलिए अचेत कर दिया कि उसे किसी प्रकार का संदेह न हो। जेल के अधिकारियों से उसे कोई भय न था। वह इस अवसर को विनय से अनुनय-विनय करने में, उनके प्रेम को जगाने में, उनकी शंकाओं को शांत करने में लगाना चाहती थी; पर उसका यह प्रयास उसी के लिए घातक सिद्ध हुआ। अब वह न जाने कहाँ और किस दशा में थी। प्रायः लोगों का विचार था कि विद्रोहियों ने उसकी हत्या कर डाली और उसके शव को आभूषणों के लोभ से अपने साथ ले गये। केवल विनयसिंह इस विचार से सहमत न थे। उन्हें विश्वास था कि सोफ़ी अभी ज़िंदा है।

इस दुर्घटना से रियासत में तहलका मच गया। अगर रियासत के कर्मचारियों ही तक बात रहती, तो विशेष चिन्ता की बात न थी, रियासत खून के बदले खून लेकर संतुष्ट हो जाती, ज़्यादा-से-ज़्यादा एक की जगह चार का खून कर डालती। पर सोफ़ी के बीच में पड़ जाने से समस्या जटिल हो गयी थी, मुआमला रियासत के अधिकार-क्षेत्र के बाहर पहुँच गया था, यहाँ तक कि लोगों को भय था, रियासत पर कोई जवाल न आ जाये। इसलिए अपराधियों की पकड़-धकड़ में असाधारण तत्परता से काम लिया जा रहा था। सरदार नीलकंठ बिना अन्न-जल, दिन-के-दिन विद्रोहियों की खोज लगाने में व्यस्त रहते थे। यहाँ तक कि हिज़ हाइनेस महाराजा साहब स्वयं शिमला, दिल्ली और उदयपुर एक किये हुए थे। सोफ़ी और उसके शत्रुओं का पता लगाने का उद्योग, यही एक काम विनय के लिए रह गया था। मुझे दुनिया क्या कहती है, मेरे जीवन का क्या उद्देश्य है, माताजी का क्या हाल हुआ, इन बातों की ओर

अब उनका ध्यान ही न जाता था। अब तो वह रियासत के दाहिने हाथ बने हुए थे। उनकी राज-भक्ति का पारावार न था, या यों कहिए कि इस समय वह रियासत के कर्णधार बन हुए थे, यहाँ तक कि सरदार नीलकंठ भी उनसे दबते थे। महाराजा साहब को उन पर इतना विश्वास हो गया था कि उनसे सलाह लिए बिना कोई काम न करते। दोनों एक ही बँगले में रहते थे और अंतरंग में सरदार साहब की जगह पर विनय की नियुक्ति की चर्चा की जाने लगी थी।

प्रायः साल-भर तक रियासत में यही आपाधापी रही। जब जसवंतनगर विद्रोहियों से पाक हो गया, अर्थात् वहाँ कोई जवान आदमी न रहा, तो विनय ने स्वयं को सोफ़ी का सुराग लगाने के लिए कमर बाँधी। उनकी सहायता के लिए गुप्त पुलिस के कई अनुभवी आदमी तैनात किये गये। चलने की तैयारियाँ होने लगीं। नायकराम अभी तक कमज़ोर थे। उन्होंने विनय को जाने पर तैयार देखा, तो साथ चलने को निश्चय किया। आकर बोले—भैया, मुझे भी साथ ले चलो, मैं यहाँ अकेला न रहूँगा।

विनय—मैं कहीं परदेश थोड़े ही जाता हूँ। सातवें दिन यहाँ आया करूँगा, तुमसे मुलाकात हो जायेगी।

सरदार नीलकंठ वहीं बैठे हुए थे, बोले— अभी तुम जाने के लायक नहीं हो।

नायकराम—सरदार साहब, आप भी इन्हीं की-सी कहते हैं।

विनय—तुम यहाँ ज़्यादा आराम से रह सकोगे, तुम्हारे ही भले की कहता हूँ।

नायकराम—सरदार साहब, अब आप ही भैया को समझाइए। आदमी एक घड़ी की नहीं चलता, तो एक हफ़्ता तो बहुत है। क्या मेरी जान तुम्हारी जान से प्यारी है?

विनय—बात यह है कि मैं अपने साथ किसी गैर की जान जोखिम में नहीं डालना चाहता।

नायकराम—हाँ, अब आप मुझे गैर समझते हैं, तो दूसरी बात है। गैर न होता, तो रानीजी के इशारे पर कैसे यहाँ दौड़ा आता, जेल में जाकर कैसे बाहर निकाल लाता और साल-भर तक खाट क्यों सेता? जिसके लिए जान हथेली पर लिए हूँ, वही गैर समझता है।

नीलकंठ—विनयसिंह, यह आपका अन्याय है। आप इन्हें गैर क्यों कहते हैं?

नायकराम—बस, सरदार साहब, हुज़ूर ने लाख रुपये की बात कह दी।

विनय—अगर गैर कहने से तुम्हें दुःख होता है, तो मैं यह शब्द वापस लेता हूँ! गैर केवल इस विचार से कहा था कि तुम्हारे सम्बंध में मुझे घरवालों को जवाब देना पड़ेगा।

नायकराम—सरदार साहब, अब आप ही इसका जवाब दीजिए। यह मैं कैसे कहूँ कि मुझे कुछ हो गया, तो कुँवर साहब कुछ पूछ-ताछ न करेंगे, उनका भेजा हुआ आया ही हूँ। भैया को जवाबदेही तो ज़रूर करनी पड़ेगी।

नीलकंठ—यह माना कि तुम उनके भेजे हुए आये हो; मगर तुम इतने अबोध नहीं हो कि तुम्हारी हानि-लाभ की ज़िम्मेदारी विनयसिंह के सिर हो।

नायकराम—अब कहिए धर्मावतार, अब तो मुझे ले चलना पड़ेगा, सरदार साहब ने मेरी

डिग्री कर दी।

अंत में विनय ने नायकराम को साथ ले चलना स्वीकार किया और दो-तीन दिन पश्चात् दस आदमियों की एक टोली, भेष बदलकर, सब तरह लैस होकर, टोहिए कुत्तों के साथ लिए, दुर्गम पर्वतों में दाखिल हुई। दो-दो आदमियों का संग था। चौबीस घंटों में एक बार सब आदमियों को एक स्थान पर जमा होना पड़ता था। दूसरे दिन का कार्यक्रम निश्चय करके लोग फिर अलग-अलग हो जाते थे। नायकराम और विनयसिंह की एक जोड़ी थी। नायकराम अभी तक चलने-फिरने में कमज़ोर था, किन्तु विनयसिंह पर प्राणों को न्योछावर करने को तैयार रहता था। यह जानता था कि ग्रामीणों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, विविध स्वभाव और श्रेणी के मनुष्यों से परिचित था। जिस गाँव में पहुँचता, धूम मच जाती कि काशी के पण्डाजी पधारे हैं। पण्डाजी बातों-बातों में उनसे गाँव का समाचार पूछ लेते। विनयसिंह को अब ज्ञात हुआ कि नायकराम साथ न होते, तो मुझे कितने कष्ट झेलने पड़ते। वह स्वभाव से मितभाषी, संकोचशील, गम्भीर आदमी थे।

रास्ते में कभी-कभी हिंसक जंतुओं से मुठभेड़ हो जाती। ऐसे अवसरों पर नायकराम सीनासिपर हो जाता था। एक दिन चलते-चलते दोपहर हो गयी। दूर तक आबादी का कोई निशान न था। सहसा एक ऊँचा टीकरा दिखायी दिया। नायकराम उस पर चढ़ गया कि शायद ऊपर से कोई गाँव या कुआँ दिखायी दे। उसने शिखर पर पहुँचकर इधर-उधर निगाह दौड़ाई, तो दूर एक आदमी जाता हुआ दिखायी दिया। उसके हाथ में एक लकड़ी और पीठ पर एक थैली थी। नायकराम ने उसे कोई बार ज़ोर-ज़ोर से पुकारा, तो उसने गर्दन फेरकर देखा। नायकराम उसे पहचान गये। यह विनयसिंह के साथ का एक स्वयंसेवक था। उसे इशारे से बुलाया और टीले से उतरकर उसके पास आये। इस सेवक का नाम इंद्रदत्त था।

इंद्रदत्त ने पूछा—तुम यहाँ कैसे आ फँसे जी? तुम्हारे कुँवर कहाँ हैं?

नायकराम—पहले यह बताओ कि यहाँ कोई गाँव है, कहीं दाना-पानी मिल सकता है?

इंद्रदत्त—जिसके राम धनी, उसे कौन कमी! राजदरबार ने भोजन की रसद नहीं लगाई?

नायकराम—क्या करूँ, बुरा फँस गया हूँ, न रहते बनता है, न जाते।

इंद्रदत्त—उनके साथ तुम भी अपनी मिट्टी खराब कर रहे हो। कहाँ हैं आजकल?

नायकराम—हैं तो वह भी। यहीं भेंट जो जायेगी। थैली में कुछ है?

यों बातें करते हुए दोनों विनयसिंह के पास पहुँचे। विनय ने इंद्रदत्त को देखा, तो शत्रु-भाव से बोला—इंद्रदत्त, तुम कहाँ? घर क्यों नहीं गये?

इंद्रदत्त—आपसे मिलने की बड़ी आकांक्षा थी। पहले यह बतलाइए कि आपने यह चोला क्यों बदला?

नायकराम—पहले तुम अपनी थैली में से कुछ निकालो, फिर बातें होंगी।

विनयसिंह अपनी कायापलट का समर्थन करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। बोले—इसलिए कि मुझे अपनी भूल मालूम हो गयी। मैं पहले समझता था कि प्रजा बड़ी सहनशील और शांतिप्रिय है। अब ज्ञात हुआ कि वह नीच और कुटिल है। गत विद्रोह इसका ज्वलंत

प्रमाण है।

इंद्रदत्त—क्या आपके विचार में प्रजा को चाहिए कि उस पर कितने ही अत्याचार किये जायें, वह मुँह न खोले?

विनय—अवश्य!

इंद्रदत्त—तो जब आपने जनता को विद्रोह के लिए तैयार देखा, तो उसके सम्मुख खड़े होकर धैर्य और शांति का उपदेश क्यों नहीं दिया?

विनय—व्यर्थ था। उस वक़्त कोई मेरी न सुनता।

इंद्रदत्त—अगर न सुनता, तो क्या आपका यह धर्म नहीं था कि दोनों दलों के बीच में खड़े होकर पहले खुद गोली का निशाना बनते?

विनय—आग में कूदने का नाम सेवा नहीं है। उसे दमन करना ही सेवा है।

इंद्रदत्त—अगर वह सेवा नहीं है, तो दीन जनता की, अपनी कामुकता पर आहुति देना भी सेवा नहीं है। बहुत सम्भव था कि सोफ़िया ने अपनी दलीलों से वीरपालसिंह को निरुत्तर कर दिया होता। किन्तु आपने विषय के वशीभूत होकर पिस्तौल का पहला वार किया, और इसलिए इस हत्याकांड का सारा भार आपकी ही गरदन पर है और जल्द या देर में आपको इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। आप जानते हैं, प्रजा को आपके नाम से कितनी घृणा है? कदाचित् रानीजी आपको देखें, तो अपने हाथों से आपकी गरदन पर कटार चला दें।

विनय ने कुछ नम्र होकर कहा—इंद्रदत्त, अगर तुम समझते हो कि मैंने स्वार्थवश अधिकारियों की सहायता की, तो तुम मुझ पर घोर अन्याय कर रहे हो। प्रजा का साथ देने में जितनी आसानी से यश प्राप्त होता है, उससे कहीं अधिक आसानी से अधिकारियों का साथ देने में अपयश मिलता है। यह मैं जानता था। पर इसका आशय यह नहीं है कि मैं जनता का अनौचित्य देखकर भी उसका समर्थन करूँ। मेरा व्रत मेरे विवेक की हत्या नहीं कर सकता।

इंद्रदत्त—कम-से-कम इतना तो आप मानते ही हैं कि स्वहित के लिए जनता का अहित न करना चाहिए।

विनय—तुम मुझ पर यह मिथ्या दोषारोपण करते हो। मैं जनता के लिए सत्य से मुँह नहीं मोड़ सकता। सत्य मुझे देश और जाति, दोनों से प्रिय है। अगर कोई आदमी मिस सोफ़िया की मोटर के नीचे दब गया तो यह एक आकस्मिक घटना थी। सोफ़िया ने जान-बूझकर तो उस पर से मोटर को चला नहीं दिया। ऐसी दशा में जनता का उस भाँति उत्तेजित हो जाना, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि वह अधिकारियों को बलपूर्वक अपने वश में करना चाहती है। आप सोफ़िया के प्रति मेरे आचरण पर आक्षेप करके मुझ पर ही अन्याय नहीं कर रहे हैं, वरन् अपनी आत्मा को भी कलंकित कर रहे हैं।

इंद्रदत्त—हज़ारों आदमी निरपराध क्यों मारे गये? क्या यह भी प्रजा का कसूर था?

विनय—यदि आपको अधिकारियों की कठिनाइयों का कुछ अनुभव होता, तो आप मुझसे कदापि यह प्रश्न न करते। साल-भर पहले जब अधिकारियों से मेरा कोई सम्बंध न था, कदाचित् मैं भी ऐसा ही समझता था। किन्तु अब मुझे अनुभव हुआ कि उन्हें ऐसे अवसरों पर

न्याय का पालन करने में कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है। फिर आपको मालूम नहीं है कि इस विद्रोह ने रियासत को कितने महान् संकट में डाल दिया है। अँगरेज़ी सरकार को संदेह है कि दरबार ने ही यह सारा षड्यंत्र रचा था। अब दरबार का कर्त्तव्य है कि वह अपने को इस आक्षेप से मुक्त करे, और जब तक मिस सोफ़िया का सुराग नहीं मिल जाता, रियासत की स्थिति अत्यंत चिंतामय है। भारतीय होने के नाते मेरा धर्म है कि रियासत के मुख पर से कालिमा को मिटा दूँ; चाहे इसके लिए मुझे कितना ही अपमान, कितना ही लांछन, कितना ही कटु वचन क्यों न सहना पड़े, चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जायें।

इंद्रदत्त—ईश्वर ने आपको तर्क बुद्धि दी है और उससे आप दिन को रात सिद्ध कर सकते हैं; किन्तु आपकी कोई उक्ति प्रजा के दिल से इस खयाल को नहीं दूर कर सकती कि आपने उसके साथ दगा दी और इस विश्वासघात की जो यंत्रणा आपको सोफ़िया के हाथों मिलेगी, उससे आपकी आँखें खुल जायेंगी।

विनय ने इस भाँति लपककर इंद्रदत्त का हाथ पकड़ लिया, मानो वह भागा जा रहा हो और बोले—तुम्हें सोफ़िया का पता मालूम है?

इंदद्रत्त—आपको अब मुझसे यह पूछने का अधिकार नहीं रहा। आपने एक बार विश्वासघात किया है और फिर कर सकते हैं।

नायकराम—बता देंगे, आप क्यों इतना घबराए जाते हैं। इतना तो बता ही दो भैया इंद्रदत्त, कि मेम साहब कुशल से हैं न?

इंद्रदत्त—हाँ, बहुत कुशल से हैं और प्रसन्न हैं। कम-से-कम विनयसिंह के लिए कभी विकल नहीं होतीं। सच पूछो, तो उन्हें अब इनके नाम से घृणा हो गयी है।

विनय—इंद्रदत्त, हम और तुम बचपन के मित्र हैं। तुम्हें ज़रूरत पड़े, तो मैं अपने प्राण तक दे दूँ; पर तुम इतनी ज़रा-सी बात बतलाने से इनकार कर रहे हो। मैं माता के चरणों की क़सम खाकर कहता हूँ, मैं इसे गुप्त रखूँगा। मैं केवल एक बार सोफ़िया से मिलना चाहता हूँ।

इंद्रदत्त—जिस बात के बतलाने का मुझे अधिकार नहीं, उसे बतलाने के लिए आप मुझसे व्यर्थ आग्रह कर रहे हैं।

विनय—तुम पाषाण-हृदय हो।

इंद्रदत्त—मैं उससे भी कठोर हूँ। मैं एक बार कह चुका कि मुझे जिस बात के बतलाने का अधिकार नहीं, वह किसी तरह न बताऊँगा। बस, इस विषय में तुम्हारा आग्रह करना व्यर्थ है।

नायकराम—सेठजी, भागो मत, मिस साहब का पता बताए बिना न जाने पाओगे।

इंद्रदत्त—क्या जबरदस्ती पूछोगे?

नायकराम—हाँ, जबरदस्ती पूछूँगा।

इंद्रदत्त—मुझसे ये पंडई चालें न चलो, समझे!

नायकराम—क्यों बाप-दादों का नाम डुबाते हो भैया? कहता हूँ, यह भीख दिये बिना अब तुम्हारा गला नहीं छूट सकता।

यह कहते हुए नायकराम चट ज़मीन पर बैठ गये, इंद्रदत्त के दोनों पैर पकड़ लिए, उन

पर अपना सिर रख दिया और बोले—अब तुम्हारा जो धरम हो, वह करो।

इंद्रदत्त अब भी न पसीजे, अपने पैरों को छुड़ाकर चले जाने की चेष्टा की, पर उनके मुख से स्पष्ट विदित हो रहा था कि इस समय बड़े असमंजस में पड़े हुए हैं। नायकराम ने विनय से कहा—भैया, खड़े क्या देखते हो? पकड़ लो इनके पाँव, देखूँ, यह कैसे नहीं बताते।

विनयसिंह कोई स्वार्थ सिद्ध करने के लिए खुशामद करना भी अनुचित समझते थे, पाँव पर गिरने की बात ही क्या। किसी संत-महात्मा के सामने दीन भाव प्रकट करने से उन्हें संकोच न था, अगर उससे हार्दिक श्रद्धा हो। केवल अपना काम निकालने के लिए उन्होंने सिर झुकाना सीखा ही न था। पर जब उन्होंने नायकराम को इंद्रदत्त के पैरों पर गिरते देखा, तो आत्मसम्मान के लिए कोई स्थान न रहा। एक पल में उनके हाथ इंद्रदत्त के पैरों के पास पहुँचे। इंद्रदत्त ने तुरंत पैर खींच लिए और विनय को उठाने की चेष्टा करते हुए बोले—विनय, यह क्या अनर्थ करते हो, हैं, हैं!

नायकराम ने इंद्रदत्त से कहा—भैया, मुझे भिच्छुक समझकर दुतकार सकते थे; लेकिन अब कहो।

इंद्रदत्त संकोच में पड़कर बोले—विनय, क्यों मुझे इतना लज्जित कर रहे हो! मैं वचन दे चुका हूँ कि किसी से यह भेद न बताऊँगा।

नायकराम—तुमसे कोई ज़बरदस्ती तो नहीं कर रहा है। जो धरम समझो, करो।

इंद्रदत्त ने खिन्न होकर कहा—ज़बरदस्ती नहीं, तो और क्या है! विनय, व्यर्थ ही अपनी आत्मा पर यह अन्याय कर रहे हो। अब उठो, मुझे पाप में न डुबाओ।

विनय को इतना क्रोध आया कि इसके पैरों को खींच लूँ और छाती पर चढ़ बैठूँ। पर यह विचार करके कि अब तो जो कुछ होना था, हो चुका, ग्लानि-भाव से बोले—इंद्रदत्त, तुम मुझे जितना पामर समझते हो, उतना नहीं हूँ; पर सोफ़ी के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मेरा आत्म-सम्मान, मेरी बुद्धि, मेरा पौरुष, मेरा धर्म सब कुछ प्रेम के हवन-कुंड में स्वाहा हो गया।

यह कहते-कहते विनय की आँखों में आँसू भर आये। इंद्रदत्त ने उन्हें उठाकर कंठ से लगा लिया और करुण भाव से बोले—विनय, क्षमा करो, यद्यपि तुमने जाति का अहित किया है, पर मैं जानता हूँ कि तुमने वही किया, जो कदाचित् उस स्थिति में मैं या कोई भी अन्य प्राणी करता। मुझे तुम्हारा तिरस्कार करने का अधिकार नहीं। तुमने अगर प्रेम के लिए आत्ममर्यादा को तिलांजलि दे दी, तो मैं भी मैत्री और सौजन्य के लिए अपने वचन से विमुख हो जाऊँगा। पर इससे तुम्हें कोई लाभ न होगा; क्योंकि मिस सोफ़िया की दृष्टि में तुम गिर गये हो, उसे अब तुम्हारे नाम से घृणा होती है। उससे मिलकर तुम्हें दुःख होगा।

नायकराम—भैया, तुम अपनी-सी कर दो, मिस साहब को मनाना इनका काम है।

इंद्रदत्त—मिस सोफ़िया मुझे कभी क्षमा न करेंगी; लेकिन अब उनका-सा हृदय कहाँ से लाऊँ। पर तुम्हें वहाँ अकेले जाना पड़ेगा। वचन दो कि खुफिया पुलिस का कोई आदमी साथ न रहेगा।

विनय—इससे तुम निश्चिंत रहो।

इंद्रदत्त—अगर तुम पुलिस के साथ गये, तो सोफ़िया की लाश के सिवा और कुछ न पाओगे।

विनय—मैं ऐसी मूर्खता करूँगा ही क्यों!

इंद्रदत्त—यह समझ लो कि मैं सोफ़ी का पता बताकर उन लोगों के प्राण तुम्हारे हाथों में रखे देता हूँ, जिनकी खोज में तुमने दाना-पानी हराम कर रखा है।

नायकराम—भैया, चाहे अपनी जान निकल जाये, उन पर कोई रेप न आने पाएगा। लेकिन यह भी बता दो कि वहाँ हम लोगों की जान का जोखम तो नहीं है?

इंद्रदत्त—(विनय से) अगर वे लोग तुमसे बैर साधना चाहते, तो अब तक तुम लोग जीते न रहते। अगर अब भी उनसे मिलने की अभिलाषा हो, तो मेरे साथ आओ।

विनयसिंह को अपनी विचार-परिवर्तक शक्ति पर विश्वास था। इसकी उन्हें लेशमात्र भी शंका न थी कि सोफ़ी मुझसे बातचीत न करेगी। हाँ, खेद इस बात का था कि मैंने सोफ़ी ही के लिए अधिकारियों को जो सहायता दी, उसका परिणाम यह हुआ। सोफ़ी पर भी तो इसकी कुछ-न-कुछ ज़िम्मेवारी है। वह मेरी मनोवृत्तियों को जानती थी। क्या वह एक पत्र भेजकर मुझे अपनी स्थिति की सूचना न दे सकती थी! जब उसने ऐसा नहीं किया, तो उसे अब मुझ पर त्यौरियाँ चढ़ाने का क्या अधिकार है?

यह सोचते वह इंद्रदत्त के पीछे-पीछे चलने लगे। भूख-प्यास हवा हो गयी।

30

चलते-चलते संध्या हो गयी। पहाड़ों की संध्या मैदान की रातों से कहीं अधिक भयानक होती है। तीनों आदमी चले जाते थे; किन्तु अभी ठिकाने का पता न था। दोनों आदमी बार-बार इंद्रदत्त से पूछते, अब कितनी दूर है। यहाँ तक कि विनयसिंह ने झुँझलाकर कहा—इंद्रदत्त, अगर तुम हमारे खून के प्यासे हो, तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते? इंद्रदत्त ने इसका भी जवाब वही दिया कि चले आओ, अब दूर नहीं है; हाँ, ज़रा सतर्क रहना, रास्ता दुर्गम है।

विनय को अब बार-बार पछतावा हो रहा था कि इंद्रदत्त के साथ क्यों आया, क्यों न पहले उनके हाथों सोफ़िया को एक पत्र भेज दिया! पत्र का उत्तर मिलने पर जब सोफ़िया की लिपि पहचान लेता, तो निश्चिंत होकर आता। विनय पिस्तौल चढ़ाए हुए थे, मन में निश्चय कर लिया था कि ज़रा भी कोई शंका हुई, तो पहला वार इंद्रदत्त पर करूँगा।

सहसा इंद्रदत्त रुक गये और बोले—लीजिए, आ गये। बस, आप लोग यहीं ठहरिए, मैं जाकर उन लोगों को सूचना दे दूँ।

विनय ने चकित होकर पूछा—यहाँ पर कोई नज़र नहीं आता, बस एक वृक्ष है।

इंद्रदत्त—राजद्रोहियों के लिए ऐसे गुप्त स्थानों की ज़रूरत होती है, जहाँ यमराज के दूत भी न पहुँच सकें।

विनय—भई यों अकेले छोड़कर मत जाओ। क्यों न यहीं से आवाज़ दो? या चलो, मैं भी चलता हूँ।

इंद्रदत्त—यहाँ से तो शायद शंख की ध्वनि भी न पहुँच सके, और दूसरों को ले चलने का मुझे अधिकार नहीं; क्योंकि घर मेरा नहीं है। मुझे देर न लगेगी।

यह कहकर वह वेग से चला और कई पग चलकर उसी वृक्ष के नीचे अदृश्य हो गया। विनयसिंह कुछ देर तक तो संशय में पड़े हुए उसकी राह देखते रहे, फिर नायकराम से बोले —इस धूर्त ने तो बुरा फँसाया। यहाँ इस निर्जन स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया कि बिना मौत ही मर जाये। अभी तक लौटकर नहीं आया।

नायकराम—तुम्हें क्या चिंता, आसिक लोग तो जान हथेली पर लिए ही रहते हैं, मरे तो हम कि सूखे पर ही रहे।

विनय—आधा घंटा तो हुआ, अभी तक किसी का पता ही नहीं। यहाँ से भागना भी चाहें, तो कहाँ जायें। इसने ज़रूर दगा की। ज़िन्दगी का यहीं तक साथ था।

नायकराम—आसिक होकर मरने से डरते हो! मरना तो एक दिन है ही, आज ही सही। जब ओखली में सिर दिया, तो मूसलों का क्या गम, मारे उसका जितना जी चाहे।

विनय—कहीं सचमुच सोफ़िया आ जाये!

नायकराम—फिर क्या कहने, लपककर टाँग लेना, मज़ा तो जब आये कि तुम हाय-हाय करके रोने लगो और वह आँचल से तुम्हारे आँसू पोंछे।

विनय—तुम हँसी उड़ा रहे हो, और मेरा हृदय धड़क रहा है कि न जाने क्या होनेवाला है। मैं इधर से एक बार गया हूँ। हम जसवंतनगर के आस-पास कहीं हैं।

नायकराम—जसवंतनगर यहीं हो, तो हमें क्या। हम चिल्लाएँ, तो कौन सुनेगा!

विनय—क्या सचमुच इसने धोखा किया? मेरा तो जी चाहता है कि यहाँ से किसी ओर को चल दूँ। अगर सोफ़ी ने कठोर बातें कहनी शुरू कीं, तो मेरा दिल फट जायेगा।

नायकराम—मैं यह अँगोछा बिछाए देता हूँ, पत्थर ठंडा हो गया है, आराम से लेटो। मिस साहब आयें, तो हरि-इच्छा, नहीं तो तड़के यहाँ से चल देंगे। मेरा तो अब यहाँ से जी भर गया; न जाने वह कौन दिन होगा कि फिर घर के दरसन होंगे।

विनय—मेरा तो घर से नाता टूट गया। सोफ़िया के साथ जाऊँगा, तो घुसने ही न पाऊँगा; सोफ़िया न मिली तो जाऊँगा ही नहीं। यहीं धूनी रमाऊँगा।

नायकराम—भैया, तुम्हारे साथ बोलना छोटा मुँह बड़ी बात है, पर साथ रहते-रहते ढीठ हो गया हूँ। मुझे तो मिस साहब ऐसी कोई बड़ी अप्सरा नहीं मालूम होतीं। और इनके लिए तुम राज-पाट त्यागने पर तैयार हो। सच कहता हूँ, माँ का दिल दुखाना महापाप है। कुछ हालचाल भी तो नहीं मिला, न जाने चल बसीं कि हैं।

विनय—मैं सोफ़ी के रूप का उपासक नहीं हूँ। मैं स्वयं नहीं जानता कि उसमें वह कौन-सी बात है, जो मुझे इतना आकर्षित कर रही है। मैं उसके लिए राजपाट तो क्या, अपना धर्म तक त्याग सकता हूँ। अगर आज मुझे मालूम हो जाये कि सोफ़ी इस संसार में नहीं है, तो तुम मुझे जीता न पाओगे। उससे मिलने की आशा मेरा जीवन-सूत्र है।

वृक्ष की ओर लालटेन का प्रकाश दिखायी दिया। दो आदमी आ रहे थे। एक के हाथ में लालटेन थी, दूसरे के हाथ में जाजम। विनय ने दोनों को पहचान लिया। एक तो वीरपालसिंह था, दूसरा उसका साथी। जाजम बिछाकर वीरपाल बोला—आइए, बैठ जाइए, आपको बड़ा कष्ट हुआ। मिस साहब अभी आ रही हैं।

जब वे जाजम पर बैठे और नायकराम टहलने लगे, तो वीरपाल ने कहा—कुँवर साहब, मेरा परम सौभाग्य है कि आज आपको अपने सामने अदालत की कुर्सी पर बैठे न देखकर अपने द्वार पर बैठे देख रहा हूँ, नहीं तो उन अभागों के साथ मेरी गरदन पर भी छुरी चल जाती, जिन्होंने मार खाकर रोने के सिवा और कोई अपराध नहीं किया।

विनय—वीरपालसिंह, उन दुष्कृत्यों की चर्चा करके मुझे लज्जित न करो। अगर उनका

कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है, तो मैं करने को तैयार हूँ।

वीरपाल—सच्चे दिल से?

विनय—हाँ, अगर मिस सोफ़िया की तुमने रक्षा की है।

वीरपाल—उन्हें तो आप अभी प्रत्यक्ष देख लेंगे।

विनय—तो मैं भी तुम्हें मुआफ कराने का यथासाध्य उद्योग करूँगा।

वीरपाल—आप जानते हैं, मैं मिस साहब को क्यों लाया? इसीलिए कि हम उन्हीं की सेवा और सिफ़ारिश से अपनी रक्षा की आशा रखते थे। हमें आशा थी कि मिस साहब द्वारा हम प्राण-दान पाने में सफल हो जायेंगे, पर दुर्भाग्यवश उन्हें हमारे अनुमान से कहीं ज़्यादा गहरा घाव लगा था और उसके भरने में पूरे नौ महीने लग गये। अपने मुँह से क्या कहें, पर जितनी श्रद्धा से हमने उनकी सेवा की, वह हमीं जानते हैं। खैर, जो परमात्मा को मंजूर था, हुआ। अब मेरी यही विनय है कि हमारे ऊपर दयादृष्टि होनी चाहिए।

विनय ने मुक्त हृदय से कहा—मुझे पूर्ण विश्वास है कि दरबार तुम्हारे अपराध क्षमा कर देगा। हाँ, तुम्हें यह वचन देना पड़ेगा कि अब तुम रियासत के प्रति द्रोहभाव न रखोगे।

वीरपाल—मैं इसकी प्रतिज्ञा लेने को तैयार हूँ। कुँवर साहब, सच तो यह है कि आपने हमें बिल्कुल अशक्त कर दिया। यह आप ही का दमन है, जिसने हमें इतना कमज़ोर बना दिया। जिन-जिन आदमियों पर हमें भरोसा था, वे सब दगा दे गये। वही मैं हूँ, जिसने जसवंतनगर का सरकारी खजाना लूटा था और वही मैं हूँ कि आज चूहे की भाँति बिल में छिपा हूँ।

विनय—मिस सोफ़िया कभी मुझे याद करती हैं?

वीरपाल—मिस साहब को आपसे जितना प्रेम है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। (अपने साथी की ओर संकेत करके) इनके आघात से आपको मिस साहब ही ने बचाया था और मिस साहब की खातिर से आप इतने दिनों हमारे हाथों से बचे रहे। हमें आपसे भेंट करने का अवसर न था, पर हमारी बंदूकों को था। मिस साहब आपको याद करके घंटों रोया करती थीं; पर अब उनका हृदय आपसे ऐसा फट गया है कि आपका कोई नाम भी लेता है, तो चिढ़ जाती हैं। पर मेरा विचार है कि अब भी आपके प्रति उनके हृदय में असीम श्रद्धा है।

सहसा उसी वृक्ष की ओर दूसरी लालटेन का प्रकाश दिखायी दिया। एक वृद्धा लोटा लिए आ रही थी। उसके पीछे सोफ़ी थी—हाथ में एक थाली लिए हुए, जिसमें एक घी का दीपक जल रहा था।

उसे देखते ही विनय के हृदय में ऐसा उद्गार उठा कि दौड़कर इसके चरणों पर गिर पड़ूँ। बुढ़िया ने लोटा रख दिया और लालटेन लिए चली गयी। वीरपालसिंह और उसका साथी भी वहाँ से हटकर दूर चले गये। नायकराम भी उन्हीं के साथ हो गये थे।

विनय—सोफ़िया, आज मेरे जीवन का Lucky day है, मैं तो निराश हो चला था।

सोफ़िया—मेरा परम सौभाग्य था कि आपके दर्शन हुए। आपके दर्शन बदे थे, नहीं तो

मरने में कोई कसर न रह गयी थी।

विनय की आशंकाएँ निर्मूल होती हुई नज़र आयीं। इंद्रदत्त और वीरपाल ने मुझे चिन्ता में डाल दिया था! इस वाक्य में कितना तीव्र व्यंग्य था, यह उनकी समझ में न आया।

सोफ़ी ने थाल में से दही और चावल निकालकर विनय के मस्तक पर तिलक लगाया और मुस्कराकर बोली—अब आरती करूँगी।

विनय ने गद्गद् होकर कहा—प्रिये, यह क्या ढकोसला कर रही हो? तुम भी इन रस्मों के जाल में फँस गईं!

सोफ़ी—वाह! आपका आदर-सत्कार कैसे न करूँ? आप मेरे मुक्तिदाता हैं, मुझे इन डाकुओं और बधिकों के पंजे से छुड़ा रहे हैं, आपका स्वागत कैसे न करूँ! मेरे कारण आपने रियासत में अँधेर मचा दिया, सैकड़ों निरपराधियों का खून कर दिया, कितने ही घरों के चिराग़ गुल कर दिये और सबसे बड़ी बात यह कि अपनी आत्मा का, अपने सिद्धान्तों का, अपने जीवन के आदर्श का मटियामेट कर दिया। इतना कीर्ति-लाभ करने के बाद भी आपका अभिवादन न करूँ? मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूँ।

अब विनय की आँखें खुलीं। बोले—सोफ़ी, मैं तुम्हारा वही भक्त और जाति का वही पुराना सेवक हूँ। तुम इस भाँति मेरा उपहास करके मुझ पर अन्याय कर रही हो। सम्भव है, भ्रम-वश मेरी जात से दूसरों का अहित हुआ, पर मेरा उद्देश्य केवल तुम्हारी रक्षा करना था।

सोफ़िया ने उत्तेजित होकर कहा—बिल्कुल झूठ है, मिथ्या है, यह सब मेरी खातिर नहीं, अपनी खातिर था। इसका उद्देश्य केवल उस नीच निरंकुशता को तृप्त करना था, जो तुम्हारे अंतस्तल में सेवा का रूप धारण किये हुए बैठी हुई है। मैंने तुम्हारी प्रभुताशीलता पर अपने को समर्पित नहीं किया था, बल्कि तुम्हारी सेवा, सहानुभूति और देशानुराग पर। इसलिए तुम्हें अपना उपास्य देव बनाया था कि तुम्हारे जीवन का आदर्श उच्च था, तुममें प्रभु मसीह की दया, भगवान् बुद्ध के विराग और लूथर की सत्यनिष्ठा की झलक थी। जब मैं प्राणिमात्र को स्वार्थ में लिप्त देखते-देखते संसार से घृणा करने लगी थी, तुम्हारी निःस्वार्थता ने मुझे अनुरक्त कर लिया। लेकिन काल-गति के एक ही पलटे ने तुम्हारा यथार्थ रूप प्रकट कर दिया। मेरा पता लगाने के लिए तुमने धर्माधर्म का विचार भी त्याग दिया। तुम अपने आदर्श से उसी समय पतित हुए, जब तुमने उस विद्रोह को शांत करने के लिए शांत उपायों की अपेक्षा क्रूरता और दमन से काम लेना उचित समझा। तुम्हें देखकर मेरा मस्तक आप-ही-आप झुक जाता था। मेरे प्रेम का आधार भक्ति थी। वह आधार जड़ से हिल गया। तुमने मेरे जीवन का सर्वनाश कर दिया। आह! अगर आज तुम रियासत के हाथों पीड़ित, दलित, अपमानित और दंडित होकर मेरे सम्मुख आते, तो मैं तुम्हारी बलाएँ लेती, तुम्हारे चरणों की रज मस्तक पर लगाती और अपना धन्य भाग्य समझती। खैर, अब इन बातों से क्या लाभ! तुम्हें अपना सम्मान और प्रभुत्व मुबारक रहे, मैं इसी दशा में संतुष्ट हूँ।

विनय खिन्न होकर बोले—सोफ़ी, ईश्वर के लिए मुझ पर इतना अन्याय मत करो। अगर मैं प्रभुता और मान-सम्मान का इच्छुक होता, तो मेरी दशा ऐसी हीन न होती। मैंने वही किया, जो मुझे न्यायसंगत जान पड़ा।

सोफ़ी—यही तो शोक है कि तुम्हें वह बात क्यों न्यायसंगत जान पड़ी जो न्याय-विरुद्ध थी! इससे तुम्हारी आंतरिक प्रवृत्ति का पता मिलता है। तुम स्वभावतः स्वार्थसेवी हो। जिसकी मनोवृत्ति इतनी दुर्बल है, उसकी कम-से-कम मैं इज्ज़त नहीं कर सकती, और इज्ज़त के बिना प्रेम कलंक का टीका बन जाता है।

विनय उन मनुष्यों में न थे, जिन पर प्रतिकूल दशाओं का कोई असर नहीं होता। उन पर निराशा का शीघ्र ही आधिपत्य हो जाता था। बोले—सोफ़ी, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मैंने जो कुछ किया, न्याय समझकर या परिस्थिति से विवश होकर ही किया है।

सोफ़ी—संसार में जितने अकर्म होते हैं, वे भ्रम या परिस्थिति के कारण ही होते हैं। कोई तीसरा कारण मैंने आज तक नहीं सुना।

विनय—सोफ़ी, अगर मैं जानता कि मेरी ओर से तुम्हारा हृदय इतना कठोर हो गया है, तो तुम्हें मुख न दिखाता।

सोफ़ी—मैं तुम्हारे दर्शनों के लिए उत्सुक न थी।

विनय—मुझे नहीं मालूम था। मगर मान लो, मैंने अन्याय ही किये, तो क्या मुझे तुम्हारे हाथों यह दंड मिलना चाहिए? इसका भय मुझे माताजी से था, तुमसे न था। सोफ़ी! इस प्रेम का यों अंत न होने दो। यह वेदना मेरे लिए असह्या है। तुम्हें विश्वास न आयेगा, क्योंकि तुम्हारा हृदय मेरी तरफ़ से पत्थर हो गया है, पर यह आघात मेरे लिए प्राणघातक होगा और अगर मृत्यु के पश्चात् भी कोई जीवन है, तो उस जीवन में भी यही वेदना मेरे हृदय को तड़पाती रहेगी। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि तुम मुझे विष दे दो। मुझे यह संतोष हो जायेगा कि ये प्राण, जो तुम्हें भेंट कर चुका था, तुम्हारे काम आ गये।

ये प्रेम-उच्छृंखल शब्द कदाचित और किसी समय विनय के मुँह से न निकलते, कदाचित् इन्हें फिर स्मरण करके उन्हें आश्चर्य होता कि ये वाक्य कैसे मेरे मुख से निकले, पर इस समय भावोद्गार ने उन्हें प्रगल्भ बना दिया था। सोफ़ी उदासीन भाव से सिर झुकाए खड़ी रही। तब बेदरदी से बोली—विनय, मैं तुमसे याचना करती हूँ, ऐसी बातें न करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति अभी जो कुछ आदर रह गया है, उसे भी पैरों से न कुचलो; क्योंकि मैं जानती हूँ, ये शब्द तुम्हारे अंतःकरण से नहीं निकल रहे हैं। इसके विरुद्ध तुम इस समय सोच रहे हो कि क्योंकर इससे इस तिरस्कार का बदला लूँ। सम्भव है, मेरा यह अनुमान अन्यायपूर्ण हो, पर मैं इसे दिल से नहीं निकाल सकती। कोई ऐसी विभूति, कोई ऐसी सिद्धि नहीं, जो तुम्हें फिर मेरा सम्मानपात्र बना सके। जिसके हाथ रक्त से रँगे हुए हों, उसके लिए मेरे हृदय में स्थान नहीं। यह न समझो कि इन बातों से दुःख नहीं हो रहा है। एक-एक शब्द मेरे हृदय को आरे की भाँति चीरे डालता है। यह भी न समझो कि तुम्हें हृदय से निकालकर मैं फिर किसी दूसरी मूर्ति को यहाँ मर्यादित करूँगी, हालाँकि तुम्हारे मन में यह दुष्कल्पना हो, तो मुझे कुतूहल न होगा। नहीं, यही मेरी प्रथम और अंतिम प्रेम-प्रदक्षिणा है। धार्मिक ग्रंथों के निरंतर पढ़ने से जो मार्ग न मिला, वह नैराश्य ने दिखा दिया। इसके लिए मैं तुम्हारी अनुगृहीत हूँ। अब अधर्म की सेवा करूँगी। जानते हो, क्या करूँगी? उन पापियों से खून का बदला लूँगी। ईसा ही की क्षमा और दया, बुद्ध के धैर्य और संयम, कृष्ण के प्रेम और वैराग्य की अमर कीर्तियाँ भी अब

इस रक्त-पिपासा को नहीं बुझा सकतीं। बरसों का मनन और चिंतन, विचार और स्वाध्याय तुम्हारे कुकर्मों की बदौलत निष्फल हो गया। बस, अब जाओ। ईश्वर फिर हमें न मिलाये।

यह कहकर सोफ़ी ने थाल उठा लिया और चली गयी, जैसे आशा हृदय से निकल जाये। विनय ने एक ठंडी साँस ली और ज़मीन पर बैठ गये, जैसे कोई हतभागिनी विधवा पति की मृत देह उठ जाने के बाद एक आह भरकर बैठ जाये।

तीनों आदमी, जो दूर खड़े थे, आकर विनय के पास खड़े हो गये। नायकराम ने कहा—भैया, आज तो खूब-खूब बातें हुईं! तुमने भी पकड़ पाया, तो इतने दिनों की कसर निकाल ली। कब चलना तय हुआ? जल्दी चलो, मेरा भी घर बसे।

विनय के नेत्र सजल थे, पर इस वाक्य पर हँस पड़े। बोले—बस, अब देर नहीं, घर चिट्ठी लिख दो, तैयारी करें।

नायकराम—ठाकुर साहब, अब सवारी-सिकारी का इंतजाम करो, जिसमें हम लोग कल सबेरे ठंडे-ठंडे निकल जायें। यहाँ पालकी तो मिल जायेगी न?

वीरपाल—सब इन्तज़ाम हो जायेगा। भोजन करके आराम कीजिए, देर हो गयी।

विनय—यहाँ से जसवंतनगर कितनी दूर है?

वीरपाल—यह पूछकर क्या कीजिएगा?

विनय—मुझे इसी वक़्त वहाँ पहुँचना चाहिए।

नायकराम—भैया, मिस साहब भी रहेंगी न, रात को कैसे चलोगे?

विनय—तुम तो सनक गये हो, मिस साहब मेरी कौन लगती हैं, और मेरे साथ क्यों जाने लगीं। अगर आज मैं मर जाऊँ, तो शायद उनसे ज़्यादा खुशी और किसी को न होगी। तुम्हें थकावट आ गयी हो, तो आराम करो; पर मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। आप लोगों में से कोई रास्ता दिखा सकता है?

वीरपाल—चलने को तो मैं खुद हाज़िर हूँ, पर रास्ता अत्यन्त भयानक है।

विनय—कोई मुजायका नहीं। मुझे इसी वक़्त पहुँचा दीजिए और हो सके, तो आँखों पर पट्टी बाँध दीजिए। मुझे अब अपने ऊपर ज़रा भी विश्वास नहीं रहा।

वीरपाल—भोजन तो कर लीजिए। इतना आतिथ्य तो स्वीकार कीजिए।

विनय—अगर मेरा आतिथ्य करना है, तो मुझे गोली मार दीजिए। इससे बढ़कर आप मेरा आतिथ्य नहीं कर सकते। मैं पिशाच हूँ, हत्यारा हूँ; पृथ्वी मेरे बोझ से जितनी जल्दी हलकी हो जाये, उतना ही अच्छा है!

नायकराम—मालूम होता है, मिस साहब सचमुच फिरंट हो गईं। मगर मैं कहे देता हूँ, दो-ही-चार दिन में तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ती फिरेंगी।

वीरपाल—कुँवर साहब, मेरा इतना कहना मानिए, अभी न जाइए। मुझे डर है, कहीं मिस साहब आपके यों चले जाने से घबरा न जायें। मैं वादा करता हूँ, कल सूर्योदय तक आप जसवंतनगर पहुँच जायेंगे। इस वक़्त कुछ भोजन कर लीजिए।

विनय—अब यहाँ का पानी भी हराम है। तुम्हें नहीं चलना है, तो न सही; मुझे तुमसे

इतनी खातिरदारी कराने का अधिकार नहीं है। मैं अकेला ही चला जाऊँगा।

वीरपाल विवश होकर साथ चलने को तैयार हुआ। तीनों आदमी रवाना हुए।

आध घंटे तक तीनों आदमी चुपचाप चलते रहे। विनय को सोफ़िया की और सब बातें तो याद न थीं, पर उनकी नीयत पर उसने जो आक्षेप किये थे और उनके विषय में जो द्वेषपूर्ण भविष्यवाणी की थी, उसका एक-एक शब्द उसके कानों में गूँज रहा था। सोफ़िया मुझे इतना नीच समझती है।

सहसा उन्हांने वीरपाल से पूछा—तुम्हारे विचार में मैं आवेश में आकर यह अन्याय कर बैठा या जैसा मिस सोफ़िया कहती है, मैं स्वभाव ही का नीच हूँ?

वीरपाल—आप मिस सोफ़िया की बातों का ज़रा भी बुरा न मानिए। जैसे आप आवेश में विवेकहीन हो गये थे, वैसे ही वह भी आवेश में अनर्गल बातें कर गयी होंगी।

विनय—न जाने इतने कटु शब्द कहाँ से सीख लिए! आदमी भिखारी को भी जवाब दे, तो नम्रता से। इसने तो मुझे इस तरह दुतकारा, मानो कोई कुत्ता हो। सच कहना, कभी मेरी चर्चा भी करती थीं?

वीरपाल—इसके सिवा तो उन्हें और कोई बात ही न थी। घाव गहरा था, अचेत पड़ी रहती थीं, पर चौंक-चौंककर, आपको पुकारने लगतीं। कहतीं—विनय को बुला दो, उन्हें देखकर तब मरूँगी। कभी-कभी तो दिन-के-दिन आप ही की रट लगाती रह जाती थीं। हम लोग उनकी बेकसी देख-देखकर रोने लगते थे। जर्राह ने ऐसी चीर-फाड़ की कि आपसे क्या बताऊँ, याद करके रोएँ खड़े हो जाते हैं।

विनय अवरुद्ध कंठ से बोले—बस करो, अब और कुछ न कहो।

वीरपाल—एक दिन उसी दशा में आपके पास जाने को तैयार हो गईं। रो-रोकर कहने लगीं, उन्हें लोगों ने गिरफ्तार कर लिया है, मैं उन्हें छुड़ाने जा रही हूँ...

विनय—रहने दो वीरपाल, नहीं तो हृदय फट जायेगा, उसके टुकड़े हो जायेंगे।

फिर लोग चुपचाप चलने लगे। विनय इतने वेग से चल रहे थे, मानो दौड़ रहे हैं। बेचारे नायकराम दौड़ते-दौड़ते हाँफ रहे थे। रात के दो बजे होंगे। वायु में प्राणप्रद शीतलता का समावेश हो गया था। नायकराम तो कई बार उँघकर गिरते-गिरते बच गये। विनय को भी विश्राम करने की इच्छा होने लगी कि वीरपाल बोले—लीजिए, जसवंतनगर पहुँच गये।

विनय—अरे, इतनी जल्द! अभी तो चलते हुए चार घंटे हुए होंगे।

वीरपाल—आज सीधे आये।

विनय—आओ, आज यहाँ के अधिकारियों से तुम्हारी सफाई करा दूँ।

वीरपाल—आपसे सफाई हो गयी, तो अब किसी का गम नहीं। अब मुझे यहीं से रुखसत कीजिए।

विनय—एक दिन के लिए तो मेरे मेहमान हो जाइए!

वीरपाल—ईश्वर ने चाहा, तो जल्द ही आपके दर्शन होंगे। मुझ पर कृपा रखिएगा।

विनय—सोफ़िया से मेरा कुछ ज़िक्र न कीजिएगा।

वीरपाल—जब तक वह खुद न छेड़ेंगी, मैं न करूँगा।

विनय—मेरी यह घबराहट, यह बावलापन, इसका ज़िक्र भूलकर भी न कीजिएगा। अपनी भाषा और विचार, एक पर भी मुझे विश्वास नहीं रहा, संज्ञाहीन-सा हो रहा हूँ। आप उनसे इतना ही कह दीजिएगा कि मुझसे कुछ नहीं बोले।

वीरपाल—अगर वह मुझसे कुछ न पूछेंगी, तो मैं कुछ न कहूँगा।

विनय—जैसी तुम्हारी इच्छा।

31

भैरो के घर से लौटकर सूरदास अपनी झोंपड़ी में आकर सोचने लगा, क्या करूँ कि सहसा दयागिरि आ गये और बोले—सूरदास, आज तो लोग तुम्हारे ऊपर बहुत गरम हो रहे हैं। कहते हैं इसे घमंड हो गया है। तुम इस माया-जाल में क्यों पड़े हो। क्यों नहीं मेरे साथ कहीं तीर्थयात्रा करने चलते?

सूरदास—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। चलो, तो मैं भी निकल पड़ूँ।

दयागिरि—हाँ, चलो, तब मैं मंदिर का कुछ ठिकाना कर लूँ। यहाँ कोई नहीं, जो मेरे पीछे यहाँ दिया-बत्ती तक कर दे, भोग-भाग लगाना तो दूर रहा।

सूरदास—तुम्हें मंदिर से कभी छुट्टी न मिलेगी।

दयागिरि—भाई, यह भी नहीं होता कि मंदिर को यों ही निराधार छोड़कर चला जाऊँ, फिर न जाने कब लौटूँ, तब तक तो यहाँ घास जम जायेगा।

सूरदास—तो जब तुम आप ही माया में फँसे हो, तो मेरा उद्धर क्या करोगे?

दयागिरि—नहीं, अब जल्दी ही चलूँगा। ज़रा पूजा के लिए फूल लेता आऊँ।

दयागिरि चले गये तो सूरदास फिर सोच में पड़ा—संसार की भी क्या लीला है कि होम करते हाथ जलते हैं। मैं तो नेकी करने गया था, उसका यह फल मिला। बुरी बातों पर लोगों को कितनी जल्दी विश्वास आ जाता है! मगर नेकी-बदी कभी छिपी नहीं रहती। कभी-न-कभी तो असली बात मालूम हो ही जायेगी। वह बेचारी सुभागी कहाँ जायेगी? मुहल्लेवाले तो अब उसे यहाँ रहने न देंगे, और रहेगी किसके आधार पर? कोई अपना तो हो। मैके में भी कोई नहीं है। मैं कहीं चला गया, तो उसका कोई पुछत्तर भी न रहेगा। कहीं-न-कहीं डूब मरेगी, कहाँ तक संतोष करेगी। इस आँखोंवाले अंधे भैरो को तनिक भी खयाल नहीं कि मैं इसे निकाल दूँगा, तो कहाँ जायेगी।

वह यही सोचता-विचारता सड़क की ओर चला गया कि सुभागी आकर बोली—सूरे, मैं कहाँ रहूँगी?

सूरदास ने कृत्रिम उदासीनता से कहा—मैं क्या जानूँ, कहाँ रहोगी! अभी तू ही तो भैरो से कह रही थी कि लाठी लेकर जाओ। तू क्या यह समझती थी कि मैं भैरो को मारने गया हूँ?

सुभागी—हाँ, सूरे, झूठ क्यों बोलूँ? मुझे यह खटका तो हुआ था।

सूरदास—जब तेरी समझ में मैं इतना बुरा हूँ, तो फिर मुझसे क्यों बोलती है?

सुभागी—(रोती हुई) सूरे, तुम भी ऐसा कहोगे, तो यहाँ कौन है, जिसकी आड़ में मैं छिन-भर भी बैठूँगी। इस झोंपड़ी के सिवा अब मुझे और कहीं सरन नहीं।

सूरदास—मुझे भी अपने साथ मुहल्ले से निकलवाएगी क्या?

सुभागी—तुम जहाँ जाओगे, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।

सूरदास—तब तो तू मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक न रखेगी। सब यही कहेंगे कि अंधा उसे बहकाकर ले गया।

सुभागी—तुम तो बदनामी से बच जाओगे, लेकिन मेरी आबरू कैसे बचेगी? है कोई मुहल्ले में ऐसा, जो किसी की इज्ज़त-आबरू जाते देखे, तो उसकी बाँह पकड़ ले? तुम्हारे सिवा अब मेरा और कोई नहीं है। चाहो तो रहने दो; नहीं तो कह दो, कहीं मुँह में कालिख लगाकर जा मरूँ।

सूरदास ने देर तक चिन्ता में मग्न रहने के बाद कहा—सुभागी, तू आप समझदार है, जैसा जी आये, कर। मुझे तेरा खिलाना-पहनाना भारी नहीं है। लेकिन मेरा मन कहता है कि तेरे यहाँ रहने से कल्याण न होगा। हम दोनों ही बदनाम हो जायेंगे। बता, क्या करूँ?

सुभागी—जो चाहो करो, पर मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगी।

सूरदास—यही तेरी मरजी, तो यही सही। मैं सोच रहा था, कहीं चला जाऊँ। न आँखों देखूँगा, न पीर होगी; लेकिन तेरी बिपत देखकर अब जाने की इच्छा नहीं होती।

यह कहकर सूरदास भीख माँगने चला गया। सुभागी झोंपड़ी में आ बैठी। देखा, तो उस मुख्तसर घर की मुख्तसर गृहस्थी इधर-उधर फैली हुई थी। कहीं लुटिया औंधी पड़ी थी, कहीं घड़े लुढ़के हुए थे। सुभागी सारे दिन झोंपड़े की सफाई करती रही। शाम को वही घर जो 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' को चरितार्थ कर रहा था, साफ-सुथरा, लिपा-पुता नज़र आता था कि उसे देखकर देवतों को रहने के लिए जी ललचाए। भैरो अपनी दूकान में चला गया, तो सुभागी अपनी गठरी उठा लायी। सूरदास संध्या समय लौटा, तो सुभागी ने थोड़ा-सा चबेना उसे जल-पान करने को दिया, लुटिया में पानी लाकर रख दिया और आंचल से हवा करने लगी। सूरदास को अपने जीवन में कभी यह सुख और शांति न नसीब हुई थी। एक क्षण के लिए उसके मन में एक नई इच्छा अंकुरित हो आयी। सोचने लगा—मैं कितना अभागा हूँ। काश, यह मेरी स्त्री होती, तो कितने आनंद से जीवन व्यतीत होता! अब तो भैरो ने इसे घर से निकाल ही दिया; मैं रख लूँ, तो इसमें कौन-सी बुराई है! इससे कहूँ कैसे?

सुभागी ने सूरदास की पोटली खोली, तो उसमें गेहूँ का आटा निकला, थोड़ा-सा चावल, कुछ चने और तीन आने पैसे। सुभागी बनिये के यहाँ से दाल लायी और रोटियाँ बनाकर सूरदास को भोजन करने को बुलाया।

सूरदास—मिठुआ कहाँ है?

सुभागी—क्या जानूँ, कहीं खेलता होगा। दिन में एक बार पानी पीने आया था, मुझे

देखकर चला गया।

सूरदास—तुझसे सरमाता होगा। देख, मैं उसे बुलाये लाता हूँ।

यह कहकर सूरदास बाहर जाकर मिठुआ को पुकारने लगा। मिठुआ मंदिर में प्रसाद के लालच में बैठा हुआ था। आवाज़ सुनते ही दौड़ा। दोनों खाने बैठे। सुभागी ने सूरदास के सामने चावल और रोटियाँ रख दीं और मिठुआ के सामने सिर्फ चावल।

सूरदास ने कहा—मिट्ठू, और रोटी लोगे?

मिटठ्—मुझे तो रोटी मिली ही नहीं।

सूरदास—तो मुझसे ले लो। मैं चावल ही खा लूँगा।

यह कहकर सूरदास ने दोनों रोटियाँ मिट्ठू को दे दीं। सुभागी क्रुद्ध होकर मिट्ठू से बोली—दिन-भर साँड की तरह फिरते हो, कहीं मजूरी क्यों नहीं करते?

सूरदास—अभी वह कौन काम करने लायक है। इसी उमिर में मजूरी करने लगेगा, तो कलेजा टूट जायेगा!

सुभागी—मजूरों के लड़कों का कलेजा इतना नरम नहीं होता। सभी तो काम करने जाते हैं, किसी का कलेजा नहीं टूटता। सुनते हो मिट्ठू, कल से काम करना पड़ेगा।

मिट्ठू—तेरे कहने से न जाऊँगा; दादा कहेंगे तो जाऊँगा।

सुभागी—मूसल की तरह घूमना अच्छा लगता है? इतना नहीं सूझता कि अंधा आदमी तो माँगकर लाता है, और मैं चैन से खाता हूँ। जनम-भर कुमार ही बना रहेगा?

मिट्ठू—तुझसे क्या मतलब, मेरा जी चाहेगा, जाऊँगा, न जी चाहेगा, न जाऊँगा।

इसी तरह दोनों में देर तक वाद-विवाद हुआ, यहाँ तक कि मिठुआ झल्लाकर चौके से उठ गया। सूरदास ने बहुत मनाया, पर वह खाने न बैठा। आखिर सूरदास भी आधा ही भोजन करके उठ गया।

जब वह लेटा, तो गृहस्थी का एक दूसरा चित्र उसके सामने था। यहाँ न वह शांति थी, न वह सुषमा, न वह मनोल्लास। पहले ही दिन यह कलह आरम्भ हुआ, तो आगे कौन जाने, क्या होगा। उसे सुभागी की यह कठोरता अनुचित प्रतीत होती थी।

वह अंकुर, वह नन्ही-सी आकांक्षा, जो संध्या समय उसके हृदय में उगी थी, इस ताप के झोंके से जल गयी, अंकुर सूख गया।

सुभागी को नई चिन्ता सवार हुई—मिठुआ को काम पर कैसे लगाऊँ? मैं उसकी लौंडी तो हूँ नहीं कि उसकी थाली धोऊँ, उसका खाना पकाऊँ और वह मटर-गस करे।

प्रातःकाल जब वह झोंपड़ी से घड़ा लेकर पानी भरने निकली, तो घीसू की माँ ने देखकर छाती पर हाथ रख लिया और बोली—क्यों री, आज रात तू यहीं रही थी क्या?

सुभागी ने कहा—हाँ, रही तो फिर!

जमुनी—तो तू दो-चार सिर कटाकर तब चैन लेगी? इस अंधे की भी मत मारी गयी है कि साँप के मुँह में उँगली देता है। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, चली जा घर। जिस घर में कोई मेहरिया नहीं, वहाँ तेरा रहना अच्छा नहीं।

सुभागी—जानती हूँ, पर किसके घर जाऊँ? तुम्हारे घर आऊँ, रहने दोगी? जो कुछ करने को कहोगी, करूँगी, गोबर पाथूँगी, भैंसों को घास-चारा दूँगी, पानी डालूँगी, तुम्हारा आटा पिसूँगी। रखोगी?

जमुनी—न बाबा, यहाँ कौन बैठे-बिठाए रार मोल ले! अपना खिलाऊँ भी, उस पर बद्दू भी बनूँ।

सुभागी—रोज गाली-मार खाया करूँ?

जमुनी—अपना मरद है, मारता ही है, तो क्या घर छोड़कर कोई निकल जाता है?

सुभागी—क्यों बहुत बढ़-बढ़कर बात करती हो जमुनी! मिल गया है बैल, जिस कल चाहती हो, बैठाती हो। दूसरों को उपदेश करना सहज है। जब अपने सिर पड़ती है, तो आँखें खुल जाती हैं।

यह कहती हुई सुभागी कुएँ पर पानी भरने चली गयी। यहाँ भी उसने टीकाकारों को ऐसा ही अक्खड़ जवाब दिया। पानी लाकर बर्तन धोये, चौका लगाया और सूरदास को सड़क पर पहुँचाने चली गयी। अब तक वह लाठी से टटोलता हुआ अकेले ही चला जाता था, लेकिन सुभागी से यह न देखा गया। यह स्थिर हो गया कि सूरदास ने उसे घर डाल लिया। अब व्यंग्य, निंदा की गुंजाइश न थी। हाँ, सूरदास सबकी नज़रों में गिर गया।

परंतु लोगों में किसी विषय पर बहुत दिनों तक आलोचना करते रहने की आदत नहीं होती। सुभागी से बोलने-चालने, उसके साथ उठने-बैठने में किसी को आपत्ति न रही; न कोई उससे कुछ पूछता, न आवाज़ें कसता। हाँ, सूरदास की मान-प्रतिष्ठा गायब हो गयी। अब उसकी गणना भी सामान्य मनुष्यों में होने लगी, कोई विशेषता न रही।

किन्तु भैरो के हृदय में सदैव यह काँटा खटका करता था। वह किसी भाँति इस सजीव अपमान का बदला लेना चाहता था। धीरे-धीरे भैरो की सूरदास ही से नहीं, मुहल्ले-भर से अदावत हो गयी। उसके विचार में मुहल्लेवालों का यह धर्म था कि मेरी हिमायत के लिए खड़े हो जाते और सूरे को कोई ऐसा दंड देते कि वह आजीवन याद रखता—ऐसे मुहल्ले में कोई क्या रहे, जहाँ न्याय और अन्याय एक ही भाव बिकते हैं। सोचते-सोचते उसे खयाल आया कि अंधे ने चतारी के राजा साहब को बहुत बदनाम किया था। कारखानेवाले साहब को भी बदनाम करता फिरता था। इन्हीं लोगों से चलकर फरियाद करूँ। अंधे से दिल में तो दोनों खार खाते ही होंगे, छोटे के मुँह लगना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझकर चुप रह गये होंगे। मैं जो सामने खड़ा हो जाऊँगा, तो मेरी आड़ से वे जरूर निशाना मारेंगे।

कई दिनों तक वह इसी हैस-बैस में पड़ा रहा कि उन लोगों के पास कैसे पहुँचूँ। जाने की हिम्मत न पड़ती थी। आखिर एक दिन दिल मज़बूत करके वह राजा साहब के मकान पर गया, और साईस के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया। साईस ने देखा, तो कर्कश कंठ से बोला —कौन हो! यहाँ क्या उचक्कों की तरह झाँक रहे हो?

भैरो ने बड़ी दीनता से कहा—भैया, डाँटो मत, ग़रीब-दुखी आदमी हूँ।

साईस—ग़रीब दुखियारे हो, तो किसी साहूकार के घर जाते, यहाँ क्या रखा है?

भैरो—ग़रीब हूँ, लेकिन भिखमंगा नहीं हूँ। तुम्हारी ही बिरादरी में कोई किसी की बहू-बेटी

को लेकर निकल जाये, तो क्या उसे पंचाइत यों ही छोड़ देगी?

साईस जात का चमार था, जहाँ ऐसी दुर्घटनाएँ आये दिन होती रहती हैं, और बिरादरी को उनकी बदौलत नशा-पानी का सामान हाथ आता रहता है। उसके घर में नित्य यही चर्चा रहती थी। बोला—आओ बैठो, चिलम पियो, कौन भाई हो?

भैरो—पासी हूँ, यहीं पाँड़ेपुर में रहता हूँ।

भैरो ने अपना सम्पूर्ण वृत्तांत सुनाया और कमर से एक रुपया निकालकर साईस के हाथ में रखता हुआ बोला—भाई, कोई ऐसी जुगुत निकालो कि राजा साहब के कानों में यह बात पड़ जाये। फिर तो मैं अपना सब हाल आप ही कह लूँगा।

साईस को रौप्य मुद्रा के दर्शन हुए, तो मगन हो गया। आज सबेरे-सबेरे अच्छी बोहनी हुई। बोला—मैं राजा साहब से तुम्हारी इत्तला कराए देता हूँ। बुलाहट होगी, तो चले जाना। मगर देखना, बहुत देर न लगाना, जो कुछ कहना हो, साफ-साफ कह डालना।

यह कहकर वह चला गया। राजा साहब इस वक़्त बाल बनवा रहे थे, जो उनका नित्य का नियम था। साईस ने पहुँचकर सलाम किया।

राजा—क्या कहते हो? मेरे पास तलब के लिए मत आया करो।

साईस—हुज़ूर, तलब के लिए नहीं आया था। वह जो सूरदास पाँड़ेपुर में रहता है। वह एक औरत को निकाल ले गया है।

राजा—अच्छा! उसे तो लोग कहते थे, भला आदमी है। अब स्वाँग रचने लगा!

साईस—हाँ हुज़ूर, उसका आदमी फरियाद करने आया है। हुकुम हो, तो लाऊँ।

राजा साहब ने सिर हिलाकर अनुमति दी और एक क्षण में भैरो दबकता हुआ आकर खड़ा हो गया।

राजा—तुम्हारी औरत है?

भैरो—हाँ हुज़ूर, अभी कुछ दिन पहले तो मेरी ही थी!

राजा—लेकर कहाँ चला गया?

भैरो—कहीं गया नहीं सरकार, अपने घर में है।

राजा—औरत को मारते बहुत हो?

भैरो—सरकार, औरत से भूल-चूक होती है, तो कौन नहीं मारता?

राजा—कैसी औरत है, सुंदर?

भैरो—हाँ, हुज़ूर, देखने-सुनने में बुरी नहीं है।

राजा—समझ में नहीं आता, सुंदर स्त्री ने अंधे को क्यों पसंद किया! ऐसा तो नहीं हुआ कि तुमने स्त्री को मारकर निकाल दिया हो और अंधे ने रख लिया हो?

भैरो—सरकार, औरत मेरे रुपये चुराकर सूरदास को दे आयी। सबेरे सूरदास रुपये लौटा गया। मैंने चकमा देकर पूछा, तो उसने चोर को भी बता दिया। इस बात पर मारता न, तो क्या करता?

राजा—और कुछ हो, अंधा है दिल का साफ।

भैरो—हुज़ूर, नीयत का अच्छा नहीं।

यद्यपि महेन्द्रकुमारसिंह बहुत न्यायशील थे और अपने कुत्सित मनोविचारों को प्रकट करने में बहुत सावधान रहते थे। पर वह सूरदास से इतने जले हुए थे, उसके हाथों इतनी मानसिक यातनाएँ पायी थीं कि इस समय अपने भावों को गुप्त न रख सके। बोले—अजी, उसने मुझे यहाँ इतना बदनाम किया कि घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। इजलास तो मेरा ही है, तुम उस पर दावा कर दो। गवाह मिल जायेंगे न?

भैरो—हुज़ूर, सारा मुहल्ला जानता है।

राजा—सबों को पेश करो। यहाँ लोग उसके भक्त हो गये हैं। समझते हैं, वह कोई ऋषि है। मैं उसकी कलई खोल देना चाहता हूँ।

किसी बड़े आदमी को रोते देखकर हमें उससे स्नेह हो जाता है। उसे प्रभुत्व से मंडित देखकर हम थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं कि वह भी मनुष्य है। हम उसे साधारण मानवीय दुर्बलताओं से रहित समझते हैं। भैरो को राजा साहब के सम्मुख जाते हुए भय लगता था, लेकिन अब उसे ज्ञात हुआ कि यह भी हमीं-जैसे मनुष्य हैं। ज़रा बेधड़क होकर बोला—हुज़ूर, है तो अंधा, लेकिन बड़ा घमंडी है। अपने आगे तो किसी को समझता ही नहीं। हुज़ूर, उसकी ऐसी सजा कर दें कि चक्की पीसते-पीसते दिन जायें।

राजा साहब ने देखा, यह गँवार अब ज़्यादा बहकने लगा। बोले—अच्छा, अब जाओ।

भैरो यहाँ से कुछ लज्जित होकर निकला, पर उसे अब इसमें संदेह न था कि मनोकामना पूरी हो गयी। घर आकर उसने बजरंगी से कहा—तुम्हें गवाही करनी पड़ेगी।

बजरंगी—कैसी गवाही?

भैरो—यही मेरे मामले की। इस अंधे की हेकड़ी अब नहीं देखी जाती। इतने दिनों तक सबर किये बैठा रहा कि अब भी वह सुभागी को निकाल दे, उसका जहाँ जी चाहे, चली जाये, मेरी आँखों के सामने से दूर हो जाये। पर देखता हूँ, तो दिन-दिन उसकी पेंग बढ़ती ही जाती है। यह अँधेर नहीं देखा जाता।

बजरंगी—अँधेर तो है ही, आँखों से देख रहा हूँ। पर मैं कहीं गवाही-साखी करने न जाऊँगा।

जमुनी—क्यों कचहरी में कोई तुम्हारे कान काट लेगा?

बजरंगी—अपना मन है, नहीं जाते।

जमुनी—अच्छा तुम्हारा मन है! भैरो, मेरी गवाही लिखा दो। मैं गवाही दूँगी।

बजरंगी—भैरो, बात यह है कि सूरे ने बुराई ज़रूर की, लेकिन तुम भी तो अनीत ही पर चलते थे। तुमने मारा ही नहीं, मारकर निकाल भी दिया। इसमें उसका क्या दोस?

जमुनी—तुम इन्हें बकने दो भैरो, मैं तुम्हारी गवाही करूँगी।

बजरंगी—तू सोचती होगी, यह धमकी देने से मैं कचहरी जाऊँगा; यहाँ इतने बुद्धू नहीं हैं। सूरे लाख बुरा हो, मगर अब भी हम सबों से अच्छा है।

जमुनी—बस चुप रहो, मैं तुम्हें खूब समझती हूँ। सुभागी को सज़ा हो गयी, तो तुम्हें भी

तो नज़र लड़ाने को कोई न रहेगा।

बजरंगी यह लांछन सुनकर तिलमिला उठा। बोला—लिखा दो भैरो, मेरा नाम, यह चुड़ैल मुझे जीने न देगी। मैं अगर हारता हूँ, तो इसी से। जाओ, लिखा दो।

भैरो यहाँ से ठाकुरदीन के पास गया और वही प्रस्ताव किया। ठाकुरदीन ने कहा—हाँ-हाँ, मैं गवाही करने को तैयार हूँ। अंधे को देखकर मेरी आँखें फूटती हैं।

भैरो—चक्की पीसें, तो बच्चु को मालूम होगा।

ठाकुरदीन—ना भैया, उसका अकबाल भारी है, वह कभी चक्की न पीसेगा, वहाँ से भी बेदाग लौट आयेगा। हाँ, गवाही देना मेरा धरम है, वह मैं दे दूँगा।

भैरो यहाँ से जगधर के पास गया, जो अभी खोंचा बेचकर लौटा था और धोती लेकर नहाने जा रहा था।

भैरो—तुम भी मेरे गवाह हो न?

जगधर—तुम हक-नाहक सूरे पर मुकदमा चला रहे हो। सूरे निरपराध हैं।

भैरो—क़सम खाओगे?

जगधर—हाँ, जो क़सम कहो, खा जाऊँ। तुमने सुभागी को अपने घर से निकाल दिया, सूरे ने उसे अपने घर में जगह दे दी। नहीं तो अब तक वह न जाने किस घाट लगी होती।

भैरो समझ गया कि यह एक लोटे जल से प्रसन्न हो जानेवाले देवता नहीं, इसे कुछ भेंट करनी पड़ेगी। उसकी लोभी प्रकृत्ति से वह परिचित था। बोला—भाई, मुआमला इज्ज़त का है। जो कुछ दस-बीस कहो, हाज़िर है। पर गवाही तुम्हें देनी पड़ेगी।

जगधर—भैरो, मैं बहुत नीच हूँ, लेकिन इतना नीच नहीं कि जान-सुनकर किसी भले आदमी को बेकसूर फँसाऊँ।

भैरो ने बिगड़कर कहा—तो क्या समझते हो कि तुम्हारे ही नाम खुदाई लिख गयी है? जिस बात को सारा गाँव कहेगा, उसे एक तुम न कहोगे, तो क्या बिगड़ जायेगा?

जगधर—भाई, उसे पीसकर पी जाओ। मैं कब कहता हूँ कि मैं उसे बचा लूँगा।

भैरो तो उधर गया, इधर वही स्वार्थी, लोभी, कुटिल जगधर उसके गवाहों को फोड़ने का प्रयत्न करने लगा। उसे सूरदास से इतनी भक्ति न थी, जितनी भैरो से ईर्ष्या।

उसने बजरंगी से कहा—क्यों बजरंगी, तुम भैरो की गवाही कर रहे हो?

बजरंगी—हाँ, जाता तो हूँ।

जगधर—तुमने अपनी आँखों कुछ देखा है।

बजरंगी—कैसी बातें करते हो, रोज़ की देखता हूँ, कोई बात छिपी थोड़े ही है।

जगधर—क्या देखते हो? यही न कि सुभागी सूरदास के झोंपड़े में रहती है? अगर कोई एक अनाथ औरत का पालन करे, तो बुराई है? अंधे आदमी के जीवट का बखान तो न करोगे कि जो काम किसी से न हो सका, वह उसने कर दिखाया, उलटे उससे और बैर साधते हो। जानते हो, सूरदास उसे घर से निकाल देगा, तो उसकी क्या गत होगी? मेरा कहना मानो, गवाही-साखी के फेर में न पड़ो, भलाई के बदले बुराई हो जायेगी। हाँ, गवाही देने ही जाते

हो, तो पहले खूब पता लगा लो कि दोनों कैसे रहते हैं...

बजरंगी—(जमुनी की तरफ़ इशारा) इसी से पूछो, इसी ने मुझे मजबूर किया है।

जमुनी—हाँ, किया तो है, क्या अब भी दिल काँप रहा है?

जगधर—अदालत में जाकर गवाही देना क्या तुमने हँसी समझ ली है? गंगाजली उठानी पड़ती है, बेटे के सिर पर हाथ रखना पड़ता है। इसी से बाल-बच्चेवाले डरते हैं कि और कुछ!

जमुनी—सच कहो, ये सब क़समें भी खानी पड़ती हैं?

जगधर—बिना क़सम खाए तो गवाही होती ही नहीं।

जमुनी—तो भैया, बाज आयी ऐसी गवाही से, कान पकड़ती हूँ। अजी, तुम रहने दो।

बजरंगी—सूरदास को लकड़पन से देख रहे हैं, ऐसी आदत तो उसमें न थी।

जगधर—न थी, न है और न होगी। उसकी बड़ाई नहीं करता, पर उसे लाख रुपये भी दो, तो बुराई में हाथ न डालेगा।

बजरंगी को तोड़कर जगधर ने ठाकुरदीन को घेरा। पूजा करके भोजन करने जा रहा था। जगधर की आवाज़ सुनकर बोला—बैठो, खाना खाकर आता हूँ।

जगधर—मेरी बात सुन लो, तो खाने बैठो। तुम भी भैरो की गवाही देने जा रहे हो?

ठाकुरदीन—हाँ, जाता हूँ। भैरो ने न कहा होता, तो आप ही जाता। मुझसे यह अनीत नहीं देखी जाती। किसी की बहू-बेटी को निकाल ले जाना कोई हँसी-ठट्ठा है?

जगधर—जान पड़ता है, देवतों की पूजा करते-करते तुम भी अंतरजामी हो गये हो। पूछता हूँ, किस बात की गवाही दोगे?

ठाकुरदीन—कोई लुका-छिपी बात है, सारा देस जानता है।

जगधर—सूरदास जवान है, इसी से सुंदरी का मन उस पर लोट-पोट हो गया होगा, या उसके रुपये-पैसे के ढेर लगे हुए हैं, इसी से औरत लोभ में पड़ गयी होगी। आखिर क्या देखकर सुभागी ने भैरो को छोड़ दिया और सूरे के घर पड़ गयी?

ठाकुरदीन—कोई किसी के मन की बात क्या जाने, और औरत के मन की बात तो भगवान् भी नहीं जानते। देवता लोग तक उससे त्राह-त्राह करते हैं!

जगधर—अच्छा, तो जाओ, मगर यह कहे देता हूँ कि इसका फल भोगना पड़ेगा। किसी ग़रीब पर झूठा अपराध लगाने से बड़ा दूसरा पाप नहीं होता। जो आदमी अपना गया हुआ धन पाकर लौटा दे, वह इतना नीच नहीं हो सकता।

ठाकुरदीन—(हँसकर) यही तो अंधे की चाल है। कैसी दूर की सूझी है कि जो सुने, चक्कर में आ जाये।

जगधर—मैंने जता दिया, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। रखोगे सुभागी को अपने घर में? मैं उसे सूरे के घर से लिवाए लाता हूँ, अगर फिर कभी सूरे को उससे बातें करते देखना, तो जो चाहना, सो करना। रखोगे?

ठाकुरदीन—मैं क्यों रखने लगा!

जगधर—तो अगर शिवजी ने संसार-भर का बिस माथे पर चढ़ा लिया, तो क्या बुरा किया? जिसके लिए कहीं ठिकाना नहीं था, उसे सूरे ने अपने घर में जगह दी। इस नेकी की उसे सज़ा मिलनी चाहिए? अगर तुम लोगों के दबाव में आकर सूरे ने सुभागी को घर से निकाल दिया और उसकी आबरू बिगड़ी, तो पाप तुम्हारे सिर भी पड़ेगा। याद रखना।

ठाकुरदीन देवभीरु आत्मा था, दुविधा में पड़ गया। आखिर ठाकुरदीन भी गवाही देने से इनकार करने लगा। जगधर की ईर्ष्या साधु के उपदेश का काम कर गयी। संध्या होते-होते भैरो को मालूम हो गया कि मुहल्ले में कोई गवाह न मिलेगा। दाँत पीसकर रह गया।

क्रोध के आवेश में अपनी नेकियाँ बहुत याद आती हैं। भैरो उन उपकारों का वर्णन करने लगा, जो उसने जगधर के साथ किये थे—इसकी घरवाली मर रही थी। किसी ने बता दिया, ताजी ताड़ी पिए, तो बच जाये। मुँह-अँधेरे पेड़ पर चढ़ता था और ताजी ताड़ी उतारकर उसे पिलाता था। और मेरे साथ यह घाट! ज़माना ही ऐसा है।

इतने में मिल का एक मिस्त्री, नीम-आस्तीन पहने, कोयले की भभूत लगाए हाथ में हथौड़ा लिए, आकर बोला—चलते हो दुकान पर कि इसी झंझट में पड़े रहोगे? देर हो रही है, अभी साहब के बँगले पर जाना है।

भैरो—अजी जाओ, तुम्हें दुकान की पड़ी हुई है। यहाँ ऐसा जी जल रहा है कि गाँव में आग लगा दूँ।

मिस्त्री—क्या है क्या? किस बात पर बिगड़ रहे हो, मैं भी सुनूँ।

भैरो ने संक्षिप्त रूप से सारी कथा सुना दी और गाँववालों की कायरता और असज्जनता का दुखड़ा रोने लगा।

मिस्त्री—गाँववालों को मारो गोली। जितने गवाह कहो, दे दूँ, एक-दो, दस-बीस। आज ही ठीक-ठाक किये देता हूँ। सबों को भर-पेट पिला देना।

भैरो की बाँछें खिल गईं, बोला—ताड़ी की कौन बात है, दूकान तुम्हारी है, जितनी चाहो, पियो; पर ज़रा मोतबर गवाह दिलाना।

मिस्त्री—अजी, कहो तो बाबू लोगों को हाजिर कर दूँ।

यों बातें करते हुए दोनों दूकान पहुँचे। वहाँ 20-25 आदमी, जो इसी कारखाने के नौकर थे, बड़ी उत्कंठा से भैरो की राह देख रहे थे। भैरो ने तो पहुँचते ही ताड़ी नापनी शुरू कर दी, और इधर मिस्त्री ने गवाहों को तैयार करना शुरू किया।

एक—मौका अच्छा है। अंधे के घर से निकलकर जायेगी कहाँ!

दूसरा—आखिर हमारे दिल-बहलाव का भी तो कोई सामान होना चाहिए।

इधर तो यह मिसकौट हो रही थी, उधर सुभागी सूरदास से कह रही थी—तुम्हारे ऊपर दावा हो रहा है।

सूरदास ने घबराकर पूछा—कैसा दावा?

सुभागी—मुझे भगा लाने का। पहले गाँव के सब आदमी गवाही देने जा रहे थे।

सूरदास—फिर रुक कैसे गये?

सुभागी—जगधर ने सबको समझा-बुझाकर रोक लिया।

सूरदास—दावा करने दे, डरने की कोई बात नहीं। तू यही कह देना कि मैं भैरो के साथ न रहूँगी। कोई कारन पूछे, तो साफ-साफ कह देना, वह मुझे मारता है।

सुभागी—लेकिन इसमें तुम्हारी बदनामी होगी।

सूरदास—बदनामी की चिन्ता नहीं, जब तक वह तुझे रखने को राज़ी न होगा, मैं तुझे जाने ही न दूँगा।

सुभागी—वह राज़ी भी होगा, तो उसके घर न जाऊँगी। वह मन का बड़ा मैला आदमी है, इसकी कसर ज़रूर निकालेगा। तुम्हारे घर से भी चली जाऊँगी।

सूरदास—मेरे घर से क्यों चली जायेगी? मैं तो तुझे नहीं निकालता।

सुभागी—मेरे कारन तुम्हारी कितनी जगहँसाई होगी। मैं यहाँ न रहूँगी, तो उसका कलेजा ठंडा हो जायेगा। बिस की गाँठ तो मैं हूँ।

सूरदास—जायेगी कहाँ?

सुभागी—जहाँ उसके मुँह में कालिख लगा सकूँ, जहाँ उसकी छाती पर मूँग दल सकूँ।

सूरदास—उसके मुँह में कालिख लगेगी, तो मेरे मुँह में पहले ही न लग जायेगी, तू मेरी बहन ही तो है? कहे देता हूँ, इस घर से न जाना।

भैरो ने रात तो किसी तरह काटी। प्रातःकाल कचहरी दौड़ा। ग्यारह बजे राजा साहब इजलास पर आये तो भैरो ने मुहर्रिर से लिखवाकर अपना इस्तगासा दायर कर दिया।

पाँचवें दिन सूरदास और सुभागी के नाम सम्मन आ गया। तारीख पड़ गयी। ज्यों-ज्यों पेशी का दिन निकट आता जाता था, सुभागी के होश उड़े जाते थे। बार-बार सूरदास से उलझती—तुम्हीं यह सब करा रहे हो। वहाँ भरी कचहरी में जाना, सबके सामने खड़ी होना, मुझे ज़हर ही-सा लग रहा है।

आखिर पेशी की नियत तिथि आ गयी। मुहल्ले में इस मुकदमे की इतनी धूम थी कि लोगों ने अपने-अपने काम बंद कर दिये और अदालत में जा पहुँचे। प्रभु सेवक पहले ही पहुँच चुके थे, इंदु रानी और इंद्रदत्त भी मुकदमा पेश होते-होते आ पहुँचे। इजलास पर दो महाशय विराजमान थे—एक तो चतारी के राजा साहब, दूसरे एक मुसलमान, जिन्होंने योरपीय महासमर में रंगरूट भरती करने में बड़ा उत्साह दिखाया था। भैरो की तरफ़ से एक वकील भी था।

भैरो का बयान हुआ। गवाहों का बयान हुआ। तब उसके वकील ने उनसे अपना पक्ष-समर्थन करने के लिए जिरह की।

तब सूरदास का बयान हुआ। उसने कहा—मेरे साथ इधर कुछ दिनों से भैरो की घरवाली रहती है। अगर भैरो उसे रखना चाहे और वह रहना चाहे, तो आज ही चली जाये, यही तो मैं चाहता हूँ।

भैरो के वकील ने मुस्कराकर कहा—सूरदास, तुम बड़े उदार मालूम होते हो; लेकिन युवती सुंदरियों के प्रति उदारता का कोई महत्त्व नहीं रहता।

सूरदास—इसी से न यह मुकदमा चला है। मैंने कोई बुराई नहीं की। अगर भैरो उसे अपने घर न रखेगा और न सरकार कोई ऐसी जगह बताइएगी, जहाँ यह औरत इज्जत-आबरू के साथ रह सके, तो मैं उसे अपने घर से निकलने न दूँगा। वह निकलना भी चाहेगी, तो न जाने दूँगा।

वकील—साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैंने उसे रख लिया है।

सूरदास—हाँ, रख लिया है, जैसे भाई अपनी बहन को रख लेता है, अगर सरकार ने उसे जबरदस्ती मेरे घर से निकाल दिया, तो उसकी आबरू की जिम्मेदारी उसी के सिर होगी।

सुभागी का बयान हुआ—भैरो मुझे मारता, गालियाँ देता। मैं उसके साथ न रहूँगी।

वकील—तू पहले भी सूरदास के घर जाती थी?

सुभागी—जभी अपने घर मार खाती थी, तभी जान बचाकर उसके घर भाग जाती थी। मेरे कारन उसके घर में आग लगी, मार पड़ी, कौन-कौन-सी दुर्गत नहीं हुई।

राजा—भैरो, तुम अपनी औरत रखोगे?

भैरो—हाँ सरकार, रखूँगा।

राजा—सुभागी, तू अपने आदमी के घर क्यों नहीं जाती?

सुभागी—उस पर मुझे विश्वास नहीं। आज ही मार-मारकर बेहाल कर देगा।

वकील—हुज़ूर, मुआमला साफ है, अब मज़ीद-सबूत की ज़रूरत नहीं रही। सूरदास पर ज़ुर्म साबित हो गया।

अदालत ने फैसला सुना दिया—सूरदास पर 200 रु. ज़ुर्माना और ज़ुर्माना न अदा करे, तो छः महीने की कड़ी क़ैद। सुभागी पर 100 रु. ज़ुर्माना, ज़ुर्माना न दे सकने पर तीन महीने की कड़ी क़ैद। रुपये वसूल हों तो भैरो को दिये जायें।

दर्शकों में इस फैसले पर आलोचना होने लगी।

एक—मुझे तो सूरदास बेकसूर मालूम होता है।

दूसरा—सब राजा साहब की करामात है। सूरदास ने ज़मीन के बारे में उन्हें बदनाम किया था न। यह उसी की कसर निकाली गयी है।

सहसा सूरदास ने उच्च स्वर में कहा—मैं इस फैसले की अपील करूँगा।

वकील—इस फैसले की अपील नहीं हो सकती।

सूरदास—मेरी अपील पंचों से होगी। एक आदमी के कहने से मैं अपराधी नहीं हो सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी हो। हाकिम ने सज़ा दे दी, सज़ा काट लूँगा; पर पंचों का फैसला भी सुन लेना चाहता हूँ।

यह कहकर उसने दर्शकों की ओर मुँह फेरा और कहा—दुहाई है पंचो, आप इतने आदमी जमा हैं। आप लोगों ने भैरो और उसके गवाहों के बयान सुने, मेरा और सुभागी का बयान सुना, हाकिम का फैसला भी सुन लिया। आप लोगों से मेरी विनती है कि क्या आप भी मुझे अपराधी समझते हैं? क्या आपको विश्वास आ गया कि मैंने सुभागी को बहकाया और अब अपनी स्त्री बनाकर रखे हुए हूँ? अगर आपको विश्वास आ गया है, तो मैं इसी मैदान

में सिर झुकाकर बैठता हूँ, आप लोग मुझे पाँच-पाँच लात मारें। और अगर आपकी समझ में बेकसूर हूँ, तो पुकारकर कह दीजिए, हम तुझे निरपराध समझते हैं। फिर मैं कड़ी-से-कड़ी क़ैद भी हँसकर काट लूँगा।

अदालत के कमरे में सन्नाटा छा गया। राजा साहब, वकील, अमले, दर्शक, सब-के-सब चकित हो गये। किसी को होश न रहा कि इस समय क्या करना चाहिए।

सबसे पहले राजा साहब सँभले। हुक्म दिया, इसे बाहर ले जाओ। सिपाहियों ने दोनों अभियुक्तों को घेर लिया और अदालत के बाहर ले चले। हज़ारों दर्शक पीछे-पीछे चले।

कुछ दूर चलकर सूरदास जमीन पर बैठ गया और बोला—मैं पंचों का हुकुम सुनकर तभी आगे जाऊँगा।

अदालत के बाहर अदालत की मर्यादा भंग होने का भय न था। कई हज़ार कंठों से ध्वनि उठी—तुम बेकसूर हो, हम सब तुम्हें बेकसूर समझते हैं।

इंद्रदत्त—अदालत बेईमान है!

कई हज़ार आवाज़ों ने दुहराया—हाँ, अदालत बेईमान है!

चौकीदारों ने देखा, प्रतिक्षण भीड़ बढ़ती और लोग उत्तेजित होते जाते हैं, तो लपककर एक बग्घीवाले को पकड़ा और दोनों को उसमें बैठाकर ले चले। लोगों ने कुछ दूर तक तो गाड़ी का पीछा किया, उसके बाद अपने-अपने घर लौट गये।

इधर भैरो अपने गवाहों के साथ घर चला, तो राह में अदालत के अरदली ने घेरा। उसे दो रुपये निकालकर दिये। दूकान में पहुँचते ही मटके खुल गये और ताड़ी के दौर चलने लगे। बुढ़िया पकौड़ियाँ और पूरियाँ पकाने लगी।

सबों ने ढोल-मँजीरा सँभाला और खड़े होकर गाने लगे:

छत्तीसी, क्या नैना झमकावै!

भैरो—मुहल्लेवाले समझते थे, मुझे गवाह ही न मिलेंगे। चलो, ज़रा सबों के मुँह में कालिख लगा आयें।

सब-के-सब चिल्ला उठे—हाँ, हाँ।

एक क्षण में जुलूस चला। सब-के-सब नाचते-गाते, ढोल पीटते, लड़खड़ाते हुए चले। पहले बजरंगी का घर मिला। यहाँ सब रुक गये, और गाया:

ग्वालिन की गैया हिरानी, तब दूध मिलावै पानी।

रात ज़्यादा भीग चुकी थी, बजरंगी के द्वार बंद थे। लोग यहाँ से ठाकुरदीन के द्वार पर पहुँचे और गाया:

तमोलिन के नैना रसीले, यारों से नज़र मिलावै।

ठाकुरदीन भोजन कर रहा था, पर डर के मारे बाहर न निकला। जुलूस आगे बढ़ा, तो सूरदास की झोंपड़ी मिली।

भैरो बोला—बस, यहीं डट जाओ।

एक आदमी ने थोड़ा-सा फूस निकाला, दूसरे ने और ज़्यादा, तीसरे ने एक बोझ खींच लिया। फिर क्या था, नशे की सनक मशहूर ही है, एक ने जलता हुआ फूस झोंपड़ी पर डाल दिया और बोला—होली है, होली है! कई आदमियों ने कहा—होली है, होली है!

भैरो—यह तुम लोगों ने बुरा किया। भाग चलो, नहीं तो धर लिए जाओगे।

उधर ज्वाला प्रचंड हुई, तो मुहल्ले के लोग दौड़ पड़े। लेकिन फूस की आग किसके वश की थी! झोंपड़ा जल रहा था और लोग खड़े दुःख और क्रोध की बातें कर रहे थे।

ठाकुरदीन—मैं तो भोजन पर बैठा, तभी सबों को आते देखा।

बजरंगी—ऐसा जी चाहता है कि जाकर भैरो को मारते-मारते बेदम कर दूँ।

जगधर—जब तक अच्छी तरह मार न खा जायेगा, इसके सिर से भूत न उतरेगा।

बजरंगी—हाँ, अब यही होगा। घिसुआ, ज़रा लाठी तो निकाल ला।

जमुनी—तुम्हें क्या, चलकर लेटो। जो जैसा करेगा, उसका फल भगवान् से पाएगा।

बजरंगी—भगवान् फल दें या न दें, पर मैं नहीं मानता, जैसे देह में आग लगी हुई है।

जगधर—आग लगने की बात ही है। ऐसे पापी का तो सिर काट लेना भी पाप नहीं।

ठाकुरदीन—जगधर, आग पर तेल छिड़कना अच्छी बात नहीं। अगर तुमको भैरो से बैर है, तो आप जाकर उसे क्यों नहीं ललकारते, दूसरों को क्या उकसाते हो?

जगधर—अगर कोई बात कहना उकसाना है, तो लो, चुप रहूँगा।

ठाकुरदीन—हाँ, चुप रहना ही अच्छा है। तुम भी जाकर सोओ बजरंगी!

बजरंगी—चलो जगधर, जरा इन सबों से दो-दो बातें कर लें।

जगधर—न भैया, मुझे साथ न ले जाओ। मैं तो झगड़े से कोसों दूर रहता हूँ।

इतने में मिठुआ दौड़ा हुआ आया। बजरंगी ने पूछा—कहाँ सोया था रे?

मिट्ठू—पण्डाजी के दालान में। अरे, यह तो मेरी झोंपड़ी जल रही है! किसने आग लगाई? भैरो ने लगाई है क्या! अच्छा बच्चा, समझूँगा।

लोग अपने-अपने घर लौट गये। अँधेरा छाया हुआ था। दूकान के द्वार पर उपले जल रहे थे। मिठुआ ने एक जलता हुआ उपला उठाया और दूकान के छप्पर पर फेंक दिया। छप्पर में आग लग गयी, तो मिठुआ बगटुट भागा और पण्डाजी के दालान में मुँह ढाँपकर सो रहा, मानो उसे कुछ खबर ही नहीं। ज़रा देर में ज्वाला प्रचंड हुई, सारा मुहल्ला आलोकित हो गया, पेड़ों की डालें हिलने लगीं और बाँसों की गाँठें ज़ोर-ज़ोर से चिटकने लगीं। अग्नि ने निर्विघ्न अपना काम समाप्त किया।

प्रातःकाल भैरो उठा, तो दूकान सामने न दिखायी दी। उसे विस्मय हुआ, दूकान कहाँ गयी! ज़रा और आगे बढ़ा, तो राख का ढेर दिखायी दिया। दौड़ा। दूकान में ताड़ी के सिवा बिक्री के रुपये भी थे। मुहल्ले के लोग उधर तालाब में मुँह-हाथ धोने जाया करते थे। सब आ पहुँचे।

भैरो ने रोकर कहा—मैं तो मिट्टी में मिल गया।

ठाकुरदीन—भगवान् की लीला है। उधर वह तमाशा दिखाया, इधर यह तमाशा दिखाया।

धन्य हो महाराज!

बजरंगी—किसी मिस्त्री की सरारत होगी। क्यों भैरो, किसी से अदावत तो नहीं थी?

भैरो—अदावत सारे मुहल्ले से है। जिसकी यह बदमासी है, बँधवा न दिया, तो कहना।

जगधर दूर ही से आनंद ले रहा था। निकट न आया कि कहीं भैरो कुछ कह बैठे, तो बात बढ़ जाये। ऐसा हार्दिक आनंद उसे अपने जीवन में न प्राप्त हुआ था।

इतने में मिल के कई मज़दूर आ गये। काला मिस्त्री बोला—भाई, कोई माने या न माने, मैं तो यही कहूँगा कि अंधे को किसी का इष्ट है।

ठाकुरदीन—इष्ट क्यों नहीं है। उससे जिसने बैर ठाना, उसने नीचा देखा।

भैरो—उसका इष्ट मैं जानता हूँ। ज़रा थानेदार आ जायें, तो बता दूँ, कौन इष्ट है।

बजरंगी जलकर बोला—अपनी बेर कैसी सूझ रही है! क्या वह झोंपड़ा न था, जिसमें पहले आग लगी? ईंट का जवाब पत्थर मिलता ही है।

भैरो—उसके झोंपड़े में मैंने आग लगाई?

बजरंगी—और किसने लगाई? भगवान ने उसका बदला चुका दिया, तो रोते क्यों हो?

भैरो ओठ चबाता हुआ चला गया। मानव-चरित्र कितना रहस्यमय है! हम दूसरों का अहित करते हुए ज़रा भी नहीं झिझकते, किन्तु जब दूसरों के हाथों हमें कोई हानि पहुँचती है, तो हमारा खून खौलने लगता है।

32

सूरदास के मुकदमे का फैसला सुनने के बाद इंद्रदत्त चले, तो रास्ते में प्रभु सेवक से मुलाक़ात हो गयी। बातें होने लगी।

इंद्रदत्त—तुम्हारा क्या विचार है, सूरदास निर्दोष है या नहीं?

प्रभु सेवक—सर्वथा निर्दोष। मैं तो आज उसकी साधुता का कायल हो गया।

इंद्रदत्त—राजा साहब की पीठ में धूल लगानी पड़ेगी। उन्हें यह संतोष न होने देना चाहिए कि मैंने अंधे से चक्की पिसवाई। वह समझ रहे होंगे कि अंधा रुपये कहाँ से लायेगा। हमें किसी तरह से जुर्माना आज ही अदा करना चाहिए। सूरदास जेल से निकले, तो सारे शहर में उसका जुलूस निकालना चाहिए। इसके लिए 200 रुपये की और ज़रूरत होगी। कुल 500 रुपये हों, तो काम चल जाये। बोलो, देते हो?

प्रभु सेवक—जो उचित समझो, लिख लो।

इंद्रदत्त—तुम 50 रुपये बिना कष्ट के दे सकते हो?

प्रभु सेवक—और तुमने अपने नाम कितना लिखा है?

इंद्रदत्त—मेरी हैसियत 10 रुपये से अधिक देने की नहीं। रानी जाह्नवी से 100 रुपये ले लूँगा। कुँवर साहब ज़्यादा नहीं, तो 10 रुपये दे ही देंगे। जो कुछ कमी रह जायेगी, वह दूसरों से माँग ली जायेगी। सम्भव है, डाक्टर गांगुली सब रुपये खुद ही दे दें, किसी से माँगना ही न पड़े।

प्रभु सेवक—सूरदास के मुहल्लेवालों से भी कुछ मिल जायेगा।

इंद्रदत्त—उसे सारा शहर जानता है, उसके नाम पर दो-चार हज़ार रुपये मिल सकते हैं; पर इस छोटी-सी रक़म के लिए मैं दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता।

यों बातें करते हुए दोनों आगे बढ़े कि सहसा इंदु अपनी फ़िटन पर आती हुई दिखायी दी। इंद्रदत्त को देखकर रुक गयी और बोली—तुम कब लौटे? मेरे यहाँ नहीं आये!

इंद्रदत्त—आप आकाश पर हैं, मैं पाताल में हूँ, क्या बातें हों?

इंदु—आओ, बैठ जाओ, तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं।

इंद्रदत्त फ़िटन पर जा बैठा। प्रभु सेवक ने जेब से 50 रुपये का एक नोट निकाला और

चुपके से इंद्रदत्त के हाथ में रखकर क्लब को चल दिये।

इंद्रदत्त—(इंदु से) आज तो यहाँ खूब तमाशा हुआ।

इंदु—सूरदास के विषय में तुम्हारा क्या खयाल है?

इंद्रदत्त—मुझे तो वह निष्कपट, सच्चा, सरल मनुष्य मालूम होता है।

इंदु—बस-बस यही मेरा भी विचार है। मैं समझती हूँ, उसके साथ अन्याय हुआ है। वह अपनी धुन का पक्का, निर्भीक, निःस्पृह, सत्यनिष्ठ आदमी है, किसी से दबना नहीं जानता।

इंद्रदत्त—तो इस सहानुभूति को क्रिया के रूप में भी लाइएगा? हम लोग आपस में चंदा करके ज़ुर्माना अदा कर देना चाहते हैं। आप भी इस सत्कार्य में योग देंगी?

इंदु ने मुस्कराकर कहा—मैं मौखिक सहानुभूति ही काफ़ी समझती हूँ।

इंद्रदत्त—आप ऐसा कहेंगी, तो मेरा यह विचार पुष्ट हो जायेगा कि हमारे रईसों में नैतिक बल नहीं रहा। मैं नहीं चाहता कि आपकी गणना भी उन्हीं रईसों में हो।

इंदु ने गम्भीर भाव से कहा—इंद्रदत्त, राजा साहब सुनेंगे, तो उन्हें कितना दुःख होगा! मैं उनसे छिपकर कोई काम नहीं करना चाहती।

इंद्रदत्त—राजा साहब से अभी बातचीत नहीं हुई। लेकिन मुझे विश्वास है कि उनके भाव भी हमीं लोगों जैसे होंगे। उन्होंने इस वक़्त क़ानूनी फैसला दिया है। सच्चा फैसला उनके हृदय ने किया होगा। मेरी उनसे घनिष्ठता नहीं है, नहीं तो उनसे भी कुछ-न-कुछ ले मरता।

इंदु—सम्भव है, उनके विषय में तुम्हारा अनुमान सत्य हो। मैं आज उनसे पूछूँगी।

इंद्रदत्त—पूछिए, मुझे भय है कि राजा साहब इतनी आसानी से न खुलेंगे।

इंदु—तुम्हें भय है, और मुझे विश्वास है। यह लीजिए, यह मेरी तुच्छ भेंट है।

यह कहकर इंदु ने एक सावरेन निकालकर इंद्रदत्त को दे दिया।

इंद्रदत्त—इसे लेते हुए शंका होती है।

इंदु—किस बात की?

इंद्रदत्त—कि कहीं राजा साहब के विचार कुछ और ही हों।

इंदु ने गर्व से सिर उठाकर कहा—इसकी कुछ परवा नहीं।

इंद्रदत्त—हाँ, इस वक़्त आपने रानियों की-सी बात कही। यह सावरेन सूरदास की नैतिक विजय का स्मारक है। आपको अनेक धन्यवाद! अब मुझे आज्ञा दीजिए।

इंद्रदत्त उतरकर जाना ही चाहते थे कि इंदु ने दूसरा सावरेन निकालकर कहा—यह भी लो।

इंद्रदत्त ने सावरेन जेब में रखा, और खुश-खुश चले। लेकिन इंदु कुछ चिंतित-सी हो गयी। उसे विचार आया—कहीं राजा साहब सूरदास को अपराधी समझते हों, तो मुझे ज़रूर आड़े हाथों लेंगे। मेरा कर्त्तव्य है सत्कार्य में उनसे दबना। बुरे कामों में दबना मनुष्य के पद से गिर जाना है। मैं पहले मनुष्य हूँ; पत्नी, माता, बहिन, बेटी पीछे।

इंदु इन्हीं विचारों में मग्न थी कि मि. जॉन सेवक और उनकी स्त्री मिल गयी।

जॉन सेवक ने टोप उतारा। मिसेज़ सेवक बोलीं—हम लोग आप ही की तरफ़ जा रहे थे।

कई दिन से मुलाक़ात न हुई थी। अच्छा हुआ, राह में मिल गईं।

इंदु—जी नहीं, मैं राह में नहीं मिली। आप जहाँ जाती हैं, वहीं जाइए।

जॉन सेवक—मैं तो हमेशा Compromise पसंद करता हूँ; यह आगे पार्क आता है। वहीं जा बैठें।

इंदु—यह Compromise पक्षपात रहित तो नहीं है, लेकिन खैर!

पार्क में तीनों आदमी उतरे और कुर्सियों पर जा बैठे। इंदु ने पूछा—सोफ़िया का कोई पत्र आया था?

मिसेज़ सेवक—मैंने तो समझ लिया कि वह मर गयी। मि. क्लार्क जैसा आदमी उसे न मिलेगा। जब तक यहाँ रही, टालमटोल करती रही। वहाँ जाकर विद्रोहियों से मिल बैठी। न जाने उसकी तकदीर में क्या है?

जॉन सेवक—मैं तुमसे हज़ार बार कह चुका, वह किसी से विवाह न करेगी। अगर कभी विवाह करेगी भी, तो कुँवर विनयसिंह से।

मिसेज़ सेवक—तुम मेरे सामने कुँवर विनयसिंह का नाम न लिया करो। क्षमा कीजिएगा रानी इंदु, मुझे ऐसे बेजोड़ और अस्वाभाविक विवाह पसंद नहीं।

जॉन सेवक—पर ऐसे बेजोड़ और अस्वाभाविक विवाह कभी-कभी हो जाते हैं।

मिसेज़ सेवक—मैं तुमसे कहे देती हूँ, और रानी इंदु, आप गवाह रहिएगा कि सोफ़ी की शादी कभी विनयसिंह से न होगी।

जॉन सेवक—आपका इस विषय में क्या विचार है रानी इंदु?

इंदु—मैं समझती हूँ, लेडी सेवक का अनुमान सत्य है। विनय को सोफ़ी से कितना ही प्रेम हो, पर वह माताजी की उपेक्षा न करेंगे। आज अच्छी साइत में घर से चली थी। वह डॉक्टर गांगुली आ रहे हैं। कहिए, डॉक्टर साहब, शिमले से कब लौटे?

गांगुली—सरदी पड़ने लगी। अब वहाँ से सब कोई कूच हो गया। हम तो अभी आपकी माताजी के पास गया। कुँवर विनयसिंह के हाल पर उनको बड़ा दुःख है।

जॉन सेवक—अबकी तो आपने काउंसिल में धूम मचा दी।

गांगुली—हाँ, अगर वहाँ भाषण करना, प्रश्न करना, बहस करना काम है, तो आप हमारा जितना बड़ाई करना चाहता है, करे; पर मैं उसे काम नहीं समझता, यह तो पानी चीरना है। काम उसको कहना चाहिए, जिससे देश और जाति का कुछ उपकार हो। ऐसा तो हमने कोई काम नहीं किया। हमारा तो अब वहाँ मन नहीं लगता। सारा काउंसिल ज़ोर देता रहा कि बंगाल की बाढ़ के सताए हुए आदमियों के सहायतार्थ 20 लाख मंज़ूर किया जाये; सारा काउंसिल कहता रहा कि मि. क्लार्क का उदयपुर से बदली कर दिया जाये, पर सरकार ने मंज़ूर नहीं किया। काउंसिल कुछ नहीं कर सकता। काउंसिल को सरकार बनाता है और वह सरकार के मुट्ठी में है। जब जाति द्वारा काउंसिल बनेगा, तब उससे देश का कल्यान होगा।

इंदु ने छेड़कर पूछा—जब आप जानते हैं कि वहाँ जाना व्यर्थ है, तो क्यों जाते हैं? क्या आप बाहर रहकर कुछ नहीं कर सकते?

गांगुली—(हँसकर) वही तो बात है इंदुरानी, हम खाट पर पड़ा है, हिल नहीं सकता। हमारा ज़िन्दगी काउंसिल में गुज़र गया, अब कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखायी देता।

इंदु—मैं तो ऐसी ज़िन्दगी से मर जाना बेहतर समझूँ।

गांगुली—(हँसकर) हमको कोई कह दे कि मरकर तुम फिर इसी देश में आयेगा और फिर काउंसिल में जा सकेगा, तो हम यमराज से बोलेगा—बाबा, जल्दी कर।

जॉन सेवक—मेरा विचार है कि चुनाव में व्यापार-भवन की ओर से खड़ा हो जाऊँ।

गांगुली—आप किस दल में रहेगा?

जॉन सेवक—मेरा कोई न दल है और न होगा। मैं प्रयत्न करूँगा कि विदेशी वस्तुओं पर बड़ी कठोरता से कर लगाया जाये, इस नीति का पालन किये बिना हमारा व्यापार कभी सफल न होगा।

गांगुली—(घड़ी देखकर) बहुत अच्छी बात है, आप खड़ा हो। अभी हमको यहाँ से अकेला जाना पड़ता है तब दो आदमी साथ-साथ जायेगा। अच्छा, अब जाता है।

डॉक्टर गांगुली के जाने के बाद जॉन सेवक ने घर की राह ली। इंदु मकान पर पहुँची, तो राजा साहब बोले—तुम कहाँ रह गईं?

इंदु—रास्ते में डॉक्टर गांगुली और मि. जॉन सेवक मिल गये, बातें होने लगीं।

महेंद्र—गांगुली को साथ क्यों न लाईं?

इंदु—जल्दी में थे। आज तो इस अंधे ने कमाल कर दिया।

महेंद्र—एक ही धूर्त है। जो उसके स्वभाव से परिचित न होगा, ज़रूर धोखे में आ गया होगा। अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए इससे उत्तम और कोई ढंग ध्यान ही में नहीं आ सकता। निरक्षर होकर भी आज उसने कितने ही शिक्षित और विचारशील आदमियों को अपना भक्त बना लिया। यहाँ लोग उसका जुर्माना अदा करने के लिए चंदा जमा कर रहे हैं। सुना है, जुलूस भी निकालना चाहते हैं।

इंदु—तो आपने चंदा भी न दिया होगा?

महेंद्र—चंदा कैसे देता, अपने मुँह में आप ही थप्पड़ मारता!

इंदु—लेकिन मैंने तो दिया है। मुझे...

महेंद्र—अगर तुमने दे दिया है, तो बुरा किया है। अपना नाम गुप्त रखने को तो कह दिया है?

इंदु—नहीं, मैंने कुछ नहीं कहा।

महेंद्र—तो तुमसे ज़्यादा बेसमझ आदमी संसार में न होगा।

यह कहकर महेन्द्रकुमार निराश होकर आरामकुर्सी पर लेट गये और छत की ओर ताकने लगे। इंदु ने अपने मनोभावों को दबाने में असीम धैर्य से काम लिया और द्वार की तरफ चली कि महेन्द्रकुमार फिर तनकर बैठ गये और बोले—जाती कहाँ हो, क्या मेरी सूरत से भी घृणा हो गयी? मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि जिन बातों का सम्बंध मुझसे हो, वे मुझसे पूछे बिना न की जाया करें। क्या तुमने क़सम खा ली है कि मुझे बदनाम करके, मेरे सम्मान

को धूल में मिलाकर, मेरी प्रतिष्ठा को पैरों से कुचलकर तभी दम लोगी?

इंदु ने गिड़गिड़ाकर कहा—इस वक़्त मुझे कुछ कहने के लिए विवश न कीजिए। मैं माने लेती हूँ कि मुझसे भूल हुई और ज़रूर हुई। उसका प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ।

महेन्द्रकुमार चिढ़कर बोले—इसका यह आशय है कि मुझे बकवास का रोग हो गया है और कभी-कभी उसका दौरा हो जाया करता है?

इंदु—यह आप खुद कहते हैं।

इंदु से भूल हुई कि वह अपने वचन को निभा न सकी। क्रोध को एक चाबुक और मिला। महेंद्र ने आँखें निकालकर कहा—यह मैं नहीं कहता, तुम कहती हो। मैं तुमसे जिज्ञासा-भाव से पूछ रहा हूँ कि तुम क्यों बार-बार वे ही काम करती हो, जिनसे मेरी निंदा और जग-हँसाई हो, मेरी मान-प्रतिष्ठा धूल में मिल जाये? मैं जानता हूँ, तुम जिद से ऐसा नहीं करतीं। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ, तुम मेरे आदेशानुसार चलने का प्रयास भी करती हो। किन्तु फिर भी जो यह अपवाद हो जाता है, उसका क्या कारण है?

इंदु—मुझे गुप्त ज्ञान रखने का तो दावा नहीं है। हाँ, अगर आपकी इच्छा हो, तो मैं जाकर इंद्रदत्त को ताकीद कर दूँ कि मेरा नाम न जाहिर होने पाए।

महेंद्र—क्या बच्चों की-सी बातें करती हो; तुम्हें यह सोचना चाहिए था कि यह चंदा किस नीयत से जमा किया जा रहा है। इसका उद्देश्य है मेरे न्याय का अपमान करना, मेरी ख्याति की जड़ खोदना। चंदा तो खैर होगा ही, मुझे उसे रोकने का अधिकार नहीं है लेकिन मैं जुलूस कदापि न निकलने दूँगा। मैं उसे अपने हुक्म से बंद कर दूँगा।

इंदु—आप जो उचित समझें, करें; मुझसे ये सब बातें क्यों कहते हैं?

महेंद्र—तुमसे इसलिए कहता हूँ कि तुम भी उस अंधे के भक्तों में हो।

इंदु—दुर्भाग्यवश मुझे यह पूरा विश्वास हो गया है कि सूरदास निरपराध है।

महेंद्र—तुम कल जुलूस में तो न जाओगी?

इंदु—जाना तो चाहती थी, पर अब आपकी खातिर से न जाऊँगी।

महेंद्र—अच्छी बात है, इसके लिए तुम्हें अनेक धन्यवाद!

इंदु अपने कमरे में जाकर लेट गयी। वह देर तक राजा साहब की बातों पर विचार करती रही, फिर आप-ही-आप बोली—भगवान्, यह जीवन असह्य हो गया है। या तो तुम इनके हृदय का उदार कर दो, या मुझे संसार से उठा लो।

फिर आज का समाचार-पत्र खोलकर देखने लगी। पहला ही शीर्षक था—'शास्त्रीजी की महत्त्वपूर्ण वक्तृता'। इंदु ने पत्र को नीचे डाल दिया—यह महाशय तो शैतान से ज़्यादा प्रसिद्ध हो गये। शास्त्रीजी का नाम आते ही मुझे इनकी याद आ जाती है। जो आदमी जरा-जरा-से मतभेद पर सिर हो जाये, जिसे दूसरों के मनोभावों का ज़रा भी लिहाज न हो, जिसे ज़रा भी चिन्ता न हो कि मेरी बातों से किसी के दिल पर क्या असर होगा, वह भी कोई आदमी है! मानो, मैं इनके हाथों बिक गयी!

दूसरे दिन प्रातःकाल उसने गाड़ी तैयार कराई और दुशाला ओढ़कर घर से निकली।

महेन्द्रकुमार बाग में टहल रहे थे। यह उनका नित्य का नियम था। इंदु को जाते देखा, तो पूछा—इतने सबेरे कहाँ?

इंदु ने दूसरी ओर ताकते हुए कहा—जाती हूँ आपकी आज्ञा का पालन करने। इंद्रदत्त से रुपये वापस लूँगी।

सहसा इंद्रदत्त सामने से आते हुए दिखायी दिये। इंदु उनकी ओर लपककर चली, मानो अभिवादन करने जा रही है, और फाटक पर पहुँचकर बोली—इंद्रदत्त, सच कहना, तुमने किसी से मेरे चंदे की चर्चा तो नहीं की?

इंद्रदत्त—इंदुरानी, मुझे खूब याद है कि आपने मना नहीं किया था। हाँ, मुझे स्वयं बुद्धि से काम लेना चाहिए था। इतनी भूल ज़रूर मेरी है।

इंदु—(धीरे से) तुम महेंद्र से इतना कह सकते हो कि मैंने इनकी चर्चा किसी से नहीं की, मुझ पर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी।

यह कहते-कहते इंदु की आँखें डबडबा आयीं। इंद्रदत्त वातावरण ताड़ गया! बोला—हाँ, कह दूँगा—आपकी खातिर से।

एक क्षण में इंद्रदत्त राजा के पास जा पहुँचा। इंदु घर में चली गयी।

महेंद्रकुमार ने पूछा—कहिए महाशय, इस वक़्त कैसे कष्ट किया?

इंद्रदत्त—आपको कष्ट देने आया हूँ। यद्यपि यह नियम-विरुद्ध है, पर मेरी आपसे प्रार्थना है कि सूरदास और सुभागी का जुर्माना आप इसी वक़्त मुझसे ले लें और उन दोनों को रिहा करने का हुक्म दे दें। कचहरी अभी देर में खुलेगी।

महेंद्रकुमार—हाँ, नियम-विरुद्ध तो है, लेकिन तुम्हारा लिहाज करना पड़ता है। रुपये मुनीम को दे दो, मैं रिहाई का हुक्म लिखे देता हूँ। कितने रुपये जमा किये?

इंद्रदत्त—शाम को कुछ सज्जनों के पास गया था। कोई पाँच सौ रुपये हो गये।

महेंद्रकुमार—तब तो तुम इस कला में निपुण हो।

इंद्रदत्त—मुझे आपसे एक याचना और करनी है। कुछ लोग सूरदास को इज्ज़त के साथ उनके घर पहुँचाना चाहते हैं। सम्भव है, दो-चार सौ दर्शक जमा हो जायें। मैं आपसे इसकी आज्ञा चाहता हूँ।

महेंद्रकुमार—जुलूस निकालने की आज्ञा नहीं दे सकता। शांति-भंग होने की शंका है।

इंद्रदत्त—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि पत्ता तक न हिलेगा।

महेंद्रकुमार—यह नहीं हो सकता।

इंद्रदत्त समझ गया कि राजा साहब से आग्रह करना व्यर्थ है। जाकर मुनीम को रुपये दिये और ताँगे की ओर चला। सहसा राजा साहब ने पूछा—जुलूस तो न निकलेगा न?

इंद्रदत्त—निकलेगा। मैं रोकना चाहूँ, तो भी नहीं रोक सकता।

इंद्रदत्त वहाँ से अपने मित्रें को सूचना देने के लिए चले। इधर उनके जाते ही राजा साहब ने जेल के दारोग़ा को टेलीफोन कर दिया कि सूरदास और सुभागी को छोड़ दिया जाये और उन्हें बंद गाड़ी में बैठाकर उनके घर पहुँचा दिया जाये। जब इंद्रदत्त सवारी, बाजे आदि लिए

हुए जेल पहुँचे, तो मालूम हुआ, पिंजरा खाली है, चिड़ियाँ उड़ गईं। उन्हीं पाँवों पाँड़ेपुर चले। देखा, तो सूरदास एक नीम के नीचे राख के ढेर के पास बैठा हुआ है। एक ओर सुभागी सिर झुकाए खड़ी है। इंद्रदत्त को देखते ही जगधर और अन्य कई आदमी इधर-उधर से आकर जमा हो गये।

इंद्रदत्त—सूरदास, तुमने तो बड़ी जल्दी की। लोग तुम्हारा जुलूस निकालने की तैयारियाँ किये हुए थे। बतलाओ, वे रुपये क्या हों, जो जुलूस के लिए जमा किये गये थे?

सूरदास—अच्छा ही हुआ कि मैं यहाँ चुपके से आ गया, नहीं तो सहर-भर में घूमना पड़ता! आप लोगों ने जरीबाना देकर छुड़ा दिया, यही कौन कम धरम किया?

इंद्रदत्त—अच्छा बताओ, ये रुपये क्या किये जायें? तुम्हें दे दूँ?

सूरदास—कितने रुपये होंगे?

इंद्रदत्त—कोई तीन सौ होंगे।

सूरदास—बहुत हैं। इतने में भैरो की दूकान मजे में बन जायेगी।

जगधर को बुरा लगा, बोला—पहले अपनी झोंपड़ी की तो फिकर करो!

सूरदास—मैं इसी पेड़ के नीचे पड़ रहा करूँगा, या पण्डाजी के दालान में।

जगधर—जिसकी दूकान जली है, वह बनवाएगा, तुम्हें क्या चिन्ता है?

सूरदास—जली तो है मेरे ही कारण!

जगधर—तुम्हारा घर भी तो जला है?

सूरदास—यह भी बनेगा, लेकिन पीछे से। दूकान न बनी, तो भैरो को कितना घाटा होगा! मेरी भीख तो एक दिन भी बंद न होगी!

जगधर—बहुत सराहने से भी आदमी का मन बिगड़ जाता है।

इंद्रदत्त—सूरदास, तुम इन लोगों को बकने दो, तुम ज्ञानी हो, ज्ञान-पक्ष को मत छोड़ो। ये रुपये पास रखे जाता हूँ; जो इच्छा हो, करना।

सुभागी ने सूरदास से कहा—उसकी दूकान बनवाने का नाम न लेना।

सूरदास—मेरे घर से पहले उसकी दूकान बनेगी। यह बदनामी सिर पर कौन ले कि सूरदास ने भैरो का घर जलवा दिया।

सुभागी—उससे तुम कितना ही दबो, पर वह तुम्हारा दुसमन ही बना रहेगा।

सूरदास—तुम दोनों फिर एक हो जाओगे, तब तुझसे पूछूँगा।

सुभागी—भगवान मार डालें, पर उसका मुँह न दिखावें।

सूरदास—मैं कहे देता हूँ, एक दिन तू भैरो के घर की देवी बनेगी।

सूरदास रुपये लिए हुए भैरो के घर की ओर चला। भैरो रपट करने जाना तो चाहता था; पर शंका हो रही थी कि कहीं सूरदास की झोंपड़ी की भी बात चली, तो क्या जवाब दूँगा। इतने में सूरदास को सामने आते देखा। विस्मित होकर बोला—अरे, जरीबाना दे आया क्या?

बुढ़िया बोली—बेटा, इसे ज़रूर देवता का इष्ट है, नहीं तो वहाँ से कैसे भाग आता!

सूरदास ने बढ़कर कहा—भैरो, मैं ईश्वर को बीच में डालकर कहता हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम कि तुम्हारी दूकान किसने जलाई। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि यह किसी मेरे हितू का काम है।

भैरो—पहले यह बताओ कि तुम छूट कैसे आये? मुझे तो यही बड़ा अचरज है।

सूरदास—भगवान् की इच्छा। सहर के कुछ धर्मात्मा आदमियों ने आपस में चंदा करके मेरा जरीबाना भी दे दिया और कोई तीन सौ रुपये जो बच रहे हैं, मुझे दे गये हैं। मैं तुमसे यह कहने आया हूँ कि तुम ये रुपये लेकर अपनी दूकान बनवा लो, जिसमें तुम्हारा हरज न हो। मैं सब रुपये ले आया हूँ।

भैरो भौंचक्का होकर उसकी ओर ताकने लगा, जैसे कोई आदमी आकाश से मोतियों की वर्षा होते देखे। मन में प्रश्न उठा, यह अंधा सचमुच रुपये देने के लिए आया है, या मुझे ताना दे रहा है। ज़रा इसका मन टटोलना चाहिए, बोला—तुम अपने रुपये रखो, यहाँ कोई रुपयों के भूखे नहीं हैं! प्यासों मरते भी हों, तो दुसमन के हाथ से पानी न पिएँ।

सूरदास—भैरो, हमारी-तुम्हारी दुसमनी कैसी? मैं तो किसी को अपना दुसमन नहीं देखता। चार दिन की जिंदगानी के लिए क्या किसी से दुसमनी की जाये! तुम्हारी जगह मैं होता और समझता कि तुम मेरी घरवाली को बहकाए लिए जाते हो, तो मैं भी वही करता, जो तुमने किया। मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुम्हारे ही लिए मैंने ये रुपये लिए, नहीं तो मेरे लिए तो पेड़ की छाँह बहुत थी। ये रुपये लो और भगवान् का नाम लेकर दूकान बनवाने में हाथ लगा दो।

भैरो को इन वाक्यों में सहृदयता और सज्जनता की झलक दिखायी दी। नरम होकर बोला—आओ, बैठो, चिलम पियो। कुछ बातें हों, तो समझ में आये। दुसमन के साथ कोई भलाई नहीं करता। तुम मेरे साथ क्यों इतनी मेहरबानी करते हो?

सूरदास—तुमने मेरे साथ कौन-सी दुसमनी की? तुमने वही किया, जो तुम्हारा धरम था! मैं रात-भर हिरासत में बैठा यही सोचता रहा कि तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो, मैंने तुम्हारे साथ कोई बुराई नहीं की, तो मुझे मालूम हुआ कि तुम मेरे साथ कोई बुराई नहीं कर रहे हो। यही तुम्हारा धरम है। मैं सुभागी को अपने घर से निकाल नहीं सकता। मेरे यहाँ रहेगी, तो कौन जाने, कभी तुम्हीं उसे फिर रख लो।

भैरो का मलिन हृदय इस आंतरिक निर्मलता से प्रतिबिम्बित हो गया। आज पहली बार उसे सूरदास की नेकनीयती पर विश्वास हुआ। सोचा—अगर इसका दिल साफ न होता, तो मुझसे ऐसी बातें क्यों करता? अंधा है, अपाहिज है, भीख माँगता है; पर उसकी कितनी मरजाद है, बड़े-बड़े आदमी आव-भगत करते हैं! मैं कितना अधम, नीच आदमी हूँ, पैसे के लिए रात-दिन दगा-फरेब करता रहता हूँ। सुभागी के बारे में मुझे सक-ही-सक था। यह सोचता हुआ वह सूरदास के पास आकर बोला—सूरे, अब तक मैंने तुम्हारे साथ जो बुराई-भलाई की, उसे माफ करो। ये रुपये मुझे मत दो, मेरे पास रुपये हैं। ये भी तुम्हारे ही रुपये हैं। दूकान बनवा लूँगा। सुभागी पर भी मुझे अब कोई संदेह नहीं रहा। मैं भगवान् को बीच में डालकर कहता हूँ, अब मैं कभी उसे कोई कड़ी बात तक न कहूँगा। मैं अब तक धोखे में पड़ा

हुआ था। सुभागी को मेरे यहाँ आने पर राजी कर दो। वह तुम्हारी बात को नाहीं तो न करेगी?

सूरदास—राजी ही है, बस उसे यही डर है कि तुम फिर मारने-पीटने लगोगे।

भैरो—अब मैं उसे भी पहचान गया। मैं उसके जोग नहीं था। (धीरे से) आज तुमसे कहता हूँ, पहली बार भी मैंने ही तुम्हारे घर में आग लगाई थी और तुम्हारे रुपये चुराए थे।

सूरदास—उन बातों को भूल जाओ भैरो! मुझे सब मालूम है। संसार में कौन है, जो कहे कि मैं गंगाजल हूँ। हमारी बड़ी भूल यही है कि खेल को खेल की तरह नहीं खेलते। खेलना तो इस तरह चाहिए कि निगाह जीत पर रहे; पर हार से घबराए नहीं, ईमान को न छोड़े। यह हार-जीत तो जिंदगानी के साथ है। हाँ, एक सलाह की बात कहता हूँ। तुम ताड़ी की दुकान छोड़कर कोई दूसरा रोजगार क्यों नहीं करते?

भैरो—जो कहो, वह करूँ। यह रोजगार खराब है। रात-दिन जुआरी, चोर, बदमाश आदमियों का ही साथ रहता है। उन्हीं की बातें सुनो, उन्हीं के ढंग सीखो। बताओ, क्या करूँ?

सूरदास—लकड़ी का रोजगार क्यों नहीं कर लेते? बुरा नहीं है। आजकल यहाँ परदेसी बहुत आयेंगे, बिक्री भी अच्छी होगी। जहाँ ताड़ी की दूकान थी, वहीं एक बाड़ा बनवा दो और इन रुपयों से लकड़ी का काम करना शुरू कर दो।

भैरो—बहुत अच्छी बात है। मगर ये रुपये अपने ही पास रखो। मेरे मन का क्या ठिकाना!

सूरदास—मेरे घर न द्वार, रखूँगा कहाँ?

भैरो—इससे तुम अपना घर बनवा लो।

सूरदास—तुम्हें लकड़ी की दूकान से नफ़ा हो, तो बनवा देना।

भैरो—सुभागी को समझा दो।

सूरदास—समझा दूँगा।

भैरो घर गया, तो बुढ़िया बोली—तुझसे मेल करने आया था न?

भैरो—हाँ, क्यों न मेल करेगा, मैं बड़ा लाट हूँ न! बुढ़ापे में तुझे और कुछ नहीं सूझता। यह आदमी नहीं, साधु है!

33

फ़ैक्टरी करीब-करीब तैयार हो गयी थी। पहले तो मज़दूर-मिस्त्री आदि प्रायः मिल के बरामदों ही में रहते थे, वहीं पेड़ों के नीचे खाना पकाते और सोते; लेकिन जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गयी, तो मुहल्ले में मकान ले-लेकर रहने लगे। पाँड़ेपुर छोटी-सी बस्ती तो थी ही, वहाँ इतने मकान कहाँ थे, नतीजा यह हुआ कि मुहल्लेवाले किराए के लालच से परदेशियों को अपने-अपने घरों में ठहराने लगे। कोई परदे की दीवार खिंचवा लेता था, कोई खुद झोंपड़ा बनाकर उसमें रहने लगता और मकान भड़ैतों को दे देता। भैरो ने लकड़ी की दूकान खोल ली थी। वह अपनी माँ के साथ वहीं रहने लगा, अपना घर किराए पर दे दिया। यहाँ तक लोभ ने लोगों को घेरा कि बजरंगी ने भी मकान का एक हिस्सा उठा दिया। हाँ, सूरदास ने किसी को नहीं टिकाया। वह अपने नये मकान में, जो इंदुरानी के गुप्त दान से बना था, सुभागी के साथ रहता था। सुभागी अभी तक भैरो के साथ रहने पर राज़ी न हुई थी।

दोपहर का समय था। सूरदास एक पेड़ के नीचे झपकियाँ ले रहा था कि इतने में तहसील के एक चपरासी ने आकर उसे पुकारा और एक सरकारी परवाना दिया।

सूरदास समझ गया कि हो-न-हो ज़मीन ही का कुछ झगड़ा है। परवाना लिए हुए मिल में आया कि किसी बाबू से पढ़वाए। प्रभु सेवक ने देख लिया। तुरंत अपने कमरे में बुला लिया और परवाने को देखा। लिखा हुआ था—अपनी ज़मीन के मुआवज़े के 1000 रुपये तहसील में आकर ले जाओ।

सूरदास—कुल एक हज़ार हैं?

प्रभु सेवक—हाँ, इतना ही तो लिखा है।

सूरदास—तो मैं रुपये लेने न जाऊँगा। साहब ने पाँच हज़ार देने कहे थे, उसके एक हज़ार रहे, घूस-घास में सौ-पचास और उड़ जायेंगे।

प्रभु सेवक—रुपये न लोगे, जब्त हो जायेंगे। यहाँ तो सरकार इसी ताक में रहती है कि किसी तरह प्रजा का धन उड़ा ले।

सूरदास—ग़रीबों की चीज़ है, तो बाजार-भाव से दाम देना चाहिए। एक तो जबरजस्ती ज़मीन ले ली, उस पर मनमाना दाम दे दिया। यह तो कोई न्याय नहीं है।

प्रभु सेवक—सरकार यहाँ न्याय करने नहीं आयी है भाई, राज्य करने आयी है। दीवानी

में मुक़दमा दायर करोगे, वहाँ भी सरकार ही के नौकर-चाकर न्याय-पद पर बैठे हुए हैं।

सूरदास—मैं कुछ न लूँगा। जब राजा ही अधर्म करने लगा, तो परजा कहाँ तक जान बचाती फिरेगी?

सहसा इंद्रदत्त आ कर बोले—प्रभु, आज डेरा कूच है, राजपूताना जा रहा हूँ।

प्रभु सेवक—व्यर्थ जाते हो। एक तो ऐसी सख्त गरमी, दूसरे वहाँ की दशा अब बड़ी भयानक हो रही है। नाहक कहीं फँस-फँसा जाओगे।

इंद्रदत्त—बस, एक बार विनयसिंह से मिलना चाहता हूँ। मैं देखना चाहता हूँ कि उनके स्वभाव, चरित्र, आचार-विचार में इतना परिवर्तन, नहीं रूपांतर कैसे हो गया।

प्रभु सेवक—ज़रूर कोई-न-कोई रहस्य है। अगर वह विचलित हुए, तो मैं समझ जाऊँगा कि धर्मनिष्ठा का संसार से लोप हो गया।

इंद्रदत्त—यह न कहो प्रभु, मानव-चरित्र बहुत ही दुर्बोध वस्तु है। मुझे तो विनय की काया-पलट पर इतना क्रोध आता है कि पाऊँ, तो गोली मार दूँ। तुम्हें तो मालूम है, हम लोगों ने बंगाल में प्राणियों के उद्धार के लिए कितना भगीरथ प्रयत्न किया। कई-कई दिन तक तो हम लोगों को दाना तक न मयस्सर होता था।

सूरदास—भैया, कौन लोग इस भाँति ग़रीबों का पालन करते हैं?

इंद्रदत्त—अरे सूरदास! तुम यहाँ कोने में खड़े हो! कहो, सब कुशल है न?

सूरदास—सब भगवान् की दया है। तुम अभी किन लोगों की बात कर रहे थे?

इंद्रदत्त—अपने ही साथियों की। कुँवर भरतसिंह ने कुछ जवान आदमियों को संगठित करके एक संगत बना दी है, उसके खर्च के लिए थोड़ी-सी ज़मीन भी दान कर दी है। देश की यथाशक्ति सेवा करना ही हमारा परम धर्म और व्रत है।

सूरदास—भैया, यह तो बड़े पुन्न का काम है। ऐसे महात्मा लोगों के तो दरसन करने चाहिएं। तो भैया, तुम लोग चंदे भी उगाहते होगे?

इंद्रदत्त—हाँ, जिसकी इच्छा होती है, चंदा भी दे देता है; लेकिन हम लोग खुद नहीं माँगते फिरते।

सूरदास—मैं आप लोगों के साथ चलूँ, तो आप मुझे रखेंगे? यहाँ पड़े-पड़े अपना पेट पालता हूँ, आपके साथ रहूँगा, तो आदमी हो जाऊँगा।

इंद्रदत्त ने प्रभु सेवक से अँगरेज़ी में कहा—कितना भोला आदमी है। परोपकार इसके लिए कोई इच्छित कर्म नहीं रहा, इसके चरित्र में मिल गया है।

सूरदास ने फिर कहा—और कुछ तो न कर सकूँगा, गँवार ठहरा, हाँ, जिसके सरहाने बैठा दीजिएगा, पंखा झलता रहूँगा, पीठ पर जो लाद दीजिएगा, लिए फिरूँगा।

इंद्रदत्त—तुम सामान्य रीति से जो कुछ करते हो, वह उससे कहीं बढ़कर है, जो हम लोग कभी-कभी विशेष अवसरों पर करते हैं। दुश्मन के साथ नेकी करना रोगियों की सेवा से छोटा काम नहीं है।

सूरदास का मुख-मंडल खिल उठा, जैसे किसी कवि ने किसी रसिक से दाद पायी हो।

बोला—भैया, हमारी क्या बात चलाते हो? बुरा न मानो, तो एक बात कहूँ। छोटा मुँह बड़ी बात है; लेकिन आपका हुकुम हो, तो मुझे मावजे के जो रुपये मिले हैं, उन्हें आपकी संगत की भेंट कर दूँ।

इंद्रदत्त—कैसे रुपये?

प्रभु सेवक—इसकी कथा बड़ी लम्बी है। बस, इतना ही समझ लो कि पापा ने राजा महेंद्रकुमार की सहायता से इसकी जो ज़मीन ले ली थी, उसका एक हज़ार रुपया इसे मुआवज़ा दिया गया है। यह मिल उसी लूट के माल पर बन रही है।

इंद्रदत्त—तुमने अपने पापा को मना नहीं किया? मैं तो अपने बाप से लड़ जाता, मिल बनती या भाड़ में जाती! ऐसी दशा में तुम्हारा कम-से-कम यह कर्त्तव्य था कि मिल से बिल्कुल अलग रहते। बाप की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है, यह मानता हूँ; लेकिन जब बाप अन्याय करने लगे, तो लड़का उसका अनुगामी बनने के लिए बाध्य नहीं। सूरदास, हम लोग तुम-जैसे ग़रीबों से चंदा नहीं लेते। हमारे दाता धनी लोग हैं।

सूरदास—तुम न लोगे, तो कोई चोर ले जायेगा। मेरे पास रुपयों का काम क्या है।

इंद्रदत्त—देना ही चाहते हो, तो कुआँ खुदवा दो। बहुत दिनों तक तुम्हारा नाम रहेगा।

सूरदास—भैया, मुझे नाम की भूख नहीं। ये रुपये लेकर अपनी संगत में दे दो।

प्रभु सेवक—(अंगरेज़ी में) मित्र, इसके रुपये ले लो, नहीं तो इसे चैन न आयेगा। इस दयाशीलता को देवोपम कहना उसका अपमान करना है।

इंद्रदत्त—सूरदास, अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो मैं रुपये ले लूँगा, लेकिन इस शर्त पर कि तुम्हें जब कोई ज़रूरत हो, हमें तुरंत सूचना देना।

सूरदास—तो मैं आज रुपये लाऊँगा।

इंद्रदत्त—अकेले न जाना, नहीं तो कचहरी के कुत्ते तुम्हें दिक करेंगे। मैं साथ चलूँगा।

सूरदास—अब एक अरज आपसे भी है साहब! आप पुतलीघर के मजूरों के लिए घर क्यों नहीं बनवा देते? जब तक मजूर लोग वहाँ काम पर नहीं आ जाते, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं। रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती। किसी को समझाने जाओ, तो लड़ने पर उतारू हो जाता है।

यह कहकर सूरदास चुप हो गया और सोचने लगा, मैंने बात बढ़ाकर तो नहीं कही! इंद्रदत्त ने प्रभु सेवक से कहा—भाई, यह तो अच्छी बात नहीं। अपने पापा से कहो, इसका प्रबंध करें। न जाने, तुम्हारे वे सब सिद्धान्त क्या हो गये।

प्रभु सेवक—मुझे तो सिरे से इस काम से घृणा है, मैं न इसे पसंद करता हूँ और न इसके योग्य हूँ। मेरे जीवन का सुख-स्वर्ग तो यही है कि किसी पहाड़ी के दामन में एक जलधारा के तट पर, छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर पड़ा रहूँ। खैर, आज ही पापा से कहूँगा।

इंद्रदत्त—हाँ, आज ही कहना। तुम्हें संकोच हो, तो मैं कह दूँ?

प्रभु सेवक—नहीं जी, इसमें क्या संकोच है। इससे तो मेरा रंग और जम जायेगा। उन्हें तो मुझसे यही रोना है कि मैं किसी बात में बोलता ही नहीं।

इंद्रदत्त यहाँ से चले तो सूरदास बहुत दूर तक उनके साथ सेवा-समिति की बातें पूछता हुआ चला आया। जब इंद्रदत्त ने बहुत आग्रह किया, तो लौटा। इंद्रदत्त वहीं सड़क पर खड़ा उस दुर्बल, दीन प्राणी को हवा के झोंके से लड़खड़ाते वृक्षों की छाँह में विलीन होते देखता रहा। शायद यह निश्चय करना चाहता था कि वह कोई देवता है या मनुष्य!

34

प्रभु सेवक ने घर आते ही मकान का ज़िक्र छेड़ दिया। जान सेवक यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए कि अब इसने कारखाने की ओर ध्यान देना शुरू किया। बोले—हाँ, मकानों का बनना बहुत ज़रूरी है। इंजीनियर से कहो, एक नक्शा बनाएँ। मैं प्रबंधकारिणी समिति के सामने इस प्रस्ताव को रखूँगा। कुलियों के लिए अलग-अलग मकान बनवाने की ज़रूरत नहीं। लम्बे-लम्बे बैरक बनवा दिये जायें, ताकि एक-एक कमरे में 10-12 मज़दूर रह सकें।

प्रभु सेवक—लेकिन ऐसे भी कुली तो होंगे, जो बाल-बच्चों के साथ रहना चाहेंगे?

मिसेज़ सेवक—कुलियों के बाल-बच्चों को वहाँ जगह दी जायेगी तो एक शहर आबाद हो जायेगा। जैसे फौज के सिपाही रहते हैं, उसी तरह कुली भी रहेंगे। हाँ, एक छोटा-सा चर्च ज़रूर होना चाहिए। पादरी के लिए एक मकान भी होना ज़रूरी है।

ईश्वर सेवक—खुदा तुझे सलामत रखे बेटी, तेरी यह राय मुझे बहुत पसंद आयी। कुलियों के लिए धार्मिक भोजन शारीरिक भोजन से कम आवश्यक नहीं। प्रभु मसीह, मुझे अपने दामन में छिपा।

जॉन सेवक—लेकिन यह तो विचार कीजिए कि मैं यह साम्प्रदायिक प्रस्ताव समिति के सम्मुख कैसे रख सकूँगा? मेरे सिवा समिति में और कोई क्रिश्चियन नहीं है।

मिसेज़ सेवक—जब कोई धार्मिक प्रश्न आता है, तो तुम उसमें खामख्वाह मीन-मेख निकालने लगते हो! हिंदू-कुली तो तुरंत किसी वृक्ष के नीचे दो-चार ईंट-पत्थर रखकर जल चढ़ाना शुरू कर देंगे, मुसलमान लोग भी खुले मैदान में नमाज पढ़ लेंगे, तो फिर चर्च से किसी को क्या आपत्ति हो सकती है!

ईश्वर सेवक—प्रभु मसीह, मुझ पर अपनी दया-दृष्टि कर। बाइबिल के उपदेश प्राणिमात्र के लिए शांतिप्रिय हैं।

जॉन सेवक—मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इस तजवीज़ को कैसे पेश करूँगा। अगर कम्पनी कोई मंदिर या मस्जिद बनवाने का निश्चय करती, तो मैं भी चर्च बनवाने पर ज़ोर देता।

ईश्वर सेवक—हम औरों के पीछे क्यों चलें? हमारे हाथों में दीपक है, कंधे पर लाठी, कमर में तलवार, पैरों में शक्ति, हम क्यों आगे न चलें? क्यों दूसरों का मुँह देखें?

मि. जॉन सेवक ने पिता से और ज़्यादा तर्क-वितर्क करना व्यर्थ समझा। भोजन के पश्चात् वह आधी रात तक प्रभु सेवक के साथ बैठे हुए भिन्न-भिन्न रूप से नक्शे बनाते-बिगाड़ते रहे—किधर की ज़मीन ली जाये, कितनी ज़मीन काफ़ी होगी, कितना व्यय होगा, कितने मकान बनेंगे। प्रभु सेवक हाँ-हाँ करता जाता था। प्रभु सेवक को इस समय एक नया शीर्षक सूझा था और उस पर अपने रचना-कौशल की छटा दिखाने के लिए वह अधीर हो रहा था। जॉन सेवक ने भी अब विश्राम करना उचित समझा। एक क्षण में प्रभु किसी दूसरे ही जगत् में था। रचयिता अपनी रचना का सबसे चतुर पारखी होता है। प्रभु सेवक की कल्पना कभी इतनी ऊँची न उड़ी थी। एक-एक पद्य लिखकर वह उसे स्वर में पढ़ता और झूमता। जब कविता समाप्त हो गयी, तो वह सोचने लगा—देखूँ, इसका कवि-समाज कितना आदर करता है। कल कुँवर साहब से कहूँगा कि मेरा संग्रह प्रकाशित करा दीजिए। नवीन युग के कवियों में तो किसी का मुझसे टक्कर लेने का दावा हो नहीं सकता, और पुराने ढंग के कवियों से मेरा कोई मुकाबला नहीं। मेरे और उनके क्षेत्र अलग हैं।

प्रातःकाल वह मुँह-हाथ धो, कविता जेब में रख, बिना जलपान किये घर से चला, तो जॉन सेवक ने पूछा—क्या जलपान न करोगे? इतने सबेरे कहाँ जाते हो?

प्रभु सेवक ने रुखाई से उत्तर दिया—जरा कुँवर साहब की तरफ़ जाता हूँ।

जॉन सेवक—तो उनसे कल के प्रस्ताव के सम्बंध में बातचीत करना। अगर वह सहमत हो जायें, तो फिर किसी को विरोध करने का साहस न होगा।

मिसेज़ सेवक—वही चर्च के विषय में न?

जॉन सेवक—नहीं, तुम्हें अपने चर्च ही की पड़ी हुई है। मैंने निश्चय किया है कि पाँड़ेपुर की बस्ती खाली करा ली जाये और वहीं कुलियों के मकान बनवाए जायें। उससे अच्छी वहाँ कोई दूसरी जगह नहीं नज़र आती।

प्रभु सेवक—रात को आपने उस बस्ती को लेने की चर्चा तो न की थी!

जॉन सेवक—नहीं, आओ ज़रा यह नक्शा देखो। बस्ती के बाहर किसी तरफ़ काफ़ी ज़मीन नहीं है। एक तरफ़ सरकारी पागलखाना है, तो दूसरी तरफ रायसाहब का बाग, तीसरी तरफ़ हमारी मिल। बस्ती के सिवा और जगह ही कहाँ है? और, बस्ती है ही कौन-सी बड़ी! मुश्किल से 15-20 या अधिक से अधिक 30 घर होंगे। उनका मुआवज़ा देकर ज़मीन लेने की क्यों न कोशिश की जाये?

प्रभु सेवक—अगर बस्ती को उजाड़कर मज़दूरों के लिए मकान बनवाने हैं, तो रहने ही दीजिए, किसी-न-किसी तरह गुजर तो हो ही रहा है।

जॉन सेवक—अगर ऐसी बस्तियों की रक्षा का विचार किया होता, तो आज यहाँ एक बंगला भी नज़र न आता। ये बँगले ऊसर में नहीं बने हैं।

प्रभु सेवक—मुझे ऐसे बँगले से झोंपड़ी ही पसंद है, जिसके लिए कई ग़रीबों के घर गिराने पड़ें। मैं कुँवर साहब से इस विषय में कुछ न कहूँगा। आप खुद कहिएगा।

जॉन सेवक—यह तुम्हारी अकर्मण्यता है। इसे संतोष और दया कहकर तुम्हें धोखे में न डालूँगा। तुम जीवन की सुख-सामग्रियाँ तो चाहते हो, लेकिन उन सामग्रियां के लिए जिन

साधनों की ज़रूरत है, उनसे दूर भागते हो। तुम मन और वचन से वर्तमान सामाजिक प्रणाली की कितनी ही उपेक्षा क्यों न करो, मुझे ज़रा भी आपत्ति न होगी। लेकिन कर्मक्षेत्र में आकर उन भावों को उसी भाँति भूल जाओ, जैसे अच्छे-से-अच्छे सूट पहनकर मोटर पर सैर करते समय तुम त्याग, संतोष और आत्मनिग्रह को भूल जाते हो।

प्रभु सेवक और कितने ही विलास-भोगियों की भाँति सिद्धान्त-रूप से जनवाद के कायल थे। जिन परिस्थितियों में उनका लालन-पालन हुआ था, जिन संस्कारों से उनका मानसिक और आत्मिक विकास हुआ था, उनसे मुक्त हो जाने के लिए जिस नैतिक साहस की, उद्दंडता की ज़रूरत है, उससे वह रहित थे। आज तक कभी किसी ने उनके आचरण की आलोचना न की थी, किसी ने उनको व्यंग्य का निशाना न बनाया था, परन्तु पिता के मुख से वह व्यंग्य सुनकर ऐसे तिलमिला उठे, मानो चाबुक पड़ गया हो। प्रभु सेवक को मानो काली नागिन ने डस लिया, जिसके काटे को लहर भी नहीं आती। उनकी सोई हुई लज्जा जाग उठी। अपनी अधोगति का ज्ञान हुआ। कुँवर साहब के यहाँ जाने को तैयार थे, गाड़ी तैयार कराई थी; पर वहाँ न गये। आकर अपने कमरे में बैठ गये। उनकी आँखें भर आयीं, इस वजह से नहीं कि मैं इतने दिनों तक भ्रम में पड़ा रहा, बल्कि इस ख़्याल से कि पिताजी को मेरा पालन-पोषण अखरता है—यह लताड़ पाकर मेरे लिए डूब मरने की बात होगी, अगर मैं उनका आश्रित बना रहूँ। मुझे स्वयं अपनी जीविका का प्रश्न हल करना चाहिए। आज यहाँ से डेरा कूच है, यही निश्चय है। चलकर कुँवर साहब से कहता हूँ, मुझे भी स्वयं-सेवकों में ले लीजिए। कुछ दिनों उस जीवन का आनंद भी उठाऊँ। देखूँ, मुझमें और भी कोई योग्यता है, या केवल पद्य-रचना ही कर सकता हूँ।

दोपहर को जब घर के सब प्राणी पंखों के नीचे आराम से सोए, तो प्रभु सेवक ने चुपके से निकलकर कुँवर साहब के भवन का रास्ता लिया। पहले तो जी में आया कि कपड़े उतार दूँ और केवल एक कुरता पहनकर चला जाऊँ। पर इन फटे हालों घर से कभी न निकला था। उसने केवल अपनी कविताओं की कापी ले ली और चल खड़ा हुआ।

कुँवर साहब दोपहर को सोने के आदी नहीं थे। फर्श पर लेटे कुछ सोच रहे थे। प्रभु सेवक जाकर बैठ गये। कुँवर साहब ने कुछ न पूछा, कैसे आये, क्यों उदास हो? आध घंटे तक बैठे रहने के बाद भी प्रभु सेवक को उनसे अपने विषय में कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। वह निराश होकर चलने के लिए उठे तो भरतसिंह बोले—क्यों-क्यों, जल्दी क्या है? या इसीलिए कि मैंने बातें नहीं कीं? बातों की कमी नहीं है; इतनी बातें तुमसे करनी हैं कि समझ में नहीं आता, शुरू क्यों कर करूँ! तुम्हारे विचार में विनय ने रियासत का पक्ष लेने में भूल की?

प्रभु सेवक ने कहा—इस पर भिन्न-भिन्न पहलुओं से विचार किया जा सकता है।

कुँवर—इसका आशय यह है कि बुरा किया। उसकी माता का भी यही विचार है। वह तो इतनी चिढ़ी हुई हैं कि उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहतीं। लेकिन मेरा विचार है कि उसने जिस नीति का अनुसरण किया है, उस पर उसे लज्जित होने का कोई कारण नहीं। कदाचित् उन दशाओं में मैं भी यही करता। सोफ़ी से उसे प्रेम न होता, तो भी उस अवसर पर जनता ने

जो विद्रोह किया, वह उसके साम्यवाद के सिद्धान्तों को हिला देने को काफ़ी था। पर जब यह सिद्ध है कि सोफ़िया का अनुराग उसके रोम-रोम में समाया है, तो उसका आचरण क्षम्य ही नहीं, सर्वथा स्तुत्य है। वह धर्म केवल जत्थेबंदी है, जहाँ अपनी बिरादरी से बाहर विवाह करना वर्जित हो, क्योंकि इससे उसकी क्षति होने का भय है। अगर विनय इतना भाग्यवान हो कि सोफ़िया को विवाह-सूत्र में बाँध सके, तो कम-से-कम मुझे ज़रा भी आपत्ति न होगी।

प्रभु सेवक—मगर रानीजी को जितना दुराग्रह है, उतना ही मामा को भी है।

कुँवर—इसका फल यह होगा कि दोनों का जीवन नष्ट हो जायेगा। ये दोनों अमूल्य रत्न धर्म के हाथों मिट्टी में मिल जायेंगे।

प्रभु सेवक—मैं तो खुद इन झगड़ों से इतना तंग आ गया हूँ कि मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है, घर से अलग हो जाऊँ। घर की साम्प्रदायिक जलवायु और सामाजिक बंधनों से मेरी आत्मा दुर्बल हुई जा रही है। घर से निकल जाने के सिवा मुझे और कुछ नहीं सूझता। मुझे व्यवसाय से पहले ही बहुत प्रेम न था, और अब, इतने दिनों के अनुभव के बाद तो मुझे उससे घृणा हो गयी है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए जितनी स्वार्थपरता और नर-हत्या की ज़रूरत है, वह मुझसे नहीं हो सकती।

कुँवर—तुम तो इतने विरक्त कभी न थे, आखिर बात क्या है?

प्रभु सेवक ने झेंपते हुए कहा—अब तक जीवन के कुटिल रहस्यों को न जानता था। पर अब देख रहा हूँ कि वास्तविक दशा उससे कहीं जटिल है, जितनी मैं समझता था। व्यवसाय कुछ नहीं है, अगर नर-हत्या नहीं है। आदि से अंत तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है। कारखाना अभी बनकर तैयार नहीं हुआ, और भूमि-विस्तार की समस्या उपस्थित हो गयी। मिस्त्रियों और कारीगरों के लिए बस्ती में रहने की जगह नहीं है। इसलिए पापा की राय है कि उसी कानूनी दफा के अनुसार पाँड़ेपुर पर भी अधिकार कर लिया जाये और बाशिंदों को मुआवज़ा देकर अलग कर दिया जाये। राजा महेन्द्रकुमार की पापा से मित्रता है ही और वर्तमान जिलाधीश मि. सेनापति रईसों से उतना ही मेल-जोल रखते हैं जितना मि. क्लार्क उनसे दूर रहते थे। पापा का प्रस्ताव बिना किसी कठिनाई के स्वीकृत हो जायेगा और मुहल्लेवाले ज़बरदस्ती निकाल दिये जायेंगे। मुझसे यह अत्याचार नहीं देखा जाता। मैं इसे रोक नहीं सकता, पर इतना तो कर सकता हूँ कि उससे अलग रहूँ।

कुँवर—तुम्हारे विचार में कम्पनी को नफ़ा होगा?

प्रभु सेवक—मैं समझता हूँ, पहले ही साल 25 रुपये सैकड़े नफ़ा होगा।

कुँवर—तो क्या तुमने कारखाने से अलग होने का निश्चय कर लिया?

प्रभु सेवक—पक्का निश्चय कर लिया।

कुँवर—तुम्हारे पापा काम सँभाल सकेंगे?

प्रभु सेवक—पापा ऐसे आधे दर्जन कारखानों को सँभाल सकते हैं। उनमें अद्भुत अध्यवसाय है। ज़मीन का प्रस्ताव बहुत जल्दी कार्यकारिणी समिति के सामने आयेगा। मेरी आपसे यह विनीत प्रार्थना है कि आप उसे स्वीकृत न होने दें।

कुँवर—(मुस्कराकर) बुड्ढा आदमी इतनी आसानी से नई शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता। मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं नज़र आती कि बस्तीवालों का मुआवज़ा देकर ज़मीन ले ली जाये। जब तुम कारखाने से अलग ही हो रहे हो, तो तुम्हें इन झगड़ों से क्या मतलब?

प्रभु सेवक—तो आप इस प्रस्ताव का विरोध न करेंगे?

कुँवर—मैं ऐसे प्रस्ताव का विरोध न करूँगा, जिससे कारखाने की हानि हो। कारखाने से मेरा स्वार्थ-सम्बंध है, मैं उसकी उन्नति में बाधक नहीं हो सकता। हाँ, तुम्हारा वहाँ से निकल आना मेरी समिति के लिए शुभ लक्षण है। तुम्हें मालूम है, समिति के अध्यक्ष डॉक्टर गांगुली हैं; पर वृद्धावस्था और काउंसिल के कामों में व्यस्त रहने के कारण वह इस भार से मुक्त होना चाहते हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम इस भार को ग्रहण करो। समिति मँझधार में है, विनय के आचरण ने उसे भयंकर दशा में डाल दिया है। तुम्हें ईश्वर ने विद्या, बुद्धि, उत्साह, सब कुछ दिया है। तुम चाहो, तो समिति को उबार सकते हो, और मुझे विश्वास है, तुम मुझे निराश न करोगे।

प्रभु सेवक की आँखें सजल हो गईं। वह अपने को इस सम्मान के योग्य न समझते थे। बोले—मैं इतना उत्तरदायित्व स्वीकार करने के योग्य नहीं हूँ। यह आपकी कृपा है कि मुझे इस योग्य समझते हैं।

कुँवर साहब ने उत्साह बढ़ाते हुए कहा—मुझे विश्वास है कि कुछ दिनों डॉ. गांगुली के साथ रहकर तुम इस काम में निपुण हो जाओगे। सज्जन लोग सदैव अपनी क्षमता की अपेक्षा करते हैं, पर मैं तुम्हें पहचानता हूँ। मैंने विनय को इस पद के लिए चुन रखा था, लेकिन उसकी वर्तमान दशा देखकर मुझे अब उस पर विश्वास नहीं रहा। मैं चाहता हूँ, इस संस्था को ऐसी सुव्यवस्थित दशा में छोड़ जाऊँ कि यह निर्विघ्न अपना काम करती रहे। ऐसा न हुआ, तो मैं शांति से प्राण भी न त्याग सकूँगा। मैं इसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हूँ। मैंने दस लाख रुपये इस खाते में जमा कर दिये हैं और इच्छा है कि इस पर प्रतिवर्ष एक लाख और बढ़ाता जाऊँ। इतने विशाल देश के लिए 100 सेवक बहुत कम हैं। कम-से-कम 500 आदमी होने चाहिए। अगर दस साल भी और जीवित रहा, तो शायद मेरी यह मनोकामना पूरी हो जाये। मैं तुमसे साग्रह...

डॉक्टर गांगुली आ पहुँचे, और प्रभु सेवक को देखकर बोले—अच्छा, तुम यहाँ कुँवर साहब को मंत्र दे रहा है, तुम्हारा पापा महेन्द्रकुमार को पट्टी पढ़ा रहा है। पर मैंने साफ-साफ कह दिया कि ऐसा बात नहीं हो सकता। तुम्हारा मिल है, उसका हानि-लाभ तुमको और तुम्हारे हिस्सेदार को होगा, ग़रीबों को क्यों उनके घर से निकालता है; पर मेरी कोई नहीं सुनता।

कुँवर—यह बेचारे तो खुद उस प्रस्ताव का विरोध करते हैं। आज इसी बात पर पिता और पुत्र में मनमुटाव भी हो गया है। यह घर से चले आये हैं और कारखाने से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते।

गांगुली—अच्छा, ऐसा बात है! बहुत अच्छा हुआ। ऐसा विचारवान् लोग मील का काम नहीं कर सकता। ऐसा लोग मील में जायेगा, तो हम लोग कहाँ से आदमी लायेगा? प्रभु, हम

बूढ़ा हो गया, कल मर जायेगा। तुम हमारा काम क्यों नहीं सँभालता? हमारा सेवक दल तुम्हारा रेस्पेक्ट करता है। तुम हमें इस भार से मुक्त कर सकता है। बुड्ढा आदमी और सब कुछ कर सकता है, उत्साह तो उसके बस का बात नहीं!

प्रभु सेवक—मैं तो सेवकों में भरती होने के लिए घर से आया ही हूँ, पर मैं उसका नायक होने के योग्य नहीं हूँ। यह पद आप ही को शोभा देता है।

गांगुली—(हँसकर) हः हः, काम तो अयोग्य ही लोग करता है। योग्य आदमी काम नहीं करता, वह बस बातें करता है। वह काम का ढंग बता देगा; कहाँ कौन भूल हो गया, यह बता देगा; पर काम नहीं कर सकता। हम तो ऐसा आदमी चाहता है, जो मोटा खाए, मोटा पहने, गली-गली, नगर-नगर दौड़े, ग़रीबों का उपकार करे, कठिनाइयों में उनका मदद करे। तो कब से आयेगा?

प्रभु सेवक—मैं तो अभी से हाज़िर हूँ।

गांगुली—(मुस्कराकर) तो पहला लड़ाई तुमको अपने पापा से लड़ना पड़ेगा।

प्रभु सेवक—मैं समझता हूँ, पापा स्वयं इस प्रस्ताव को न उठाएँगे।

गांगुली—नहीं-नहीं, वह कभी अपना बात नहीं छोड़ेगा। हमको उससे युद्ध करना पड़ेगा। तुमको उससे लड़ना पड़ेगा। हम और सब कुछ छोड़ देगा, न्याय को न छोड़ेगा, यही हमारा व्रत है। तुमको खूब सोच-विचारकर तब यहाँ आना होगा।

प्रभु सेवक—अब मृत्यु ही मुझे इस संस्था से अलग कर सकती है।

गांगुली—जॉन सेवक तुमसे कहेगा, हम न्याय-अन्याय के झगड़े में नहीं पड़ता, तुम हमारा बेटा है, हमारा आज्ञा पालन करना तुम्हारा धर्म है, तो तुम क्या जवाब देगा? मेरा बाप ऐसा कहता, तो मैं उससे कभी न कहता कि हम तुम्हारा बात न मानेगा।

प्रभु सेवक—पिता का सम्मान करना दूसरी बात है, सिद्धान्त का पालन करना दूसरी। अगर आपके पिता कहते कि जाकर किसी के घर में आग लगा दो, तो आप आग लगा देते?

गांगुली—नहीं-नहीं, कभी नहीं, हम कभी आग न लगाता, चाहे पिताजी हमीं को क्यों न जला देता। लेकिन पिता ऐसी आज्ञा दे भी तो नहीं सकता।

सहसा रानी जाह्नवी ने पदार्पण किया, गांगुली को देखकर बोलीं—आपकी तबीयत काउंसिल से नहीं थकती, मैं तो ज़िन्दगी से थक गयी। डॉक्टर साहब, सब कुछ सहा जाता है, बेटे का कुत्सित व्यवहार नहीं सहा जाता, विशेषतः ऐसे बेटे का, जिसके बनाने के लिए कोई बात उठा न रखी गयी हो। दुष्ट जसंवतनगर के विद्रोह में मर गया होता, तो मुझे इतना दुःख न होता।

कुँवर साहब और ज़्यादा न सुन सके। उठकर बाहर चले गये। रानी ने उसी धुन में कहा —यह मेरा दुःख क्या समझेंगे! इनका सारा जीवन भोग-विलास में बीता है। मैंने तो विनय के लिए कठिन तप किया है, उसे साथ लेकर महीनों पहाड़ों में पैदल चली हूँ, केवल इसीलिए कि छुटपन से ही उसे कठिनाइयों का आदी बनाऊँ। अगर वह कभी नौकर पर बिगड़ा है, तो तुरंत उसे समझाया है; कभी सत्य से मुँह मोड़ते देखा, तो तुरंत तिरस्कार किया। यह मेरी

व्यथा क्यों जानेंगे?

यह कहते-कहते रानी की निगाह प्रभु सेवक पर पड़ गयी, जो कोने में खड़ा था। उनकी ज़बान बंद हो गयी। सोफ़िया के प्रति जो कठोर वचन मन में थे, वे मन ही में रह गये। केवल इतना बोलीं—'जाते समय मुझसे मिल लीजिएगा' और चली गईं।

35

विनयसिंह आबादी में दाखिल हुए, तो सबेरा हो गया था। थोड़ी दूर चले थे कि एक बुढ़िया लाठी टेकती सामने से आती हुई दिखायी दी। इन्हें देखकर बोली—बेटा, ग़रीब हूँ। बन पड़े, तो कुछ दे दो। धरम होगा।

नायकराम—सवेरे राम-नाम नहीं लेती, भीख माँगने चल खड़ी हुई।

बुढ़िया—बेटा, धूप में मुझसे चला नहीं जाता, सिर में चक्कर आ जाता है। नई-नई विपत है, भैया, भगवान् उस अधम पापी विनयसिंह का बुरा करे, उसी के कारण बुढ़ापे में यह दिन देखना पड़ा; नहीं तो बेटा दूकान करता था, हम घर में रानी बनी बैठी रहती थीं, तुम परदेसी हो, न जानते होगे, यहाँ दंगा हो गया था। मेरा लड़का दूकान से हिला तक नहीं, पर उस निगोड़े विनयसिंह ने सहादत दे दी कि यह भी दंगे में मिला हुआ था। पुलिस सहादत पाते ही दौड़ी आ गयी, लड़का पकड़ लिया गया और तीन साल की सजा हो गयी। एक हज़ार जरीबाना हुआ। घर की बीस हज़ार की गृहस्थी तहस-नहस हो गयी। घर में बहू है, बच्चे हैं, इसी तरह माँग-जाँचकर उनको पालती-पोसती हूँ।

विनय ने जेब से एक रुपया निकालकर बुढ़िया को दिया और आकाश की ओर देखकर ठंडी साँस ली। ऐसी मानसिक वेदना उन्हें कभी न हुई थी।

वृद्धा आशीर्वाद देती हुई चली गयी। जब यहाँ से और आगे चले, तो विनय ने कहा—पण्डाजी, जल्दी से एक मोटर ठीक कर लो। मुझे भय लग रहा है कि कोई मुझे पहचान न ले। अपने प्राणों का इतना भय मुझे कभी न हुआ था। अगर ऐसे ही दो-एक दृश्य और सामने आये, तो शायद मैं आत्मघात कर लूँ। आह! मेरा कितना पतन हुआ है!

नायकराम—भैया, भूल-चूक आदमी ही से होती है। अब उसका पछतावा न करो।

विनय—यह भूल-चूक नहीं है, ईश्वरीय विधान है; ऐसा ज्ञात होता है कि ईश्वर सद्व्रतधारियों की कठिन परीक्षा लेते हैं। मैं परीक्षा में गिर गया, बुरी तरह गिर गया।

नायकराम का विचार था कि ज़रा जेल के दारोग़ा साहब का कुशल-समाचार पूछते चलें; लेकिन मौका न देखा तो तुरंत मोटर-सर्विस के दफ्तर में गये। वहाँ मालूम हुआ कि दरबार ने सब मोटरों को एक सप्ताह के लिए रोक लिया है।

दोनों आदमियों ने जलपान किया और उदयपुर चले। आज विनय ने जितनी बात की,

उतनी शायद और कभी न की थी, और वह भी नायकराम-जैसे लट्ठ गँवार से। सोफ़ी की तीव्र आलोचना अब उन्हें सर्वथा न्याय-संगत जान पड़ती थी। बोले—पण्डाजी, यह समझ लो कि अगर दरबार ने उन सब कैदियों को छोड़ न दिया, जो मेरी शहादत से फँसे हैं, तो मैं भी अपना मुँह किसी को न दिखाऊँगा।

नायकराम—भैया, तुम घर न जाओगे, तो मैं भी न जाऊँगा।

विनय—बस, तुम्हारी यही बात बुरी मालूम होती है। तुम्हारा और मेरा कौन-सा साथ है। मैं पातकी हूँ। मुझे अपने पातकों का प्रायश्चित्त करना है। मैंने अब तक सोफ़िया को न पहचाना था। आज मालूम हुआ कि उसका हृदय कितना विशाल है। मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है। हाँ, शिकायत केवल इस बात की है कि उसने मुझे अपना न समझा। वह अगर समझती कि यह मेरे हैं, तो मेरे साथ इतनी निर्दयता क्यों की? वह यह क्यों भूल गयी कि मनुष्य से भूलें होती ही हैं। सम्भव है, अपना समझकर ही उसने मुझे यह कठोर दंड दिया हो। मगर अपनों को दंड देते समय इसका तो ध्यान रखना चाहिए कि आत्मीयता का सूत्र न टूटने पाए! यह सोचकर मुझे ऐसा मालूम होता है कि उसका दिल मुझसे सदैव के लिए फिर गया।

नायकराम—ईसाइन है न! किसी अँगरेज़ को गाँठेगी।

विनय—तुम बिल्कुल बेहूदे हो, बात करने की तमीज़ नहीं। मैं कहता हूँ, वह अब उम्र-भर ब्रह्मचारिणी रहेगी। मैंने उस जन्म में न जाने कौन-सी तपस्या की थी, जिसका सुफल इतने दिनों भोगा। जन्म से ईसाइन भले ही हो, पर संस्कारों से, कर्मों से वह आर्य महिला है। मैंने उसे कहीं का न रखा। आप भी डूबा, उसे भी ले डूबा। अब तुम देखना कि रियासत को वह कैसा नाकों चने चबवाती है।

नायकराम—हाँ, है तो ऐसी ही आफत की परकाला।

विनय—फिर वही मूर्खता की बात! मैं तुमसे कितनी बार कह चुका कि मेरे सामने उसका नाम इज्जत से लिया करो। मैं उसके विषय में किसी के मुख से एक भी अनुचित शब्द नहीं सुन सकता। प्रेम अनंत क्षमा, अनंत उदारता, अनंत धैर्य से परिपूर्ण होता है।

यों बातें करते हुए दोनों ने दोपहर तक आधी मंजिल काटी। दोपहर को आराम करने लगे, तो ऐसे सोए कि शाम हो गयी। रात को वहीं ठहरना पड़ा। सराय मौजूद थी, विशेष कष्ट न हुआ। हाँ, नायकराम को आज ज़िन्दगी में पहली बार भंग न मिली और वह बहुत दुखी रहे।

विनय ने कहा—ऐसा व्यसन क्यों करते हो कि एक दिन भी उसके बिना न रहा जाये? छोड़ो इसे, भले आदमी, व्यर्थ में प्राण दिये देते हो।

नायकराम—भैया, इस जन्म में तो छूटती नहीं, आगे की दैव जाने।

दूसरे दिन दोनों आदमी दस बजते-बजते उदयपुर पहुँच गये। पहला आदमी जो उन्हें दिखायी दिया, वह स्वयं सरदार साहब थे। वह टमटम पर बैठे हुए दरबार से आ रहे थे। विनय को देखते ही घोड़ा रोक दिया और पूछा—आप कहाँ?

विनय ने कहा—यहीं तो आ रहा था।

सरदार—कोई मोटर न मिली? व्यर्थ इतना कष्ट उठाया।

विनय—मुझे पैदल चलने का अभ्यास है, विशेष कष्ट नहीं हुआ। मैं आज आपसे मिलना चाहता हूँ, और एकांत में। आप कब मिल सकेंगे?

सरदार—आपके लिए समय निश्चित करने की ज़रूरत नहीं। जब जी चाहे, चले आइएगा, बल्कि वहीं ठहरिएगा भी।

विनय—अच्छी बात है।

सरदार साहब ने घोड़ों को चाबुक लगाया और चल दिये। विनयसिंह ने एक ताँगा किया और थोड़ी देर में सरदार साहब के मकान पर जा पहुँचे।

सरदार साहब ने पूछा—इमर कई दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला। आपके साथ के और लोग कहाँ हैं? कुछ मिसेज़ क्लार्क का पता चला?

विनय—साथ के आदमी तो पीछे हैं; लेकिन मिसेज़ क्लार्क का कहीं पता न चला, सारा परिश्रम विफल हो गया।

सरदार साहब ने विस्मित होकर कहा—यह आप क्या कह रहे हैं? मुझे जो सूचना मिली है, वह तो यह कहती है कि आपसे मिसेज़ क्लार्क की मुलाकात हुई और अब मुझे आपसे होशियार रहना चाहिए। देखिए, मैं वह खत आपको दिखाता हूँ।

यह कहकर सरदार साहब मेज़ के पास गये, एक बादामी मोटे कागज़ पर लिखा हुआ खत उठा लाये और विनयसिंह के हाथ में रख दिया।

जीवन में यह पहला अवसर था कि विनय ने असत्य का आश्रय लिया था। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। नायकराम भी फर्श पर बैठे हुए थे। समझ गये कि यह असमंजस में पड़े हुए हैं। बोले—कुँवर साहब, जरा मुझे दीजिए, किसका खत है?

विनय—इंद्रदत्त का।

नायकराम—उस पगले का खत है! वही लौंडा न, जो सेवा समिति में आकर गाया करता था? सरकार, पगला है। ऐसी ही ऊटपटाँग बात किया करता है।

सरदार—नहीं, किसी पगले लौंडे की लेखन-शैली ऐसी नहीं हो सकती। उसके पत्र इधर कई दिनों से बराबर मेरे पास आ रहे हैं। कभी मुझको धमकाता है, कभी नीति के उपदेश देता है। अगर यह वही इंद्रदत्त है, जिसे आप जानते हैं, तो और भी आश्चर्य है। सम्भव है, उसके नाम से कोई दूसरा आदमी पत्र लिखता हो।

विनयसिंह तो ऐसे सिटपिटा गये, जैसे कोई सेवक अपने स्वामी का संदूक खोलता हुआ पकड़ा जाये। मन में झुँझला रहे थे कि क्यों मैंने मिथ्या भाषण किया? मुझे छिपाने की ज़रूरत ही क्या थी? लेकिन इंद्रदत्त का इस पत्र से क्या उद्देश्य है?

तब वह सकुचाते हुए बोले—सरदार साहब, क्षमा कीजिएगा, मैं आपसे झूठ बोल रहा था। इस पत्र में जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। मैं इस घटना को आपसे गुप्त रखना चाहता था, क्योंकि मैंने उन्हें इसका वचन दे दिया था। निःसंदेह मेरी मुलाकात मिसेज़ क्लार्क से हुई। वह वहाँ बहुत आराम से हैं, यहाँ तक कि मेरे बहुत आग्रह करने पर भी मेरे साथ न

आयीं।

सरदार साहब ने बेपरवाही से कहा—राजनीति में वचन का बहुत महत्त्व नहीं है। अब मुझे आपसे चौकन्ना रहना पड़ेगा। अगर इस पत्र ने मुझे सारी बातों का परिचय न दे दिया होता, तो आपने तो मुझे मुगालता देने में कोई बात उठा न रखी थी। खैर, यह क्या बात है? मिसेज़ क्लार्क आयीं क्यों नहीं? क्या बदमाशों ने उन्हें आने न दिया?

विनय—वीरपालसिंह तो बड़ी खुशी से उन्हें भेजना चाहता था। यही एक साधन है, जिससे वह अपनी प्राणरक्षा कर सकता है। लेकिन वह खुद ही आने पर तैयार न हुईं।

सरदार—मिस्टर क्लार्क से नाराज़ तो नहीं हैं?

विनय—हो सकता है। जिस दिन विद्रोह हुआ था, मिस्टर क्लार्क नशे में अचेत पड़े थे, शायद इसी कारण उनसे चिढ़ गयी हों। हाँ, उनसे भेंट होने से यह बात स्पष्ट हो गयी कि हमने जसंवतनगरवालों का दमन करने में बहुत-सी बातें न्याय-विरुद्ध कीं और मैं आपसे बड़े आग्रह से प्रार्थना करता हूँ कि उन ग़रीबों पर दया होनी चाहिए।

सरदार साहब जान-बूझकर किसी पर अन्याय न करना चाहते थे, पर अन्याय कर चुकने के बाद अपनी भूल स्वीकार करने का उन्हें साहस न होता था।

सरदार साहब ने कुछ सकुचाते हुए कहा—या तो मैं मान सकता हूँ कि मिसेज़ क्लार्क जीवित हैं। लेकिन आप तो क्या, ब्रह्मा भी आकर कहें कि वह वहाँ प्रसन्न हैं और आना नहीं चाहतीं, तो भी मैं स्वीकार न करूँगा। विद्रोहियों ने मिसेज़ क्लार्क को यह कहने के लिए मजबूर किया होगा। वे मिसेज़ क्लार्क को उस वक़्त तक न छोड़ेंगे, जब तक हम सारे कैदियों को मुक्त न कर दें।

विनय—मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सकता। मिसेज़ क्लार्क बहुत प्रसन्न दिखायी देती थीं। पीड़ित हृदय कभी इतना निश्शंक नहीं हो सकता।

सरदार—यह आपकी आँखों का दोष है। अगर मिसेज़ क्लार्क स्वयं आकर मुझसे कहें कि मैं बड़े आराम से हूँ, तो भी मुझे विश्वास न आयेगा।

विनय—सरदार साहब, अगर थोड़ी देर के लिए मुझे यह विश्वास भी हो जाये कि मिसेज़ क्लार्क ने दबाव में आकर मुझसे ये बातें कही हैं, तो भी अब ठंडे हृदय से विचार करने पर मुझे ज्ञात हो रहा है कि इतनी निर्दयता से दमन न करना चाहिए था। अब उन अभियुक्तों पर कुछ रिआयत होनी चाहिए।

सरदार—रिआयत राजनीति में पराजय का सूचक है। अगर मैं यह भी मान लूँ कि मिसेज़ क्लार्क वहाँ आराम से हैं और स्वतंत्र हैं, तथा हमने जसवंतनगरवालों पर घोर अत्याचार किया, फिर भी मैं रिआयत करने को तैयार नहीं हूँ। आप जानते हैं, रिआयत का परिणाम क्या होगा? विद्रोहियों के हौसले बढ़ जायेंगे, उनके दिल से रियासत का भय जाता रहेगा और जब भय न रहा तो राज्य भी नहीं रह सकता।

विनय—किन्तु जो लोग उसमें सम्मिलित न थे, वे तो बेकसूर हैं?

सरदार—कदापि नहीं, उनका कर्त्तव्य था कि अधिकारियों को पहले ही से सचेत कर

देते। उदासीनता बहुधा अपराध से भी भयंकर होती है।

विनय—कम-से-कम इतना तो कीजिए कि जो लोग मेरी शहादत पर पकड़े गये हैं, उन्हें बरी कर दीजिए।

सरदार—असम्भव है।

विनय—मैं शासन-नीति के नाते नहीं, दया और सौजन्य के नाते आपसे यह विनीत आग्रह करता हूँ।

सरदार—यह असम्भव है। आप इसका परिणाम नहीं सोच रहे हैं।

विनय—लेकिन मेरी प्रार्थना को स्वीकार न करने का परिणाम भी अच्छा न होगा। आप समस्या को और जटिल बना रहे हैं।

सरदार—मैं खुले विद्रोह से नहीं डरता। डरता हूँ केवल सेवकों से; प्रजा के हितैषियों से और उनसे यहाँ की प्रजा का जी भर गया है।

विनय—अगर इसी नीयत से आपने मेरे हाथों प्रजा का अनिष्ट कराया, तो आपने मेरे साथ घोर विश्वासघात किया, लेकिन मैं आपको सतर्क किये देता हूँ कि यदि आपने मेरा अनुरोध न माना, तो आप रियासत में ऐसा विप्लव मचा देंगे, जो रियासत की जड़ हिला देगा। मैं यहाँ से मिस्टर क्लार्क के पास जाता हूँ। उनसे भी यही अनुरोध करूँगा और यदि वह भी न सुनेंगे, तो हिज़ हाइनेस की सेवा में यही प्रस्ताव उपस्थित करूँगा। अगर उन्होंने भी न सुना, तो फिर इस रियासत का मुझसे बड़ा और कोई शत्रु न होगा।

यह कहकर विनयसिंह उठ खड़े हुए और नायकराम को साथ लेकर मिस्टर क्लार्क के बँगले पर जा पहुँचे। विनय ने अरदली से पूछा, तो मालूम हुआ कि साहब काम कर रहे हैं। विनय बाग में टहलने लगे। जब आध घंटे तक साहब ने न बुलाया तो उठे और सीधे क्लार्क के कमरे में घुस गये, वह इन्हें देखते ही उठ बैठे, और बोले—आइए-आइए, आप ही को याद कर रहा था। कहिए, क्या समाचार है? सोफ़िया का पता तो आप लगा ही आये होंगे?

विनय—जी हाँ, लगा आया।

यह कहकर विनय ने क्लार्क से भी वही कथा कही, जो सरदार साहब से कही थी, और वही अनुरोध किया।

क्लार्क—मिस सोफ़ी आपके साथ क्यों नहीं आयीं?

विनय—यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन वहाँ उन्हें कोई कष्ट नहीं है।

क्लार्क—तो फिर आपने नई खोज क्या की? मैंने तो समझा था, शायद आपके आने से इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ेगा। यह देखिए, सोफ़िया का पत्र है। आज ही आया है। इसे आपको दिखा तो नहीं सकता, पर इतना कह सकता हूँ कि वह इस वक़्त मेरे सामने आ जाये, तो उस पर पिस्तौल चलाने में एक क्षण भी विलम्ब न करूँगा। अब मुझे मालूम हुआ कि धर्मपरायणता छल और कुटिलता का दूसरा नाम है। सोफ़िया का सरल स्वभाव और धार्मिक प्रवृत्ति देखकर मैंने समझा, मुझे इच्छित वस्तु मिल गयी। अपने समाज की उपेक्षा करके मैं उसके पास जाने-आने लगा और अंत में प्रोपोज़ किया। सोफ़िया ने स्वीकार तो कर

लिया, पर कुछ दिनों तक विवाह को स्थगित रखना चाहा। मैं क्या जानता था कि उसके दिल में क्या है? राज़ी हो गया। उसी अवस्था में वह मेरे साथ यहाँ आयी, बल्कि यों कहिए कि वही मुझे यहाँ लायी। दुनिया समझती है, वह मेरी विवाहिता थी, कदापि नहीं। हमारी तो मँगनी भी न हुई थी। अब जाकर रहस्य खुला कि वह बोलशेविकों की एजेंट है। प्रेम का स्वाँग भरकर वह अँगरेज़ों के आंतरिक भावों का ज्ञान प्राप्त करना चाहती थी। उसका यह उद्देश्य पूरा हो गया। मुझसे जो कुछ काम निकल सकता था, वह निकालकर उसने मुझे दुतकार दिया। विनयसिंह, तुम नहीं अनुमान कर सकते कि मैं उससे कितना प्रेम करता था। इस अनुपम रूपराशि के नीचे इतनी घोर कुटिलता! इस पत्र ने मेरी आँखें खोल दीं और अब मैं आपकी सहायता नहीं कर सकता; बल्कि आपसे भी अनुरोध करता हूँ कि इस बोलशेविक आंदोलन को शांत करने में रियासत की सहायता कीजिए। सोफ़ी-जैसी चतुर, कार्यशील, धुन की पक्की युवती के हाथों में यह आंदोलन कितना भयंकर हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

विनय यहाँ से भी निराश होकर बाहर निकले, तो सोचने लगे, अब महाराजा साहब के पास जाना व्यर्थ है। वह साफ कह देंगे, जब मंत्री और एजेंट कुछ नहीं कर सकते, तो मैं क्या कर सकता हूँ। लेकिन जी न माना, ताँगेवाले को राजभवन की ओर चलने का हुक्म दिया।

नायकराम—क्या गिटपिट करता रहा? आया राह पर?

विनय—यही राह पर आ जाता, तो महाराज साहब के पास क्यों चलते?

नायकराम—हज़ार-दो हज़ार माँगता हो, तो दे क्यों नहीं देते? अफसर छोटे हों या बड़े, लोभी होते हैं।

विनय—क्या पागलों की-सी बात करते हो! अँगरेज़ में अगर ये बुराइयाँ होतीं, तो इस देश से ये लोग कब के सिधार गये होते। यों अँगरेज़ भी रिश्वत लेते हैं परन्तु उसी दशा में, जब राज्य को उससे कोई हानि न पहुँचे!

नायकराम चुप हो रहे। ताँगा राज-भवन की ओर जा रहा था। रास्ते में कई सड़कें, कई पाठशालाएँ, कई चिकित्सालय मिले। इन सबों के नाम अँगरेज़ी थे। ताँगा जब राजभवन के सामने पहुँचा तो विनयसिंह उतर पड़े और महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी के पास गये। यह एक अँगरेज़ था। विनय से हाथ मिलाते हुए बोला—महाराजा साहब तो अभी पूजा पर है। ग्यारह बजे बैठा था, चार बजे उठेगा। क्या आप लोग इतनी देर तक पूजा किया करता है?

विनय—हमारे यहाँ ऐसे-ऐसे पूजा करनेवाले हैं, जो कई-कई दिन तक समाधि में मग्न रहते हैं। पूजा का वह भाग, जिसमें परमात्मा या अन्य देवताओं से कल्याण की याचना की जाती है, शीघ्र समाप्त हो जाता है; लेकिन वह भाग, जिसमें योग-क्रियाओं द्वारा आत्मशुद्धि की जाती है, बहुत विशद होता है।

सेक्रेटरी—हम जिस राजा के साथ पहले था, वह सबेरे से दो बजे तक पूजा करता था, तब भोजन करता था और चार बजे सोता था। फिर नौ बजे पूजा पर बैठ जाता था और दो बजे रात को उठता था। वह एक घंटे के लिए सूर्यास्त के समय बाहर निकलता था। यह न तो उपासना है, न आत्मशुद्धि की क्रिया, केवल एक प्रकार की अकर्मण्यता है।

विनय का चित्त इस समय इतना व्यग्र हो रहा था कि उन्होंने इस कटाक्ष का कुछ उत्तर न दिया। सोचने लगे—अगर राजा साहब ने भी साफ जवाब दिया, तो मेरे लिए क्या करना उचित होगा? अभी इतने बेगुनाहों के खून से हाथ रँगे हुए हैं, कहीं सोफ़ी ने गुप्त हत्याओं का अभिनय आरम्भ किया, तो उसका खून भी मेरी ही गर्दन पर होगा। इस विचार से वह इतने व्याकुल हुए कि एक ठंडी साँस लेकर आराम-कुर्सी पर लेट गये और आँखें बंद कर लीं। रात-भर के जागे, दिन-भर के थके थे ही, एक झपकी आ गयी। जब आँखें खुलीं, तो चार बज चुके थे। सेक्रेटरी से पूछा—अब तो हिज़ हाइनेस पूजा पर से उठ गये होंगे?

सेक्रेटरी—आपने तो एक लम्बी नींद ले ली। यह कहकर उसने टेलीफोन द्वारा कहा—कुँवर विनयसिंह हिज़ हाइनेस से मिलना चाहते हैं।

एक क्षण में जवाब आया—आने दो।

विनयसिंह महाराज के दीवान-खाने में पहुँचे। महाराज साहब मसनद पर बैठे हुए थे। उनकी देह पर केवल एक रेशमी चादर थी और गले में एक तुलसी की माला। मुख से साधुता झलक रही थी। विनय को देखते ही बोले—आओ जी, बहुत दिन लगा दिये। मिस्टर क्लार्क की मेम का कुछ पता चला?

विनय—जी हाँ, वीरपालसिंह के घर है, और बड़े आराम से है। वास्तव में अभी मिस्टर क्लार्क से उसका विवाह नहीं हुआ है, केवल मँगनी हुई है। इनके पास आने पर राज़ी नहीं होती है।

महाराज—हरि-हरि! यह तो तुमने विचित्र बात सुनाई! इनके पास आती ही नहीं! समझ गया, उन सबों ने वशीकरण कर दिया होगा। शिव-शिव!

विनय—अब विचार कीजिए कि वह तो जीवित है, और सुखी है और यहाँ हम लोगों ने कितने ही निरपराधियों को जेल में डाल दिया और कितने ही को शारीरिक दंड दिये।

महाराजा—शिव-शिव! घोर अनर्थ हुआ।

विनय—भ्रम में हम लोगों ने ग़रीबों पर कैसे-कैसे अत्याचार किये कि उनकी याद ही से रोमांच हो आता है। ज्यों ही यह बात लोगों को मालूम हो जायेगी, जनता में हाहाकर मच जायेगा। इसलिए अब यही उचित है कि हम अपनी भूल स्वीकार कर लें और कैदियों को मुक्त कर दें।

महाराज—हरि-हरि, यह कैसे होगा बेटा? राजों से भी कहीं भूल होती है। शिव-शिव! राजा तो ईश्वर का अवतार है। हरि-हरि! वह एक बार जो कर देता है, उसे फिर नहीं मिटा सकता। शिव-शिव!

विनय—अपनी भूल स्वीकार करने में जो गौरव है, वह अन्याय को चिरायु रखने में नहीं। कैदियों को मुक्त करने की आज्ञा दी जाये, जुर्माने के रुपये लौटा दिये जायें और जिन्हें शारीरिक दंड दिये गये हैं, उन्हें धन देकर संतुष्ट किया जाये। इससे आपकी कीर्ति अमर हो जायेगी और लोग आपका यश गाएँगे।

महाराज—शिव-शिव! बेटा, तुम राजनीति की चालें नहीं जानते। यहाँ एक क़ैदी भी छोड़ा गया और रियासत पर वज्र गिरा। सरकार कहेगी, मेम को न जाने किस नीयत से

छिपाए हुए है, कदाचित् उस पर मोहित है, तभी तो पहले दंड का स्वाँग भरकर अब विद्रोहियों को छोड़े देता है! शिव-शिव! रियासत धूल में मिल जायेगी, रसातल को चली जायेगी। हरि-हरि! हमारे लिए न कोई कानून है, न कोई धारा। जो अपराध चाहा, लगा दिया; जो दंड चाहा, दे दिया। न कहीं अपील है, न फरियाद। हरि-हरि! शिव-शिव! सौ-पचास निर्दोष मनुष्यों का जेल में पड़ा रहना कोई असाधारण बात नहीं। वहाँ भी तो भोजन-वस्त्र मिलता ही है। अब तो जेलखानों की दशा बहुत अच्छी है। हाँ, तुम्हारी खातिर से इतना कर सकता हूँ कि जिन परिवारों का कोई रक्षक न रह गया हो, अथवा जो जुरमाने के कारण दरिद्र हो गये हों, उन्हें गुप्त रीति से कुछ सहायता दे दी जाये। हरि-हरि! तुम अभी क्लार्क के पास तो नहीं गये थे?

विनय—गया था, वहीं से तो आ रहा हूँ।

महाराजा—(घबराकर) उनसे तो यह नहीं कह दिया कि मेम साहब बड़े आराम से हैं और आने पर राज़ी नहीं है?

विनय—कह दिया, छिपाने की कोई बात न थी। किसी भाँति उन्हें धैर्य तो हो।

महाराजा—(जाँघ पर हाथ पटककर) सर्वनाश कर दिया! शिव-शिव! आग तो लगा दी, अब मेरे पास क्यों आये हो। शिव-शिव! क्लार्क कहेगा, क़ैदी क़ैद में आराम से है, तो इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य है। अवश्य कहेगा! ऐसा कहना स्वाभाविक भी है। मेरे अदिन आ गये, शिव-शिव! मूर्ख! तुझे क्लार्क से कहना चाहिए था, वहाँ मेम को नाना प्रकार के कष्ट दिये जा रहे हैं, अनेक यातनाएँ मिल रही हैं। ओह! शिव-शिव!

सहसा प्राइवेट सेक्रेटरी ने फोन में कहा—मिस्टर क्लार्क आ रहे हैं।

महाराजा ने खड़े होकर कहा—आ गया यमदूत, आ गया। कोई है? कोट-पतलून लाओ। तुम जाओ विनय, चले जाओ, रियासत से चले जाओ। फिर मुझे मुँह मत दिखाना। जल्दी पगड़ी लाओ, यहाँ से उगालदान हटा दो।

विनय को आज राजा से घृणा हो गयी। सोचा, इतना पतन, इतनी कायरता! यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है! वह बाहर निकले, तो नायकराम ने पूछा—कैसी छनी?

विनय—इनकी तो मारे भय से आप ही जान निकली जाती है। ऐसा डरते हैं, मानो मिस्टर क्लार्क कोई शेर हैं और इन्हें आते-ही-आते खा जायेंगे।

नायकराम—मेरी सलाह है कि घर लौट चलो, इस जंजाल में कब तक जान खपाओगे?

विनय ने सजल नयन होकर कहा—पण्डाजी, कौन मुँह लेकर घर जाऊँ? मैं अब घर जाने योग्य नहीं रहा। माताजी मेरा मुँह न देखेंगी। चला था जाति की सेवा करने, जाता हूँ सैकड़ों परिवारों का सर्वनाश करके। मेरे लिए तो अब डूब मरने के सिवा और कुछ नहीं रहा। न घर का रहा न घाट का। इस वक़्त अगर अचानक मेरी मृत्यु हो जाये, तो समझूँ, ईश्वर ने मुझे उबार लिया।

इस तरह ग्लानि में डूबे हुए विनय उस मकान में पहुँचे, जो रियासत की ओर से उन्हें ठहरने को मिला था। विनय को देखते ही नौकर-चाकर दौड़े। विनय ताँगे से उतरकर सीधे दीवानखाने में गये। अन्दर क़दम रखा ही था कि मेज़ पर बंद लिफाफा मिला। यह रानी

जाह्नवी का पत्र था। लिफाफा खोलने की हिम्मत न पड़ी। लिफाफा हाथ में लिए हुए सोचने लगे—इसमें मेरी भर्त्सना के सिवा और क्या होगा? इंद्रदत्त ने जो कुछ कहा है, वही तीव्र शब्दों में यहाँ दुहराया गया होगा। लिफाफा ज्यों-का-त्यों रख दिया और सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए? क्यों न यहाँ बाज़ार में खड़े होकर जनता को सूचित कर दूँ कि दरबार तुम्हारे साथ यह अन्याय कर रहा है? लेकिन इस समय पीड़ित जनता को सहायता की ज़रूरत है, धन कहाँ से आये? पिताजी को लिखूँ कि आप इस समय मेरे पास जितने रुपये भेज सकें, भेज दीजिए? रुपये आ जायें, तो यहाँ अनाथों में बाँट दूँ? नहीं, सबसे पहले वायसराय से मिलूँ और यहाँ की यथार्थ स्थिति उनसे बयान करूँ। सम्भव है, वह दरबार पर दबाव डालकर कैदियों को मुक्त करा दें। यही ठीक है। अब मुझे सब काम छोड़कर वाइसराय से मिलना चाहिए।

वह यात्र की तैयारियाँ करने लगे, लेकिन रानीजी के पत्र की याद, सिर पर लटकती हुई नंगी तलवार की भाँति उन्हें उद्विग्न कर रही थी। आखिर उनसे न रहा गया, पत्र खोलकर पढ़ने लगे:

विनय, आज से कई मास पहले मैं तुम्हारी माता होने पर गर्व करती थी, पर आज तुम्हें पुत्र कहते हुए लज्जा से गड़ी जाती हूँ। तुम क्या थे, क्या हो गये! और अगर यही दशा रही, तो अभी और न जाने, क्या हो जाओगे। अगर मैं जानती कि तुम इस भाँति मेरा सिर नीचा करोगे, तो आज तुम इस संसार में न होते। निर्दयी! इसीलिए तूने मेरी कोख में जन्म लिया था! इसीलिए मैंने तुझे अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला था! अब मैं और कुछ न लिखूँगी। तुम्हें समझाना व्यर्थ है। जब उम्र-भर की शिक्षा निष्फल हो गयी, तो एक पत्र की शिक्षा का क्या फल होगा! अब केवल दो इच्छाएँ हैं—ईश्वर से तो यह कि तुम-जैसी संतान सातवें वैरी को भी न दें, और तुमसे यह कि अपने जीवन की क्रूर लीला को समाप्त करो।

विनय यह पत्र पढ़कर रोए नहीं, क्रुद्ध नहीं हुए, ग्लानित भी नहीं हुए। उनके नेत्र गर्वोत्तेजना से चमक उठे, मुख-मंडल पर आरक्त तेज की आभा दिखायी दी, जैसी किसी कवीश्वर के मुख से अपने पूर्वजों की वीरगाथा सुनकर मनचले राजपूत का मुख तमतमा उठे —माता, तुम्हें धन्य है। स्वर्ग में बैठी हुई वीर राजपूतानियों की वीर आत्माएँ तुम्हारी आदर्शवादिता पर गर्व करती होंगी। मैंने अब तक तुम्हारी अलौकिक वीरता का परिचय न पाया था। मैं तुम्हारा पुत्र कहलाने योग्य नहीं हूँ। तुम्हारे फैसले के आगे सिर झुकाता हूँ। अगर मेरे पास सौ जानें होतीं, तो मैं सबों को तुम्हारे आत्मगौरव की रक्षा के लिए बलिदान कर देता। मैं तुम्हें इतना संतोष देना चाहता हूँ कि तुम्हारा पुत्र जीना नहीं जानता, पर मरना जानता है। अब विलम्ब क्यों? जीवन में जो कुछ न करना था, वह सब कर चुका। उसके अंत का इससे उत्तम और कौन अवसर मिलेगा? यह मस्तक केवल एक बार तुम्हारे चरणों पर तड़पेगा। काश! ईश्वर ने पर दिये होते, तो उड़कर तुम्हारे पास पहुँच जाता।

विनय ने बाहर की तरफ़ देखा। सूर्यदेव किसी लज्जित प्राणी की भाँति अपना कांतिहीन मुख पर्वतों की आड़ में छिपा चुके थे। नायकराम पल्थी मारे भंग घोट रहे थे। इतने में विनय ने बुलाया।

नायकराम—क्या है भैया? आज मजेदार बूटी बन रही है।

विनय—अच्छा, इस वक़्त बूटी रहने दो। अम्माँजी का पत्र आया है, घर चलना है, एक ताँगा ठीक कर लो।

नायकराम—भैया, तुम्हारे तो सब काम उतावली के होते हैं। घर चलना है, तो कल आराम से चलेंगे।

विनय—अब घर पहुँचकर ही तुम्हारे हाथ के भोजन का स्वाद लूँगा।

नायकराम—अच्छा, बूटी तो तैयार हो जाये। गाड़ी तो नौ बजे रात को जाती है।

विनय—नौ बजने में देर नहीं है। सात तो बज ही गये होंगे।

नायकराम—जब तक असबाब बँधवाओ, मैं जल्दी से बनाए लेता हूँ। तकदीर में इतना सुख भी नहीं लिखा है कि निश्चिंत होकर बूटी तो बनाता।

विनय—असबाब कुछ नहीं जायेगा। मैं घर से कोई असबाब लेकर नहीं आया था। यहाँ से चलते समय घर की कुंजी सरदार साहब को दे देनी होगी।

नायकराम—भैया, तुम कुछ न लो, पर मैं तो यह दुशाला और यह संदूक ज़रूर लूँगा। जिधर से दुशाला ओढ़कर निकल जाऊँगा, देखनेवाले लोट जायेंगे।

विनय—ऐसी घातक वस्तु लेकर क्या करोगे, जिसे देखकर ही सुथराव हो जाये।

नायकराम भाग्य को कोसते हुए घर से निकले, तो घंटे-भर तक गाड़ी का किराया ठीक करते रहे। आखिर जब यह जटिल समस्या किसी विधि न हल हुई, तो एक को जबरदस्ती पकड़ लाये। ताँगेवाला भुनभुनाता हुआ आया—सब हाकिम-ही-हाकिम तो हैं, मुदा जानवर के पेट को भी तो कुछ मिलना चाहिए; कोई माई का लाल यह नहीं सोचता कि दिन-भर तो बेगार में मरेगा, क्या आप खाएगा, क्या जानवर को खिलायेगा, क्या बाल-बच्चों को देगा।

ज्यों ही ताँगा द्वार पर आया, विनय आकर बैठ गये, लेकिन नायकराम अपनी अधघुटी बूटी क्योंकर छोड़ते? जल्दी-जल्दी रगड़ी, छानकर पी और बाहर निकले। ताँगा चला। सरदार साहब का घर रास्ते ही में था। वहाँ जाकर नायकराम ने कुंजी उनके द्वारपाल के हवाले की और आठ बजते-बजते स्टेशन पर पहुँच गये। सहसा क्या देखते हैं कि एक बुढ़िया आर्त्तनाद करते हुए चली आ रही है। वह विनयसिंह के समीप आकर बैठ गयी। विनय ने पूछा, तो मालूम हुआ कि इसका पुत्र जसवंतनगर की जेल का दारोग़ा था, उसे दिन-दहाड़े किसी ने मार डाला। अभी समाचार आया है, और यह बेचारी शोकातुरा माता यहाँ से जसवंतनगर जा रही है।

विनयसिंह को बड़ा दु:ख हुआ—दारोग़ा बड़ा सीधा-सादा आदमी था। कैदियों पर बड़ी दया किया करता था। उससे किसी को क्या दुश्मनी हो सकती थी? उन्हें तुरंत संदेह हुआ कि यह भी वीरपालसिंह के अनुयायियों की क्रूर लीला है। सोफ़ी ने कोरी धमकी न दी थी। मालूम होता है, उसने गुप्त हत्याओं के साधन एकत्र कर लिए हैं। भगवान्, इन हत्याओं का अपराध मेरी गर्दन पर है, सोफ़ी की गर्दन पर नहीं।

जब गाड़ी आयी, तो विनय ने वृद्ध को अपनी ही गाड़ी में बैठाया। नायकराम दूसरी गाड़ी

में बैठे, क्योंकि विनय के सामने उन्हें मुसाफिरों से चुहल करने का मौका न मिलता। गाड़ी चली। आज पुलिस के सिपाही प्रत्येक स्टेशन पर टहलते हुए नज़र आते थे।

पाँचवें स्टेशन से थोड़ी ही दूर पर एकाएक गाड़ी रुक गयी। वहाँ कोई स्टेशन न था। किसी ने विनय के कमरे का द्वार खोला और एक क्षण में एक स्त्री गाड़ी पर चढ़ आयी। विनय देखते ही पहचान गये, वह मिस सोफ़िया थी। उसके बैठते ही गाड़ी फिर चलने लगी।

सोफ़िया ने गाड़ी में आते ही विनय को देखा, तो चेहरे का रंग उड़ गया। जी में आया, गाड़ी से उतर जाऊँ। पर वह चल चुकी थी। एक क्षण तक वह हतबुद्धि-सी खड़ी रही, विनय के सामने उसकी आँखें न उठती थीं, तब उसी वृद्ध के पास बैठ गयी और खिड़की की ओर ताकने लगी। थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे, किसी को बात करने की हिम्मत न पड़ती थी।

वृद्ध ने सोफ़ी से पूछा—कहाँ जाओगी बेटी?

सोफ़िया—बड़ी दूर जाना है।

वृद्ध—तुमने गाड़ी खड़ी करा दी थी क्या?

सोफ़िया—आजकल डाके पड़ रहे हैं। इसी से बीच में गाड़ी रुकवा दी।

वृद्ध—तुम्हारे साथ और कोई नहीं है क्या? अकेले कैसे जाओगी?

सोफ़िया—आदमी न हो, ईश्वर तो है!

वृद्ध—ईश्वर है कि नहीं, कौन जाने। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि संसार का करता-धरता कोई नहीं है, तभी तो दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं, खून होते हैं। कल मेरे बेटे को डाकुओं ने मार डाला। जेल के क़ैदी उसको असीस दिया करते थे। कभी भलेमानस को नहीं सताया। उस पर यह वज्र गिरा, तो कैसे कहूँ कि ईश्वर है।

सोफ़िया—क्या जसवंतनगर के जेलर आपके बेटे थे?

वृद्ध—हाँ बेटी, यही एक लड़का था, सो भगवान् ने हर लिया।

यह कहकर वृद्ध सिसकने लगी। सोफ़िया का मुख किसी मरणासन्न रोगी के मुख की भाँति निष्प्रभ हो गया। खिड़की के बाहर सिर निकालकर वह फूट-फूटकर रोने लगी।

सोफ़ी आध घंटे तक मुँह छिपाए रोती रही, यहाँ तक कि वह स्टेशन आ गया जहाँ वृद्ध उतरना चाहती थी। जब वह उतरने लगी, तो विनय ने उसका असबाब उतारा और उसे सांत्वना देकर बिदा किया।

अभी विनय गाड़ी में बैठे भी न थे कि सोफ़ी नीचे आकर वृद्ध के सम्मुख खड़ी हो गयी और बोली—तुम्हारे पुत्र की हत्या करनेवाली मैं हूँ। जो दंड चाहो, दो!

वृद्ध ने विस्मित होकर कहा—क्या तू ही वह पिशाचिनी है, जिसने दरबार से लड़ने के लिए डाकुओं को जमा किया है?

सोफ़ी—हाँ, माता, मैं वही पिशाचिनी हूँ।

वृद्ध—जैसा तूने किया वैसा तेरे आगे आयेगा। मैं तुझे और क्या कहूँ।

एंजिन ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। सोफ़ी अब भी वहीं खड़ी थी। सहसा विनय गाड़ी से कूद पड़े, सोफ़िया का हाथ पकड़कर गाड़ी में बैठा दिया और बड़ी मुश्किल से आप भी गाड़ी

में चढ़ गये। एक पल भी विलम्ब होता, तो वहीं रह जाते।

सोफ़िया ने ग्लानि-भाव से कहा—विनय, तुम मेरा विश्वास करो या न करो; पर मैं सत्य कहती हूँ कि मैंने वीरपाल को एक हत्या की भी अनुमति नहीं दी। मैं उसकी घातक प्रवृत्ति को रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न करती रही; पर यह दल इस प्रत्याघात की धुन में उन्मत्त हो रहा है। किसी ने मेरी न सुनी। यही कारण है कि मैं अब यहाँ से जा रही हूँ। इतनी दया करना कि मुझे पुलिस के हवाले न कर देना। पुलिस से बचने के लिए ही मैंने रास्ते में गाड़ी को रोककर सवार होने की व्यवस्था की। मुझे संशय है कि इस समय भी तुम मेरी ही तलाश में हो।

विनयसिंह की आँखें सजल हो गईं। खिन्न स्वर में बोले—सोफ़िया, तुम्हें अख्तियार है मुझे जितना नीच और पतित चाहो, समझो; मगर एक दिन आयेगा, जब तुम्हें इन वाक्यों पर पछताना पड़ेगा और तुम समझोगी कि तुमने मेरे ऊपर कितना अन्याय किया है। लेकिन ज़रा शांत मन से विचार करो, क्या घर पर, यहाँ आने के पहले, मेरे पकड़े जाने की खबर पाकर तुमने भी वही नीति न धारण की थी? अन्तर केवल इतना था कि मैंने दूसरों को बरबाद किया, तुम अपने ही को बरबाद करने पर तैयार हो गईं। तुम्हारी झिड़कियाँ सुनकर मुझे जितना मानसिक कष्ट हुआ और हो रहा है, वही मेरे लिए असाध्य था। उस पर तुमने इस समय और भी नमक छिड़क दिया। कभी तुम इस निर्दयता पर खून के आँसू बहाओगी। खैर। यह कहते-कहते विनय का गला भर आया।

सोफ़िया ने आँखों में असीम अनुराग भरकर कहा—आओ, अब हमारी-तुम्हारी मैत्री हो जाये। मेरी उन बातों को क्षमा कर दो।

विनय ने कंठस्वर को संभालकर कहा—मैं कुछ कहता हूँ? अगर जी न भरा हो, तो और जो चाहो, कह डालो। तुम्हारे यहाँ से आकर मैंने कैदियों को मुक्त करने के लिए अधिकारियों से, मिस्टर क्लार्क से, यहाँ तक कि महाराजा साहब से जितनी अनुनय-विनय की, वह मेरा दिल जानता है पर किसी ने न सुनीं। चारों तरफ़ से निराश होना पड़ा।

सोफ़ी—यह तो मैं जानती थी। इस वक़्त कहाँ जा रहे हो?

विनय—जहन्नुम में।

सोफ़ी—मुझे भी लेते चलो।

विनय—तुम्हारे लिए स्वर्ग है।

एक क्षण बाद फिर बोले—घर जा रहा हूँ। अम्माँजी ने बुलाया है। मुझे देखने के लिए उत्सुक हैं।

सोफ़िया—इंद्रदत्त तो कहते थे, तुमसे बहुत नाराज़ हैं?

विनय ने जेब से रानीजी का पत्र निकालकर सोफ़ी को दे दिया और दूसरी ओर ताकने लगे। सहसा सोफ़िया ने पत्र फाड़कर खिड़की के बाहर फेंक दिया और प्रेमविह्वल होकर बोली—मैं तुम्हें न जाने दूँगी। तुम्हारे बदले मैं स्वयं रानीजी के पास जाऊँगी और उनसे कहूँगी, तुम्हारी अपराधिनी मैं हूँ...यह कहते-कहते उसकी आवाज़ फँस गयी। उसने विनय के कंधे पर सिर रख दिया और फूट-फूटकर रोने लगी। आवाज़ हल्की हुई, तो फिर बोली—

मुझसे वादा करो कि न जाऊँगा। तुम नहीं जा सकते।

विनय ने कहा—नहीं सोफ़ी, मुझे जाने दो। तुम माताजी को खूब जानती हो। मैं न जाऊँगा, तो वह अपने दिल में मुझे निर्लज्ज, बेहया, कायर समझने लगेंगी और इस उद्विग्नता की दशा में न जाने क्या कर बैठें।

सोफ़िया—नहीं विनय, मुझ पर इतना ज़ुल्म न करो। ईश्वर के लिए दया करो। मैं रानीजी के पास जाकर रोऊँगी, उनके पैरों पर गिरूँगी और उनके मन में तुम्हारे प्रति जो गुबार भरा हुआ है, उसे अपने आँसुओं से धो दूँगी। माँ का हृदय कभी इतना कठोर नहीं हो सकता। वह यह पत्र लिखकर शायद इस समय पछता रही होंगी, मना रही होंगी कि पत्र न पहुँचा हो।

ऐसे प्रेम से सने, अनुराग में डूबे वाक्य विनय के कानों ने कभी न सुने थे, उन्हें अपना जीवन सार्थक मालूम होने लगा। आह! सोफ़ी अब भी मुझे चाहती है, उसने मुझे क्षमा कर दिया। विनय ने विचलित हो कहा—सोफ़ी, अम्माँजी के पास एक बार मुझे जाने दो।

सोफ़िया ने विनय की गर्दन में बाँहें डालकर कहा—नहीं-नहीं, मुझे तुम्हारे ऊपर भरोसा नहीं। तुम अकेले अपनी रक्षा नहीं कर सकते। तुममें साहस है, आत्माभिमान है, शील है, सब कुछ है, पर धैर्य नहीं। विनय, ज़मीन की तरफ़ क्यों ताकते हो? मेरी ओर देखो। अगर तुम मुझसे गला छुड़ाकर चले जाओगे, तो फिर...तुम्हें सोफ़ी फिर न मिलेगी।

विनय ने प्रेम-पुलकित होकर कहा—तुम्हारी इच्छा है, तो न जाऊँगा।

सोफ़ी—तो हम अगले स्टेशन पर उतर पड़ेंगे।

विनय—नहीं पहले बनारस चलें। तुम अम्माँजी के पास जाना।

सोफ़ी—विनय, अभी बनारस मत चलो। कुछ दिन चित्त को शांत होने दो, कुछ दिन मन को विश्राम लेने दो। फिर रानीजी का तुम पर क्या अधिकार है? तुम मेरे हो, समस्त नीतियों के अनुसार, जो ईश्वर ने और मनुष्य ने रची हैं। हम अगले स्टेशन पर उतर पड़ेंगे। इसके बाद सोचेंगे, हमें क्या करना है, कहाँ जाना है।

विनय ने सकुचाते हुए कहा—जीवन का निर्वाह कैसे होगा? मेरे पास जो कुछ है, वह नायकराम के पास है।

सोफ़ी—नायकराम को जाने दो। प्रेम जंगलों में भी सुखी रह सकता है।

इतने में स्टेशन नज़र आया। सोफ़ी ने गाड़ी का द्वार खोल दिया और दोनों चुपके से उतर पड़े, जैसे चिड़ियों का जोड़ा घोंसले से दाने की खोज में उड़ जाये। उन्हें इसकी चिन्ता नहीं कि आगे ब्याध भी है, हिंसक पक्षी भी हैं, किसान की गुलेल भी है। इस समय तो दोनों अपने विचारों में मग्न हैं, दाने से लहराते हुए खेतों की बहार देख रहे हैं। पर वहाँ तक पहुँचना भी उनके भाग्य में है, यह कोई नहीं जानता।

36

मिस्टर जॉन सेवक ने ताहिरअली की मेहनत और ईमानदारी से प्रसन्न होकर खालों पर कुछ कमीशन नियत कर दिया था। इससे अब उनकी आय अच्छी हो गयी थी, जिससे मिल के मज़दूरों पर उनका रोब था, ओवरसियर और छोटे-छोटे क्लर्क उनका लिहाज़ करते थे। लेकिन आय-वृद्धि के साथ उनके व्यय में भी खासी वृद्धि हो गयी थी। पान-इलायची आदि का खर्च कई गुना बढ़ गया था। किसी ने कहा—खाँ साहब, आज ज़रा जरदे पकवाइए, बहुत दिन हुए, रोटी-दाल खाते-खाते जबान मोटी पड़ गयी। ताहिरअली को इसके जवाब में कहना ही पड़ता—हाँ-हाँ, लीजिए, आज बनवाता हूँ। घर में एक ही स्त्री होती, तो उसकी बीमारी का बहाना करके टालते, लेकिन यहाँ तो एक छोड़ तीन-तीन महिलाएँ थीं। फिर ताहिरअली रोटी के चोर न थे। दोस्तों के आतिथ्य में उन्हें आनंद आता था।

लेकिन मित्रों के आतिथ्य-सत्कार ही तक रहता, तो शायद ताहिरअली किसी तरह खींच-तानकर दोनों चूल बराबर कर लेते। मुसीबत यह थी कि उनके छोटे भाई माहिर अली इन दिनों मुरादाबाद के पुलिस-ट्रेनिंग स्कूल में भरती हो गये थे। वेतन पाते ही उसका आधा, आँखें बंद करके मुरादाबाद भेज देना पड़ता था। ताहिरअली खर्च से डरते थे, पर उनकी दोनों माताओं की यह हार्दिक लालसा थी कि माहिर अली पुलिस में जाये और दारोग़ा बने। बेचारे ताहिरअली महीनों तक हुक्काम के बँगलों की ख़ाक छानते रहे; यहाँ जा, वहाँ जा; इनकी सिफ़ारिश करवा, उनकी चिट्ठी ला। मिस्टर जॉन सेवक की सिफ़ारिश काम कर गयी। ये सब मोरचे तो पार हो गये। अंतिम मोरचा डॉक्टरी परीक्षा थी। कुल 56 रुपये का खर्च था। ये रुपये कहाँ से आयें? चारों ओर से निराश होकर ताहिरअली कुल्सूम के पाए आये और बोले—तुम्हारे पास कोई जेवर हो, तो दे दो, मैं बहुत जल्द छुड़ा दूँगा। उसने तिनककर संदूक उनके सामने पटक दिया और कहा—तुम्हारे गहने तुम्हारे सामने हैं, जो चाहो, करो। ताहिरअली कुछ देर तक शर्म से सिर न उठा सके। फिर संदूक की ओर देखा। ऐसी एक भी वस्तु न थी, जिससे इसकी चौथाई रक़म मिल सकती। सकुचाते हुए सब चीज़ें निकालकर रूमाल में बाँधी और बाहर आकर इस सोच में बैठे थे कि इन्हें क्योंकर ले जाऊँ कि इतने में मामा आयी। ताहिरअली को सूझी, क्यों न इसकी मारफत रुपये मँगवाऊँ। धीरे से बुलाकर उससे यह समस्या कही। बुढ़िया ने कहा—मियाँ, यह कौन-सी बड़ी बात है, मैं रुपये ला दूँगी,

आप निसाखातिर रहें। गहनों की पोटली लेकर चली, तो जैनब ने देखा। बुलाकर बोलीं—तू कहाँ लिए-लिए फिरेगी, मैं माहिर अली से रुपये मँगवाए देती हूँ, उनका एक दोस्त साहूकारी का काम करता है। मामा ने पोटली उसे दे दी, दो घंटे बाद अपने पास से 56 रुपये निकालकर दे दिये। इस भाँति यह कठिन समस्या हल हुई। माहिर अली मुरादाबाद सिधारे और तब से वहीं पढ़ रहे थे। वेतन का आधा भाग वहाँ निकल जाने के बाद शेष में घर का खर्च बड़ी मुश्किल से पूरा पड़ता। कभी-कभी उपवास करना पड़ जाता।

एक दिन रात-भर उपवास करने के बाद प्रातःकाल जैनब ने आकर कहा—आज रुपयों की कुछ फ़िक्र की, या आज भी रोज़ा रहेगा।

ताहिरअली ने चिढ़कर कहा—मैं अब कहाँ से लाऊँ? तुम्हारे सामने कमीशन के रुपये मुरादाबाद भेज दिये थे। दोस्तों में भी तो कोई ऐसा नहीं बचा, जिससे कुछ माँग सकूँ।

जैनब—सुनती हो रकिया, इनकी बातें? लड़के को खर्च क्या दे रहे हैं, गोया मेरे ऊपर कोई एहसान कर रहे हैं। तुम्हारा भाई है, पढ़ाओ या न पढ़ाओ, मुझ पर क्या एहसान!

ताहिर—तो तुम्ही बताओ, रुपये कहाँ से लाऊँ?

जैनब—मरदों के हज़ार हाथ होते हैं। तुम्हारे अब्बाजान दस ही रुपये पाते थे। आखिर कुनबे को पालते थे कि नहीं। कभी फाके की नौबत नहीं आयी।

ताहिर—पुलिस के मुहकमे में हर तरह की गुंजाइश होती है। यहाँ क्या है, गिनी बोटियाँ, नपा शोरबा।

जैनब—मैं तुम्हारी जगह होती, तो दिखा देती कि इसी नौकरी में कैसे कंचन बरसता। सैकड़ों चमार हैं। क्या कहो, तो सब एक-एक गट्ठा लकड़ी न लाएँ? सबों के यहाँ छान-छप्पर पर तरकारियाँ लगी होंगी? क्यों न तुड़वा मँगाते? खालों के दाम में भी कमी-बेशी करने का तुम्हें अख्तियार है। दस के पौने दस लिख दो, तो क्या हरज हो? फिर अब तुम्हारा एतबार जम गया। साहब को सुभा भी नहीं हो सकता। इस वक़्त भी तुम्हारी रोकड़ में सैकड़ों रुपये होंगे। जितनी ज़रूरत समझो, इस वक़्त निकाल लो। जब हाथ में रुपये आयें, रख देना। सभी ऐसा करते हैं, और इसी तरह दुनिया का काम चलता है।

ताहिर—जो लोग करते हों, वे जानें, मेरी तो इन हथकंडों से रूह फना होती है।

जैनब—वाह रे मरदुए, कुरबान जाऊँ तेरे ईमान पर। फ़िक्र तो आदमी को अपने बीवी-बच्चों की होती है। उनके लिए बाजार मौजूद है। फाका तो हमारे लिए है।

ताहिरअली ने इस मिथ्या आक्षेप पर क्षुब्ध होकर कहा—क्यों जलाती हो, अम्मी जान! खुदा गवाह है, जो बच्चे के लिए धेले की भी कोई चीज़ ली हो।

जैनब—अपने बाल-बच्चों को खिलाने-न-खिलाने का तुम्हें अख्तियार है। हमारे बच्चों को तो घर की रूखी रोटियों के सिवा और कहीं ठिकाना नहीं। जाकर कुछ इंतज़ाम करो।

ताहिरअली बाहर आकर बड़ी देर घोर चिन्ता में खड़े रहे। आज पहली बार उन्होंने अमानत के रुपये को हाथ लगाने का दुस्साहस किया। पहले इधर-उधर देखा, कोई खड़ा तो नहीं है, फिर बहुत धीरे से लोहे का संदूक खोला। आखिर उन्होंने रुपये निकाल लिए, तब

सेफ बंद किया। रुपये लाकर जैनब के सामने फेंक दिये और बिना कुछ कहे-सुने बाहर चले गये। दिल को यों समझाया—अगर खुदा को मंजूर होता कि मेरा ईमान सलामत रहे, तो क्यों इतने आदमियों का बोझ मेरे सिर पर डाल देता। यह बोझ सिर पर रखा था, तो उसके उठाने की ताकत भी तो देनी चाहिए थी। ताहिरअली सोचने लगे, कौन चमार सबसे मोटा है, जिसे आज रुपये न दूँ, तो चीं-चपड़ न करे। नहीं, जो सबसे ग़रीब, सबसे सीधा हो, उसी के रुपये रोकने चाहिए। उस दिन से उन्हें जब ज़रूरत पड़ती, रोकड़ से रुपये निकाल लेते, फिर रख देते। धीरे-धीरे रुपये पूरे कर देने की चिन्ता कम होने लगी। यहाँ तक कि छठा महीने जाते-जाते वह रोकड़ के पूरे डेढ़ सौ रुपये खर्च कर चुके थे।

अब ताहिरअली को नित्य यही चिन्ता बनी रहती कि कहीं बात खुल न जाये। बस, खुदा से यही दुआ करते थे कि माहिर अली आ जाये। उन्हें 100 रुपये महीना मिलेंगे। दो महीने में अदा कर दूँगा। इतने दिन साहब हिसाब की जाँच न करें, तो बेड़ा पार है।

उन्होंने दिल में निश्चय किया, अब कुछ ही हो, और रुपये न निकालूँगा। लेकिन सातवें महीने में फिर 25 रुपये निकालने पड़ गये। अब माहिर अली का साल भी पूरा हो चला था। थोड़े ही दिनों की और कसर थी। सोचा, आखिर मुझे उसी की बदौलत तो यह जेरबारी हो रही है। ज्यों ही आया, कह दूँगा, भाई, इतने दिनों तक मैंने सँभाला। अपने से जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी तालीम में खर्च किया, तुम्हारा रोजगार लगा दिया। अब कुछ दिनों के लिए मुझे इस फ़िक्र से नजात दो। कुल्सूम उनसे बार-बार पूछती कि आजकल तुम इतने रुपये कहाँ पा जाते हो? समझाती—देखो, नीयत न खराब करना। तकलीफ और तंगी से बसर करना इतना बुरा नहीं, जितना खुदा के सामने गुनहगार बनना। लेकिन ताहिरअली इधर-उधर की बातें करके उसे बहला दिया करते थे।

एक दिन सुबह को ताहिरअली नमाज अदा करके दफ्तर में आये तो देखा, एक चमार खड़ा रो रहा है। पूछा, क्या बात है? बोला—क्या बताऊँ खाँ साहब, रात घरवाली गुजर गयी। अब उसका किरिया-करम करना है, मेरा जो कुछ हिसाब हो, दे दीजिए, ताहिरअली की तहवील में रुपये कम थे। कल स्टेशन से माल भेजा था, महसूल देने में रुपये खर्च हो गये थे। आज साहब के सामने हिसाब पेश करके रुपये लानेवाले थे। इस चमार को कई खालों के दाम देने थे। कोई बहाना न कर सके। थोड़े-से रुपये लाकर उसे दिये।

चमार ने कहा—इतने में तो कफन भी पूरा न होगा। मरनेवाली अब फिर आयेगी नहीं, उसका किरिया-करम तो दिल खोलकर कर दूँ। मेरे जितने रुपये आते हैं, सब दे दीजिए।

ताहिरअली ने कहा—इस वक़्त रुपये नहीं हैं, फिर ले जाना।

चमार—का खाँ साहब, वाह! अँगूठे का निशान कराए तो महीनों हो गये; अब कहते हो फिर ले जाना। इस बखत न दोगे, तो क्या आकबत में दोगे?

ताहिरअली कुछ रुपये और लाये। चमार ने सब रुपये ज़मीन पर पटक दिये और बोला—आप थूक से चुहिया जिलाते हैं! मैं आपसे उधार नहीं माँगता हूँ, और आप यह कटूसी कर रहे हैं, जानो घर से दे रहे हों।

ताहिरअली ने कहा—इस वक़्त इससे ज़्यादा मुमकिन नहीं।

चमार था तो सीधा, पर उसे कुछ संदेह हो गया, गर्म पड़ गया।

सहसा मिस्टर जॉन सेवक आ पहुँचे। आज झल्लाये हुए थे। प्रभु सेवक की उद्दंडता ने उन्हें अव्यवस्थित-सा कर दिया था। झमेला देखा, तो कठोर स्वर से बोले—इसके रुपये क्यों नहीं दे देते? मैंने आपसे ताकीद कर दी थी कि सब आदमियों का हिसाब रोज़ साफ कर दिया कीजिए। क्या आपकी तहवील में रुपये नहीं हैं?

ताहिरअली रुपये लाने चले, तो कुछ ऐसे घबराए हुए थे कि साहब को तुरंत संदेह हो गया। रजिस्टर उठा लिया और हिसाब देखने लगे। हिसाब साफ था। इस चमार के रुपये अदा हो चुके थे। इतने में और कई चमार आ गये। इस चमार को रुपये लिए जाते देखा, तो समझे, आज हिसाब चुकता किया जा रहा है। बोले—सरकार, हमारा भी मिल जाये।

साहब ने रजिस्टर ज़मीन पर पटक दिया और डपटकर बोले—यह क्या गोलमाल है? जब इनसे रसीद ली गयी, तो इनके रुपये क्यों नहीं दिये गये?

ताहिरअली से कुछ न बन पड़ा, साहब के पैरों पर गिर पड़े और रोने लगे।

चमारों ने परिस्थिति को ताड़कर कहा—सरकार, हमारा पिछला कुछ नहीं है, हम तो आज के रुपये के लिए कहते थे। ज़रा देर हुई, माल रख गये थे। खाँ साहब उस बखत नमाज पढ़ते थे।

साहब ने रजिस्टर उठाकर देखा, तो उन्हें किसी-किसी नाम के सामने एक हलका-सा चि दिखायी दिया। समझ गये, हजरत ने ही ये रुपये उड़ाए हैं। एक चमार से, जो बाज़ार से सिगरेट पीता आ रहा था, पूछा—तेरा नाम क्या है?

चमार—चुनकू।

साहब—तेरे कितने रुपये बाकी हैं?

कई चमारों ने उसे हाथ के इशारे से समझाया कि कह दे, कुछ नहीं। चुनकू इशारा न समझा। बोला—17 रुपये पहले के थे, 9 रुपये आज के।

साहब ने अपनी नोटबुक पर उसका नाम टाँक लिया। ताहिरअली को कुछ कहा न सुना, एक शब्द भी न बोले। जहाँ कानून से सज़ा मिल सकती थी, वहाँ डाँट-फटकार की ज़रूरत क्या? सब रजिस्टर उठाकर गाड़ी में रखे, दफ़्तर में ताला बंद किया, सेफ में दोहरे ताले लगाए, तालियाँ जेब में रखीं और फ़िटन पर सवार हो गये। ताहिरअली को इतनी हिम्मत भी न पड़ी कि कुछ अनुनय-विनय करें। चमारों के चौधरी ने दिलासा दिया—आप क्यों डरते हो खाँ साहब, आपका बाल तो बाँका होने न पाएगा। हम कह देंगे, अपने रुपये भर पाए हैं।

ताहिरअली को इन बातों से ज़रा भी तस्कीन नहीं हुई। वह पछता रहे थे। इसलिए नहीं कि मैंने रुपये क्यों खर्च किये, बल्कि इसलिए कि नामों के सामने के निशान क्यों लगाए। अब खुदा ही खैर करे।

चौधरी बोला—खाँ साहब, अब हाथ-पर-हाथ धरकर बैठने से काम न चलेगा। यह साहब बड़ा जल्लाद आदमी है। जल्दी रुपये जुटाइए।

ताहिर—रुपयों की कोई फ़िक्र नहीं है जी, यहाँ तो दाग लग जाने का अफ़सोस है।

जानते हो, यहाँ कारखाने का एक-न-एक आदमी कर्ज माँगने को सिर पर सवार रहता है। किस-किससे हीला करूँ? और फिर मुरौवत में हीला करने से भी तो काम नहीं चलता। रुपये निकालकर दे देता हूँ। यह उसी शराफत की सजा है। 150 रुपये से कम न निकलेंगे, बल्कि चाहे 200 रुपये हो गये हों।

चौधरी—भला, सरकारी रक़म इस तरह खरच की जाती है! आपने खरच की या किसी को उधार दे दी, बात एक ही है। वे लोग रुपये दे देंगे?

ताहिर—ऐसा खरा तो एक भी नहीं। समझ में नहीं आता, क्या करूँ? खुदा को जो मंजूर है, वह होगा। यह कहकर ताहिरअली अपने दोस्तों की तरफ़ चले कि शायद यह हाल सुनकर लोग मेरी कुछ मदद करें, मगर कहीं न जाकर एक दरख्त के नीचे नमाज पढ़ने लगे।

इधर चौधरी ने चमारों से कहा—हमारे मुंसीजी इस बखत तंग हैं। सब लोग थोड़ी-थोड़ी मदद करो, तो उनकी जान बचे। समझ लो, एक दिन नसा नहीं खाया।

चौधरी तो चमारों से रुपये बटोरने लगा। ताहिरअली के दोस्तों ने यह हाल सुना, तो चुपके से दबक गये कि कहीं ताहिरअली कुछ माँग न बैठें। हाँ, जब दारोग़ा ने आकर तहकीकात करनी शुरू की और ताहिरअली को हिरासत में ले लिया, तो लोग तमाशा देखने आ पहुँचे। कुल्सूम ने जैनब से कहा—लीजिए, अब तो आपका अरमान निकला!

जैनब ने कहा—तुम मुझसे क्या बिगड़ती हो बेगम! अरमान निकले होंगे तो तुम्हारे, न निकले होंगे तो तुम्हारे।

कुल्सूम के पास तो कफन को कौड़ी भी न थी, जैनब के पास रुपये थे, पर उसने दिल जलाना ही काफ़ी समझा। कुल्सूम की इस समय ताहिरअली से सहानुभूति न थी। उसे उन पर क्रोध आ रहा था, जैसे किसी को अपने बच्चे को चाकू से उँगली काटते देखकर गुस्सा आये।

संध्या हो रही थी। ताहिरअली के लिए दारोग़ा ने एक इक्का मँगवाया। उस पर चार कांस्टेबिल उन्हें लेकर बैठे। दारोग़ा जानता था कि यह माहिर अली के भाई हैं, कुछ लिहाज़ करता था। चलते वक़्त बोला, अगर आपको घर में किसी से कुछ कहना हो, तो आप जा सकते हैं। पर ताहिरअली ने कहा, मुझे किसी से कुछ नहीं कहना है। वह कुल्सूम को अपनी सूरत न दिखाना चाहते थे। कुल्सूम द्वार पर खड़ी थी। उनका क्रोध प्रतिक्षण शोक की सूरत पकड़ता जाता था, यहाँ तक कि जब इक्का चला, तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बच्चे 'अब्बा, अब्बा' कहते इक्के के पीछे दौड़े। दारोग़ा ने उन्हें एक-एक चवन्नी मिठाई खाने को देकर फुसला दिया। ताहिरअली तो उधर हिरासत में गये, इधर घड़ी रात जाते-जाते चमारों का चौधरी रुपये लेकर मिस्टर सेवक के पास पहुँचा। साहब बोले—ये रुपये तुम उनके घरवालों को दे दो, तो उनका गुजर हो जाये। मुआमला अब पुलिस के हाथ में है, मैं कुछ नहीं कर सकता।

चौधरी—हुज़ूर, आदमी से खता हो ही जाती है। इतने दिनों तक आपकी चाकरी की, हुज़ूर को उन पर कुछ दया करनी चाहिए।

जॉन सेवक—मैं यह सब जानता हूँ, बेशक उनका खर्च बहुत था। इसीलिए मैंने माल पर

कटौती दे दी थी। मैं जानता हूँ कि उन्होंने जो कुछ किया है, मजबूर होकर किया है। मुझे खाँ साहब से कोई बिगाड़ नहीं है, लेकिन अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। पाप को क्षमा करना पाप करना है।

चौधरी यहाँ से निराश होकर चला गया। दूसरे दिन अभियोग चला। ताहिरअली दोषी पाए गये। वह अपनी सफाई न पेश कर सके। छः महीने की सज़ा हो गयी।

जब ताहिरअली कांस्टेबिलों के साथ जेल की तरफ़ जा रहे थे, तो उन्हें माहिर अली ताँगे पर सवार आता हुआ दिखायी दिया। उनका हृदय गद्गद हो गया। आँखों से आँसू की झड़ी लग गयी। समझे, माहिर मुझसे मिलने दौड़ा चला आता है। जब ताँगा समीप आ गया, तो वह चिल्लाकर रोने लगे। माहिर अली ने एक बार उन्हें देखा, लेकिन न सलाम-बंदगी की, न ताँगा रोका, मुँह फेर लिया, मानो देखा ही नहीं। ताँगा ताहिरअली की बगल से निकल गया। उनके मर्मस्थल से एक सर्द आह निकली। किन्तु एक ही क्षण में उनकी आत्मवेदना शांत हो गयी—माहिर ने मुझे देखा ही न होगा।

उधर माहिर अली मकान पर पहुँचे, तो छोटे भाई आकर लिपट गये। ताहिरअली के दोनों बच्चे भी दौड़े, और 'माहिर चाचा आये' कहकर उछलने-कूदने लगे। कुल्सूम भी रोती हुई निकल आयी। सलाम-बंदगी के पश्चात् माहिर अपनी माता के पास गये। उसने उन्हें छाती से लगा लिया।

माहिर—तुम्हारा खत न जाता, तो अभी मैं थोड़े ही आता। भाई साहब को यह क्या हिमाकत सूझी!

जैनब—बेगम साहब की फरमाइशें कैसे पूरी होतीं! उस पर कहती हैं, तुम्हीं लोगों ने उन्हें मटियामेट किया। पूछो, रोटी-दाल में ऐसा कौन-सा छप्पन टके का खर्च था? अपने पास से पैसे निकालो, तो पान खाओ। उस पर इतने ताने!

माहिर—मैंने तो स्टेशन से आते हुए उन्हें जेल जाते देखा। मैं तो शर्म के मारे कुछ न बोला, बंदगी तक न की। भैया रो पड़े। मेरा दिल भी मसोस उठा, जी चाहता था, उनके गले लिपट जाऊँ; लेकिन शर्म आ गयी।

जैनब—छः महीने की सजा हुई है।

माहिर—जुर्म तो बड़ा था, लेकिन शायद हाकिम ने रहम किया।

जैनब—तुम्हारे अब्बा का लिहाज किया होगा, नहीं तो तीन साल के लिए जाते।

इतने में मामा नाश्ते के लिए मिठाइयाँ लायी। माहिर अली ने एक मिठाई जाहिर को दी, एक जाबिर को। इन दोनों ने जाकर साबिर और नसीमा को दिखायी। वे दोनों भी दौड़े। जैनब ने कहा—जाओ, खेलते क्यां नहीं! क्या सिर पर डट गये! रात-दिन खाते ही रहते हैं, फिर भी जी नहीं भरता।

माहिर ने एक-एक मिठाई उन दोनों को भी दी। तब बोले—गुजर-बसर की क्या सूरत होगी? भाभी के पास तो रुपये होंगे न?

जैनब—होंगे क्यों नहीं! इन्हीं रुपयों के लिए तो खसम को जेल भेजा। देखती हूँ, क्या

इंतजाम करती हैं।

माहिर—मुझे अभी न जाने कितने दिनों में जगह मिले। महीना-भर लग जाये, महीने लग जायें। तब तक मुझे दिक मत करना।

जैनब—तुम इसका गम न करो बेटा! वह अपना सँभालें, हमारा खुदा हाफिज़ है।

जब शाम हो गयी, तो जैनब ने मामा से कहा—जाकर बेगम साहब से पूछो, कुछ सौदा-सुल्फ आयेगा, या आज मातम मनाया जायेगा?

मामा ने लौट आकर कहा—वह तो बैठी रो रही हैं। कहती हैं, जिसे भूख हो, खाए, मुझे नहीं खाना है।

जैनब—देखा! यह तो मैं पहले ही कहती थी कि साफ जवाब मिलेगा।

कुल्सूम ने जब सुना था कि ताहिरअली को छः महीने की सजा हो गयी, तभी से उसकी आँखों में अँधेरा-सा छाया हुआ था। मामा का संदेशा सुना, तो जल उठी। बोली—उनसे कह दो, पकाएँ-खाएँ, यहाँ भूख नहीं है। बच्चों पर रहम आये, तो दो नेवाले इन्हें भी दे दें। मामा ने इसी वाक्य को अन्वय किया, जिसने अर्थ का अनर्थ कर दिया।

रात के नौ बज गये। कुल्सूम देख रही थी कि चूल्हा गर्म है। मसाले की सुगंध नाक में आ रही थी, लेकिन बड़ी देर तक कोई उसके बच्चों को बुलाने न आया। उसे मालूम हो गया कि घरवालों ने साथ छोड़ दिया और संसार में कोई मेरा नहीं।

माहिर अली भोजन करने बैठे, तो पूछा—भाभी ने कुछ बाजार से मँगवाया है कि नहीं।

जैनब—मामा से मँगवाएँगी, तो परदा न खुल जायेगा? खुदा के फजल से साबिर सयाना हुआ। गुपचुप सौदे वही लाता है।

माहिर—पूछ लेना। ऐसा न हो कि हम लोग खाकर सोएँ, वह बेचारी रोज़े रखें।

जैनब—हाँ, पूछना मेरा फर्ज है, पूछ लूँगी।

दूसरे दिन सबेरे दोनों बच्चे बावर्चीखाने में गये, तो जैनब ने ऐसी निगाहों से देखा कि दोनों रोते हुए लौट आये। अब कुल्सूम से न रहा गया। वह झल्लाकर उठी और बावर्चीखाने में जाकर मामा से बोली—तूने बच्चों को खाना क्यों नहीं दिया रे? इसी घर के पीछे मिट्टी में मिल गये और मेरे लड़के तड़पें, किसी को दर्द न आये?

मामा ने कहा—तो आप मुझसे क्या बिगड़ती हैं, मैं कौन होती हूँ, जैसा हुकुम पाती हूँ, वैसा करती हूँ।

जैनब अपने कमरे से बोली—तुम मिट्टी में मिल गईं, तो यहाँ किसने घर भर लिया। बनिए के यहाँ से कर्ज़ जिंस आयी, तो मुँह में दाना गया। सौ कोस से लड़का आया, तुमने बात तक न पूछी।

आज से कुल्सूम की रोटियाँ के लाले पड़ गये। माहिर अली कभी दोनों भाइयों को लेकर नानबाई की दूकान से भोजन कर आते, कभी किसी इष्ट-मित्र के मेहमान हो जाते। जैनब और रकिया के लिए मामा चुपके-चुपके अपने घर से खाना बना लाती। नसीमा और साबिर प्रातःकाल घर से निकल जाते। कोई कुछ दे देता, तो खा लेते। रही कुल्सूम, उसके लिए गम

ही काफ़ी था। वह सीना-पिरोना जानती थी, पर जलन के मारे कुछ न करती थी। वह माहिर के मुँह में कालिख लगाना चाहती थी, चाहती थी कि दुनिया मेरी दशा को देखे और इन पर थूके।

इस भाँति एक महीना गुज़र गया। एक दिन सुभागी कुल्सूम के यहाँ साग-भाजी लेकर आयी। वह अब यही काम करती थी। कुल्सूम की सूरत देखी, तो बोली, बहूजी, तुम तो पहचानी ही नहीं जातीं। बिपत तो पड़ ही गयी है, कुढ़ने से क्या होगा? तुम न रहोगी तो बच्चों को कौन पालेगा? बेचारे खाँ साहब इन्हीं लोगों के लिए मरते थे। अब कोई बात भी नहीं पूछता।

कुल्सूम—अब तो भाड़ लीपकर हाथ काला हो गया।

सुभागी—बहू, कोई मुँह पर न कहे, लेकिन सब थुड़ी-थुड़ी करते हैं। बेचारे नन्हे-नन्हे बालक मारे-मारे फिरते हैं, देखकर कलेजा फट जाता है। कल तो चौधरी ने माहिर मियाँ को खूब आड़े हाथों लिया था।

कुल्सूम बोली—किस बात पर?

सुभागी कुछ जवाब न देने पायी थी कि बाहर से चौधरी ने पुकारा। सुभागी ने जाकर पूछा—क्या कहते हो?

चौधरी—बहूजी से कुछ कहना है। ज़रा परदे की आड़ में खड़ी हो जायें।

दोपहर का समय था। घर में सन्नाटा छाया हुआ था। जैनब और रकिया किसी औलिया के मजार पर शीरनी चढ़ाने गयी थीं। कुल्सूम परदे की आड़ में आकर खड़ी हो गयी।

चौधरी—बहूजी, कल माहिर मियाँ मुझसे कहने लगे, तुमने भैया की मदद के लिए जो रुपये जमा किये थे, वे मुझे दे दो, भाभी ने माँगे हैं। मैंने कहा, जब तक बहूजी से खुद न पूछ लूँगा, आपको न दूँगा। इस पर बहुत बिगड़े। मैंने कहा, जाइए समझ लीजिएगा। तो अब आपका क्या हुक्म है? ये सब रुपये आपको दे दूँ न? मुझे तो आज मालूम हुआ कि वे लोग आपके साथ दगा कर गये!

कुल्सूम ने कहा—खुदा तुम्हें इस नेकी का सबब देगा। मगर ये रुपये जिसके हों, उन्हें लौटा दो। मुझे इनकी ज़रूरत नहीं है।

चौधरी—कोई न लौटाएगा।

कुल्सूम—तो तुम्हीं अपने पास रखो।

चौधरी ने बहुत आग्रह किया, पर कुल्सूम ने रुपये न लिए। वह माहिर अली को दिखाना चाहती थी कि जिन रुपयों के लिए तुम कुत्तों की भाँति लपकते थे, उन्हीं रुपयों को मैंने पैर से ठुकरा दिया।

चौधरी यहाँ से चला, तो सुभागी से बोला—यही बड़े आदमियों की बातें हैं। चाहे टुकड़े-टुकड़े उड़ जायें, मुदा किसी के सामने हाथ न पसारेंगी।

इन रुपयों को लौटाकर कुल्सूम का मस्तक गर्व से उन्नत हो गया। आज उसे पहली बार ताहिरअली पर अभिमान हुआ—यह इज्ज़त है कि पीठ-पीछे दुनिया बड़ाई करती रहे। आज

उनकी नेकनामी ने मेरा सिर ऊँचा कर दिया।

सुभागी ने कहा—बहूजी, बहुत औरतें देखीं, लेकिन तुम-जैसी धीरजवाली बिरली ही कोई होगी। भगवान तुम्हारा संकट हरे।

वह चलने लगी, तो कई अमरूद बच्चों के लिए रख दिये। कुल्सूम ने कहा—मेरे पास पैसे नहीं हैं।

सुभागी मुसकराकर चली गयी।

37

प्रभु सेवक बड़े उत्साही आदमी थे। उनके हाथ से सेवक-दल में एक नई सजीवता का संचार हुआ। संख्या दिन-दिन बढ़ने लगी। जो लोग शिथिल और उदासीन हो रहे थे, फिर नये जोश से काम करने लगे।

अब तक इस संस्था का कार्य क्षेत्र सामाजिक था। मेलों-ठेलों में यात्रियों की सहायता, बाढ़-बूड़े में पीड़ितों का उद्धार, ये ही इनके मुख्य विषय थे। प्रभुसेवक ने इसका कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर दिया, इसको राजनीतिक रूप दे दिया। यद्यपि उन्होंने कोई नया प्रस्ताव न किया, किसी परिवर्तन की चर्चा तक न की, पर धीरे-धीरे उनके असर से नये भावों का संचार होने लगा।

प्रभु सेवक बहुत सह्रदय आदमी थे, पर किसी को ग़रीबों पर अत्याचार करते देखकर उनकी सह्रदयता हिंसात्मक हो जाती थी।

किसी सिपाही को घसियारों की घास छीनते देखकर वह तुरंत घसियारों की ओर से लड़ने पर तैयार हो जाते थे। सबलों के अत्याचार पर ही उनकी खास निगाह रहती थी। रिश्वतखोर कर्मचारियों पर, ज़ालिम ज़मींदारों पर, स्वार्थी अधिकारियों पर वह सदैव ताक लगाए रहते थे। इसका फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में इस संस्था की धाक बैठ गयी। उनका कथन था कि हमें सबसे पहले आत्मसम्मान की रक्षा करनी चाहिए। हम कायर और दब्बू हो गये हैं, अभिमान और हानि चुपके से सह लेते हैं, ऐसे प्राणियों को तो स्वर्ग में भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता। ज़रूरत है कि हम निर्भीक और साहसी बनें, संकटों का सामना करें, मरना सीखें।

लेकिन ज्यों-ज्यों सेवकों की कीर्ति फैलने लगी, उन पर अधिकारियों का संदेह भी बढ़ने लगा। अब कुँवर साहब डरे कि कहीं सरकार इस संस्था का दमन न कर दे। कुछ दिनों में यह अफवाह भी गर्म हुई कि अधिकारी वर्ग में कुँवर साहब की रियासत जब्त करने का विचार किया जा रहा है। कुँवर साहब निर्भीक पुरुष थे, पर यह अफवाह सुनकर उनका आसन भी डोल गया। वह प्रभु सेवक को बार-बार समझाते—भाई, ज़रा समझ-बूझकर काम करो। अधिकारियों से बचकर चलो। ऐसे काम करो ही क्यों जिनसे अधिकारियों को तुम्हारे ऊपर संदेह हो। लेकिन प्रभु सेवक उनके परामर्श की ज़रा भी परवा न करते—धमकी देते—

इस्तीफा दे दूँगा। हमें अधिकारियों की क्या परवा! वे जो चाहते हैं, करते हैं, हमसे कुछ नहीं पूछते, फिर हम क्यों उनका रुख देखकर काम करें?

एक दिन दोनों आदमियों में वाद-विवाद की नौबत आ गयी। बंदोबस्त के अफसरों ने किसी प्रांत में भूमि-कर में मनमानी वृद्धि कर दी थी। काउंसिलों, समाचार-पत्रों और राजनीतिक सभाओं में इस वृद्धि का विरोध किया जा रहा था, पर कर-विभाग पर कुछ असर न होता था। प्रभु सेवक की राय थी, हमें जाकर असामियों से कहना चाहिए कि साल-भर तक ज़मीन परती पड़ी रहने दें। कुँवर साहब कहते थे कि यह तो खुल्लम-खुल्ला अधिकारियों से रार मोल लेना है।

प्रभु सेवक—अगर आप इतना डर रहे हैं, तो उचित है कि आप इस संस्था को उसके हाल पर छोड़ दें। मुझे रईसों पर पहले भी विश्वास न था, और अब तो निराशा-सी हो गयी है।

कुँवर—मेरी गिनती रईसों में क्यों करते हो, मुझे रियासत की परवा नहीं।

प्रभु सेवक—मैं बड़ी-से-बड़ी जायदाद को भी सिद्धान्त के लिए बलिदान कर देने में दरेग न करूँगा।

कुँवर—मैं भी न करता, यदि जायदाद मेरी होती। लेकिन यह जायदाद मेरे वारिसों की है, और मुझे कोई अधिकार नहीं है कि उनकी इच्छा के बगैर उनकी जायदाद की उत्तर-क्रिया कर दूँ।

प्रभु सेवक—यह रईसों की पुरानी दलील है। अगर आपको भय है कि हमारे कामों से आपकी जायदाद को हानि पहुँचेगी, तो बेहतर है कि आप इस संस्था से अलग हो जायें।

कुँवर साहब ने चिंतित स्वर में कहा—प्रभु, तुम्हें मालूम नहीं है कि इस संस्था की जड़ अभी कितनी कमज़ोर है! मुझे भय है कि यह अधिकारियों की तीव्र दृष्टि को एक क्षण भी सहन नहीं कर सकती। मेरा और तुम्हारा उद्देश्य एक ही है; मैं भी वही चाहता हूँ, जो तुम चाहते हो।

प्रभु सेवक ने कुछ उत्तर न दिया। बात बढ़ जाने का भय था। मन में निश्चय किया कि अगर कुँवर साहब ने ज़्यादा चीं-चपड़ की, तो उन्हें इस संस्था से अलग कर देंगे। इंद्रदत्त ने भी यही सलाह दी—कुँवर साहब को पृथक् कर देना चाहिए। हम औषधियाँ बाँटने और अकाल-पीड़ित प्रांतों में मवेशियों का चारा ढोने के लिए नहीं हैं। है वह भी हमारा काम, इससे हमें इनकार नहीं। यह विध्वंस का समय है, निर्माण का समय तो पीछे आयेगा।

क्रमशः यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि अब कितनी ही महत्त्व की बातों में ये दोनों आदमी कुँवर साहब से परामर्श तक न लेते, बैठकर आपस ही में निश्चय कर लेते। चारों तरफ़ से अत्याचारों के वृत्तांत नित्य दफ्तर में आते रहते थे। कहीं-कहीं तो लोग इस संस्था की सहायता प्राप्त करने के लिए बड़ी-बड़ी रक़में देने पर तैयार हो जाते थे। इससे यह विश्वास होता जाता था कि संस्था पैरों पर खड़ी हो सकती है, उसे किसी स्थायी कोष की आवश्यकता नहीं।

प्रभु सेवक की रचनाएँ इन दिनों क्रांतिकारी भावों से परिपूर्ण होती थीं। राष्ट्रीयता, द्वंद्व, संघर्ष के भाव प्रत्येक छंद से टपकते थे। उसने 'नौका' नाम की एक ऐसी कविता लिखी,

जिसे कविता-सागर का अनुपम रत्न कहना अनुचित न होगा। लोग पढ़ते थे और सिर धुनते थे। साहित्य जगत् में हलचल-सी मच गयी।

सेवक-दल पर प्रभु सेवक का प्रभुत्व बढ़ता जाता था। प्रायः सभी सदस्यों को उन पर श्रद्धा हो गयी थी, सभी प्राणपण से उनके आदेशों पर चलने को तैयार रहते थे। समस्त देश में संस्था की सुव्यवस्था की चर्चा हो रही थी। जगह-जगह से राष्ट्रीय सभाओं ने उन्हें आमंत्रित करना शुरू किया। जहाँ जाते, लोग उनका भाषण सुनकर मुग्ध हो जाते थे।

पूना में राष्ट्रीय सभा का उत्सव था। प्रभु सेवक को निमंत्रण मिला। तुरंत इंद्रदत्त को अपना कार्यभार सौंपा और दक्षिण के प्रदेशों में भ्रमण करने का इरादा करके चले। पूना में उनके स्वागत की खूब तैयारियाँ की गयी थीं। यह नगर सेवक-दल का एक केंद्र भी था, और यहाँ का नायक एक बड़े जीवट का आदमी था, जिसने बर्लिन में इंजीनियरी की उपाधि प्राप्त की थी और तीन वर्ष के लिए इस दल में सम्मिलित हो गया था। वह अपने दल के सदस्यों के लिए स्टेशन पर खड़ा था। प्रभु सेवक का हृदय यह समारोह देखकर प्रफुल्लित हो गया। उसके मन ने कहा—यह मेरे नेतृत्व का प्रभाव है। मैंने ही इसका संचार किया। अब आशा होती है कि जिंदा रहा, तो कुछ-न-कुछ कर दिखाऊँगा। हा अभिमान!

संध्या समय विशाल पण्डाल में जब वह मंच पर खड़े हुए, तो कई हज़ार श्रोताओं को अपनी ओर श्रद्धापूर्ण नेत्रों से ताकते देखकर उनका हृदय पुलकित हो उठा। गैलरी में योरपियन महिलाएँ भी उपस्थित थीं। प्रांत के गवर्नर महोदय भी आये हुए थे। जिसकी कलम में यह जादू है, उसकी वाणी में क्या कुछ चमत्कार न होगा, सब यही देखना चाहते थे।

प्रभु सेवक का व्याख्यान शुरू हुआ। किसी को उनका परिचय कराने की ज़रूरत न थी। राजनीति की दार्शनिक मीमांसा करने लगे। ऐसे जटिल और गहन विषय को अगर कोई सरल, बोधगम्य और मनोरंजक बना सकता था, तो वह प्रभु सेवक थे। लेकिन राजनीति भी संसार की उन महत्त्वपूर्ण वस्तुओं में है, जो विश्लेषण और विवेचना की आँच नहीं सह सकती। लेकिन ज्यों ही उनके मुख से ये शब्द निकले—हमारा देश राजनीति शून्य है। त्यों ही सामने से पिस्तौल छूटने की आवाज़ आयी, और गोली प्रभु सेवक के कान के पास से निकलकर पीछे की ओर दीवार में लगी। रात का समय था; कुछ पता न चला, किसने यह आघात किया। संदेह हुआ, किसी योरपियन की शरारत है। सहसा प्रभु सेवक ने उच्च स्वर में कहा—मैं उस प्राणी को क्षमा करता हूँ, जिसने मुझ पर आघात किया है। उसका जी चाहे, तो वह फिर मुझ पर निशाना मार सकता है। मैं अपने विचारों का प्रचार करने आया हूँ, आघातों का प्रत्याघात करने नहीं।

सभा उठ गयी। योरपियन लोग पीछे के द्वार से निकल गये। बाहर सशस्त्र पुलिस आ पहुँची थी।

दूसरे दिन संध्या को प्रभु सेवक के नाम तार आया—सेवक-दल की प्रबंध-कारिणी समिति आपके व्याख्यान को नापा करती है, और अनुरोध करती है कि आप लौट आयें, वरना यह आपके व्याख्यानों की उत्तरदायी न होगी।

प्रभु सेवक ने तार के कागज़ को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला और उसे पैरों से

कुचलते हुए आप-ही-आप बोले—मूर्त, कायर, रँगा हुआ सियार। राष्ट्रीयता का दम भरता है, जाति की सेवा करेगा! एक व्याख्यान ने कायापलट कर दी। उँगली में लहू लगाकर शहीदों में नाम लिखाना चाहता है।

उन्होंने उसी वक़्त तार का जवाब दिया—मैं प्रबंध-कारिणी समिति के अधीन रहना अपने लिए अपमानजनक समझता हूँ। मेरा उससे कोई सम्बंध नहीं।

आध घंटे बाद दूसरा पत्र आया। इस पर सरकार की मुहर थी:

माई डियर सेवक,
मैं नहीं कह सकता कि कल आपका व्याख्यान सुनकर मुझे कितना लाभ और आनंद प्राप्त हुआ। मैं यह अत्युक्ति के भाव से नहीं कहता कि राजनीति की ऐसी विद्वतापूर्ण और तात्त्विक मीमांसा आज तक मैंने कहीं नहीं सुनी थी। नियमों ने मेरी जबान बंद कर रखी है, लेकिन मैं आपके भावों और विचारों का आदर करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन जल्द आये, जब हम राजनीति का मर्म समझें और उसके सर्वोच्च सिद्धान्तों का पालन कर सकें। केवल एक ही ऐसा व्यक्ति है, जिसे आपकी स्पष्ट बात असह्य हुई, और मुझे बड़े दुःख और लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि वह व्यक्ति योरपियन है। यदि मैं उस नर-पिशाच का पता लगाने में सफल हुआ (उसका कल से पता नहीं है), तो आपको इसकी सूचना देने में मुझसे अधिक आनंद और किसी को न होगा।
आपका
एफ. विल्सन

प्रभु सेवक ने इस पत्र को दुबारा पढ़ा। उनके हृदय में गुदगुदी-सी होने लगी। बड़ी सावधानी से उसे अपने संदूक में रख दिया। कोई और वहाँ होता, तो ज़रूर पढ़कर सुनाते। वह गर्वोन्मत्त होकर कमरे में टहलने लगे।

38

सोफ़िया और विनय रात-भर तो स्टेशन पर पड़े रहे। सबेरे समीप के गाँव में गये, जो भीलों की एक छोटी-सी बस्ती थी। सोफ़िया को यह स्थान बहुत पसंद आया। बस्ती के सिर पर पहाड़ का साया था, पैरों के नीचे एक पहाड़ी नाला मीठा राग गाता हुआ बहता था। जब तक कुछ निश्चय न हो जाये कि क्या करना है, कहाँ जाना है, कहाँ रहना है, तब तक उन्होंने उसी गाँव में निवास करने का इरादा किया। एक झोंपड़े में जगह भी आसानी से मिल गयी। इस झोंपड़ें में केवल एक भीलनी रहती थी। उसका लड़का कहीं फौज में नौकर था। बुढ़िया इन लोगों की सेवा-टहल सहर्ष कर देती। यहाँ इन लोगों ने मशहूर किया कि हम दिल्ली के रहनेवाले हैं, जलवायु बदलने आये हैं।

किन्तु इतना एकांत और इतनी स्वाधीनता होने पर भी दोनों एक दूसरे से बहुत कम मिलते। दोनों न जाने क्यों सशंक रहते थे। उनमें मनोमालिन्य न था, दोनों प्रेम में डूबे हुए थे। दोनों उद्विग्न थे, दोनों विकल, दोनों अधीर, किन्तु नैतिक बंधनों की दृढ़ता उन्हें मिलने न देती। सोफ़िया के लिए विनय का सामीप्य काफ़ी था। वह उन्हें नित्य आँखों से देखती थी, उनके हर्ष और अमर्ष में सम्मिलित होती थी, उन्हें अपना समझती थी। इससे अधिक वह कुछ न चाहती थी। विनय रोज़ आस-पास के देहातों में विचरने चले जाते थे। कोई स्त्री उनसे अपने परदेसी पुत्र या पति के नाम पत्र लिखाती, कहीं रोगियों को दवा देते, कहीं पारस्परिक कलहों में मध्यस्थ बनना पड़ता। भोर के गये पहर रात को लौटते। सोफ़िया चिराग जलाये उनकी बाट देखा करती। जब वह आ जाते, तो उनके हाथ-पैर धुलवाकर भोजन कराती, दिन-भर की कथा प्रेम से सुनती और तब दोनों अपनी-अपनी कोठरियों में सोने चले जाते। सोफ़िया इतने ही में संतुष्ट थी। अगर उसे विश्वास हो जाता कि मेरा सम्पूर्ण जीवन इसी भाँति कट जायेगा, तो वह अपना अहोभाग्य समझती। लेकिन विनय इतने धैर्यशील, इतने विरागी न थे। सोफ़िया का अनुपम सौंदर्य, उसकी स्वर्गोपम वचन-माधुरी, उसका विलक्षण अंग-विन्यास उनकी श्रृंगारमयी कल्पना को विकल करता रहता था।

ये लोग रेलवे स्टेशन के पते से अपने नाम पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि मँगा लिया करते थे। दोनों को शंका थी कि इस सुरक्षित स्थान से निकलकर हमारी न जाने क्या दशा हो जाये, न जाने हम किस भँवर में जा पड़ें।

इस तरह एक साल गुज़र गया। सोफ़िया विनय को जल-पान कराकर अँगीठी के सामने बैठी एक किताब देख रही थी। कभी मार्मिक स्थलों पर पेंसिल से × निशान करती, कभी प्रश्नचिह्न बनाती, कहीं लकीर खींचती। विनय कपड़े पहन, बाहर जाना चाहते थे। ठंडी हवा चल रही थीं, जाड़े के कपड़े थे ही नहीं। कम्बल काफ़ी न था। अलसाकर अँगीठी के पास आये और माँची पर बैठ गये। सोफ़िया ने सिर उठाया, तो विनय को सचेष्ट नेत्रों से अपनी ओर ताकते पाया। लजाकर आँखें नीची कर लीं और बोली—आज तो बड़ी सरदी है, कहाँ जाओगे! बैठो, तुम्हें इस पुस्तक के कुछ भाग सुनाऊँ।

विनय ने उत्सुकता के साथ कहा—नहीं सोफ़ी, आज कहीं न जाऊँगा। तुमसे कुछ बातें करने को जी चाहता है। किताब बंद करके रख दो।

यह कहकर उन्होंने सोफ़िया के हाथों से किताब छीन लेने की चेष्टा की। सोफ़िया किताब को दृढ़ता से पकड़कर बोली—बैठो, इस फ्रेंच फिलॉसफर के विचार सुनाऊँ।

विनय—नहीं, आज दस मिनट के लिए तुम इस फिलॉसफर से अवकाश माँग लो और मेरी ये बातें सुन लो—आखिर मेरे इस वनवास की कोई अवधि है या सदैव जीवन के सुख-स्वप्न ही देखता रहूँगा?

सोफ़िया ने किताब बंद करके रख दी और प्रेम-गम्भीर भाव से बोली—मैंने तो अपने को तुम्हारे चरणों पर डाल दिया, अब और मुझसे क्या चाहते हो?

विनय—अगर मैं देवता होता, तो तुम्हारी प्रेमोपासना से संतुष्ट हो जाता; लेकिन मैं भी तो इच्छाओं का दास, क्षुद्र मनुष्य हूँ। मैंने जो कुछ पाया है, उससे संतुष्ट नहीं हूँ। मैं सर्वभोगी हूँ, केवल सुगंध से मेरी तृप्ति नहीं होती।

सोफ़िया—विनय, मुझे अभी विवश न करो, मैं तुम्हारी हूँ। मैं इस वक़्त यह बात जितने शुद्ध भाव और निष्कपट हृदय से कह रही हूँ, उससे अधिक किसी मंदिर में, कलीसा में या हवन-कुंड के सामने नहीं कह सकती। लेकिन क्षमा करना, मैं कभी ऐसा कर्म न करूँगी, जिससे तुम्हारा अपमान, तुम्हारी अप्रतिष्ठा, तुम्हारी निंदा हो।

मुझे अब भी आशा है कि कभी-न-कभी रानीजी से तुम्हारा और अपना अपराध क्षमा करा लूँगी, और तब उनके आशीर्वादों के साथ हम दाम्पत्य-क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।

विनय ने धीरे से कहा—वह दिन कब आयेगा, जब या तो अम्माँजी न होंगी या मैं न रहूँगा। तब उन्होंने कम्बल ओढ़ा, हाथ में लकड़ी ली और बाहर चले गये।

फिर पूर्ववत् दिन कटने लगे, विनय बहुत मलिन और खिन्न रहते। यथासम्भव घर से बाहर ही विचरा करते, आते भी तो भोजन करके चले जाते।

एक दिन वह नदी के किनारे बैठे हुए थे कि बुढ़िया भीलनी पानी भरने आयी। उन्हें वहाँ बैठे देखकर उसने घड़ा रख दिया और बोली—क्यों मालिक, तुम यहाँ अकेले क्यां बैठे हो? घर में मालकिन घबराती न होंगी? मैं उन्हें बहुत रोते देखा करती हूँ। क्या बात है? कभी तुम दोनों को बैठकर हँसते-बोलते नहीं देखती?

विनय ने कहा—क्या करूँ माता, उन्हें यही तो बीमारी है।

भीलनी—तो बेटा, इसका उपाय मैं कर दूँगी। ऐसी जड़ी दे दूँ कि तुम्हारे बिना उन्हें छिन-भर भी चैन न आये।

विनय—क्या ऐसी जड़ी भी होती है?

बुढ़िया ने सरल विज्ञता से कहा—बेटा, जड़ियाँ तो ऐसी-ऐसी होती हैं कि चाहे आग बाँध लो, पानी बाँध लो, मुरदे को जिला दो, मुद्दई को घर बैठे मार डालो।

संध्या समय, जब सोफ़िया बैठी भोजन बना रही थी, भीलनी ने एक जड़ी लाकर विनयसिंह को दी और बोली—बेटा, बड़े जतन से रखना, लाख रुपये दोगे, तब भी न मिलेगी। इसको अपने लहू में पंद्रह दिन तक रोज भिगोकर सुखाओ। तब इसमें से एक-एक पत्ती काटकर मालकिन को धूनी दो। पंद्रह दिन के बाद जो बच रहे, वह उनके जूड़े में बाँध दो। देखो, क्या होता है। भगवान् चाहेंगे, तो तुम आप उनसे ऊबने लगोगे। फिर उनसे विनय के कान में एक मंत्र बताया, जो कई निरर्थक शब्दों का संग्रह था, और कहा कि जड़ी को लहू में डुबाते समय यह मंत्र पाँच बार पढ़कर जड़ी पर फूँक देना।

विनयसिंह मिथ्यावादी न थे; मंत्र-तंत्र पर उनका अणु-मात्र भी विश्वास न था। लेकिन सुनी-सुनाई बातों से उन्हें यह मालूम था कि निम्न जातियों में ऐसे तांत्रिक क्रियाओं का बड़ा प्रचार है, और कभी-कभी इनका विस्मयजनक फल भी होता है। उनका अनुमान था कि क्रियाओं में स्वयं कोई शक्ति नहीं, अगर कुछ फल होता है, तो वह मूर्खों के दुर्बल मस्तिष्क के कारण। तो भी उन्होंने यह सिद्धि प्राप्त करने का निश्चय किया। उन्हें उससे किसी फल की आशा न थी, केवल उसकी परीक्षा लेना चाहते थे।

ज्यों ही मंगल का दिन आया, वह नदी पर गये, स्नान किया और चाकू से अपनी एक उँगली काटकर उसके रक्त में जड़ी को भिगोया, और तब उसे एक ऊँची चट्टान पर पत्थरों से ढककर रख आये। पंद्रह दिन तक लगातार यही क्रिया करते रहे। ठंड ऐसी पड़ती थी कि हाथ-पाँव गले जाते थे, बरतनों में पानी जम जाता था। लेकिन विनय नित्य स्नान करने जाते। सोफ़िया ने उन्हें इतना कर्मनिष्ठ न देखा था। कहती—इतनी सबेरे न नहाओ, कहीं सरदी न लग जाये, ज़रा धूप निकल आने दिया करो। लेकिन विनय मुस्कराकर कह देते, बीमार पड़ूँगा, तो कम-से-कम तुम मेरे पास बैठोगी तो।

इन दिनों विनय की दृष्टि सोफ़िया की एक-एक बात, एक-एक गति पर लगी रहती थी। वह देखना चाहते थे कि मेरी क्रिया का कुछ असर हो रहा है या नहीं, किंतु कोई प्रत्यक्ष फल न दिखायी देता था। पंद्रहवें दिन जाकर उन्हें सोफ़िया के व्यवहार में कुछ थोड़ा-सा अन्तर दिखायी पड़ा। जब घर से बाहर जाने लगे, तो सोफ़िया अज्ञात भाव से निकल आयी और कई फर्लांग तक उनसे बातें करती हुई चली गयी। जब विनय ने बहुत आग्रह किया, तब लौटी। विनय ने समझा, यह उसी क्रिया का असर है।

आज से धूनी देने की क्रिया आरम्भ होती थी। विनय बहुत चिंतित थे—वह क्रिया क्योंकर पूरी होगी! अकेले सोफ़ी के कमरे में जाना सभ्यता, सज्जनता और शिष्टता के विरुद्ध है। कहीं सोफ़ी जाग जाये और मुझे देख ले, तो मुझे कितना नीच समझेगी! सम्भव है, केश खुले हों, वस्त्र हट गया हो। उस समय मेरी मनोवृत्तियाँ कितनी कुचेष्ट हो जायेंगी।

सारे दिन वह इन्हीं अशांतिमय विचारों में पड़े रहे, लेकिन संध्या होते ही वह कुम्हार के घर से एक कच्चा प्याला लाये और उसे हिफाजत से रख दिया। आधी रात हुई, तो विनय प्याली में आग और हाथ में वह रक्त-सिंचित जड़ी लिए हुए सोफ़ी की कोठरी के द्वार पर आये। कम्बल का परदा पड़ा हुआ था। वह थर-थर काँपते, पसीने से तर, अन्दर घुसे। दीपक के मंद प्रकाश में सोफ़ी निद्रा में मग्न लेटी हुई ऐसी मालूम होती थी, मानो मस्तिष्क में मधुर कल्पना विश्राम कर रही हो। विनय कुछ देर तक सोफ़ी को भक्ति-भाव से देखते रहे। तब वह धीरे-से बैठ गये, प्याली में जड़ी का एक टुकड़ा तोड़कर रख दिया और उसे सोफ़िया के सिरहाने की ओर खिसका दिया। एक क्षण में जड़ी की सुगंध से सारा कमरा बस उठा। ज्यों ही धुआँ बंद हुआ, विनय ने प्याली से जड़ी की राख निकाल ली। भीलनी के आदेशानुसार उसे सोफ़िया पर छिड़क दिया और बाहर निकल आये। लेकिन अपनी कोठरी में आकर वह घंटों बैठे पश्चात्ताप करते रहे। सोते वक़्त निश्चय किया कि बस, इस क्रिया का आज से अंत है। दूसरे दिन ज्यों-ज्यों रात निकट आती थी, उन्हें शंका होती जाती थी कि कहीं मैं फिर यह क्रिया न करने लगूँ। जब भोजन करके उठे, तो सोफ़ी आकर उनके पास बैठ गयी। यह पहला ही अवसर था कि वह रात को उनके पास बैठी बातें करती रही।

भीलों के खर्राटों की आवाज़ें आने लगीं। सोफ़ी चलने को उठी, तो उसने विनय को ऐसी चितवनों से देखा, जिसमें प्रेम के सिवा और भी कुछ था—आर्द्र आकांक्षा झलक रही थी। एक आकर्षण था, जिसने विनय को सिर से पैर तक हिला दिया। ज्यों-ज्यों क्रिया का समय आता था, उनका दिल बैठा जाता था। जब उन्हें यकीन हो गया कि सोफ़िया सो गयी होगी, तो वह धीरे से उठे, प्याली में आग ली और चले। आज उन्होंने आँखें ऊपर उठाई ही नहीं, सिर नीचा किये धूनी सुलगाई और राख छिड़ककर चले आये। चलती बार उन्होंने सोफ़िया का मुखचंद्र देखा। ऐसा भासित हुआ कि वह मुस्करा रही है। विद्युतगति से अपनी कोठरी में आये, दीपक बुझा दिया और चारपाई पर गिर पड़े।

इस भाँति पाँच दिनों तक विनय ने बड़ी कठिनाइयों से यह साधना की, और इतने ही दिनों में उन्हें सोफ़िया पर इसका असर साफ नज़र आने लगा। यहाँ तक कि पाँचवें दिन वह दोपहर तक उसके साथ भीलों की झोंपड़ियों की सैर करती रही। उसके नेत्रों में गम्भीर चिन्ता की जगह अब एक लालसापूर्ण चंचलता झलकती थी। आज रात को भोजन के उपरांत वह उनके पास बैठकर समाचार-पत्र पढ़ने लगी और पढ़ते-पढ़ते उसने अपना सिर विनय की गोद में रख दिया, और उनके हाथों को अपने हाथ में लेकर बोली—सच बताना, तुम यह तो नहीं चाहते कि यह बला सिर से टल जाये? मैं कहे देती हूँ, जीते जी न टलूँगी। जहाँ जाओगे, मैं भी चलूँगी। यह कहते-कहते उसने विनय के हाथ छोड़ दिये और गले में बाँहें डाल दीं।

विनय को ऐसा मालूम हुआ कि मेरे पैर उखड़ गये हैं और मैं लहरों में बहा जा रहा हूँ। उन्होंने अज्ञात भाव से सोफ़ी के कर-पाश से अपने को मुक्त कर लिया और बोले—सोफ़ी! तुम्हारा जी कैसा है?

सोफ़ी—मुझे कुछ हुआ थोड़े ही है, मैं तो अपने पूर्वजन्म की बात याद कर रही हूँ। मुझे ऐसा याद आता है कि तुम मुझे झोंपड़ी में अकेली छोड़कर अपनी नाव पर कहीं परदेश चले

गये और मैं नित्य नदी के तीर बैठी हुई तुम्हारी राह देखती थी, पर तुम न आते थे।

विनय—सोफ़िया मुझे भय हो रहा है कि तुम्हारा जी अच्छा नहीं है। रात बहुत हो गयी है, अब सो जाओ।

सोफ़ी—मेरा तो आज जाने का जी नहीं चाहता। जब तुम सो जाओगे, मैं चली जाऊँगी।

विनय की दशा उस भूखे आदमी की-सी थी, जिसके सामने परसी थाली रखी हुई हो, क्षुधा से चित्त व्याकुल हो रहा हो, आँतें सिकुड़ी जाती हों, आँखों में अँधेरा छा रहा हो; मगर थाली में हाथ न डाल सकता हो, इसलिए कि पहले किसी देवता का भोग लगना है। उन्हें अब इसमें कोई संदेह न रहा था कि सोफ़ी की व्याकुलता उसी क्रिया का फल है।

आखिर जब अँगीठी की आग ठंडी हो गयी और सोफ़ी को सरदी मालूम होने लगी, तो सोफ़ी चली गयी। क्रिया का समय भी आ पहुँचा। लेकिन आज विनय को साहस न हुआ। उन्हें उसकी परीक्षा ही करनी थी, परीक्षा हो गयी और तांत्रिक साधनों पर उन्हें हमेशा के लिए श्रद्धा हो गयी।

सोफ़िया को चारपाई पर लेटते ही भ्रम हुआ कि रानी जाह्नवी सामने खड़ी ताक रही हैं। उसने कम्बल से सिर निकालकर देखा और तब अपनी मानसिक दुर्बलता पर झुँझलाकर सोचने लगी—आजकल मुझे क्या हो गया है? मुझे क्यों भाँति-भाँति के संशय होते रहते हैं? जैसे मैं विचारहीन-सी हो गयी हूँ। विनय आजकल क्यों मुझसे खिंचे हुए हैं? इनकी बातों में पहले की उत्सुकता, प्रेमातुरता नहीं है।

इन्हीं अशांतिमय विचारों में डूबी हुई वह सो गयी, तो देखती क्या है कि वास्तव में रानीजी मेरे सामने खड़ी क्रोधोन्मत्त नेत्रों से ताक रही हैं और कह रही हैं—विनय मेरा है। वह मेरा पुत्र है, अगर तूने मुझसे उसे छीना, मेरे कुल को कलंकित किया, तो मैं तुम दोनों का इस तलवार से वध कर दूँगी!

सोफ़ी तलवार की चमक देखकर घबरा गयी। चिल्ला उठी। नींद टूट गयी। वह दिल मज़बूत करके उठी और विनयसिंह की कोठरी में जाकर उसके सीने से चिपट गयी।

सोफ़ी—विनय, विनय जागो, मैं डर रही हूँ।

विनय—शांत हो जाओ। तुमने कोई स्वप्न देखा है। डरने की कोई बात नहीं।

सोफ़ी—स्वप्न नहीं था विनय, मैंने रानीजी को प्रत्यक्ष देखा।

दोनों ने बैठकर रात काटी।

सोफ़िया को अब विनय के बिना क्षण-भर भी चैन नहीं आता। उसे केवल मानसिक अशांति न थी, ऐंद्रिक सुख-भोग के लिए भी उत्कंठित रहती। उसे अपनी वासना-लिप्सा पर आश्चर्य होता था। किन्तु जब वह विलास-कल्पना करते-करते उस क्षेत्र में प्रविष्ट होती, जो दाम्पत्य जीवन ही के लिए नियंत्रित हैं, तो रानीजी की वही क्रोध-तेज-पूर्ण मूर्ति उसके सम्मुख खड़ी हो जाती और वह चौंककर कमरे से निकल भागती।

एक दिन वह घबराई हुए विनय के पास आयी, बोली—विनय, मैं बनारस जाऊँगी। रानीजी मुझे यहाँ चैन न लेने देंगी। मैं जाकर रानीजी के पैरों पर गिरूँगी। उनसे अपना

अपराध क्षमा कराऊँगी और उन्हीं की आज्ञा से तुम्हें प्राप्त करूँगी।

विनय ने चिंतित होकर कहा—सोफ़ी, मुझे आशा है कि थोड़े दिनों में तुम्हारा चित्त शांत हो जायेगा।

सोफ़ी—नहीं विनय, कदापि नहीं। रानीजी ने तुम्हें एक महान् उद्देश्य के लिए बलि कर रखा है। मैं उनसे भिक्षा माँगूगी।

विनय—तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।

सोफ़ी—नहीं, नहीं, ईश्वर के लिए ऐसा मत कहो। मुझे अकेले जाने दो।

विनय—इस दशा में मैं तुम्हें अकेले कभी न जाने दूँगा।

सोफ़ी—वचन दो कि बिना मुझसे पूछे रानीजी के पास न जाओगे।

विनय—हाँ, सोफ़ी, यह स्वीकार है। वचन देता हूँ।

सोफ़ी—फिर भी दिल नहीं मानता। डर लगता है, वहाँ तुम आवेश में आकर कहीं रानीजी के पास न चले जाओ। तुम यहीं क्यों नहीं रहते?

विनय ने उसे तस्कीन देने के लिए अकेले जाने की अनुमति दे दी, लेकिन उनका स्नेह-सिंचित हृदय यह कब मान सकता था कि सोफ़िया इस अव्यवस्थित दशा में इतनी लम्बी यात्रा करे। सोचा, उसकी निगाह बचाकर किसी दूसरे डब्बे में बैठ जाऊँगा। सब-के-सब भील स्टेशन तक उन्हें पहुँचाने आये। लेकिन जब गाड़ी आयी और वह बैठी, विनय से बिदा होने का समय आया, तो वह विनय के गले लिपटकर रोने लगी। मानो यह अंतिम वियोग है। जब गाड़ी ने सीटी दी, तो वह हृदय-वेदना से विकल होकर बोली—विनय, मुझसे इतने दिनों कैसे रहा जायेगा?

विनय—सोफ़ी, घबराओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।

सोफ़ी—नहीं, नहीं, ईश्वर के लिए नहीं। मैं अकेली ही जाऊँगी।

विनय गाड़ी में आकर बैठ गये। गाड़ी रवाना हो गयी। ज़रा देर बाद सोफ़िया ने कहा—तुम न आते, तो मैं शायद घर तक न पहुँचती। सच बताना विनय, तुमने मुझ पर मोहिनी तो नहीं डाल दी है?

विनय ने लज्जित होकर कहा—क्या जाने सोफ़ी, मैंने एक क्रिया तो की है। नहीं कह सकता कि वह मोहनी थी या कुछ और!

सोफ़ी—सच?

विनय—हाँ, बिल्कुल सच। मैं तुम्हारी प्रेम-शिथिलता से डर गया था कि कहीं तुम मुझे फिर से न परीक्षा में डालो।

सोफ़ी ने विनय की गर्दन में हाथ डाल दिये और बोली—तुम बड़े छलिया हो। अच्छा, बताओ कौन-सी क्रिया की थी?

विनय ने अपनी जेब से जड़ी निकालकर दिखाते हुए कहा—इसी की धूनी देता था।

सोफ़ी—जब मैं सो जाती थी, तब?

विनय—(सकुचाते हुए) हाँ, सोफ़ी, तभी।

सोफ़ी—तुम बड़े ढीठ हो। अच्छा, अब यही जड़ी मुझे दे दो। यह कहकर उसने जड़ी लेकर रख ली। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—यह तो बताओ, वहाँ तुम रहोगे कहाँ? मैं रानीजी के पास तुम्हें न जाने दूँगी।

विनय—अब मेरा कोई मित्र नहीं रहा। सभी मुझसे असंतुष्ट हो रहे होंगे। नायकराम के घर चला जाऊँगा। तुम वहीं आकर मुझसे मिल लिया करना।

सोफ़िया—कहीं जाकर कह न दे!

विनय—नहीं, मंदबुद्धि है, पर विश्वासघाती नहीं है।

सोफ़िया—अच्छी बात है। देखें, रानीजी से मुराद मिलती है या मौत!

39

तीसरे दिन यात्र समाप्त हो गयी, तो संध्या हो चुकी थी। सोफ़िया और विनय दोनों डरते हुए गाड़ी से उतरे कि कहीं किसी परिचित आदमी से भेंट न हो जाये। सोफ़िया ने सेवा-भवन (विनयसिंह के घर) चलने का विचार किया; लेकिन आज वह बहुत कातर हो रही थी। विनयसिंह उसे तस्कीन देते हुए बोले—दिल मज़बूत रखना, ज़रा भी मत डरना, सच्ची घटनाएँ बयान करना। दया-प्रार्थना का एक शब्द भी मुख से मत निकालना। मैं बातों को घटा-बढ़ाकर अपनी प्राण-रक्षा नहीं करना चाहता। न्याय और शुद्ध न्याय चाहता हूँ यदि वह तुमसे अशिष्टता का व्यवहार करें, कटु वचनों का प्रहार करने लगें, तो तुम क्षण-भर भी मत ठहरना। प्रातःकाल आकर मुझसे एक-एक बात कहना। या कहो, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ?

सोफ़ी उन्हें साथ लेकर चलने पर राज़ी न हुई। विनय तो पाँड़ेपुर की तरफ़ चले, वह सेवा-भवन की ओर चली।

जब वह सेवा-भवन के सामने पहुँची, तो ताँगे से उतर पड़ी और दरबान से बोली—जाकर रानीजी से कहो, मिस सोफ़िया आपसे मिलना चाहती हैं।

दरबान उसे पहचानता ही था। उठकर सलाम किया और बोला—हुज़ूर, भीतर चलें, इत्तला क्या करनी है! बहुत दिनों बाद आपके दरसन हुए।

सोफ़िया—मैं बहुत अच्छी तरह खड़ी हूँ। तुम जाकर इत्तला तो दो।

दरबान अन्दर गया, तो सोफ़िया का दिल इस तरह धड़क रहा था, जैसे कोई पत्ता हिल रहा हो। धड़का लगा हुआ था—कहीं रानी साहब गुस्से में भरी वहीं से बिगड़ती हुई न आयें, यह कहला दें, चली जा, नहीं मिलती! बिना एक बार उनसे मिले तो मैं न जाऊँगी, चाहे वह हज़ार बार दुतकारें।

एक मिनट भी न गुज़रने पाया था कि रानीजी एक शाल ओढ़े हुए द्वार पर आ गईं और उससे टूटकर गले मिली, जैसे माता ससुराल से आनेवाली बेटी को गले लगा ले। अवरुद्ध कंठ से बोली—तुम यहीं क्यों खड़ी हो गईं बेटी, अन्दर क्यों न चली आयीं? मैं तो नित्यप्रति तुम्हारी बाट जोहती रहती थी। (दरबान से) यह बैग उठा ले। महरी से कह दे, मिस सोफ़िया का पुराना कमरा साफ कर दे।

यह कहते हुए सोफ़िया का हाथ पकड़े अपने कमरे में आयीं और उसे अपनी बगल में मसनद पर बैठाकर बोलीं—तुमसे मिलने के लिए जी बहुत बेचैन था।

सोफ़िया का चिंता-पीड़ित हृदय इस निरपेक्षित स्नेह-बाहुल्य से वि५ल हो उठा। वह केवल इतना कह सकी—मुझे भी आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी। आपसे दया-भिक्षा माँगने आयी हूँ।

रानी—बेटी, तुम देवी हो, मेरी बुद्धि पर परदा पड़ा था। मैंने तुम्हें पहचाना न था। तुम्हारी आत्मा इतनी पवित्र है, यह मुझे न मालूम था। आह! अगर पहले से जानती।

यह कहते-कहते रानीजी फूट-फूटकर रोने लगीं। जब चित्त शांत हुआ, तो फिर बोलीं—अगर पहले से जान गयी होती, तो आज इस घर को देखकर कलेजा ठंडा होता। आह! मैंने विनय के साथ घोर अन्याय किया। तुम्हें न मालूम होगा बेटी, जब तुमने... (सोचकर) वीरपालसिंह ही नाम था? हाँ, जब तुमने उसके घर पर रात के समय विनय का तिरस्कार किया, तो वह लज्जित होकर रियासत के अधिकारियों के पास कैदियों पर दया करने के लिए दौड़ता रहा। दिन-दिन भर निराहार और निर्जल पड़ा रहता, न जाने किस सोच में बैठा था कि मेरा पत्र उसे मिला। हाय! (रोकर) सोफ़ी, वह पत्र नहीं था; विष का प्याला था। यह पत्र पाते ही वह बिना किसी से कुछ कहे-सुने नायकराम के साथ यहाँ आने के लिए तैयार हो गया। कई स्टेशनों तक नायकराम उसके साथ आये। पण्डाजी को फिर नींद आ गयी। और जब आँख खुली, तो विनय का कहीं गाड़ी में पता न था। उन्होंने सारी गाड़ी तलाश की। फिर उदयपुर तक गये। रास्ते में एक-एक स्टेशन पर उतरकर पूछ-ताछ की, पर कुछ पता न चला। मैं हत्यारिन हूँ! मुझसे बड़ी अभागिनी संसार में और कौन होगी? न जाने विनय का क्या हाल हुआ; कुछ पता नहीं। मेरे प्यारे लाल ने कभी सुख न पाया। उसका सारा जीवन तपस्या ही में कटा।

यह कहकर रानी फिर रोने लगीं। सोफ़ी भी रो रही थी। पर दोनों के मनोभावों में कितना अन्तर था! रानी के आँसू दुःख; शोक और विषाद के थे, सोफ़ी के आँसू हर्ष और उल्लास के।

रानीजी ने पूछा—क्यों बेटी, तुमने उसे जेल जाते देखा था?

सोफ़ी—जी हाँ, पहचाने न जाते थे।

रानी—उसने समझा विद्रोहियों ने तुम्हारे साथ न जाने क्या व्यवहार किया हो। आराम से बैठो बेटी, अब यही तुम्हारा घर है। अब मेरे लिए तुम्हीं विनय की प्रतिच्छाया हो। इतने दिनों कहाँ रहीं? साल-भर से ऊपर तो हो गया होगा।

सोफ़िया का हृदय आनंद से गद्गद् हो रहा था। जी में तो आया कि इसी वक़्त सारा वृत्तांत कह सुनाऊँ, माता की शोकाग्नि शांत कर दूँ। पर भय हुआ कि कहीं इनका धर्माभिमान फिर न जागृत हो जाये। विनय की ओर से तो अब वह निश्चिंत हो गयी थी। केवल अपने ही विषय में शंका थी। बोली—क्या बताऊँ, कहाँ थी? इधर-उधर भटकती फिरती थी। और शरण ही कहाँ थी! निराश होकर यहाँ चली आयी।

रानी—तुम व्यर्थ इतने दिनों कष्ट उठाती रहीं। क्या यह घर तुम्हारा न था? बुरा न मानना

बेटी, तुमने विनय के साथ बड़ा अन्याय किया—उतना ही, जितना मैंने। तुम्हारी बात उसे और भी ज़्यादा लगी; क्योंकि उसने जो कुछ किया था, तुम्हारे ही हित के लिए किया था। अब तुम स्वयं अपनी भूल पर पछता रही होगी। सोचो, अगर तुम्हें खबर मिलती कि विनय को डाकुओं ने पकड़कर मार डाला है, तो तुम्हारी क्या दशा हो जाती? शायद तुम भी इतनी ही दया-शून्य हो जाती। यह मानवीय स्वभाव है। अब तो वह काम सँभालना है, जो उसे अपने जीवन में सबसे प्यारा था। अब उसका काम सँभालो। इसी को अपने जीवन का उद्देश्य समझो। तुम्हें क्या खबर होगी, कुछ दिनों तक प्रभु सेवक इस संस्था के व्यवस्थापक हो गये थे। मगर ईश्वर को न जाने क्या मंजूर था। प्रभु सेवक और कुँवर साहब में अनबन हो गयी। आखिर प्रभु सेवक ने पद-त्याग कर दिया। सैकड़ों सेवक निराश होकर अपने काम-धंधे में लग गये। चलो बेटी, तुम्हारा कमरा साफ हो गया होगा, तुम्हारे भोजन का प्रबंध करके तब इतमीनान से बातें करूँ। आह! आज विनय होता तो मैं अपने हाथों से इसे उसके गले लगा देती, ब्याह रचाती।

सोफ़िया की प्रबल इच्छा हुई कि रहस्य खोल दूँ। बात ओठों तक आयी और रुक गयी। सहसा शोर मचा—लाला साहब आ गये! भैया विनयसिंह आ गये! नौकर-चाकर चारों ओर से दौड़े, एक क्षण में विनय ने कमरे में क़दम रखा। रानी ने उसे सिर से पैर तक देखा, मानो निश्चय कर रही थीं कि मेरा ही विनय है या कोई और; अथवा देखना चाहती थीं कि उस पर कोई आघात के चि तो नहीं हैं। तब उठीं और बोलीं—बहुत दिनों में आये बेटा! आओ, छाती से लगा लूँ। लेकिन विनय ने तुरंत उनके चरणों पर सिर रख दिया। रानीजी को अश्रु-प्रका में न कुछ सूझता था और न प्रेमावेश में कोई बात मुँह से निकलती थी, झुकी हुई विनय का सिर पकड़कर उठाने की चेष्टा कर रही थीं।

लेकिन विनय को रानी की बातें न भूली थीं। माता को देखकर उसके दिल में जोश उठा कि इनके चरणों पर आत्मसमर्पण कर दूँ। उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई। सामने ही दीवार पर तलवार लटक रही थी। वह कौंधकर तलवार उतार लाया और उसे सर से खींचकर बोला —अम्माँ, इस योग्य तो नहीं हूँ कि आपका पुत्र कहलाऊँ; लेकिन आपकी अंतिम आज्ञा शिरोधार्य कर अपनी सारी अपकीर्ति का प्रायश्चित्त कर लेता हूँ।

सोफ़िया चिल्लाकर विनय से लिपट गयी। जा वी ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—विनय, ईश्वर साक्षी है, मैं तुम्हें कब का क्षमा कर चुकी।

इतने में कुँवर भरतसिंह आकर खड़े हो गये और विनय को हृदय से लगाते हुए बोले—तुम तो बिल्कुल पहचाने नहीं जाते, मुँछें कितनी बढ़ गयी हैं! इतने दुबले क्यों हो? बीमार थे क्या?

विनय—जी नहीं, बीमार तो नहीं था। ऐसा दुबला भी नहीं हूँ।

कुँवर—तुम दूर क्यों खड़ी हो सोफ़िया? आओ, तुम्हें प्यार कर लूँ। रोज ही तुम्हारी याद आती थी। विनय बड़ा भाग्यशाली था कि तुम-जैसी रमणी पायी। अच्छा संयोग है कि तुम दोनों एक ही दिन आये। अपना हाथ बढ़ाओ विनय! सोफ़ी, यह हाथ लो, तो मुझे इतमीनान हो जाये कि तुम्हारे दिल साफ हो गये। जा वी, चलो हम लोग बाहर चलें, इन्हें एक दूसरे को

मनाने दो। आज बड़ा शुभ दिन है।

जब एकांत हुआ, तो सोफ़ी ने पूछा—तुम इतनी जल्दी कैसे आ गये?

विनय ने सकुचाते हुए कहा—सोफ़ी, मुझे वहाँ मुँह छिपाकर बैठते हुए शर्म आती थी। नायकराम कहता रहा, पहले मिस साहब को आने दो; लेकिन मुझसे न रहा गया।

सोफ़िया—खैर, अच्छा ही हुआ, खूब आ गये। माताजी का दिल तुम्हारी तरफ़ से साफ हो गया है।

विनय—तुम्हें तो कुछ नहीं कहा?

सोफ़िया—मुझसे तो टूटकर गले मिलीं कि मैं चकित हो गयी। यह उन्हीं वचनों का प्रभाव है, जो मैंने तुम्हें कहे थे। मेरे अन्याय ने उनकी न्याय-भावना को जागृत कर दिया।

विनय—हम लोग बड़े शुभ मुहूर्त में चले थे।

सोफ़िया—हाँ विनय, अभी तक तो कुशल से बीती। आगे की ईश्वर जाने।

विनय—हम अपना दुःख का हिस्सा भोग चुके।

सोफ़िया ने आशंकित स्वर से कहा—ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

किन्तु सोफ़िया के अंतस्तल में अनिष्ट-शंका का प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहा था। वह उसे प्रकट न कर सकती थी, पर उसका चित्त उदास था।

40

मिल के तैयार होने में अब बहुत थोड़ी कसर रह गयी थी। बाहर से तंबाकू की गाड़ियाँ लदी चली आती थीं। किसानों को तंबाकू बोने के लिए दादनी दी जा रही थी। गवर्नर से मिल को खोलने की रस्म अदा करने के लिए प्रार्थना की गयी थी और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया था। मज़ा तो जब आये कि दावत में इसी मिल का बना हुआ सिगार भी रखा जाये। मिस्टर जॉन सेवक सुबह से शाम तक इन्हीं तैयारियों में दत्तचित्त रहते थे। पाँड़ेपुर का पुराना बाज़ार सर्द होता जाता था। मिठुआ, घीसू, विद्याधर तीनों अकसर इधर सैर करने आते और जुआ खेलते। तीनों ही युवकों को मना किया जाता था, वहाँ न जाया करो, जाओ भी तो अपना काम करके चले आया करो; किन्तु जवानी दीवानी होती है, कौन किसी की सुनता है। सबसे बुरी दशा बजरंगी की थी। घीसू नित्य रुपये-आठ आने उड़ा लिया करता। पूछने पर बिगड़कर कहता, क्या मैं चोर हूँ?

एक दिन बजरंगी ने सूरदास से कहा—सूरे, लड़के बरबाद हुए जाते हैं। जब देखो, चकले ही में डटे रहते हैं। घिसुआ में चोरी की बान कभी न थी। अब ऐसा हथलपका हो गया है कि सौ जतन से पैसे रख दो, खोजकर निकाल लेता है।

जगधर सूरदास के पास बैठा हुआ था। ये बातें सुनकर बोला—मेरी भी वही दसा है भाई! आशा थी, चार पैसे कमाएगा, मेरा बुढ़ापा कट जायेगा, घर-बार सँभालेगा, बिरादरी में मरजाद बढ़ाएगा। सो अब रोज वहाँ जाकर जुआ खेलता है।

बजरंगी—अजी, जुआ ही खेलता, तब तक गनीमत थी, हमारा घीसू तो आवारा हो गया है। जब से चकले की चाट पड़ गयी है, दिन-दिन घुलता जाता है।

सूरदास—मैं अंधा आदमी लौंडों के ये कौतुक क्या जानूँ, पर सुभागी कहती है कि मिठुआ के ढंग अच्छे नहीं हैं।

जगधर—तुम भी झूठमूठ लाज ढो रहे हो। निकाल क्यों नहीं देते घर से? अपना लड़का हो, तो एक बात है; भाई-भतीजे किसके होते हैं?

ठाकुरदीन भी आ गया था। जगधर की बात सुनकर बोला—भगवान् ने क्या तुम्हारे करम में काँटे ही बोना लिखा है, किसी का भी भला नहीं देख सकते?

सूरदास—उसके मन में जो आये, करे, पर मेरे हाथों तो यह नहीं हो सकता कि मैं आप

खाकर सोऊँ और उसकी बात न पूछूँ।

ठाकुरदीन—कोई बात कहने के पहले सोच लेना चाहिए कि सुननेवाले को अच्छी लगेगी या बुरी।

यहाँ तो ये बातें हो रही थीं, उधर तीनों लौंडे नायकराम के दालान में बैठे हुए मंसूबे बाँध रहे थे। घीसू ने कहा—सुभागी सिर पर साग की टोकरी रखकर बल खाती हुई चलती है, सो जान ले लेती है। बड़ी काफर है!

विद्याधर—तुम तो हो घामड़, पढ़े-लिखे तो हो नहीं, बात क्या समझो। मासूक कभी अपने मुँह से थोड़े ही कहता है कि मैं राज़ी हूँ। उसकी आँखों से ताड़ जाना चाहिए।

मिठुआ—पहले सुभागी मुझसे भी इसी तरह बिगड़ती थी, किसी तरह हत्थे ही न चढ़े, बात तक न सुने; पर मैंने हिम्मत करके एक दिन कलाई पकड़ ली, और बोला—अब न छोड़ूँगा, चाहे मार ही डाल।

मिठुआ अपनी प्रेम-विजय की कल्पित कथाएँ गढ़ने में निपुण था। निरक्षर होने पर भी गप्पें मारने में उसने विद्याधर को मात कर दिया था। घीसू बोला—क्या करूँ, मेरी तो हिम्मत ही नहीं पड़ती। डरता हूँ, कहीं शोर मचा दे, तो आफत आ जाये।

विद्याधर—औरत उसी को प्यार करती है, जो दिलावर हो, निडर हो, आग में कूद पड़े।

घीसू—तुम तैयार हो?

विद्याधर—हाँ, आज ही।

तीनों मिस्कौट करते, इस षड्यंत्र के दाँव-पेच सोचते हुए, कुली बाज़ार की तरफ़ चले गये। वहाँ तीनों ने शराब पी और नशे में चूर होकर लौटे, तो घीसू बोला—सलाह पक्की है न? आज वारा-न्यारा हो जाये, चित पड़े या पट।

आधी रात बीत चुकी थी। चौकीदार पहरा देकर जा चुका था। घीसू और विद्याधर सूरदास के द्वार पर आये।

घीसू—तुम आगे चलो, मैं यहाँ खड़ा हूँ।

विद्याधर—नहीं, तुम जाओ। कोई देख लेगा, तो बात भी न बना सकोगे।

नशे ने घीसू को आपे से बाहर कर रखा था। कुछ यह दिखाना भी मंज़ूर था कि तुम लोग मुझे जितना बोदा समझते हो, उतना बोदा नहीं हूँ। झोंपड़ी में घुस ही तो पड़ा, और जाकर सुभागी की बाँह पकड़ ली। सुभागी चौंककर उठ बैठी और ज़ोर से बोली—कौन है? हट।

घीसू—चुप-चुप, मैं हूँ।

सुभागी—चोर-चोर! चोर-चोर!

सूरदास जागा। उसने भी एक आदमी का हाथ पकड़ लिया और चिल्लाया—चोर! चोर! मुहल्ले के लोग ये आवाज़ें सुनते ही लाठियाँ लेकर निकल पड़े। सूरदास ने कहा, एक को मैं पकड़े हुए हूँ। लोगों ने आकर देखा, तो भीतर सुभागी घीसू को पकड़े हुए है, बाहर सूरदास विद्याधर को। एक क्षण में सारा मुहल्ला टूट पड़ा। लेकिन यहाँ आकर देखते हैं, तो न चोर, न चोर का भाई, बल्कि अपने ही मुहल्ले के लौंडे हैं।

एक स्त्री बोली—यह जमाने की खूबी है कि गाँव-घर का विचार उठ गया, किसकी आबरू बचेगी!

ठाकुरदीन—ऐसे लौंडों का सिर काट लेना चाहिए।

नायकराम—चुप रहो यह गुस्सा करने की बात नहीं, रोने की बात है।

जगधर-बजरंगी जमुनी सिर झुकाए चुप खड़े थे, मुँह से बात न निकलती थी। बजरंगी को तो ऐसा क्रोध आ रहा था कि घीसू का गला घोंट दे। यह जमाव और हलचल देखकर कई कांस्टेबिल भी आ पहुँचे। तुरंत दोनों युवकों की कलाइयाँ पकड़ लीं। जमुनी ने रोकर कहा—ये लौंड़े मुँह में कालिख लगानेवाले हैं। अच्छा होगा, छः-छः महीने की सजा काट आयेंगे, तब इनकी आँखें खुलेंगी।

नायकराम—अच्छा, अपने-अपने घर जाव। जमादार, लौंड़ें हैं, छोड़ दो।

जमादार—ऐसा न कहो पण्डाजी, कोतवाल साहब को मालूम हो जायेगा, तो समझेंगे, इन सबों ने ले-देकर छोड़ दिया होगा।

नायकराम—क्या कहते हो सूरे, अब ये लोग जायें न?

ठाकुरदीन—हाँ, और क्या। लड़कों से भूल-चूक हो ही जाती है।

सूरदास—मैं कौन होता हूँ कि जाने दूँ! जाने दें कोतवाल, डिपटी, हाकिम लोग!

बजरंगी—सूरे, भगवान जानता है, जान का डर न होता, तो इसे कच्चा ही चबा जाता।

सूरदास—अब तो हाकिम लोगों के हाथ में है, छोड़ें चाहे सजा दें।

बजरंगी—तुम कुछ न करो, तो कुछ न होगा। जमादारों को हम मना लेंगे।

सूरदास—तो भैया, साफ-साफ बात यह है कि मैं बिना सरकार में रपट किये न मानूँगा, चाहे सारा मुहल्ला मेरा दुसमन हो जाये।

बजरंगी—लड़कों से भूल हो गयी, अब उनकी जिंदगानी खराब करने से क्या मिलेगा?

जगधर—सुभागी ही कहाँ की देवी है!

सूरदास—तो यह सब मुझसे क्या कहते हो भाई, सुभागी देवी हो, चाहे हरजाई हो, वह जाने, उसका काम जाने। मैंने अपने घर में चोरों को पकड़ा है, इसकी थाने में ज़रूर इत्तिला करूँगा, थानेवाले न सुनेंगे, तो हाकिम से कहूँगा।

नायकराम ने वहाँ ठहरना व्यर्थ समझा। क्यों नींद खराब करें? चलने लगे, तो जगधर ने कहा—पण्डाजी, तुम भी जाते हो, यहाँ क्या होगा?

नायकराम ने जवाब दिया—भाई, सूरदास मानेगा नहीं, चाहे लाख कहो।

जगधर—ऐसा कहाँ का धन्नासेठ है कि अपने मन ही की करेगा। तुम चलो, ज़रा डाँटकर कहो तो।

नायकराम लौटकर सूरदास से बोले—सूरे, कभी-कभी गाँव-घर के साथ मुलाहजा भी करना पड़ता है। लड़कों की जिंदगानी खराब करके क्या पाओगे?

सूरदास—पण्डाजी, क्या औरत की आबरू कुछ नहीं? सुभागी ग़रीब है, अबला है, मजूरी करके अपना पेट पालती है, इसलिए जो कोई चाहे, उसकी आबरू बिगाड़ दे?

सारा मुहल्ला एक हो गया, यहाँ तक दोनों चौकीदार भी मुहल्लेवालों की-सी कहने लगे। एक बोला—औरत खुद हरजाई है।

चौकीदार—हरजाई तो है ही। एक बार नहीं, सौ बार उसे बाजार में तरकारी बेचते और हँसते देखा है।

सूरदास—तो बाजार में तरकारी बेचना और हँसना हरजाइयों का काम है?

चौकीदार—अरे, तो जाओगे तो थाने ही तक न! वहाँ भी तो हमीं से रपट करोगे?

सूरदास—हाँ दारोग़ाजी के मन में जो आये करें, दोस-पास उनके साथ हैं।

नायकराम—कहता हूँ, मुहल्ले में न रहने पाओगे।

सूरदास—जब तक जीता हूँ, तब तक तो रहूँगा, मरने के बाद देखी जायेगी।

कोई सूरदास को धमकाता था, कोई समझाता था। पर सूरदास अपनी बात पर ऐसा अड़ा कि किसी भाँति मानता ही न था। अंत को यही निश्चय हुआ कि इसे थाने जाकर रपट कर आने दो। हम लोग थानेदार ही को राजी कर लेंगे।

नायकराम—अरे, वही लाला थानेदार है न? मेरी पुरानी जान-पहचान है।

जगधर—पण्डाजी, मेरे पास तो रुपये भी नहीं हैं, मेरी जान कैसे बचेगी?

नायकराम—मैं भी परदेश से लौटा हूँ। जाके कहीं रुपये की फिकिर करो।

जगधर—मैं सूरे को अपना हितू समझता था। जब कभी काम पड़ा है, उसकी मदद की है। इसी के पीछे भैरो से दुश्मनी हुई। और, अब भी यह मेरा न हुआ!

नायकराम—यह किसी का नहीं है। जाकर देखो, 25 रुपये तो ले ही आओ। न हो, विद्या की अम्माँ से कोई गहना ही माँग लो।

जगधर बहाने करने लगा—वह छल्ला तक न देगी; यह कहते-कहते वह रोने लगा। नायकराम को उस पर दया आ गयी। रुपये देने का वचन दे दिया।

सूरदास प्रातःकाल थाने की ओर चला, तो बजरंगी ने कहा—सूरे, तुम्हारे सिर पर मौत खेल रही है, जाओ।

जमुनी सूरे के पैरों से लिपट गयी और रोती हुई बोली—सूरे, तुम हमारे बैरी हो जाओगे, यह कभी आसा न थी।

बजरंगी ने कहा—नीच है, और क्या! हम इसको पालते ही चले आते हैं। जब कभी दूध माँगने आया, खाली हाथ नहीं जाने दिया। इस नेकी का यह बदला!

नायकराम पहले ही लपककर थाने जा पहुँचे और थानेदार से सारा वृत्तांत सुनाकर कहा —पचास का डौल है, कम न ज़्यादा। रपट ही न लिखिए।

दारोग़ा ने कहा—पण्डाजी, जब तुम बीच में पड़े हुए हो, तो सौ-पचास की कोई बात नहीं; लेकिन अंधे को मालूम हो जायेगा कि रपट नहीं लिखी गयी, तो सीधा डिप्टी साहब के पास जा पहुँचेगा। फिर मेरी जान आफत में पड़ जायेगी। बस, यही हो सकता है कि जब मैं तफतीश करने आऊँ, तो आप लोग किसी को शहादत न देने दें।

दूसरे दिन संध्या समय दारोग़ाजी तहकीकात करने आये। मुहल्ले के सब आदमी जमा

हुए; मगर जिससे पूछो, यही कहता है—मुझे कुछ मालूम नहीं है, मैं कुछ नहीं जानता, मैंने रात को किसी की 'चोर-चोर' आवाज़ नहीं सुनी। यहाँ तक कि ठाकुरदीन ने भी साफ कहा —साहब, मैं कुछ नहीं जानता। दारोग़ा ने सूरदास पर बिगड़कर कहा—झूठी रपट है बदमाश!

सूरदास—रपट झूठी नहीं है, सच्ची है।

दारोग़ा—तेरे कहने से सच्ची मान लूँ? कोई गवाही भी है?

सूरदास ने मुहल्लेवालों को सम्बोधित करके कहा—यारो, सच्ची बात कहने से मत डरो। मेल-मुरौवत इसे नहीं कहते कि किसी औरत की आबरू बिगाड़ दी जाये और लोग उस पर परदा डाल दें। मैं और किसी से नहीं पूछता, ठाकुरदीन, तुम्हें भगवान का भय है, पहले तुम्हीं आये थे, तुमने यहाँ क्या देखा? जो कुछ देखा हो, सच कह दो।

ठाकुरदीन धर्मभीरु प्राणी था। ये बातें सुनकर भयभीत हो गया और बोला—चोरी-डाके की बात तो मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, जब मैं आया तो तुम और सुभागी दोनों लड़कों को पकड़े चिल्ला रहे थे।

सूरदास—अच्छा, अब मैं तुमसे पूछता हूँ जमादार, तुम आये थे न? बोलो, यहाँ जमाव था कि नहीं?

चौकीदार ने ठाकुरदीन को फूटते देखा, तो डरा कि कहीं अंधा दो-चार आदमियों को और फोड़ लेगा, तो हम झूठे पड़ेंगे। बोला—हाँ, जमाव क्यों नहीं था!

सूरदास—घीसू को सुभागी पकड़े हुए थी कि नहीं? विद्याधर को मैं पकड़े हुए था कि नहीं?

चौकीदार—हाँ, पकड़े तो थे, पर चोरी होते देखी नहीं?

सूरदास—दारोग़ाजी, अभी शहादत मिली कि और दूँ?

बजरंगी ने देखा, अब लड़के की जान नहीं बचती, तो अपना ईमान क्यों बिगाड़े? दारोग़ा के सामने आकर खड़ा हो गया और बोला—दारोग़ाजी, सूरे जो बात कहते हैं, वह ठीक है। जिसने जैसी करनी की है, वैसी भोगे। सजा भोगेगा, तो आप आँखें खुलेंगी।

हवा बदल गयी। एक क्षण में साक्षियों का ताँता बँध गया। दोनों अभियुक्त हिरासत में ले लिए गये। मुकदमा चला, तीन-तीन महीने की सजा हो गयी। सुभागी को घर से निकलना मुश्किल हो गया। यहाँ तक कि मिठुआ ने भी साथ छोड़ दिया। अब वह रात को भी स्टेशन पर ही रह जाता। अपने साथियों की दशा ने उसकी आँखें खोल दीं। बस, उसके सम्बन्धियों में ले-देके एक भैरो रह गया। हाँ, कभी-कभी दूसरों की निगाह बचाकर ठाकुरदीन से कुशल-समाचार पूछ जाता।

41

प्रभु सेवक ने तीन वर्ष अमेरिका में रहकर और हज़ारों रुपये खर्च करके जो अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, वह मि. जॉन सेवक ने उनकी संगति से उतने ही महीनों में प्राप्त कर लिया। प्रभु सेवक से पृथक हो जाने से मि. जॉन सेवक लेशमात्र भी चिंतित नहीं हुए थे। वह दूने उत्साह से काम करने लगे। वह प्रभु सेवक को दिखा देना चाहते थे कि मैंने तुम्हारे ही बलबूते पर यह काम नहीं उठाया है; कौवे के न बोलने पर भी दिन निकल ही आता है।

मज़दूरों और कारीगरों के लिए मकान बनवाने की समस्या अभी तक हल न हुई थी। मिल बड़ी धूम से चल रही थी, लेकिन उसकी उन्नति के मार्ग में मज़दूरों के मकानों का न होना सबसे बड़ी बाधा थी। संयोग से परिस्थितियों में कुछ ऐसा उलट-फेर हुआ कि विकट समस्या बिना विशेष उद्योग के हल हो गयी। प्रभु सेवक के असहयोग ने वह काम कर दिखाया, जो कदाचित् उनके सहयोग से भी न हो सकता था।

जब से सोफ़िया और विनयसिंह आ गये थे, सेवक-दल बड़ी उन्नति कर रहा था। उसकी राजनीति की गति दिन-दिन तीव्र और उग्र होती जाती थी। कुँवर साहब ने जितनी आसानी से पहली बार अधिकारियों की शंकाओं को शांत कर दिया था, उतनी आसानी से अबकी बार न कर सके। इसमें संदेह नहीं कि कुँवर साहब निर्भीक पुरुष थे, जाति-प्रेम में पगे हुए, स्वच्छंद, निःस्पृह और विचारशील। उनको भोग-विलास के लिए किसी बड़ी जायदाद की बिल्कुल ज़रूरत न थी। किन्तु प्रत्यक्ष रूप से अधिकारियों के कोपभाजन बनने के लिए वह तैयार न थे। वह अपना सर्वस्व जाति-हित के लिए दे सकते थे; किन्तु इस तरह कि हित का साधन उनके हाथ में रहे। विनय का दूसरा ही मत था। वह कहता था, हम जायदाद के लिए अपनी आत्मिक स्वतंत्रता की हत्या क्यों करें? हम जायदाद के स्वामी बनकर रहेंगे, उसके दास बनकर नहीं। कुँवर साहब इसका यह जवाब देते कि हम इस जायदाद के स्वामी नहीं, केवल रक्षक हैं। यह आनेवाली संतानों की धरोहर-मात्र है। कुँवर साहब के हाथों में विनय को सीधी राह पर लाने का एक ही उपाय था, और वह यह कि सोफ़िया से उसका विका हो जाये। इस बेड़ी में जकड़कर उसकी उद्दंडता को वह शांत करना चाहते थे; लेकिन अब जो कुछ विलम्ब था, वह सोफ़िया की ओर से।

कुँवर साहब कई दिन तक इसी संकट में पड़े रहे। आखिर एक दिन इच्छा न होने पर भी

विवश होकर जॉन सेवक के पास गये। मि. जॉन सेवक अभी-अभी मिल से लौटे थे, कुँवर साहब को देखते ही उठे और बड़े तपाक से हाथ मिलाया।

कुँवर साहब कुर्सी पर बैठते हुए बोले—आप विनय और सोफ़िया के विका के विषय में क्या निश्चय करते हैं? आप मेरे मित्र और सोफ़िया के पिता हैं, और दोनों ही नाते से मुझे आपसे यह कहने का अधिकार है कि अब इस काम में देर न कीजिए।

जॉन सेवक—मित्रता के नाते चाहे जो सेवा ले सकते हैं, लेकिन (गम्भीर भाव से) सोफ़िया के पिता के नाते मुझे कोई निश्चय करने का अधिकार नहीं। उसने मुझे इस अधिकार से वंचित कर दिया।

इतने में मिसेज़ सेवक भी आ गईं। पति की बातें सुनकर बोलीं—मैं तो मर जाऊँगी, लेकिन उसकी सूरत न देखूँगी। हमारा उससे अब कोई सम्बंध न रहा।

कुँवर—आप लोग सोफ़िया पर अन्याय कर रहे हैं। जब से वह आयी है, एक दिन के लिए भी घर से नहीं निकली। इसका कारण केवल संकोच है, और कुछ नहीं। इस विषय में वह क्षम्य है। अब विका में विलम्ब न होना चाहिए।

मिसेज़ सेवक—खुदा वह दिन न लाये! मेरे लिए तो वह मर गयी, उसका फातेहा पढ़ चुकी, उसके नाम को जितना रोना था, रो चुकी!

कुँवर—यह ज्यादती आप लोग मेरे रियासत के साथ कर रहे हैं। विका एक ऐसा उपाय है जो विनय की उद्दंडता को शांत कर सकता है।

जॉन सेवक—मेरी तो सलाह है कि आप रियासत को कोर्ट ऑफ वार्ड्स के सिपुर्द कर दीजिए। गवर्नमेंट आपके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेगी और आपके प्रति उसका सारा संदेह शांत हो जायेगा।

कुँवर—मैं जायदाद की रक्षा के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। मेरी इच्छा केवल इतनी है कि विनय को आर्थिक कष्ट न होने पाए। बस, अपने लिए मैं कुछ नहीं चाहता।

जॉन सेवक—आप प्रत्यक्ष रूप से तो कुँवर विनयसिंह के लिए व्यवस्था नहीं कर सकते। हाँ, यह हो सकता है कि आप अपनी वृत्ति में से जितना उचित समझें, उन्हें दे दिया करें।

कुँवर—अच्छा, मान लीजिए, विनय इसी मार्ग पर और भी अग्रसर होते गये, तो?

जॉन सेवक—तो उन्हें रियासत पर कोई अधिकार न होगा।

कुँवर—लेकिन उनकी संतान को तो यह अधिकार रहेगा?

जॉन सेवक—अवश्य।

कुँवर—ऐसा तो न होगा कि विनय के कामों का फल उनकी संतान को भोगना पड़े? सरकार रियासत को हमेशा के लिए जब्त कर ले? ऐसा दो-एक जगह हुआ है।

जॉन सेवक—कोई खास बात पैदा हो जाये, तो नहीं कह सकते; लेकिन सरकार की यह नीति कभी नहीं रही।

कुँवर—तो मैं कल डॉक्टर गांगुली को शिमले से तार भेजकर बुलाये लेता हूँ?

जॉन सेवक—आप चाहें, तो बुला लें। मैं तो समझता हूँ, यहीं से मसबिदा बनाकर उनके

पास भेज दिया जाये या मैं स्वयं चला जाऊँ और सारी बातें आपकी इच्छानुसार तय कर आऊँ।

कुँवर साहब ने धन्यवाद दिया और घर चले गये। रात-भर वह इसी हैस-बैस में पड़े रहे कि विनय और जा वी से इस निश्चय का समाचार कहूँ या न कहूँ। अंत को उन्होंने यह निश्चय किया कि अभी बतला देने से कोई फ़ायदा नहीं, और विघ्न पड़ने की सम्भावना है। जब काम पूरा हो जायेगा, तो कहने-सुनने को काफ़ी समय मिलेगा।

मिस्टर जॉन सेवक ने दूसरे ही दिन एक बैरिस्टर से प्रार्थना-पत्र लिखवाया और कुँवर साहब को दिखाया। उसी दिन वह कागज़ डॉक्टर गांगुली के पास भेज दिया गया। डॉक्टर गांगुली ने इस प्रस्ताव को बहुत पसंद किया और खुद शिमले से आये। यहाँ कुँवर साहब से परामर्श किया और दोनों आदमी प्रांतीय गवर्नर के पास पहुँचे। कर्मचारियों ने रियासत के हिसाब-किताब की जाँच शुरू की और एक महीने के अन्दर रियासत पर सरकारी अधिकार हो गया। जिस दिन सारी शर्तें तय हो गईं, कुँवर साहब से न रहा गया, विनयसिंह से बोले—रियासत पर तो सरकारी अधिकार हो गया।

विनय ने चौंककर पूछा—क्या जब्त हो गयी?

कुँवर—नहीं, मैंने कोर्ट ऑफ वार्ड्स के सिपुर्द कर दिया!

यह कहकर उन्होंने शर्तों का उल्लेख किया और विनीत भाव से बोले—क्षमा करना, मैंने तुमसे इस विषय में सलाह नहीं ली।

विनय—मुझे इसका बिल्कुल दुःख नहीं है, लेकिन आपने व्यर्थ ही अपने को गवर्नमेंट के हाथ में डाल दिया।

कुँवर—इसका इलज़ाम तुम्हारे सिर है।

विनय—आपने यह निश्चय करने से पहले ही मुझसे सलाह ली होती, तो यह नौबत न आने पाती। मैं आजीवन रियासत से पृथक् रहने का प्रतिज्ञापत्र लिख देता और आप उसे प्रकाशित करके हुक्काम को प्रसन्न रख सकते थे।

कुँवर— (सोचकर) उस दशा में भी यह संदेह हो सकता था कि मैं गुप्त रीति से तुम्हारी सहायता कर रहा हूँ।

विनय—तो मैं इस घर से निकल जाता और आपसे मिलना-जुलना छोड़ देता। अब भी अगर आप इस इंतज़ाम को रद्द करा सकें, तो अच्छा हो। मैं अपने निर्वाह की कोई राह निकाल लूँगा।

कुँवर साहब सजल नयन होकर बोले—विनय, मुझसे ऐसी कठोर बातें न करो। मैं तुम्हारे तिरस्कार का नहीं, तुम्हारी सहानुभूति और दया का पात्र होने योग्य हूँ।

विनय ने इसका कुछ जवाब न दिया। अपने या सोफ़ी के विषय में उन्हें कोई चिन्ता न थी, चिन्ता थी सेवक-दल के संचालन की। इसके लिए धन कहाँ से आयेगा? कम-से-कम पाँच हज़ार माहवार का खर्च था। अब उन्हें अनुभव हुआ कि धन-सम्पत्ति इतनी तुच्छ वस्तु नहीं।

तीसरे पहर का समय था। विनय और इंद्रदत्त, दोनों रुपयों की चिन्ता में मग्न बैठे हुए थे, सहसा सोफ़िया ने आकर कहा—मैं एक उपाय बताऊँ?

इंद्रदत्त—भिक्षा माँगने चलें?

सोफ़िया—क्यों न एक डन्नमा खेला जाये! ऐक्टर हैं ही, कुछ परदे बनवा लिए जायें, मैं भी परदे बनाने में मदद दूँगी।

विनय—सलाह तो अच्छी है, लेकिन नायिका तुम्हें बनना पड़ेगा।

सोफ़िया—नायिका का पार्ट इंदुरानी खेलेंगी, मैं परिचारिका का पार्ट लूँगी।

इंद्रदत्त—अच्छा, कौन-सा नाटक खेला जाये? भट्टजी का 'दुर्गावती' नाटक।

विनय—मुझे तो 'प्रसाद' का 'अजातशत्रु' बहुत पसंद है।

सोफ़िया—मुझे 'कर्बला' बहुत पसंद आया।

इतने में एक डाकिया अन्दर दाखिल हुआ और एक मुहरबंद रजिस्टर्ड लिफाफा विनय के हाथ में रखकर चला गया। लिफाफे पर प्रभु सेवक की मुहर थी। लंदन से आया था।

विनय—अच्छा, बताओ, इसमें क्या होगा?

सोफ़िया—रुपये तो होंगे नहीं, और चाहे जो हो। वह ग़रीब रुपये कहाँ पाएगा?

विनय—और मैं कहता हूँ कि रुपयों के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।

इंद्रदत्त—कभी नहीं। कोई नई रचना होगी।

लिफाफा खोला गया, तो चेक निकला। पूरे दस हज़ार रुपये का। लंदन बैंक के नाम। विनय उछल पड़े। बोले—मैं कहता न था! यहाँ सामुद्रिक विद्या पढ़े हैं।

इंद्रदत्त—ज़रा खत तो पढ़ो, क्या लिखा है, कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं?

सोफ़िया ने खत पढ़ना शुरू किया—

प्रिय बंधुवर, मैं नहीं जानता कि मैं यह पत्र किसे लिख रहा हूँ। कुछ खबर नहीं कि आजकल व्यवस्थापक कौन है। मगर सेवक-दल से मुझे अब भी वही प्रेम है, जो पहले था। उसकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आप मेरा कुशल समाचार जानने के लिए उत्सुक होंगे। मैं पूना ही में था कि वहाँ के गवर्नर ने मुझे मुलाकात करने को बुलाया। उनसे देर तक साहित्य-चर्चा होती रही। विनय (उसका कुछ हाल नहीं मालूम) के सिवा मैंने और किसी को इतना काव्य-रस-चतुर नहीं पाया। कितनी सजीव सहृदयता थी! गवर्नर महोदय की प्रेरणा से मैं यहाँ आया, और जब से आया हूँ, आतिथ्य का अविरल प्रका हो रहा है। वास्तव में जीवित राष्टन्न् ही गुणियों का आदर करना जानते हैं। बड़े ही सहृदय, उदार, स्नेहशील प्राणी हैं। मुझे इस जाति से अब श्रद्धा हो गयी है, और मुझे विश्वास हो गया कि इस जाति के हाथों हमारा अहित कभी नहीं हो सकता। कल यूनिवर्सिटी की ओर से मुझे एक अभिनंदन-पत्र दिया गया। साहित्य-सेवियों का ऐसा समारोह मैंने काहे को कभी देखा था! महिलाओं का स्नेह और सत्कार देखकर मैं मुग्ध हो गया। अब से मेरे जीवन का मिशन होगा प्राच्य और पाश्चात्य को प्रेम-सूत्र में बाँधना, पारस्परिक द्वंद्व को मिटाना और दोनों में समान भावों को जागृत करना। मैं यही व्रत धारण करूँगा। मेरी कविताओं का पहला संग्रह

मैकमिलन कम्पनी द्वारा शीघ्र प्रकाशित होगा। इस संग्रह के लिए प्रकाशकों ने मुझे चालीस हज़ार रुपये दिये हैं। इच्छा तो यही थी कि ये सब रुपये अपनी प्यारी संस्था को भेंट करता; पर विचार है कि अमेरिका की सैर भी करूँ। इसलिए इस समय जो भेजता हूँ, उसे स्वीकार कीजिए। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। इसलिए धन्यवाद की आशा नहीं रखता। प्रार्थना कीजिए कि अमेरिका से सकुशल लौट आऊँ।

आपका सच्चा बंधु

प्रभु सेवक

सोफ़िया ने पत्र मेज़ पर रख दिया और गम्भीर भाव से बोली—इसके दोनों ही अर्थ हो सकते हैं, आत्मिक उत्थान या पतन। मैं तो पतन ही समझती हूँ।

विनय—क्यों? उत्थान क्यों नहीं?

सोफ़िया—इसलिए कि प्रभु सेवक की आत्मा श्रृंगारप्रिय है। जो प्राणी सम्मान से इतना फूल उठता है, वह उपेक्षा से इतना ही हताश भी हो जायेगा।

विनय—यह कोई बात नहीं। कदाचित् मैं भी इसी तरह फूल उठता।

सोफ़िया—सार्वदेशिकता हमारे कई कवियों को ले डूबी, इन्हें भी ले डूबेगी। मैं जाकर अभी इस पत्र का जवाब लिखती हूँ।

यह कहते हुए सोफ़िया वह पत्र हाथ में लिए हुए अपने कमरे में चली गयी।

इंद्रदत्त—रुपये क्यों वापस करोगे? उन्होंने कोई शर्त तो की नहीं है!

इतने में मोटर की आवाज़ आयी और एक क्षण में इंदु आ पहुँची।

इंद्रदत्त—आइए, इंदुरानी, आइए। आप ही का इंतज़ार था।

इंदु—झूठ, मेरी इस वक़्त ज़रा भी चर्चा न थी, रुपये की चिन्ता में पड़े हुए हो।

इंद्रदत्त—तो मालूम होता है, आप कुछ लायी हैं। लाइए, वास्तव में हम लोग बहुत चिंतित हो रहे थे।

इंदु—मुझसे माँगते हो? मेरा हाल जानकर भी? एक बार चंदा देकर हमेशा के लिए सीख गयी। (विनय से) सोफ़िया कहाँ है? अम्माँजी तो अब राज़ी हैं न?

विनय—किसी की दिल की बात कोई क्या जाने।

इंदु—मैं तो समझती हूँ अम्माँजी राज़ी भी हो जायें, तो भी तुम सोफ़ी को न पाओगे।

विनय ने आँसू पीते हुए कहा—मुझे भी कुछ ऐसा ही अनुमान होता है।

इंदु—सोफ़िया कल मुझसे मिलने गयी थी। उसकी बातों ने उसे भी रुलाया और मुझे भी। बड़े धर्मसंकट में पड़ी हुई है। न तुम्हें निराश करना चाहती है, न माताजी को अप्रसन्न करना चाहती है। न जाने क्यों उसे अब भी संदेह है कि माताजी उसे अपनी वधू नहीं बनाना चाहतीं। मैं समझती हूँ कि यह केवल उसका भ्रम है, वह स्वयं अपने मन के रहस्य को नहीं समझती।

इंद्रदत्त—सोफ़िया न देवी है न देवता। न अप्सरा है न परी। जैसी अन्य स्त्रियाँ होती हैं, वैसी ही एक स्त्री वह भी है, वही उसके भाव हैं, वही उसके विचार हैं। आप लोगों ने कभी

विका की तैयारी की, कोई भी ऐसी बात की, जिससे मालूम हो कि आप लोग विका के लिए उत्सुक हैं? उसे लाख विनय से प्रेम हो, पर अपने मुँह से तो विका की बात न कहेगी। आप लोग तैयारियाँ कीजिए, फिर उसकी ओर से आपत्ति हो, तो अलबत्ता उससे शिकायत हो सकती है।

इतने में सोफ़िया वह पत्र लिए हुए आती दिखायी दी, जो उसने प्रभु सेवक के नाम लिखा था। इंदु ने बात पलट दी, और बोली—तुम लोगों को तो अभी खबर न होगी, मि. सेवक को पाँड़ेपुर मिल गया। वह मुहल्ला खुदवाकर फेंक दिया जायेगा और वहाँ मिल के मज़दूरों के लिए घर बनेंगे।

इंद्रदत्त—राजा साहब ने मंज़ूर कर लिया?

इंदु—सरकार का आदेश था, कैसे न मंज़ूर करते।

इंद्रदत्त—साहब ने बड़ी दौड़ लगाई। सरकार पर भी मंत्र चला दिया।

विनय—राजा साहब को पद-त्याग कर देना चाहिए। इतनी बड़ी जिम्मेदारी सिर पर लेने से तो यह कहीं अच्छा होता।

इंदु—कुछ सोच-समझकर तो स्वीकार किया होगा। सुना, पाँड़ेपुरवाले अपने घर छोड़ने पर राज़ी नहीं होते।

इंद्रदत्त—न होना चाहिए।

सोफ़िया—जरा चलकर देखना चाहिए, वहाँ क्या हो रहा है। लेकिन कहीं मुझे पापा नज़र आ गये, तो? नहीं, मैं न जाऊँगी, तुम्हीं लोग जाओ।

तीनों आदमी पाँड़ेपुर की तरफ़ चले।

42

अदालत ने अगर दोनों युवकों को कठिन दंड दिया, तो जनता ने भी सूरदास को उससे कम कठिन दंड न दिया। चारों ओर थुड़ी-थुड़ी होने लगी। सूरदास को मारे शर्म के घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। इसका एक अच्छा फल यह हुआ कि बजरंगी और जगधर का क्रोध शांत हो गया। बजरंगी ने सोचा, अब क्या मारूँ-पीटूँ, उसके मुँह में तो यों ही कालिख लग गयी; जगधर की अकेले इतनी हिम्मत कहाँ! दूसरा फल यह हुआ कि सुभागी फिर भैरो के घर जाने को राज़ी हो गयी।

एक दिन सूरदास बैठा हुआ दुनिया की हठधर्मी और अनीति का दुखड़ा रो रहा था कि सुभागी बोली—भैया, तुम्हारे ऊपर मेरे कारन चारों ओर से बौछार पड़ रही है, न हो तो मुझे भी अब मेरे घर पहुँचा दो। यही न होगा, मारे-पीटेगा, क्या करूँगी, सह लूँगी, इस बेआबरुई से तो बचूँगी?

भैरो तो पहले ही से मुँह फैलाये हुए था, बहुत खुश हुआ, आकर सुभागी को बड़े आदर से ले गया। सुभागी जाकर बुढ़िया के पैरों पर गिर पड़ी और खूब रोई। बुढ़िया ने उठाकर छाती से लगा लिया। बेचारी अब आँखों से माजूर हो गयी थी। रहा भैरो, उसके हृदय में अब छल-कपट का लेश भी न रहा था। सूरदास पर उसे इतनी श्रद्धा हो गयी कि कदाचित् किसी देवता पर भी न होगी।

इतने दिनों तक सूरदास घर-बार की चिंताओं से मुक्त था, पकी-पकाई रोटियाँ मिल जाती थीं, बरतन धुल जाते थे; घर में झाड़ू लग जाती थी। अब फिर वही पुरानी विपत्ति सिर पर सवार हुई। मिठुआ अब स्टेशन ही पर रहता था। घीसू और विद्याधर के दंड से उसकी आँखें खुल गयी थीं।

इधर सोफ़िया कई बार सूरदास से मिल चुकी थी। वह और तो कहीं न जाती, पर समय निकालकर सूरदास से अवश्य मिल जाती। जब आती, सूरदास के लिए कोई-न-कोई सौगात ज़रूर लाती। उसने इंद्रदत्त से उसका सारा वृत्तांत सुना था। उसका अदालत में जनता से अपील करना, चंदे के रुपये स्वयं न लेकर दूसरे को दे देना, ज़मीन के रुपये, जो सरकार से मिले थे, दान दे देना—तब से उसे उससे और भी भक्ति हो गयी थी।

फागुन का महीना था, संध्या का समय। एक स्त्री घास बेचकर जा रही थी। मज़दूरों ने

अभी-अभी काम से छुट्टी पायी थी। घसियारिन को देखते ही उस पर अश्लील कबीरों की बौछार शुरू कर दी। सूरदास को यह बुरा मालूम हुआ।

बोला—यारो, क्यों अपनी जबान खराब करते हो? वह बेचारी तो अपनी राह चली जाती है, और तुम लोग उसका पीछा नहीं छोड़ते।

मज़दूर—तो तुम्हें क्या बुरा लगता है? तुम्हारी बहन है कि बेटी?

सूरदास—बेटी भी है, बहन भी है। हमारी हुई तो, किसी दूसरे भाई की हुई तो?

उसके मुँह से वाक्य का अंतिम शब्द निकलने भी न पाया था कि मज़दूर ने चुपके से जाकर उसकी टाँग पकड़कर खींच ली। बेचारा बेखबर खड़ा था। कंकड़ पर इतनी ज़ोर से मुँह के बल गिरा कि सामने के दो दाँत टूट गये, छाती में बड़ी चोट आयी, ओठ कट गये, मूर्च्छा-सी आ गयी। संयोग से नायकराम उसी समय शहर से आ रहे थे। सूरदास को सड़क पर पड़े देखा, तो चकराए कि माजरा क्या है, किसी ने मारा-पीटा तो नहीं? बजरंगी के सिवा और किसमें इतना दम है। दया आ गयी। समीप आकर हिलाया, तो सूरदास को होश आया, उठकर नायकराम का एक हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से लाठी टेकता हुआ चला।

नायकराम ने पूछा—किसी ने मारा है क्या सूरे, मुँह से लहू बह रहा है?

सूरदास—नहीं भैया, ठोकर खाकर गिर पड़ा था।

नायकराम—छिपाओ मत, अगर बजरंगी या जगधर ने मारा हो, तो बता दो।

सूरदास—नहीं भैया, किसी ने नहीं मारा, झूठ किसे लगा दूँ?

नायकराम—मिलवालों में से तो किसी ने नहीं मारा? ये सब राह-चलते आदमियों को बहुत छेड़ा करते हैं। बताओ, किसने यह काम किया?

सूरदास ने किसी का नाम न बतलाया। घर पहुँचा, तो सारा मुहल्ला दौड़ा। हाय! हाय! किस मुद्दई ने बेचारे अंधे को मारा! सभी के दिल उसकी तरफ़ से नम पड़ गये। अकेला जगधर खुश था, जमुनी से बोला—भगवान ने हमारा बदला लिया है।

जमुनी चिढ़कर बोली—चुप रहो, आये हो बड़े न्याय की पूँछ बनके! बिपत में बैरी पर भी न हँसना चाहिए। आज हममे से कोई बीमार पड़ जाये, रात-की-रात बैठा रहता है कि नहीं।

जगधर लज्जित हो गया।

पंद्रह दिन तक सूरदास घर से निकलने लायक न हुआ। कई दिन मुँह से खून आता रहा। सुभागी दिन-भर उसके पास बैठी रहती। भैरो रात को उसके पास सोता। जमुनी नूर के तड़के गरम दूध लेकर आती और उसे अपने हाथों से पिला जाती। बजरंगी बाज़ार से दवाएँ लाता। अगर कोई उसे देखने न आया, तो वह मिठुआ था।

इधर तो सूरदास रुग्ण-शय्या पर पड़ा हुआ था, उधर पाँड़ेपुर का भाग्य-निर्णय हो रहा था। एक दिन प्रातःकाल राजा महेन्द्रकुमार, मि. जॉन सेवक, जायदाद के तखमीने का अफसर, पुलिस के कुछ सिपाही और एक दारोग़ा पाँड़ेपुर आ पहुँचे। राजा साहब ने निवासियों को जमा करके समझाया—सरकार को एक खास सरकारी काम के लिए इस मुहल्ले की ज़रूरत है। उसने फ़ैसला किया है कि तुम लोगों को उचित दाम देकर यह ज़मीन

ले ली जाये, लाट साहब का हुक्म आ गया है। अफसर साहब सब मकानों की क़ीमत का तखमीना करेंगे और उसी के मुताबिक तुम्हें मुआवज़ा मिल जायेगा। आज से तीन महीने के अन्दर तुम्हें अपने-अपने मकान खाली कर देने पड़ेंगे, मुआवज़ा पीछे मिलता रहेगा। जो आदमी इतने दिनों के अन्दर मकान न खाली करेगा, उसके मुआवज़े के रुपये जब्त कर लिए जायेंगे और वह ज़बरदस्ती घर से निकाल दिया जायेगा।

सब-के-सब हाथ बाँधकर राजा साहब के सामने खड़े हो गये और कहने लगे—सरकार, यहाँ रहते हमारी कितनी पीढ़ियाँ गुजर गईं, अब सरकार हमको निकाल देगी, तो कहाँ जायेंगे?

राजा साहब बोले—मुझे स्वयं इस बात का बड़ा दु:ख है और मैंने तुम्हारी ओर से सरकार की सेवा में उज्र भी किया था; मगर सरकार कहती है, इस ज़मीन के बगैर हमारा काम नहीं चल सकता। सरकार का हुक्म है, मानना पड़ेगा।

इसका जवाब देने की किसी को हिम्मत न पड़ती थी। कई आदमी लपके हुए सूरदास के पास गये और उससे समाचार कहा।

सूरदास ने कहा—और सब लोग तो हैं ही, मैं चलकर क्या कर लूँगा।

ठाकुरदीन—सबकी देखी गयी। सबके मुँह में दही जमा हुआ है।

शिवसेवक बनिया ने कहा—मेरे तो उनके सामने खड़े होते पैर थरथर काँपते हैं।

झींगुर तेली बोला—हाकिमों का बड़ा रोब होता है। उनके सामने तो अकिल ही खप्त हो जाती है।

सूरदास—मुझसे तो उठा ही नहीं जाता। चलना भी चाहूँ, तो कैसे चलूँगा।

ठाकुरदीन—यह कौन मुश्किल काम है। हम लोग तुम्हें उठा ले चलेंगे।

सूरदास—भाई, करोगे सब जने अपने-अपने-अपने मन ही की, मुझे क्यों नक्कू बनाते हो? जो सबकी गत होगी, वही मेरी भी गत होगी।

ठाकुरदीन ने बहुत चिरौरी की, पर सूरदास चलने पर राज़ी न हुआ। तब ठाकुरदीन को क्रोध आ गया। बोले—अच्छी बात है, मत जाओ। क्या तुम समझते हो, जहाँ मुर्गा न होगा वहाँ सबेरा ही न होगा? चार आदमी सराहने लगे, तो अब मिजाज़ ही नहीं मिलते।

आठ बजते-बजते अधिकारी लोग बिदा हो गये। अब लोग नायकराम के घर आकर पंचायत करने लगे कि क्या किया जाये।

जमुनी—सूरदास के पास जाकर क्यों नहीं सलाह करते? देखो, क्या कहता है?

बजरंगी—तो जाती क्यों नहीं, मुझी को ऐसी कौन-सी गरज पड़ी हुई है?

जमुनी—तो चलकर अपने-अपने घर बैठो, गपड़चौथ करने से क्या होना है।

भैरो—बजरंगी, यह हेकड़ी दिखाने का मौका नहीं है। सूरदास के पास सब जने मिलकर चलो। वह कोई-न-कोई राह ज़रूर निकालेगा।

ठाकुरदीन—मैं तो अब कभी उसके द्वार पर न जाऊँगा।

जगमर—सूरदास क्या कोई देवता है, हाकिम का हुकुम पलट देगा?

ठाकुरदीन—मैं तो गोद में उठा लाने को तैयार था।

बजरंगी—घमंड है घमंड। गया क्यों नहीं हाकिमों के सामने?

जमुनी—कैसे आता? वह तो हाकिमों से बुरा बने, यहाँ तुम लोग अपने-अपने मन की करने लगे, तो उसकी भद्द हो।

भैरो—ठीक तो कहती हो, मुद्दई सुस्त, तो गवाह कैसे चुस्त होगा। पहले चलकर पूछो, उसकी सलाह क्या है। अगर मानने लायक हो, तो मानो; न मानने लायक हो, न मानो। हाँ, एक बात जो तय हो जाये, उस पर टिकना पड़ेगा।

बजरंगी—चलो पण्डाजी, पूछ ही देखें।

नायकराम—वह कहेगा, बड़े साहब के पास चलो, वहाँ सुनाई न हो, तो परागराज लाट साहब के पास चलो। है इतना बूता?

जमुनी—एक बार चले क्यों नहीं जाते? देखो तो, क्या सलाह देता है?

नायकराम—मैं तैयार हूँ, चलो।

ठाकुरदीन—मैं न जाऊँगा, और जिसे जाना हो जाये।

जगधर—तो क्या हमीं को बड़ी गरज पड़ी है?

घंटे-भर तक पंचायत हुई, पर सूरदास के पास कोई न गया। संध्या समय भैरो सूरदास के पास गया।

सूरदास ने पूछा—आज क्या हुआ?

भैरो—हुआ क्या, घंटे-भर बकवास हुई। फिर लोग अपने-अपने घर चले गये।

सूरदास—कुछ तय न हुआ कि क्या किया जाये?

भैरो—निकाले जायेंगे, इसके सिवा और क्या होगा। क्यों सूरे, कोई न सुनेगा?

सूरदास—सुननेवाला भी वही है, जो निकालनेवाला है। तीसरा होता, तब न सुनता।

भैरो—मेरी मरन है। हज़ारों मन लकड़ी है, कहाँ ढोकर ले जाऊँगा?

सूरदास—सभी की मरन है। बजरंगी ही को इतनी ज़मीन कहाँ मिली जाती है कि पंद्रह-बीस जानवर भी रहें, आप भी रहें। मिलेगी भी तो इतना किराया देना पड़ेगा कि दिवाला निकल जायेगा।

भैरो—अच्छा, तुम बताओ, तुम क्या करोगे, तुमने भी कुछ सोचा है?

सूरदास—मेरी क्या पूछते हो, ज़मीन थी, वह निकल ही गयी; झोंपड़े के बहुत मिलेंगे, तो दो-चार रुपये मिल जायेंगे। जब तक कोई न बोलेगा, पड़ा रहूँगा। कोई हाथ पकड़कर निकाल देगा, बाहर जा बैठूँगा। अपना झोंपड़ा जीते-जी न छोड़ा जायेगा।

भैरो—सूरे, इतना दम तो यहाँ किसी में नहीं।

सूरदास—इसी से तो मैंने किसी से कुछ कहा ही नहीं। भला सोचो, कितना अंधेर है कि हम, जो सत्तर पीढ़ियों से यहाँ आबाद हैं, निकाल दिये जायें और दूसरे यहाँ आकर बस जायें। सरकार के हाथ में मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं है, तो मर जाने का बल तो है!

भैरो ने जाकर दूसरों से ये बातें कहीं। जगधर ने कहा—देखा, यह सलाह है! घर तो जायेगा ही, जान भी जायेगी।

ठाकुरदीन—यह सूरदास का किया होगा। आगे नाथ न पीछे पगहा, मर ही जायेगा, तो क्या? यहाँ मर जायें, तो बाल-बच्चों को किसके सिर छोड़ें?

नायकराम—ऐसे बहुत मरनेवाले देखे।, घर से निकला ही नहीं गया, मरने चले हैं।

भैरो—उसकी न चलाओ पण्डाजी, मन में आने की बात है।

दूसरे दिन से तखमीने के अफसर ने मिल के एक कमरे में इजलास करना शुरू किया। एक मुंशी मुहल्ले के निवासियों के नाम, मकानों की हैसियत, पक्के हैं या कच्चे, पुराने हैं या नये, लम्बाई, चौड़ाई आदि की एक तालिका बनाने लगा। पटवारी और मुंशी घर-घर घूमने लगे। नायकराम मुखिया थे। उनका साथ रहना ज़रूरी था। इस वक़्त सभी प्राणियों का भाग्य-निर्णय इसी त्रिमूर्ति के हाथों में था। सारांश यह कि मकानों की हैसियत का आधार वह भेंट थी, जो इस त्रिमूर्ति को चढ़ाई जाती थी। भैरो का बड़ा मकान और सामने का मैदान सिमट गये, उनका क्षेत्रफल घट गया, त्रिमूर्ति की वहाँ कुछ पूजा न हुई। जगधर का छोटा-सा मकान फैल गया। त्रिमूर्ति ने उसकी भेंट से प्रसन्न होकर रस्सियाँ ढीली कर दीं, क्षेत्रफल बढ़ गया।

पंद्रह दिन तक त्रिमूर्ति का राज्य रहा। तखमीने के अफसर बारह बजे घर से आते, अपने कमरे में दो-चार सिगार पीते, समाचार-पत्र पढ़ते, एक दो बजे घर चल देते। जब तालिका तैयार हो गयी, तो अफसर साहब उसकी जाँच करने लगे। फिर निवासियों की बुलाहट हुई। अफसर ने सबके तखमीने पढ़-पढ़कर सुनाए। भैरो ने कहा—हुज़ूर, हमारा घर देख लें, वह बड़ा है कि जगधर का? इनको मिले 400 रुपये और मुझे 300 रुपये। इस हिसाब से मुझे 600 रुपये मिलना चाहिए।

ठाकुरदीन बिगड़ीदिल थे ही, साफ-साफ कह दिया—साहब, तखमीना किसी हिसाब से थोड़े ही बनाया गया है। जिसने मुँह मीठा कर दिया, उसकी चाँदी हो गयी; जो भगवान् के भरोसे बैठा रहा, उसकी बधिया बैठ गयी।

अफसर ने बिगड़कर कहा—तुम्हारे गाँव का मुखिया तो तुम्हारी तरफ़ से रख लिया गया था। उसकी सलाह से तखमीना किया गया है। अब कुछ नहीं हो सकता।

सूरदास की झोंपड़ी का मुआवज़ा 1 रुपये रक्खा गया था, नायकराम के घर के पूरे तीन हज़ार! लोगों ने कहा—यह है गाँव-घरवालों का हाल! ये हमारे सगे हैं, भाई का गला काटते हैं। उस पर घमंड यह कि हमें धन का लोभ नहीं।

मिस्टर क्लार्क के बाद मि. सेनापति जिलाधीश हो गये। सरकार का धन खर्च करते काँपते थे। पैसे की जगह धेले से काम निकालते थे। डरते रहते थे कि कहीं बदनाम न हो जाऊँ। मि. सेनापति को संदेह हुआ कि मुआवजे बड़ी नरमी से लिखे गये हैं। उन्होंने उसकी आधी रक़म काफ़ी समझी। अब यह मिसिल प्रांतीय सरकार के पास स्वीकृति के लिए भेजी गयी। वहाँ फिर उसकी जाँच होने लगी। इस तरह तीन महीने की अवधि गुज़र गयी, और मि. जॉन सेवक पुलिस के सुपरिंटेंडेंट, दारोग़ा माहिर अली और मज़दूरों के साथ मुहल्ले को

खाली कराने के लिए आ पहुँचे। लोगों ने कहा, अभी तो हमको रुपये नहीं मिले। जॉन सेवक ने जवाब दिया, हमें तुम्हारे रुपयों से कोई मतलब नहीं; रुपये जिससे मिलें, उससे लो। हमें तो सरकार ने 1 मई को मुहल्ला खाली करा देने का वचन दिया है, और अगर कोई कह दे कि आज 1 मई नहीं है, तो हम लौट जायेंगे। अब लोगों में बड़ी खलबली पड़ी, सरकार की क्या नीयत है?

माहिर अली ने कहा—तुम लोगों को जो कुछ कहना-सुनना है, जाकर हाकिम जिला से कहो। मकान आज खाली करा लिए जायेंगे।

बजरंगी—मकान कैसे खाली होंगे, कोई राहजनी है! जिस हाकिम का यह हुकुम है, उसी हाकिम का तो यह हुकुम भी है।

माहिर—सीमे से अपने बोरिए-बकचे लादो और चलते-फिरते नज़र आओ।

नायकराम—दारोग़ाजी, दो-चार दिन की मुहलत दे दीजिए।

माहिर अली बोले—पण्डाजी, ये झाँसे दूसरों को देना। यहाँ तुम्हें बहुत दिनों से देख रहे हैं और तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं। मकान आज और आज ही खाली होंगे।

फेंक दो असबाब और मकान फौरन खाली करा लो। दो कांस्टेबिल हुक्म पाते ही बजरंगी के घर में घुस गये, और बरतन निकाल-निकाल फेंकने लगे। बजरंगी बाहर खड़ा ओठ चबा रहा था। जमुनी घर में इधर-उधर दौड़ती फिरती थी, कभी हाँडियाँ उठाकर बाहर लाती, कभी फेंके हुए बरतनों को समेटती। एकाएक कांस्टेबिल ने घिसुआ की जोड़ी तोड़ डाली।

बजरंगी ने टूटी हुई जोड़ी उठा ली और एक सिपाही के पास जाकर बोला—जमादार, यह जोड़ी तोड़ डालने से तुम्हें क्या मिला? कुशल है कि लाल पगड़ी बाँधे हुए हो, नहीं तो आज...

उसके मुँह से पूरी बात भी न निकली थी कि दोनों सिपाहियों ने उस पर डंडे चलाने शुरू किये। बजरंगी से अब जब्त न हो सका, लपककर एक सिपाही की गर्दन एक हाथ से और दूसरे की गर्दन दूसरे हाथ से पकड़ ली, और इतनी ज़ोर से दबाई कि दोनों की आँखें निकल आयीं। जमुनी ने देखा, अब अनर्थ हुआ चाहता है, तो रोती हुई बजरंगी के पास जाकर बोली —तुम्हें घीसू की क़सम, तुम मेरा ही माँस खाओ, जो इन दोनों को छोड़कर यहाँ से चले न जाओ।

बजरंगी ने दोनों सिपाहियों को छोड़ दिया, पर उसके हाथ से छूटना था कि वे दौड़े हुए माहिर अली के पास पहुँचे, और कई और सिपाहियों को लिए हुए फिर आये। पर बजरंगी को जमुनी पहले ही से टाल ले गयी थी। यही लीला दूसरे घरों में भी हो रही थी। चारों तरफ़ लूट मची हुई थी। सब लोग घरों से निकलकर या निकाले जाकर सड़क पर जमा होते जाते थे। ऐसे अवसरों पर प्रायः उपद्रवकारियों का जमाव हो ही जाता है। प्रतिक्षण शंका होती थी कि कहीं शांति न भंग हो जाये, कहीं कोई हंगामा न मच जाये। माहिर अली ने जनसमुदाय की त्योरियाँ देखीं, तो तुरंत एक सिपाही को पुलिस की छावनी की ओर दौड़ाया, और चार बजते-बजते सशस्त्र पुलिस की एक टोली और आ पहुँची। कुमुक आते ही माहिर अली और

भी दिलेर हो गये। हुक्म दिया—मार-मारकर सबों को भगा दो। अब तक लोग अपने माल और असबाब समेटने में लगे हुए थे। अब सब-के-सब एक जगह खड़े हो गये थे। उन्हें कुछ तो अपनी सामूहिक शक्ति का अनुभव हो रहा था, उस पर नायकराम उकसाते जाते थे, यहाँ आयें तो बिना मारे न छोड़ना, दो-चार के हाथ-पैर जब तक न टूटेंगे, ये सब न भागेंगे। बारूद भड़कनेवाली ही थी कि इतने में इंदु की मोटर पहुँची, और उसमें से विनय, इंद्रदत्त और इंदु उतर पड़े। देखा, तो कई हज़ार आदमियों का हुजूम था।

विनय ने माहिर अली के पास जाकर कहा—दारोग़ाजी, क्या इन आदमियों को एक दिन की भी मुहलत नहीं मिल सकती?

माहिर—मुहलत तो तीन महीने की थी, और अगर तीन साल की भी हो जाये, तो भी मकान खाली करने के वक़्त यही हालत होगी।

विनय—आप इतनी कृपा कर सकते हैं कि थोड़ी देर के लिए सिपाहियों को रोक लें। जब तक मैं सुपरिटेंडेंट को यहाँ की हालत की खबर दे दूँ?

माहिर—साहब तो यहीं हैं। मि. जॉन सेवक उन्हें मिल दिखाने ले गये थे।

विनय साहब को खबर देने के लिए लपके हुए मिल की तरफ़ चले, तो राजा साहब को मोटर पर आते हुए देखा। ठिठक गये। सोचा, जब यह आ गये हैं, तो साहब के पास जाने की क्या ज़रूरत, इन्हीं से चलकर कहूँ। लेकिन उनके सामने जाते हुए शर्म आती थी। राजा साहब की निगाह इंदु की मोटर पर गयी। जल उठे; इंद्रदत्त और विनय को देखा, ज्वर-सा चढ़ आया—ये लोग यहाँ विराजमान हैं, फिर क्यों न दंगा हो। विनय से बोले—यह सब आप ही की करामात मालूम होती है।

विनय ने शांत भाव से कहा—मैं तो अभी आया हूँ।

राजा—खैर, अब तो आप इनके नेता हैं, इन्हें अपने किसी जादू-मंत्र से हटाइएगा कि मुझे कोई दूसरा उपाय करना पड़ेगा?

विनय—इन लोगों को केवल इतनी शिकायत है कि अभी हमें मुआवज़ा नहीं मिला। आप अगर इन्हें तसल्ली दे दें, तो सब आप-ही-आप हट जायेंगे।

राजा महेन्द्रकुमार यहाँ आग में तेल डालने नहीं, उसे शांत करने आये थे। वह अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करके बहुत चिंतित हो रहे थे। पाँड़ेपुरवालों के सिर से किसी दशा में भी यह विपत्ति न टल सकती थी, लेकिन वह आदि से निरंतर यह प्रयत्न कर रहे थे कि मकान खाली कराने के पहले लोगों को मुआवज़ा दे दिया जाये। पर किसी अज्ञात कारण से रुपये की स्वीकृति में विलम्ब हो रहा था। जब आज भी मंज़ूरी न आयी, तो राजा साहब ने तार द्वारा पूछा। दोपहर तक वह जवाब का इंतज़ार करते रहे। आखिर जब इस जमाव की खबर मिली, तो घबराए। उसी वक़्त दौड़े हुए जिलाधीश के बँगले पर गये तो साहब बीमार पड़े थे। बीमारी क्या थी, बीमारी का बहाना था। साहब राजा से बोले—मुझे खेद है, मैं नहीं जा सकता। आप जाकर उपद्रव को शांत करने के लिए जो उचित समझें, करें।

महेन्द्रकुमार अब बहुत घबराए, अपनी जान किसी भाँति बचती न नज़र आती थी। अगर कहीं रक्तपात हो गया, तो मैं कहीं का न रहूँगा! आज मेरे सार्वजनिक जीवन का अंत है!

यहाँ से निराश होकर वह फिर घर आये कि चलकर इंदु से राय लूँ, देखूँ, क्या कहती है। पर यहाँ इंदु न थी। पूछा, तो मालूम हुआ कि सैर करने गयी हैं। अचानक उन्हें एक बात सूझी —

क्यों न मुआवज़े के रुपये अपने ही पास से दे दूँ? रुपये कहीं जाते तो हैं नहीं। जब मंज़ूरी आ जायेगी, वापस ले लूँगा। कुल सत्तर हज़ार तो हैं, ही। और इसकी क्या ज़रूरत है कि सब रुपये आज ही दे दिये जायें? कुछ आज दे दूँ, कुछ कल दे दूँ, तब तक मंज़ूरी आ ही जायेगी। तुरंत मोटर पर सवार होकर पाँड़ेपुर आ पहुँचे। आये तो थे ऐसी शुभेच्छाओं से, पर वहाँ विनय और इंदु को देखकर तैश आ गया। उसी क्रोध में उन्होंने विनय से वे बातें कीं, जो ऊपर लिखी जा चुकी हैं। मगर जब उन्होंने देखा कि जन-समूह का रेला बढ़ा चला आ रहा है, तुरंत मोटर पर खड़े हो गये और ज़ोर से चिल्लाकर बोले—मित्रो, ज़रा शांत हो जाओ। मैं रुपये लाया हूँ, अभी तुमको मुआवज़ा मिल जायेगा। सरकार ने अभी मंज़ूरी नहीं भेजी है, लेकिन तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मुझसे अपने रुपये ले सकते हो। इतनी-सी बात के वास्ते तुम्हारा यह दुराग्रह सर्वथा अनुचित है। मैं जानता हूँ कि यह तुम्हारा दोष नहीं है, तुमने किसी के बहकाने से ही शरारत पर कमर बाँधी है। यह लो, तुम्हारे रुपये हैं। सब आदमी बारी-बारी से आकर अपने नाम लिखाओ, अँगूठे का निशान करो, रुपये लो और चुपके-चुपके घर जाओ।

एक आदमी ने कहा—घर तो आपने छीन लिए।

राजा—रुपयों से घर मिलने में देर न लगेगी। हमसे तुम्हारी जो कुछ सहायता हो सकेगी, वह उठा न रक्खेंगे। इस भीड़ को हट जाना चाहिए, नहीं तो रुपये मिलने में देर होगी।

जो जन-समूह भयंकर और गम्भीर हो रहा था, यह घोषणा सुनते ही रूई के गोलों की भाँति फट गया। केवल वे ही लोग रह गये, जिन्हें रुपये पाने थे।

पटवारी ने नामावली पढ़नी शुरू की। राजा साहब अपने हाथों से रुपये बाँटने लगे। आसामी रुपये लेता था, अँगूठे का निशान बनाता था, और तब दो सिपाही उसके साथ कर दिये जाते थे कि जाकर मकान खाली करा लें।

संध्या हो गयी थी। चार ही पाँच असामियों को रुपये मिलने पाए थे कि अँधेरा हो गया। राजा साहब ने लैम्प की रोशनी में नौ बजे रात तक रुपये बाँटे। तब नायकराम ने कहा—सरकार, अब तो बहुत देर हुई। न हो, कल पर उठा रखिए।

राजा साहब भी थक गये थे, जनता को भी अब रुपये मिलने में कोई बाधा न दिखती थी, काम कल के लिए स्थगित कर दिया गया।

दूसरे दिन दस बजे फिर राजा साहब आये, विनय और इंद्रदत्त भी कई सेवकों के साथ आ पहुँचे। नामावली खोली गयी। सबसे पहले सूरदास की तलबी हुई। लाठी टेकता हुआ आकर राजा साहब के सामने खड़ा हो गया।

राजा साहब ने उसे सिर से पाँव तक देखा और बोले—तुम्हारे मकान का मुआवज़ा केवल एक रु. है, यह लो, और घर खाली कर दो।

सूरदास—मैंने तो अपना मकान बेचने को किसी से नहीं कहा।

राजा—और लोग भी तो खाली कर रहे हैं।

सूरदास—जो लोग छोड़ने पर राज़ी हों, उन्हें दीजिए। मेरी झोंपड़ी रहने दीजिए।

राजा—यह तुम्हारी इच्छा की बात नहीं है, सरकारी हुक्म है। सरकार को इस ज़मीन की ज़रूरत है।

सूरदास—सरकार के पास ज़मीन की क्या कमी है। सारा मुलुक पड़ा हुआ है।

राजा—व्यर्थ की हुज्जत करते हो, यह रुपया लो, अँगूठे का निशान बनाओ, और जाकर झोंपड़ी में से अपना सामान निकाल लो।

सूर—सरकार ज़मीन लेकर क्या करेगी? यहाँ कोई मंदिर बनेगा? कोई तालाब खुदेगा? कोई धरमशाला बनेगी? बताइए।

राजा—यह मैं कुछ नहीं जानता।

सूर—जानते क्यों नहीं, दुनिया जानती है, बच्चा-बच्चा जानता है। पुतलीघर के मजूरों के लिए घर बनेंगे। जो कुछ फ़ायदा होगा, साहब को होगा। परजा की तो बरबादी ही है। ऐसे काम के लिए मैं अपना झोंपड़ा न छोडूँगा। हाँ, कोई धरम का काम होता, तो सबसे पहले मैं अपना झोंपड़ा दे देता। इस तरह जबरदस्ती करने का आपको अख्तियार है, सिपाहियों को हुक्म दे दें, फूस में आग लगते कितनी देर लगती है? पर यह न्याय नहीं है।

राजा साहब ने झुँझलाकर कहा—मैं तुमसे दलील करने नहीं आया हूँ, सरकारी हुक्म की तामील करने आया हूँ।

सूर—हुज़ूर, मेरी मजाल है कि आपसे दलील कर सकूँ। मगर मुझे उजाड़िए मत, बाप-दादों की निशानी यही झोंपड़ी रह गयी है, इसे बनी रहने दीजिए।

राजा साहब को इतना अवकाश कहाँ था कि एक-एक असामी से घंटों वाद-विवाद करते? उन्होंने दूसरे आदमी को बुलाने का हुक्म दिया।

इंद्रदत्त ने देखा कि सूरदास अब भी वहीं खड़ा है, हटने का नाम नहीं लेता, तो डरे कि राजा साहब कहीं उसे सिपाहियों से धक्के देकर हटवा न दें। धीरे से उसका हाथ पकड़कर अलग ले गये और बोले—सूरे, है तो अन्याय; मगर क्या करोगे, झोंपड़ी तो छोड़नी ही पड़ेगी। जो कुछ मिलता है, ले लो।

कई आदमियों ने इन लोगों को घेर लिया। ऐसे अवसरों पर लोगों की उत्सुकता बढ़ी हुई होती है। क्या हुआ? क्या जवाब दिया? सूरदास ने सजल नेत्रें से ताकते हुए आवेश-कम्पित कंठ से कहा—भैया, तुम भी कहते हो कि रुपया ले लो! मुझे तो इस पुतलीघर ने पीस डाला। बाप-दादों की निशानी दस बीघे ज़मीन थी, वह पहले ही निकल गयी, अब यह झोंपड़ी भी छीनी जा रही है। लेकिन जब तक जीता रहूँगा, अपना घर मुझसे न छोड़ा जायेगा।

इंद्रदत्त—जबरदस्ती कोई कर रहा है! कानून के अनुसार ही ये मकान खाली कराए जा रहे हैं। सरकार को अधिकार है कि वह किसी सरकारी काम के लिए जो मकान या ज़मीन चाहे, ले ले।

सूर—होगा कानून, मैं तो एक धरम का कानून जानता हूँ।

इंद्रदत्त ने राजा साहब के पास जाकर कहा—आप अंधे का मुआमला आज स्थगित कर

दें, तो अच्छा हो। गँवार आदमी, बात नहीं समझता, बस अपनी ही गाए जाता है।

राजा ने कुपित नेत्रें से देखकर कहा—गँवार नहीं है, छटा हुआ बदमाश है। हमें और तुम्हें, दोनों ही को कानून पढ़ा सकता है। मैं इसका झोंपड़ा गिरवाए देता हूँ।

इस वाक्य के अंतिम शब्द सूरदास के कानों में पड़ गये: बोला—झोंपड़ा क्यों गिरवाइएगा? इससे तो यही अच्छा कि मुझे ही गोली मरवा दीजिए।

यह कहकर सूरदास लाठी टेकता हुआ वहाँ से चला गया। राजा साहब को उसकी धृष्टता पर क्रोध आ गया। माहिर अली को बुलाकर कहा—इसकी झोंपड़ी अभी गिरा दो।

दारोग़ा माहिर अली चले, निःशस्त्र पुलिस और सशस्त्र पुलिस और मज़दूरों का एक दल उनके साथ चला, मानो किसी किले पर धावा करने जा रहे हैं। उनके पीछे-पीछे जनता का एक समूह भी चला। राजा ने इन आदमियों के तेवर देखे, तो होश उड़ गये। पछताए कि मैंने व्यर्थ माहिर अली को यह हुक्म दिया। अब यही एक उपाय था कि जनता को झोंपड़े की ओर न जाने दिया जाये। सुपरिंटेंडेंट अभी-अभी मिल से लौटा था, और घोड़े पर सवार सिगार पी रहा था कि राजा साहब ने जाकर उससे कहा—इन आदमियों को रोकना चाहिए।

उसने कहा—जाने दीजिए, कोई हरज नहीं, शिकार होगा।

विनय के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। न आगे जाते बनता था, न पीछे। घोर आत्मवेदना का अनुभव करते हुए बोले—इंद्र, मैं बड़े संकट में हूँ।

इंद्रदत्त ने कहा—इसमें क्या संदेह है।

—जनता को क़ाबू में रखना कठिन है।

—आप जाइए, मैं देख लूँगा। आपका यहाँ रहना उचित नहीं।

—तुम भी मेरे साथ क्यों नहीं चलते? अब हम यहाँ रहकर क्या कर लेंगे, हम अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुके।

—आप जाइए। आपको जो संकट है, वह मुझे नहीं। मुझे अपने किसी आत्मीय के मान-अपमान का भय नहीं।'

विनय वहीं अशांत और निश्चल खड़े रहे, या यों कहो कि गड़े रहे, मानो कोई स्त्री घर से निकाल दी गयी हो। इंद्रदत्त उन्हें वहीं छोड़कर आगे बढ़े, तो जन-समूह उसी गली के मोड़ पर रुका हुआ था, जो सूरदास के झोंपड़े की ओर जाती थी। गली के द्वार पर पाँच सिपाही सँगीनें चढ़ाए खड़े थे।

इंद्रदत्त ने एक कुएँ की जगत पर खड़े होकर उच्च स्वर से कहा—भाइयो, सोच लो, तुम लोग क्या चाहते हो? क्या इस झोंपड़ी के लिए पुलिस से लड़ोगे? अपना और अपने भाइयों का रक्त बहाओगे? इन दामों यह झोंपड़ी बहुत महँगी है। अगर उसे बचाना चाहते हो, तो इन आदमियों ही से विनय करो, जो इस वक़्त वरदी पहने, संगीनें चढ़ाए यमदूत हुए तुम्हारे सामने खड़े हैं। इनमें सभी भले आदमी हैं, जिनके बाल-बच्चे हैं, जो थोड़े वेतन पर तुम्हारे जान-माल की रक्षा करने के लिए घर से आये हैं।

एक आदमी—हमारे जान-माल की रक्षा करते हैं, या सरकार के रोब-दाब की?

इंद्रदत्त—तुम्हारे जान-माल की रक्षा के लिए सरकार के रोब-दाब की रक्षा करनी परमावश्यक है। इन्हें जो वेतन मिलता है, वह एक मजूर से भी कम है...।

एक प्रश्न—बग्घी-इक्केवालों से पैसे नहीं लेते?

इंद्रदत्त—यह सब इसलिए होता है कि वेतन जितना मिलना चाहिए, उतना नहीं मिलता। जो कुछ करते हैं, मजबूर होकर। (सिपाहियों से) क्यों मित्रें, तुमसे इस दया की आशा रखें?

इंद्रदत्त ने एक ओर जनता के मन में सिपाहियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की और दूसरी ओर सिपाहियों की मनोगत दया को जागृत करने की। हवलदार बोला—हमारी रोजी बचाकर और जो चाहे कीजिए। इधर से न जाइए।

इंद्रदत्त—तो रोजी के लिए इतने प्राणियों का सर्वनाश कर दोगे? ये बेचारे भी तो एक दीन की रक्षा करने आये हैं। अरे! यह कौन पत्थर फेंकता है? मत हाथ उठाओ, अगर तुम्हारे ऊपर गोलियों की बाढ़ भी चले...।

इंद्रदत्त को कुछ कहने का अवसर न मिला। सुपरिंटेंडेंट ने गली के मोड़ पर आदमियों का जमाव देखा, तो घोड़ा दौड़ाता उधर चला। इंद्रदत्त की आवाज़ कानों में पड़ी, तो डाँटकर बोला—हटा दो इसको। तुम सब आदमी अभी हट जाओ, नहीं हम गोली मार देगा।

समूह जौ-भर भी न हटा।

फ़ायर करने की आज्ञा हुई, सिपाहियों ने बंदूकें हाथ में लीं। इतने में राजा साहब बदहवास आकर बोले—For God's sake Mr. Brown, spare me. लेकिन हुक्म हो चुका था। बाढ़ चली, बंदूकों के मुँह से धुँआ निकला, धाँय-धाँय की रोमांचकारी ध्वनि निकली और कई चक्कर खाकर गिर पड़े। समूह की ओर से पत्थरों की बौछार होने लगी।

फिर बंदूकें चलने की आज्ञा हुई। राजा साहब ने अबकी बहुत गिड़गिड़ाकर कहा—Mr.Brown, these shots are piercing my heart! किन्तु आज्ञा मिल चुकी थी, दूसरी बाढ़ चली, फिर कई आदमी गिर पड़े।

तीसरी बार फायर करने की आज्ञा दी गयी। राजा साहब ने सजल नयन होकर व्यथित कंठ से कहा—Mr. Brown, now I am done for! बाढ़ चली; कई आदमी गिरे और उनके साथ इंद्रदत्त भी गिरे। गोली वक्षःस्थल को चीरती हुई पार हो गयी थी।

समूह में भगदड़ पड़ गयी। लोग गिरते-पड़ते, एक-दूसरे को कुचलते, भाग खड़े हुए। कोई किसी पेड़ की आड़ में छिपा, कोई किसी घर में घुस गया, पर अधिकांश लोग वहाँ से हटकर सड़क पर आ खड़े हुए।

नायकराम ने विनयसिंह से कहा—भैया, क्या खड़े हो, इंद्रदत्त को गोली लग गयी!

विनय अभी तक उदासीन भाव से खड़े थे। यह खबर पाते ही गोली-सी लग गयी। बेतहाशा दौड़े और संगीनों के सामने, गली के द्वार पर आकर खड़े हो गये। उन्हें देखते ही भागनेवाले सँभल गये; जो छिपे बैठे थे, निकल पड़े। सुपरिंटेंडेंट ने दाँत पीसकर चौथी बार फायर का हुक्म दिया। लेकिन यह क्या? हवलदार ने बंदूक ज़मीन पर पटक दी, सिपाहियों ने भी उसके साथ ही अपनी-अपनी बंदूकें रख दीं। हवलदार बोला—हुज़ूर को अख्तियार है, जो

चाहें करें; लेकिन अब हम लोग गोली नहीं चला सकते।

ब्रॉउन—कोर्टमार्शल होगा।

हवलदार—हो जाये।

यह कहकर सब-के-सब पीछे की ओर फिर गये, और सूरदास के झोंपड़े की तरफ़ चले। उनके साथ ही कई हज़ार आदमी जय-जयकार करते हुए चले। विनय उनके आगे-आगे थे। राजा साहब और ब्रॉउन, दोनों खोए हुए-से खड़े थे। उनकी आँखों के सामने एक ऐसी घटना घटित हो रही थी, जो पुलिस के इतिहास में एक नूतन युग की सूचना दे रही थी, जो परम्परा के विरुद्ध, मानव-प्रकृति के विरुद्ध, नीति के विरुद्ध थी। सब-के-सब विजय-घोष करते हुए, तरल वेग से सूरदास की झोंपड़ी की ओर दौड़े चले जाते थे। माहिर अली अपने आदमियों के साथ नीम के वृक्ष के नीचे खड़े नई सशस्त्र पुलिस की प्रतीक्षा कर रहे थे, हिम्मत न पड़ती थी कि इस व्यूह को चीरकर झोंपड़े के पास जायें। सबके आगे नायकराम कंधे पर लट्ठ रखे खड़े थे। इस व्यूह के मध्य में, झोंपड़े के द्वार पर, सूरदास सिर झुकाए बैठा हुआ था, मानो धैर्य, आत्मबल और शांत तेज की सजी मूर्ति हो।

विनय को देखते ही नायकराम आकर बोला—भैया, तुम अब कुछ चिन्ता मत करो! मैं यहाँ सँभाल लूँगा। इधर महीनों से सूरदास से मेरी अनबन थी, बोल-चाल तक बंद था, पर आज उसका जीवट-जिगर देखकर दंग हो गया।

विनय—इंद्रदत्त का मरना गज़ब हो गया।

नायकराम—भैया, दिल न छोटा करो, भगवान् की यही इच्छा होगी।

विनय—मुझे क्या मालूम था कि आज यह नौबत आयेगी, नहीं तो पहले खुद जाता। वह अकेले सेवा-दल का काम सँभाल सकते थे, मैं नहीं सँभाल सकता।

यह कहते हुए दोनों आदमी झोंपड़े के पास आये, तो हवलदार बोला—कुँवर साहब, मेरा तो कोर्टमार्शल होगा ही, मेरे बाल-बच्चों की खबर लीजिएगा।

बहुत-से आदमी जमा हो गये और कहने लगे—कुँवर साहब, चंदा खोल दीजिए। हवलदार! तुम सच्चे सूरमा हो, जो निर्बलों पर हाथ नहीं उठाते।

विनय—हवलदार, हमसे जो कुछ हो सकेगा, वह उठा न रखेंगे। आज तुमने हमारे मुख की लाली रख ली।

हवलदार—कुँवर साहब, मरने-जीने की चिन्ता नहीं, मरना तो एक दिन होगा ही, अपने भाइयों की सेवा करते हुए मारे जाने से बढ़कर और कौन मौत होगी?

विनय—तुम्हारे साथ के जो आदमी नौकरी चाहें, उन्हें हमारे यहाँ जगह मिल सकती है।

हवलदार—देखिए, कौन बचता है और कौन मरता है।

राजा साहब ने अवसर पाया, तो मोटर पर बैठकर हवा हो गये। मि. ब्रॉउन सैनिक सहायता के विषय में जिलाधीश से परामर्श करने चले गये। माहिर अली और उनके सिपाही वहाँ जमे रहे। सहसा सूरदास आकर बोला—कुँवरजी कहाँ हैं? धर्मावतार, हाथ-भर ज़मीन के लिए क्यों इतना झंझट करते हो? मेरे कारन आज इतने आदमियों की जान गयी। मैं क्या

जानता था कि राई का परबत हो जायेगा, नहीं तो अपने हाथों से इस झोंपड़े में आग लगा देता और मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाता।

विनय—तुम्हारी झोंपड़ी नहीं, यह हमारा जातीय मंदिर है। हम इस पर फावड़े चलते देखकर शांत नहीं बैठे रह सकते।

सूरदास—पहले मेरी देह पर फावड़ा चल चुकेगा, तब घर पर फावड़ा चलेगा।

विनय—और अगर आग लगा दें?

सूरदास—तब तो मेरी चिता बनी-बनाई है।

विनय ने नायकराम से कहा—अब?

नायकराम—बात का धनी है; जो कहेगा, ज़रूर करेगा।

विनय—तो फिर अभी इसी तरह चलने दो। देखो, उधर से कल क्या गुल खिलता है। उनका इरादा देखकर हम लोग सोचेंगे, हमें क्या करना चाहिए।

नौ बजते-बजते नौ अर्थियाँ निकलीं और तीन जनाज़े! आगे-आगे इंद्रदत्त की अर्थी थी, पीछे-पीछे अन्य वीरों की। रास्ते में राजा महेन्द्रकुमार का भवन मिला। ज्यों ही अर्थियाँ उनके द्वार के सामने से निकलीं, एक रमणी अन्दर से निकलकर जन-प्रवाह में मिल गयी। यह इंदु थी। उस पर किसी की निगाह न पड़ी। उसके हाथों में गुलाब के फूलों की एक माला थी, जिसे लिए हुए आगे बढ़ी और इंद्रदत्त की अर्थी के पास जाकर अश्रुबिंदुओं के साथ उस पर चढ़ा दिया। विनय ने देख लिया। बोले—इंदु!—इंदु ने उनकी ओर जल-पूरित लोचनों से देखा, और कुछ न बोली।

रात-भर ज्वाला उठती रही, मानो वीरात्माएँ अग्नि-विमान पर बैठी हुई स्वर्ग-लोक को जा रही हैं।

43

सोफ़िया के धार्मिक विचार, उसका आचार-व्यवहार, रहन-सहन, उसकी शिक्षा-दीक्षा, ये सभी बातें ऐसी थीं, जिनसे एक हिंदू महिला को घृणा हो सकती थी। पर इतने दिनों के अनुभव ने रानीजी की सभी शंकाओं का समाधान कर दिया। सोफ़िया अभी तक हिंदू धर्म में विधिवत् दीक्षित न हुई थी, पर उसका आचरण पूर्ण रीति से हिंदू धर्म और हिंदू समाज के अनुकूल था। उन्हें अब अगर संदेह था, तो यह कि दाम्पत्य प्रेम में फँसकर विनय कहीं अपने उद्देश्य को न भूल बैठे। इस आंदोलन में नेतृत्व का भार लेकर विनय ने इस शंका को भी निर्मूल सिद्ध कर दिया। रानीजी अब विवाह की तैयारियों में प्रवृत्त हुईं। कुँवर साहब तो पहले ही से राज़ी थे, सोफ़िया की माता की रज़ामंदी आवश्यक थी। अतएव रानीजी एक दिन मिस्टर सेवक के मकान पर गईं कि इस सम्बंध को निश्चित कर लें। मिस्टर सेवक तो प्रसन्न हुए, पर मिसेज़ सेवक का मुँह न सीधा हुआ। जाह्नवी के आग्रह पर क्रुद्ध होकर बोलीं—खुशी सोफ़िया की चाहिए; जब वह खुश है, तो मैं अनुमति दूँ, या न दूँ, एक ही बात है! लेकिन क्षमा कीजिएगा, मैं विवाह-संस्कार में सम्मिलित न हो सकूँगी।

रानीजी को और कुछ कहने का साहस न हुआ। घर आकर उन्होंने एक विद्वान् पंडित बुलाकर सोफ़िया के धर्म और विवाह संस्कार का मुहूर्त निश्चित कर डाला।

रानी जाह्नवी तो इन संस्कारों को धूमधाम से करने की तैयारियाँ कर रही थीं, उधर पाँड़ेपुर का आंदोलन दिन-दिन भीषण होता था। मुआवज़े के रुपये तो अब किसी के बाकी न थे, यद्यपि अभी तक मंज़ूरी न आयी थी, और राजा महेन्द्रकुमार को अपने पास से सभी असामियों को रुपये देने पड़े थे, पर इन खाली मकानों को गिराने के लिए मज़दूर न मिलते थे। अधिकारियों ने सरकारी बर्कंदाजों और तहसील के चपरासियों को बड़े-बड़े प्रलोभन देकर काम करने के लिए तैयार किया, पर जब उनके सामने सैकड़ों युवक, हाथ बाँधकर खड़े हो गये और विनय की कि भाइयो, ईश्वर के लिए फावड़े न चलाओ, और अगर चलाना ही चाहते हो, तो पहले हमारी गरदन पर चलाओ, तो उन सबों की कायापलट हो गयी।

सूरदास सबेरे से संध्या तक झोंपड़े के द्वार पर मूर्तिवत् बैठा रहता। हवलदार और उसके सिपाहियों पर अदालत में अभियोग चल रहा था। घटनास्थल की रक्षा के लिए दूसरे जिले से सशस्त्र पुलिस बुलायी गयी थी। शहर के हज़ार-दो-हज़ार आदमी आठों पहर मौजूद रहते।

एक जाता, तो दूसरा आता। सेवक-दल भी नायकराम के खाली बरामदे में आसन जमाए रहता था कि न जाने कब क्या उपद्रव हो जाये। राजा महेन्द्रकुमार और सुपरिटेंडेंट पुलिस दिन में दो-दो बार अवश्य जाते थे, किन्तु किसी कारण झोंपड़ा गिराने का हुक्म न देते थे।

रानी जाह्नवी ज्यों-ज्यों विवाह की तैयारियाँ करती थीं और संस्कारों की तिथि समीप आती जाती थी, सोफ़िया का हृदय एक अज्ञात भय, एक अव्यक्त शंका, एक अनिष्ट चिन्ता से आच्छन्न होता जाता था। भय यह था कि कदाचित् विवाह के पश्चात् हमारा दाम्पत्य जीवन सुखमय न हो, हम दोनों को एक दूसरे के चरित्र-दोष ज्ञात हों, और हमारा जीवन दुःखमय हो जाये। विनय की दृष्टि में सोफ़ी निर्विकार, निर्दोष, दिव्य, सर्वगुण-सम्पन्न देवी थी। सोफ़ी को विनय पर इतना विश्वास न था। भूमि पर चलनेवाला मनुष्य गिरकर फिर उठ सकता है, लेकिन आकाश में भ्रमण करनेवाला मनुष्य गिरे, तो उसे कौन रोकेगा, उसके लिए कोई आशा नहीं, कोई उपाय नहीं।

चिंता रोग का मूल है। सोफ़ी इतनी चिंताग्रस्त रहती कि दिन-दिन-भर कमरे से न निकलती, भोजन भी बहुत सूक्ष्म करती, कभी-कभी निराहार ही रह जाती। हृदय में एक दीपक-सा जलता रहता था, पर किससे अपने मन की कहे? अंत को उसकी कोमल प्रकृति इस मर्मदाह को सहन न कर सकी। पहले सिर में दर्द रहने लगा, धीरे-धीरे ज्वर का प्रकोप हो गया।

लेकिन रोग-शय्या पर गिरते ही सोफ़ी को विनय से एक क्षण अलग रहना भी दुस्सह प्रतीत होने लगा। निर्बल मनुष्य को अपनी लकड़ी से भी अगाध प्रेम हो जाता है। पाँड़ेपुर का भार अपने सहकारियों पर छोड़कर विनय सोफ़िया की सेवा-शुश्रूषा में तत्पर हो गये। उनके बैठने से सोफ़ी का चित्त बहुत शांत हो जाता था। वह अपने दुर्बल हाथों को विनय की जाँघ पर रख देती और बालोचित आकांक्षा से उनके मुख की ओर ताकती।

रानी जाह्नवी के व्यवहार में भी अब एक विशेष अन्तर दिखायी देता था। स्पष्ट तो न कह सकतीं, पर संकेतों से विनय को पाँड़ेपुर के सत्याग्रह में सम्मिलित होने से रोकती थीं। इंद्रदत्त की हत्या ने उन्हें बहुत सशंक कर दिया था। और, सबसे बड़ी बात तो यह थी कि विवाह का निश्चय होते ही विनय का सदुत्साह भी क्षीण होने लगा था। सोफ़िया के पास बैठकर उससे सांत्वनाप्रद बातें करना और उसकी अनुरागपूर्ण बातें सुनना उन्हें अब बहुत अच्छा लगता था।

एक दिन प्रातःकाल विनय डॉक्टर के यहाँ से दवा लेकर लौटे थे (सद्वैद्यों के होते हुए भी उनका विश्वास पाश्चात्य चिकित्सा ही पर अधिक था) कि कुँवर साहब ने उन्हें बुला भेजा। विनय इधर महीनों से उनसे मिलने न गये थे। विनय ने सोफ़ी को दवा पिलाई और तब कुँवर साहब से मिलने गये। वह अपने कमरे में टहल रहे थे, इन्हें देखकर बोले—तुम तो अब कभी आते ही नहीं?

विनय ने कहा—अवकाश नहीं मिलता। आपने कभी याद भी तो नहीं किया।

कुँवर साहब ने इस व्यंग की परवा न करके कहा—आज मुझे तुमसे एक महान् संकट में राय लेनी है, गवर्नमेंट का आदेश है कि तुम्हारा नाम रियासत से...

यह कहते-कहते कुँवर साहब रो पड़े। ज़रा देर में करुणा का उद्वेग कम हुआ, बोले—मेरी तुमसे विनीत याचना है कि तुम स्पष्ट रूप से अपने को सेवक-दल से पृथक कर लो और समाचार-पत्रों में इसी आशय की एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर दो। तुमसे यह याचना करते हुए मुझे कितनी लज्जा और कितना दुःख हो रहा है, इसका अनुमान तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता, पर परिस्थिति ने मुझे विवश कर दिया है। ऐसी दशा में मेरे लिए दो ही उपाय है—या तो तुम स्वयं इन आंदोलनों से पृथक् हो जाओ, या कम-से-कम उनमें प्रमुख भाग न लो, या मैं एक प्रतिज्ञा-पत्र द्वारा तुम्हें रियासत से वंचित कर दूँ। भावी संतान के लिए इस सम्पत्ति का सुरक्षित रहना परमावश्यक है। तुम्हारे लिए पहला उपाय जितना कठिन है, उतना ही कठिन मेरे लिए दूसरा उपाय है, तुम इस विषय में क्या निश्चय करते हो?

विनय ने गर्वान्वित भाव से कहा—मैं सम्पत्ति को अपने पाँव की बेड़ी नहीं बनाना चाहता। अगर सम्पत्ति हमारी है तो उसके लिए किसी शर्त की ज़रूरत नहीं; अगर दूसरे की है, और आपका अधिकार उसकी कृपा के अधीन है, तो मैं उसे सम्पत्ति नहीं समझता।

भरतसिंह—बेटा, मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि किसी अंश में सम्पत्ति हमारी वास्तविक स्वाधीनता में बाधक होती है, किन्तु इसका उज्ज्वल पक्ष भी तो है—जीविका की चिंताओं से निवृत्ति और आदर तथा सम्मान का वह स्थान, जिस पर पहुँचने के लिए असाधारण त्याग और सेवा की ज़रूरत होती है, मगर जो यहाँ बिना किसी परिश्रम से आप-ही-आप मिल जाता है। मैं तुमसे केवल इतना चाहता हूँ कि तुम इस संस्था से प्रत्यक्ष रूप से कोई सम्बंध न रखो, यों अप्रत्यक्ष रूप से उसकी जितनी सहायता करना चाहो, कर सकते हो।

विनय—अर्थात् कोई समाचार-पत्र भी पढ़ूँ, तो छिपकर, किवाड़ बंद करके कि किसी को कानों-कान खबर न हो। मैं वचन और कर्म में इतनी स्वाधीनता अनिवार्य समझता हूँ, जो हमारे आत्मसम्मान की रक्षा करे।

कुँवर साहब ने विनय को जलपूर्ण नेत्रें से देखा। उनमें कितनी उद्विग्नता भरी हुई थी! तब बोले—मेरी खातिर से इतना मान जाओ।

विनय—आपके चरणों पर अपने को न्योछावर कर सकता हूँ, पर अपनी आत्मा की स्वाधीनता की हत्या नहीं कर सकता।

विनय यह कहकर जाना ही चाहते थे कि कुँवर साहब ने पूछा—तुम्हारे पास रुपये तो बिल्कुल न होंगे?

विनय—मुझे रुपये की फ़िक्र नहीं।

कुँवर—मेरी खातिर से—यह लेते जाओ।

उन्होंने नोटों का एक पुलिंदा विनय की तरफ़ बढ़ा दिया। विनय इनकार न कर सके। कुँवर साहब पर उन्हें दया आ रही थी।

विनय के आत्मसम्मान ने उन्हें रियासत का त्याग करने पर उद्यत तो कर दिया पर उनके सम्मुख अब एक नई समस्या उपस्थित हो गयी। वह जीविका की चिन्ता थी। जीविका उनके लिए दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न थी, कुल-परम्परा की रक्षा भी उसमें शामिल थी।

उन्होंने इस मुलाकात की चर्चा माता से भी न की, मन-ही-मन डूबने-उतराने लगे। और,

फिर अब अपनी ही चिन्ता न थी, सोफ़िया भी उनके जीवन का अंश बन चुकी थी। इसलिए यह चिन्ता और भी दाहक थी। माना कि सोफ़ी मेरे साथ जीवन की बड़ी-से-बड़ी कठिनाई सहन कर लेगी, लेकिन क्या यह उचित है कि उसे प्रेम का यह कठोर दंड दिया जाये? उसके प्रेम को इतनी कठिन परीक्षा में डाला जाये? वह दिन-भर इन्हीं में मग्न रहे। अभी थोड़े ही दिन पहले उनके लिए इस प्रश्न का अस्तित्व ही न था। किन्तु सोफ़िया के कारण उनके सोचे हुए जीवन-क्रम में कायापलट हो गयी थी। जिन वस्तुओं का पहले उनकी दृष्टि में कोई मूल्य न था, वे अब परमावश्यक जान पड़ती थीं।

पाँड़ेपुर से बड़ी भयप्रद सूचनाएँ आ रही थीं, आज कमिश्नर आ गया, आज गोरखों का रेजिमेंट आ पहुँचा, आज गोरखों ने मकानों को गिराना शुरू किया, और लोगों के रोकने पर उन्हें पीटा, आज पुलिस ने सेवकों को गिरफ्तार करना शुरू किया, दस सेवक पकड़ लिए गये, आज बीस पकड़े गये, आज हुक्म दिया गया है कि सड़क से सूरदास की झोंपड़ी तक काँटेदार तार लगा दिया जाये, कोई वहाँ जा ही नहीं सकता। विनय ये खबरें सुनते थे और किसी पंखहीन पक्षी की भाँति एक बार तड़पकर रह जाते थे।

इस भाँति एक सप्ताह बीत गया और सोफ़ी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। उसके पैरों में इतनी शक्ति आ गयी कि पाँव-पाँव बगीचे में टहलने चली जाती, भोजन में रुचि हो गयी, मुखमंडल पर आरोग्य की कांति झलकने लगी। विनय की भक्तिपूर्ण सेवा ने उस पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी। वे शंकाएँ, जो उसके मन में पहले उठती रहती थीं, शांत हो गयी थीं। प्रेम के बंधन को सेवा ने और भी सुदृढ़ कर दिया था।

एक दिन इंदु उसे देखने आयी। बहुत खिन्न और विरक्त हो रही थी। बातों-बातों में विनय से बोली—उन्हें तो हाकिमों की खुशामद ने चौपट किया, पिताजी को सम्पत्ति-प्रेम ने चौपट किया, क्या तुम्हें भी मोह चौपट कर देगा? क्यों सोफ़ी, तुम इन्हें एक क्षण के लिए भी क़ैद से मुक्त नहीं करतीं? अगर अभी से इनका यह हाल है, तो विवाह हो जाने पर क्या होगा!

सोफ़िया बड़ी लज्जित हुई, कुछ जवाब न दे सकी। झेंपते हुए बोली—मैंने तो कभी मना नहीं किया।

इंदु—मना करने के कई ढंग हैं।

सोफ़िया—अच्छा, तो मैं आपके सामने कह रही हूँ कि मुझे इनके वहाँ जाने में कोई आपत्ति नहीं है, बल्कि इसे मैं दोनों ही के लिए गौरव की बात समझती हूँ।

इंदु ने विनय की ओर सहास नेत्रें से देखकर कहा—लो, अब तो तुम्हें कोई बाधा नहीं रही? तुम्हारे वहाँ रहने से सब काम सुचारु रूप से होगा, और सम्भव है कि शीघ्र ही अधिकारियों को समझौता कर लेना पड़े।

वास्तव में बात यह थी कि इतने दिनों तक उदासीन रहने के पश्चात् विनय अब वहाँ जाते हुए झेंपते थे, डरते थे कि कहीं मुझ पर लोग तालियाँ न बजायें कि डर के मारे छिपे बैठे रहे। उन्हें अब स्वयं पश्चात्ताप होता था कि मैं क्यों इतने दिनों तक मुँह छिपाए रहा, क्यों अपनी व्यक्तिगत चिंताओं को अपने कर्त्तव्य-मार्ग का काँटा बनने दिया? सोफ़ी की अनुमति लेकर मैं जा सकता था, वह कभी मुझे मना न करती। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह मेरी दुर्बलता, मेरी

भीरुता और मेरी अकर्मण्यता थी जिसने सोफ़िया की बीमारी को मेरे मुँह छिपाने का बहाना बना दिया, वरना मेरा स्थान तो सिपाहियों की प्रथम श्रेणी में था। वह चाहते थे कि कोई ऐसी बात पैदा हो जाये कि मैं इस झेंप को मिटा सकूँ—इस कालिख को धो सकूँ।

संग्राम को छिड़े हुए दो महीने हो गये। समस्या प्रतिदिन भीषण होती जाती थी, स्वयंसेवकों की पकड़-धकड़ से संतुष्ट न होकर गोरखों ने अब उन्हें शारीरिक कष्ट देना शुरू कर दिया था और अपने अमानुषिक कृत्यों से उनको भयभीत कर देना चाहते थे। पर अंधे पर बंदूक चलाने या झोंपड़े में आग लगाने की हिम्मत न पड़ती थी।

तीसरा पहर था। एक आदमी डौंडी पीटता हुआ निकला। विनय ने नौकर को भेजा कि क्या बात है। उसने लौटकर कहा, सरकार का हुक्म हुआ कि आज से शहर का कोई आदमी पाँड़ेपुर न जाये, सरकार उसकी प्राण-रक्षा की जिम्मेदार न होगी।

विनय—शायद सरकार ने इस संग्राम का अंत करने का निश्चय कर लिया है।

सोफ़िया—ऐसा ही जान पड़ता है।

विनय—भीषण रक्त-पात होगा!

सोफ़िया—अवश्य होगा।

सहसा एक वालंटियर ने आकर विनय को नमस्कार किया और बोला—आज उधर का रास्ता बंद कर दिया गया है। मि. क्लार्क राजपूताना से जिलाधीश की जगह आ गये हैं।

विनय—अच्छा! मि. क्लार्क आ गये! कब आये?

सेवक—आज ही चार्ज लिया है। सुना जाता है, उन्हें सरकार ने इसी कार्य के लिए विशेष रीति से यहाँ नियुक्त किया है।

विनय कुछ सोचने लगे। सेवक ने कई मिनट बाद पूछा—आप कोई विशेष आज्ञा देना चाहते हैं?

विनय ने ज़मीन की तरफ़ ताकते हुए कहा—बरबस आग में मत कूदना; और यथा-साध्य जनता को उस सड़क पर जाने से रोकना।

सेवक—आप भी आयेंगे?

विनय ने कुछ खिन्न होकर कहा—देखा जायेगा।

सेवक के चले जाने के पश्चात् विनय कुछ देर तक शोक-मग्न रहे। समस्या थी, जाऊँ या न जाऊँ? दोनों पक्षों में तर्क-वितर्क होने लगा—मैं जाकर क्या कर लूँगा? अधिकारियों की जो इच्छा होगी, वह तो अवश्य ही करेंगे। लेकिन यह कितना अपमानजनक है कि नगर के लोग तो वहाँ जाने के लिए उत्सुक हों, और मैं, जिसने यह संग्राम छेड़ा, मुँह छिपाकर बैठा रहूँ। इस अवसर पर मेरा तटस्थ रहना मुझे जीवन-पर्यंत के लिए कलंकित कर देगा, मेरी दशा महेन्द्रकुमार से भी गयी-बीती हो जायेगी।

उन्होंने अपने मन का तिरस्कार करते हुए सोचा—आज मैं इतना कायर क्यों हो गया हूँ? मौत से क्या डर? मरना तो एक दिन है ही। क्या मेरे मरने से देश सूना हो जायेगा? क्या मैं ही कर्णधार हूँ? क्या कोई दूसरी वीर-प्रसू माता देश में है ही नहीं?

सोफ़िया कुछ देर तक टकटकी लगाए उनके मुँह की ओर ताकती रही। अकस्मात् वह उठ खड़ी हुई और बोली—मैं वहाँ जाती हूँ।

विनय ने भयातुर होकर कहा—आज वहाँ जाना दुस्साहस है। सुना नहीं, सारे नाके बंद कर दिये गये हैं?

सोफ़िया—स्त्रियों को कोई न रोकेगा।

विनय ने सोफ़िया का हाथ पकड़ लिया और अत्यंत प्रेम-विनीत भाव से कहा—प्रिये, मेरा कहना मानो, आज मत जाओ। कोई अनिष्ट होने वाला है।

सोफ़िया—इसीलिए तो मैं जाना चाहती हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे सामने क्लार्क कोई पैशाचिक आचरण न कर सकेगा। इतनी सज्जनता अभी उसमें है।

यह कहकर सोफ़िया अपने कमरे में गयी और अपना पुराना पिस्तौल सलूके की जेब में रखा, बाहर निकली, तो गाड़ी तैयार खड़ी थी। जाकर विनयसिंह के कमरे में झाँका, वह वहाँ न थे। तब वह द्वार पर कुछ देर तक खड़ी रही, एक अज्ञात शंका ने, किसी अमंगल के पूर्वाभास ने उसके हृदय को आंदोलित कर दिया। वह अपने कमरे में लौट जाना चाहती थी कि कुँवर साहब आते हुए दिखायी दिये। सोफ़ी डरी कि यह कुछ पूछ न बैठें, तुरंत गाड़ी में आ बैठी और कोचवान को तज़े चलने का हुक्म दिया। लेकिन जब गाडी़ कुछ दूर निकल गयी, तो वह सोचने लगी कि विनय कहाँ चले गये? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वह मुझे जाने पर तत्पर देखकर मुझसे पहले ही चल दिये हों? उसे मनस्ताप होने लगा कि मैं नाहक यहाँ आने को तैयार हुई। ईश्वर करे, वह इधर न आये हों। उनका न आना ही अच्छा। यह कैसे मालूम हो कि यहाँ आये या नहीं! चलकर देख लूँ।

उधर विनयसिंह दफ्तर में जाकर सेवक-संस्था के आय-व्यय का हिसाब लिख रहे थे। उनका चित्त बहुत उदास था। मुख पर नैराश्य छाया हुआ था। हिसाब पूरा करके उन्होंने प्रार्थना के भाव से ऊपर की ओर देखा;फिर बाहर निकले, बाइसिकल उठाई और तेज़ी से चले, इतने सतृष्ण नेत्रों से पीछे फिरकर भवन, उद्यान और विशाल वृक्षों को देखते जाते थे, मानो उन्हें फिर न देखेंगे, मानो यह उसका अंतिम दर्शन है। कुछ दूर आकर उन्होंने देखा, सोफ़िया चली जा रही है। अगर वह उससे मिल जाते, कदाचित् सोफ़िया भी उनके साथ लौट पड़ती; पर उन्हें तो यह धुन सवार थी कि सोफ़िया के पहले वहाँ जा पहुँचूँ। मोड़ आते ही उन्होंने अपनी पैरगाड़ी को फेर दिया और दूसरा रास्ता पकड़ा। फल यह हुआ कि जब वह संग्राम-स्थल में पहुँचे, तो सोफ़िया अभी तक न आयी थी। विनय ने देखा, गिरे हुए मकानों की जगह सैकड़ों छोलदारियाँ खड़ी हैं और उनके चारों ओर गोरखे खड़े चक्कर लगा रहे हैं। हज़ारों आदमी आस-पास खड़े हैं, मानो किसी विशाल अभिनय को देखने के लिए दर्शकगण वृत्ताकार खड़े हों। मध्य में सूरदास का झोंपड़ा रंगमंच के समान स्थिर था। सूरदास झोंपड़े के सामने लाठी लिए खड़ा था, मानो सूत्रधार नाटक का आरम्भ करने को खड़ा है। सेवक-दल के युवक झोंपड़े के सामने रातों-रात ही पहुँच गये थे। विनय ने निश्चय किया कि मैं भी वहीं जाकर खड़ा हो जाऊँ।

एकाएक किसी ने उनका हाथ पकड़कर खींचा। उन्होंने चौंककर देखा, तो सोफ़िया थी।

उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। घबराई हुई आवाज़ से बोली—तुम क्यों आये?

विनय—तुम्हें अकेले क्योंकर छोड़ देता?

सोफ़िया—मुझे बड़ा भय लग रहा है। ये तोपें लगा दी गयी हैं!

विनय—शायद आज इस सत्याग्रह का अंत कर देने का निश्चय हुआ है।

सोफ़िया—मैं यहाँ नाहक आयी। मुझे घर पहुँचा दो।

आज सोफ़िया को पहली बार प्रेम के दुर्बल पक्ष का अनुभव हुआ। जानती थी कि विनय का कर्त्तव्य, उनका गौरव, उनका श्रेय यहीं रहने में है। लेकिन यह जानते हुए भी उन्हें यहाँ से हटा ले जाना चाहती थी।

विनय—हाँ, तुम्हारा यहाँ रहना जोखिम की बात है। मैंने पहले ही मना किया था, तुमने न माना।

सोफ़िया विनय का हाथ पकड़कर गाड़ी पर बैठा देना चाहती थी कि सहसा इंदुरानी की मोटर आ गयी। मोटर से उतरकर वह सोफ़िया के पास आयी, बोली—क्यों सोफ़ी, जाती हो क्या?

सोफ़िया ने कहा—नहीं, जाती नहीं हूँ, ज़रा पीछे हट जाना चाहती हूँ।

सोफ़िया को इंदु का आना कभी इतना नागवार नहीं मालूम हुआ था। विनय को भी बुरा मालूम हुआ। बोले—तुम क्यों आयीं?

इंदु—इसलिए कि तुम्हारे भाई साहब ने आज पत्र द्वारा मुझे मना कर दिया था।

विनय—आज की स्थिति बहुत नाजुक है। हम लोगों के धैर्य और साहस की आज कठिनतम परीक्षा होगी।

इंदु—तुम्हारे भाई साहब ने भी उस पत्र में यही बात लिखी थी।

विनय—क्लार्क को देखो, कितनी निर्दयता से लोगों को हंटर मार रहा है। किन्तु कोई हटने का नाम भी नहीं लेता।

इतने में नायकराम किसी ओर से आ गये और विनय को देखकर विस्मय से पूछा—आज तुम इधर कैसे भूल पड़े भैया?

इस प्रश्न में कितना व्यंग्य, कितना तिरस्कार, कितना उपहास था! विनय ऐंठकर रह गये। बात टालकर बोले—क्लार्क बड़ा निर्दयी है!

नायकराम ने अँगोछा उठाकर अपनी पीठ विनय को दिखायी। गर्दन से कमर तक एक नीली, रक्तमय रेखा खिंची हुई थी, मानो किसी नोकदार कील से खुरच लिया गया हो। विनय ने पूछा—यह घाव कैसे लगा?

नायकराम—अभी यह हंटर खाए चला आता हूँ। आज जीता बचा, तो समझूँगा। तुमने तो इधर आना ही छोड़ दिया। औरत का माया-जाल बड़ा कठिन है!

सोफ़िया ने इस कथन का अंतिम वाक्य सुन लिया। बोली—ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम इस जाल में नहीं फँसे।

सोफ़िया की चुटकी ने नायकराम को गुदगुदा दिया। सारा क्रोध शांत हो गया। बोले—

भैया, मिस साहब को जवाब दो। मुझे मालूम तो है, लेकिन कहते नहीं बनता।

विनय—क्यों, तुम्हीं ने तो निश्चय किया था कि अब स्त्रियों के नगीच न जाऊँगा, ये बड़ी बेवफा होती हैं।

नायकराम — (लज्जित होकर) वाह भैया, तुमने तो मेरे ही सिर झोंक दिया!

विनय—और क्या कहूँ! सच कहने में क्या संकोच? खुश हों, तो मुसीबत; नाराज़ हों, तो मुसीबत।

सोफ़िया—जब औरतें इतनी विपत्ति हैं, तो पुरुष क्यों उसे अपने सिर मढ़ते हैं? क्या दुनिया के सभी पुरुष मूर्ख हैं, किसी को बुद्धि नहीं छू गयी?

नायकराम—भैया, जब औरत इतनी बड़ी बिपत है, तो लोग क्यों उसके पीछे हैरान रहते हैं? एक की दुर्दशा देखकर दूसरा क्यों नहीं सीखता? बोलो भैया, है कुछ जवाब?

विनय—जवाब क्यों नहीं है, एक तो तुम्हीं ने मेरी दुर्दशा से सीख लिया। तुम्हारी भाँति और भी कितने ही पड़े होंगे।

नायकराम—(हँसकर) भैया, तुमने फिर मेरे ही सिर डाल दिया। यह तो कुछ ठीक जवाब न बन पड़ा।

विनय—ठीक वही है, जो तुमने आते-ही-आते कहा था कि औरत का माया-जाल बड़ा कठिन है।

यहाँ ये ही बातें हो रही थीं कि मि. क्लार्क घोड़ा उछालते, आदमियों को हटाते, कुचलते आ पहुँचे! सोफ़ी पर निगाह पड़ी। तीर-सा लगा। टोपी उठाकर बोले—यह वही नाटक है, या कोई दूसरा शुरू कर दिया?

नश्तर से भी तीव्र, पत्थर से भी कठोर, निर्दय वाक्य था। मि. क्लार्क ने अपने मनोगत नैराश्य, दुःख, अविश्वास और क्रोध को इन चार शब्दों में कूट-कूटकर भर दिया था।

सोफ़ी ने तत्क्षण उत्तर दिया—नहीं, बिल्कुल नया। तब जो मित्र थे, वे अब शत्रु हैं।

क्लार्क व्यंग्य समझकर तिलमिला उठे। बोले—यह तुम्हारा अन्याय है।

सोफ़ी—किसी को एक बार शरण देना और दूसरी बार उसी पर तलवार उठाना, क्या एक ही बात है? जिस अंधे के लिए कल तुमने यहाँ के रईसों का विरोध किया था, बदनाम हुए थे, दंड भोगा था, उसी अंधे की गरदन पर तलवार चलाने के लिए आज राजपूताने से दौड़ आये हो। क्या दोनों एक ही बात हैं?

क्लार्क—हाँ मिस सेवक, दोनों एक ही बात हैं। हम यहाँ शासन करने के लिए आते हैं, अपने मनोभावों और व्यक्तिगत विचारों का पालन करने के लिए नहीं। हमारा प्रथम और अंतिम उद्देश्य शासन करना है।

सोफ़ी ने कहा—अन्यायपूर्ण शासन, शासन नहीं युद्ध है।

क्लार्क—तुमने फावड़े को फावड़ा कह दिया। हममें इतनी सज्जनता है। अच्छा, मैं तुमसे फिर मिलूँगा।

यह कहकर उन्होंने घोड़े को एड़ लगाई। सोफ़िया ने उच्च स्वर में कहा—नहीं, कदापि न

आना; मैं तुमसे नहीं मिलना चाहती।

आकाश मेघ-मंडित हो रहा था। संध्या से पहले संध्या हो गयी थी। मि. क्लार्क अभी गये ही थे कि मि. जॉन सेवक की मोटर आ पहुँची। वह ज्यों ही मोटर से उतरे कि सैकड़ों आदमी उनकी तरफ़ लपके। जान लेकर गोरखों के कैम्प की तरफ़ भागे, लेकिन ठोकर खायी, गिर पड़े। मि. क्लार्क ने घोड़े पर से उन्हें दौड़ते देखा था। उन्हें गिरते देखा, तो समझे, जनता ने उन पर आघात कर दिया। तुरंत गोरखों का एक दल उनकी रक्षा के निमित्त भेजा। जनता ने भी उग्र रूप धारण किया—चूहे बिल्ली से लड़ने के लिए तैयार हुए। सूरदास अभी तक चुपचाप खड़ा था। यह हलचल सुनी, तो भयभीत होकर भैरो से बोला, जो एक क्षण के लिए उसे न छोड़ता था—भैया, तुम मुझे ज़रा अपने कंधे पर बैठा लो, एक बार और लोगों को समझा देखूँ।

भैरो ने सूरदास को कंधे पर बैठा लिया। इस जन-समूह में उसका सिर बालिश्तभर ऊँचा हो गया। लोग इधर-उधर से उसकी बातें सुनने दौड़े।

सूरदास ने अपनी तेजहीन आँखों से जन-समूह को देखकर कहा—भाइयो, आप लोग अपने-अपने घर जायें। आपसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, घर चले जायें। यहाँ जमा होकर हाकिमों को चिढ़ाने से क्या फ़ायदा? मेरी मौत आवेगी, तो आप लोग खड़े रहेंगे, और मैं मर जाऊँगा। मैं धरम के बल से लड़ना चाहता था...।

इसके आगे वह और कुछ न कह सका। मि. क्लार्क ने उसे खड़े होकर कुछ बोलते सुना, तो समझे, अंधा जनता में उपद्रव मचाने के लिए प्रेरित कर रहा है। उन्होंने जेब से पिस्तौल निकाली और सूरदास पर चला दिया। निशाना अचूक पड़ा। बाण ने लक्ष्य को बेध दिया। गोली सूरदास के कंधे में लगी, सिर लटक गया, रक्त-प्रवाह होने लगा। भैरो उसे सँभाल न सका, वह भूमि पर गिर पड़ा।

सोफ़िया ने मि. क्लार्क को जेब से पिस्तौल निकालते और सूरदास को लक्ष्य करते देखा था। उसको ज़मीन पर गिरते देखकर समझी, घातक ने अपना अभीष्ट पूरा कर लिया। फ़िटन पर खड़ी थी, नीचे कूद पड़ी और हत्याक्षेत्र की ओर चली, जैसे कोई माता अपने बालक को किसी आनेवाली गाड़ी की झपेट में देखकर दौड़े। विनय उसके पीछे-पीछे उसे रोकने के लिए दौड़े, वह कहते जाते थे—सोफ़ी! ईश्वर के लिए वहाँ न जाओ, मुझ पर इतनी दया करो। देखो, गोरखे बंदूकें सँभाल रहे हैं। हाय! तुम नहीं मानतीं। यह कहकर उन्होंने सोफ़ी का हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींचा। लेकिन सोफ़ी ने एक झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया और फिर दौड़ी।

सोफ़ी ने जाकर देखा तो सूरदास के कंधे से रक्त प्रवाहित हो रहा था, अंग शिथिल पड़ गये थे, मुख विवर्ण हो रहा था, पर आँखें खुली हुई थीं और उनमें से पूर्ण शांति, संतोष और धैर्य की ज्योति निकल रही थी; क्षमा थी, क्रोध या भय का नाम न था। सोफ़ी ने तुरंत रूमाल निकालकर रक्त-प्रवाह को बंद किया और कम्पित स्वर में बोलीं—इन्हें अस्पताल भेजना चाहिए। अभी प्राण है; संभव है, बच जायें। भैरो ने उसे गोद में उठा लिया। सोफ़िया उसे अपनी गाड़ी तक लायी, उस पर सूरदास को लिटा दिया, आप गाड़ी पर बैठ गयी और

कोचवान को शफाखाने चलने का हुक्म दिया।

जनता नैराश्य और क्रोध से उन्मत्त हो गयी। जनसमुदाय का वह अपार सागर उमड़ता हुआ गोरखों की ओर चला। सेवक-दल के युवक घबराए हुए इधर-उधर दौड़ते फिरते थे; लेकिन उनके समझाने का किसी पर असर न होता था।

विनय ने देखा, अब अनर्थ हुआ चाहता है। आन-की-आन में सैकड़ों जानों पर बन आयेगी, तुरंत एक गिरी हुई दीवार पर चढ़कर बोले—मित्रो, यह क्रोध का अवसर नहीं है, प्रतिकार का अवसर नहीं है, सत्य की विजय पर आनंद और उत्सव मनाने का अवसर है।

एक आदमी बोला—अरे! यह तो कुँवर विनयसिंह हैं।

दूसरा—वास्तव में आनंद मनाने का अवसर है; उत्सव मनाइए, विवाह मुबारक!

विनय—हाँ, यह उत्सव मनाने का अवसर है कि अब भी हमारी पतित, दलित, पीड़ित जाति में इतना विलक्षण आत्मबल है कि एक निस्सहाय, अपंग, नेत्रहीन भिखारी शक्ति-संपन्न अधिकारियों का इतनी वीरता से सामना कर सकता है।

एक आदमी ने व्यंग्य-भाव से कहा—एक बेकस अंधा जो कुछ कर सकता है, वह राजे-राईस नहीं कर सकते।

दूसरा—राजभवन में जाकर शयन कीजिए। देर हो रही है।

तीसरा—सरकार से कितना पुरस्कार मिलनेवाला है।

विनय—भाइयो, मेरी निंदा का समय फिर मिल जायेगा। यद्यपि मैं कुछ विशेष कारणों से इधर आपका साथ न दे सका, लेकिन ईश्वर जानता है, मेरी सहानुभूति आप ही के साथ थी। मैं एक क्षण के लिए आपकी तरफ़ से गाफिल न था!

एक आदमी—यहाँ खड़े क्या बकवास कर रहे हो? कुछ दम हो तो चलो, कट मरें।

दूसरा—यह व्याख्यान झाड़ने का अवसर नहीं है। आज हमें यह दिखाना है कि हम न्याय के लिए कितनी वीरता से प्राण दे सकते हैं।

तीसरा—चलकर गोरखों के सामने खड़े हो जाओ।

चौथा—भाई, हम ग़रीबों की जान सस्ती होती है। रईसजादे होते तो हम भी दूर-दूर से खड़े तमाशा देखते।

पाँचवाँ—इससे कहो, जाकर चुल्लू-भर पानी में डूब मरे। हमें इसके उपदेशों की ज़रूरत नहीं। उँगली में लहू लगाकर शहीद बनने चले हैं!

ये अपमानजनक, व्यंग्यपूर्ण, कटु वाक्य विनय के उर-स्थल में बाण के सदृश चुभ गये—हा हतभाग्य! मेरे जीवन-पर्यंत के सेवानुराग, त्याग, संयम का यही फल है! अपना सर्वस्व देशसेवा की वेदी पर आहुति देकर रोटियों को मोहताज होने का यही पुरस्कार है! वह भूल गये—मैं यहाँ जनता की रक्षा करने आया हूँ, गोरखे सामने हैं। मैं यहाँ से हटा, और एक क्षण में पैशाचिक नर-हत्या होने लगेगी। मेरा मुख्य कर्त्तव्य अंत समय तक इन्हें रोकते रहना है। गौरव-सम्पन्न प्राणियों के लिए अपना चरित्र-बल ही सर्वप्रधान है। वे अपने चरित्र पर किये गये आघातों को सह नहीं सकते। विनय की सौम्य आकृति तेजस्वी हो गयी, लोचन लाल हो

गये। वह उन्मत्तों की भाँति जनता का रास्ता रोककर खड़े हो गये और बोले—क्या आप देखना चाहते हैं कि रईसों के बेटे क्योंकर प्राण देते हैं? देखिए।

यह कहकर उन्होंने जेब से भरी हुई पिस्तौल निकाल ली, छाती में उसकी नली लगाई और जब तक लोग दौड़ें, भूमि पर गिर पड़े। लाश तड़पने लगी। हृदय की संचित अभिलाषाएँ रक्त की धार बनकर निकल गईं।

जनता स्तम्भित हो गयी, जैसे आँखों में अँधेरा छा जाये! उसका क्रोधावेश करुणा के रूप में बदल गया। चारों तरफ़ से दौड़-दौड़कर लोग आने लगे, विनय के दर्शनों से अपने नेत्रों को पवित्र करने के लिए, उनकी लाश पर चार बूँद आँसू बहाने के लिए। जो द्रोही था, स्वार्थी था, काम-लिप्सा रखनेवाला था, वह एक क्षण में देव-तुल्य, त्याग-मूर्ति, देश का प्यारा, जनता की आँखों का तारा बना हुआ था। जो लोग गोरखों के समीप पहुँच गये थे, वे भी लौट आये। प्रत्येक हृदय शोक से विदीर्ण हो रहा था, प्रत्येक हृदय अपना तिरस्कार कर रहा था, पश्चात्ताप कर रहा था—आह, यह हमारे ही व्यंग्य-बाणों का, हमारे ही तीव्र वाक्य-शरों का पाप-कृत्य है। हमीं इसके घातक हैं, हमारे ही सिर यह हत्या है!

एक ने रोकर कहा—खुदा करे, मेरी ज़बान जल जाये। मैंने ही शादी पर मुबारकबादी का ताना मारा था।

दूसरा बोला—दोस्तो, इस लाश पर फिदा हो जाओ, इस पर निसार हो जाओ।

यह कहकर उसने तलवार निकाली, गरदन पर चलाई और वहीं तड़पने लगा।

तीसरा सिर पीटता हुआ बोला—कितना तेजस्वी मुख-मंडल है! हा, मैं क्या जानता था कि मेरे व्यंग्य वज्र बन जायेंगे!

चौथा—हमारे हृदयों पर यह घाव सदैव हरा रहेगा, हम इस देवमूर्ति को कभी विस्मृत न कर सकेंगे।

अँधेरा छाया था। पानी मूसलाधार बरस रहा था। कभी ज़रा देर के लिए बूँदें हलकी पड़ जातीं, फिर ज़ोरों से गिरने लगतीं, जैसे कोई रोने वाला थककर ज़रा दम ले ले और फिर रोने लगे। इंदु मि. जॉन सेवक के साथ थी। यह खबर पाते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

विनय के शव पर एक चादर तान दी गयी थी। दीपकों के प्रकाश में उनका मुख अब भी पुष्प के समान विहसित था। देखनेवाले आते थे, रोते थे, और शोक-समाज में खड़े हो जाते थे।

नायकराम सूरदास के साथ शफाखाने गये थे। लौटे ही थे कि यह दृश्य देखा। एक लम्बी साँस खींचकर विनय के चरणों पर सिर रख दिया और बिलख-बिलखकर रोने लगे। ज़रा चित्त शांत हुआ, तो सोफ़ी को खबर देने चले, जो अभी शफाखाने ही में थी।

नायकराम रास्ते-भर दौड़ते हुए गये, पर सोफ़ी के सामने पहुँचे, तो गला इतना फँस गया कि मुँह से एक शब्द भी न निकला। उसकी ओर ताकते हुए सिसक-सिसककर रोने लगे। सोफ़ी के हृदय में शूल-सा उठा। अभी नायकराम गये और उलटे पाँव लौट आये। ज़रूर कोई अमंगल सूचना है। पूछा—क्या पण्डाजी; यह पूछते ही उसका कंठ भी रुँध गया।

नायकराम की सिसकियाँ आर्त्तनाद हो गईं। सोफ़ी ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया और आवेश-कम्पित कंठ से पूछा—क्या विनय...? यह कहते-कहते शोकातिरेक की दशा में शफाखाने से निकल पड़ी और पाँड़ेपुर की ओर चली। नायकराम आगे-आगे लालटेन दिखाते हुए चले। सोफ़ी का शोक एक ही क्षण में आत्मग्लानि के रूप में बदल गया—हाय! मैं ही हत्यारिन हूँ। क्यों आकाश से वज्र गिरकर मुझे भस्म नहीं कर देता? हाय! आज मैं वहाँ न गयी होती, तो वह कदापि न जाते। मैं क्या जानती थी कि विधाता मुझे सर्वनाश की ओर लिए जाता है! आह! यह सब मेरे कारण हुआ, मैं ही अपने सर्वनाश का कारण हूँ! मैं अपने हाथों लुट गयी!

फिर उसके मन में विचार आया—कहीं खबर झूठी न हो। उन्हें चोट लगी हो और वह संज्ञा-शून्य हो गये हों। मैंने कभी किसी प्राणी को दुःख नहीं पहुँचाया, मैंने कभी उस पर अविश्वास नहीं किया, फिर वह मुझे इतना वज्र दंड क्यों देगा!

जब सोफ़िया संग्राम-स्थल के समीप पहुँची, तो उस पर भीषण भय छा गया। वह सड़क के किनारे एक मील के पत्थर पर बैठ गयी। वहाँ कैसे जाऊँ? कैसे उन्हें देखूँगी, कैसे उन्हें स्पर्श करूँगी? उनकी मरणावस्था का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गया, उसकी मृत देह रक्त और धूल में लिपटी हुई भूमि पर पड़ी हुई थी। उसे इस समय प्रबल आकांक्षा हुई कि वहाँ जाते ही मैं भी उनके चरणों पर गिरकर प्राण त्याग दूँ। अब संसार में मेरे लिए कौन-सा सुख है!

यद्यपि वह जानती थी कि विनय का देहावसान हो गया, फिर भी उसे भ्रांत आशा हो रही थी कि कौन जाने, वह केवल मूर्च्छित हो गये हों! सहसा उसे पीछे से एक मोटरकार पानी को चीरती हुई आती दिखायी दी। वह निकट आकर रुक गयी। रानी जाह्नवी थीं। सोफ़ी को देखकर बोलीं—बेटी! तुम यहाँ क्यों बैठी हो? आओ, साथ चलो। क्या गाड़ी नहीं मिली?

सोफ़ी चिल्लाकर रानी के गले से लिपट गयी। किन्तु रानी की आँखों में आँसू न थे, मुख पर शोक का चिह्न न था। उनकी आँखों में गर्व का मद छाया हुआ था, मुख पर विजय की आभा झलक रही थी! सोफ़ी को गले से लगाती हुई बोलीं—क्यों रोती हो बेटी? विनय के लिए? वीरों की मृत्यु पर आँसू नहीं बहाए जाते, उत्सव के राग गाए जाते हैं। मेरे पास हीरे-जवाहिर होते, तो उसकी लाश पर लुटा देती। मुझे उसके मरने का दुःख नहीं है। दुःख होता, अगर वह आज प्राण बचाकर भागता। यह तो मेरी चिर-संचित अभिलाषा थी, बहुत ही पुरानी। मेरी वह कामना पूरी हो गयी। आज मैं एक वीर पुत्र की जननी हूँ।

मोटर रुकी। सोफ़िया और जाह्नवी को देखकर लोग इधर-उधर हट गये। इंदु दौड़कर माता से लिपट गयी। जाह्नवी ने विनय का मस्तक अपनी गोद में लिया, उसे छाती से लगाया, उसका चुम्बन किया और शोक-सभा की ओर गर्व-युक्त नेत्रों से देखकर बोलीं—यह युवक, जिसने विनय पर अपने प्राण समर्पित कर दिये, विनय से बढ़कर है। क्या कहा? मुसलमान है! कर्त्तव्य के क्षेत्र में हिंदू और मुसलमान का भेद नहीं, दोनों एक ही नाव में बैठे हुए हैं; डूबेंगे, तो दोनों डूबेंगे; बचेंगे तो दोनों बचेंगे। मैं इस वीर आत्मा का यहीं मजार बनवाऊँगी। शहीद के मजार को कौन खोदकर फेंक देगा, कौन इतना नीच अधर्म होगा! यह सच्चा शहीद

था। तुम लोग क्यों रोते हो? विनय के लिए? तुम लोगों में कितने ही युवक हैं, कितने ही बाल-बच्चों वाले हैं। युवकों से मैं कहूँगी—जाओ, और विनय की भाँति प्राण देना सीखो। दुनिया केवल पेट पालने की जगह नहीं है। बाल-बच्चोंवालों से मेरा निवेदन है, अपने प्यारे बच्चों को चक्की का बैल न बनाओ, गृहस्थी का गुलाम न बनाओ। ऐसी शिक्षा दो कि जिएँ, किन्तु जीवन के दास बनकर नहीं, स्वामी बनकर। यही शिक्षा है, जो इस वीर आत्मा ने तुम्हें दी है।

इंदु के अंतस्तल में बड़ी देर से एक ज्वाला-सी दहक रही थी। वह इन सारी वेदनाओं का मूल कारण अपने पति को समझती थी। अब तक ज्वाला उर-स्थल में थी, अब बाहर निकल पड़ी। यह ध्यान न रहा कि मैं इतने आदमियों के सामने क्या कहती हूँ, औचित्य की ओर से आँखें बंद करके बोली—माताजी, इस हत्या का कलंक मेरे सिर है। मैं अब उस प्राणी का मुँह न देखूँगी, जिसने मेरे वीर भाई की जान लेकर छोड़ी, और वह केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए।

रानी जाह्नवी ने तीव्र स्वर में कहा—क्या महेंद्र को कहती हो? अगर फिर मेरे सामने मुँह से ऐसी बात निकाली, तो तेरा गला घोंट दूँगी। क्या तू उन्हें अपना गुलाम बनाकर रखेगी? तू स्त्री होकर चाहती है कि कोई तेरा हाथ न पकड़े, वह पुरुष होकर क्यों न ऐसा चाहें? अगर तुझे उनकी बातें पसंद नहीं आतीं, तो कोशिश कर कि पसंद आयें। वह तेरे पतिदेव हैं, तेरे लिए उनकी सेवा से उत्तम और कोई पथ नहीं है।

दस बज गये थे। लोग कुँवर भरतसिंह की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब दस बजने की आवाज़ कानों में आयी, तो रानी जाह्नवी ने कहा—उनकी राह अब मत देखो, वह न आयेंगे, और न आ सकते हैं। वह उन पिताओं में हैं, जो पुत्र के लिए जीते हैं, पुत्र के लिए मरते हैं, और पुत्र के लिए मंसूबे बाँधते हैं। उनकी आँखों में अँधेरा छा गया होगा, सारा संसार सूना जान पड़ता होगा, अचेत पड़े होंगे। सम्भव है, उनके प्राणांत हो गये हों। उनका धर्म, उनका कर्म, उनका जीवन, उनका मरण, उनका दीन, उनकी दुनिया, सब कुछ इसी पुत्र-रत्न पर अवलम्बित था। अब वह निराधार हैं, उनके जीवन का कोई लक्ष्य, कोई अर्थ नहीं है।

44

गंगा से लौटते दिन के नौ बज गये। हज़ारों आदमियों का जमघट, गलियाँ तंग और कीचड़ से भरी हुई, पग-पग पर फूलों की वर्षा, सेवक-दल का राष्ट्रीय संगीत, गंगा तक पहुँचते-पहुँचते ही सबेरा हो गया था। लौटते हुए जाह्नवी ने कहा—चलो, ज़रा सूरदास को देखते चलें, न जाने मरा या बचा; सुनती हूँ, घाव गहरा था।

सोफ़िया और जाह्नवी, दोनों शफाखाने गईं, तो देखा, सूरदास बरामदे में चारपाई पर लेटा हुआ है, भैरो उसके पैताने खड़ा है और सुभागी सिरहाने बैठी पंखा झल रही है। जाह्नवी ने डॉक्टर से पूछा—इसकी दशा कैसी है, बचने की कोई आशा है?

डॉक्टर ने कहा—किसी दूसरे आदमी को यह जख्म लगा होता, तो अब तक मर चुका होता। इसकी सहन-शक्ति अद्भुत है। गोली निकल आयी है, लेकिन बच जाये, तो कहें।

सोफ़िया को एक रात की दारुण शोक-वेदना ने इतना घुला दिया था कि पहचानना कठिन था, मानो कोई फूल मुरझा गया हो। उसने सूरदास के समीप जाकर कहा—सूरदास, कैसा जी है? रानी जाह्नवी आयी हैं।

सूरदास—धन्य भाग। अच्छा हूँ।

जाह्नवी—पीड़ा बहुत हो रही है?

सूरदास—कुछ कष्ट नहीं है। खेलते-खेलते गिर पड़ा हूँ; चोट आ गयी है, अच्छा हो जाऊँगा। उधर क्या हुआ, झोंपड़ी बची कि नहीं?

सोफ़ी—अभी तो नहीं गयी है, लेकिन शायद अब न रहे। हम तो विनय को गंगा की गोद में सौंपे चले आते हैं।

सूरदास ने क्षीण स्वर में कहा—भगवान् की मरजी, वीरों का यही धरम है। जो ग़रीबों के लिए जान लड़ा दे, वही सच्चा वीर है।

जाह्नवी—तुम साधु हो। ईश्वर से कहो, विनय का फिर इसी देश में जन्म हो।

सूरदास—ऐसा ही होगा माताजी, ऐसा ही होगा। अब महान् पुरुष हमारे ही देश में जनम लेंगे। जहाँ अन्याय और अधरम होता है, वहीं देवता लोग जाते हैं।

डॉक्टर ने आकर कहा—रानीजी, मैं बहुत खेद के साथ आपसे प्रार्थना करता हूँ कि

सूरदास से बातें न करें, नहीं तो ज़ोर पड़ने से इनकी दशा बिगड़ जायेगी।

अस्पताल के रोगियों और कर्मचारियों को ज्यों ही मालूम हुआ कि विनयसिंह की माताजी आयी हैं, तो सब उनके दर्शनों को जमा हो गये, कितनों ही ने उनकी पद-रज माथे पर चढ़ाई। यह सम्मान देखकर जाह्नवी का हृदय गर्व से प्रफुल्लित हो गया। विहसित मुख से सबों को आशीर्वाद देकर यहाँ से चलने लगीं, तो सोफ़िया ने कहा—माताजी, आपकी आज्ञा हो, तो मैं यहीं रह जाऊँ। सूरदास की दशा चिंताजनक जान पड़ती है। इसकी बातों में वह तत्त्वज्ञान है, जो मृत्यु की सूचना देता है।

रानी ने सोफ़ी को गले लगाकर सहर्ष ही आज्ञा दे दी। वास्तव में सोफ़िया सेवा-भवन जाना न चाहती थी। रानी चली गयी, तो सोफ़िया एक मोढ़ा डालकर सूरदास की चारपाई के पास बैठ गयी। सोफ़ी को वहाँ बैठे-बैठे सारा दिन गुज़र गया। वह निर्जल, निराहार, मन मारे बैठी हुई सुखद स्मृतियों के स्वप्न देख रही थी, और जब आँखें भर आती थीं, तो आड़ में जाकर रूमाल से आँसू पोंछ आती थी। उसे अब सबसे तीव्र वेदना यही थी कि मैंने विनय की कोई इच्छा पूरी नहीं की, उनकी अभिलाषाओं को तृप्त न किया, उन्हें वंचित रखा।

संध्या हो गयी थी। सोफ़िया लैम्प के सामने बैठी हुई सूरदास को प्रभु मसीह का जीवन-वृत्तांत सुना रही थी। सूरदास ऐसा तन्मय हो रहा था, मानो उसे कोई कष्ट नहीं है। सहसा राजा महेन्द्रकुमार आकर खड़े हो गये और सोफ़ी की ओर हाथ बढ़ा दिया। सोफ़िया ज्यों-की-त्यों बैठी रही। राजा साहब से हाथ मिलाने की चेष्टा न की।

सूरदास ने पूछा—कौन है मिस साहब?

सोफ़िया ने कहा—राजा महेन्द्रकुमार हैं।

सूरदास ने आदर-भाव से उठना चाहा, पर सोफ़िया ने लिटा दिया और बोली—हिलो मत, नहीं तो घाव खुल जायेगा। आराम से पड़े रहो।

सूरदास—राजा साहब हैं। उनका इतना आदर भी न करूँ? कुछ बैठने को है?

सोफ़िया—हाँ, कुर्सी पर बैठ गये।

राजा साहब ने पूछा—सूरदास कैसा जी है?

सूरदास—भगवान् की दया है।

राजा साहब—सूरदास, मैं तुमसे अपनी भूलों की क्षमा माँगने आया हूँ। अगर मेरे वश की बात होती, तो मैं आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन से बदल लेता।

सूरदास—सरकार, ऐसी बात न कहिए; आप राजा हैं, मैं रंक हूँ। आपने जो कुछ किया, दूसरों की भलाई के विचार से किया। मैंने जो कुछ किया, अपना धरम समझकर किया। मेरे कारन आपको अपजस हुआ, कितने घर नास हुए, यहाँ तक कि इंद्रदत्त और कुँवर विनयसिंह जैसे दो रतन जान से गये। पर अपना क्या बस है! हम तो खेल खेलते हैं, जीत-हार तो भगवान् के हाथ है। बस, नीयत ठीक होनी चाहिए।

राजा—सूरदास, नीयत को कौन देखता है। मैंने सदैव प्रजा-हित ही पर निगाह रखी, पर आज सारे नगर में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो मुझे खोटा, नीच, स्वार्थी, अधर्मी, पापिष्ठ न

समझता हो। मैं तो अब कहीं मुँह दिखाने-योग्य नहीं रहा।

सूरदास—इसकी चिन्ता न कीजिए। हानि, लाभ, जीवन, मरन, जस, अपजस विधि के हाथ है, हम तो खाली मैदान में खेलने के लिए बनाए गये हैं। सभी खिलाड़ी मन लगाकर खेलते हैं, सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो; लेकिन जीत एक ही की होती है, तो क्या इससे हारनेवाले हिम्मत हार जाते हैं? वे फिर खेलते हैं; फिर हार जाते हैं, तो फिर खेलते हैं। कभी-न-कभी उनकी जीत होती ही है। जो आपको आज बुरा समझ रहे हैं, वे कल आपके सामने सिर झुकाएँगे। हाँ, नीयत ठीक रहनी चाहिए।

राजा—आह सूरदास, तुम्हें नहीं मालूम कि मैं कितनी विपत्ति में पड़ा हुआ हूँ। तुम्हें बुरा कहनेवाले अगर दस-पाँच होंगे, तो तुम्हारा जस गानेवाले असंख्य हैं, यहाँ तक कि हुक्काम भी तुम्हारी दृढ़ता और धैर्य का बखान कर रहे हैं। मैं तो दोनों ओर से गया।

सूरदास—नहीं-नहीं, राजा साहब, निराश होना खिलाड़ियों के धरम के विरुद्ध है। अबकी हार हुई, तो फिर कभी जीत होगी।

राजा—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि फिर कभी मेरा सम्मान होगा। मिस सेवक, आप मेरी दुर्बलता पर हँस रही होंगी, पर मैं बहुत दुखी हूँ।

सोफ़िया ने अविश्वास-भाव से कहा—जनता अत्यंत क्षमाशील होती है। अगर अब भी आप जनता को यह दिखा सकें कि इस दुर्घटना पर आपको दुःख है, तो कदाचित् प्रजा आपका फिर सम्मान करे।

राजा ने अभी उत्तर न दिया था कि सूरदास बोल उठा—सरकार, नेकनामी और बदनामी बहुत आदमियों के हल्ला मचाने से नहीं होती। सच्ची नेकनामी अपने मन में होती है। अगर अपना मन बोले कि मैंने जो कुछ किया, वही मुझे करना चाहिए था, इसके सिवा कोई दूसरी बात करना मेरे लिए उचित न था, तो वही नेकनामी है। अगर आपको इस मार-काट पर दुःख है, तो आपका धरम है कि लाट साहब से इसकी लिखा-पढ़ी करें। वह न सुनें, तो जो उनसे बड़ा हाकिम हो, उससे कहें-सुनें, और जब तक सरकार परजा के साथ न्याय न करे, दम न लें।

सोफ़ी ने पृथ्वी की ओर ताकते हुए कहा—राजपक्ष लेनेवालों के लिए यह सिद्ध करना कठिन है कि वे स्वार्थ से मुक्त हैं।

राजा—मिस सेवक, मैं आपको सच्चे हृदय से विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने अधिकारियों के हाथों सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के लिए उनका पक्ष नहीं ग्रहण किया, और पद का लोभ तो मुझे कभी रहा ही नहीं। संभव है, अनिष्ट का भय हो, या केवल ठकुरसुहाती; पर मेरा कोई स्वार्थ नहीं था।

आकाश पर बादल मंडरा रहे थे। सूरदास निद्रा में मग्न था। इतनी बातों से उसे थकावट आ गयी थी। सुभागी एक टाट का टुकड़ा लिए आयी और सूरदास के पैताने बिछाकर लेट रही, शफाखाने के कर्मचारी चले गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

सोफ़ी गाड़ी का इंतज़ार कर रही थी—दस बजते होंगे। रानीजी शायद गाड़ी भेजना भूल गईं। उन्होंने शाम ही को गाड़ी भेजने का वादा किया था। कैसे जाऊँ? क्या हरज है, यहीं बैठी

रहूँ। वहाँ रोने के सिवा और क्या करूँगी।

इतने में किसी की आहट सुनाई दी। मिठुआ और भैरो बरामदे में आये। मिठुआ ने सोफ़ी को सलाम किया और सूरदास की चारपाई के पास जाकर खड़ा हो गया। सूरदास ने चौंककर पूछा—कौन है, भैरो?

मिठुआ—दादा, मैं हूँ।

सूरदास—बहुत अच्छे आये बेटा, तुमसे भेंट हो गयी। इतनी देर क्यों हुई?

मिठुआ—क्या करूँ दादा, बड़े बाबू से साँझ से छुट्टी माँग रहा था, मगर एक-न-एक काम लगा देते थे। इससे तो कुली था, तभी अच्छा था कि जब जी चाहता था, जाता था; जब चाहता था, आता था; कोई रोकनेवाला न था।

सूरदास—मैं न बुलाता, तो तुम अब भी न आते। तुमको इसलिए बुलाया है कि मर जाऊँ तो मेरा किरिया-करम करना, अपने हाथों से पिंडदान देना, बिरादरी को भोज देना और हो सके, तो गया कर आना। बोलो, इतना करोगे?

भैरो—भैया, तुम इसकी चिन्ता मत करो, तुम्हारा किरिया-करम इतनी धूमधाम से होगा कि बिरादरी में कभी किसी का न हुआ होगा।

सूरदास—धूमधाम से नाम तो होगा, मगर मुझे पहुँचेगा तो वही, जो मिठुआ देगा।

मिठुआ—दादा, मेरी नंगाझोली ले लो, जो मेरे पास धेला भी हो। खाने-भर को तो होता ही नहीं, बचेगा क्या?

सूरदास—तो तुमने यह आसरा भी तोड़ दिया। मेरे भाग में तुम्हारी कमाई न जीते-जी बदी थी, न मरने के पीछे।

मिठुआ—दादा, अब मुँह न खुलवाओ, परदा ढँका रहने दो। मुझे चौपट करके मरे जाते हो; उस पर कहते हो, मेरा किरिया-करम कर देना, गया-पराग कर देना। हमारी दस बीघे मौरूसी ज़मीन थी कि नहीं, उसका मुआवज़ा दो पैसा, चार पैसा कुछ तुमको मिला कि नहीं, उसमें से मेरे हाथ क्या लगा? घर में भी मेरा कुछ हिस्सा होता है या नहीं? हाकिमों से बैर न ठानते, तो उस घर के सौ से कम न मिलते। दरवाजे पर मेरे हाथों के लगाए दो नीम के पेड़ थे। क्या वे पाँच-पाँच रुपये में भी महँगे थे? मुझे तो तुमने मटियामेट कर दिया, कहीं का न रखा। मुझे भी तो अभी ब्याह-सगाई करनी है, घर-द्वार बनवाना है। किरिया-करम करने बैठूँ, तो इसके लिए कहाँ से रुपये लाऊँगा? अब तक मैं चुप था, नाबालिग था। अब तो मेरे भी हाथ-पाँव हुए। देखता हूँ, मेरी ज़मीन का मुआवज़ा कैसे नहीं मिलता! (झाँककर) मिस साहब फाटक पर खड़ी हैं, घर क्यों नहीं जातीं? और सुन ही लेंगी, तो मुझे क्या डर?

सूरदास भौंचक्का-सा रह गया। उसे स्वप्न में भी न सूझा था कि मिठुआ के मुँह से मुझे कभी ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ेंगी। उसे अत्यंत दुःख हुआ, विशेष इसलिए कि ये बातें उस समय कही गयी थीं, जब वह शांति और सांत्वना का भूखा था। जिसे उसने बाल्यावस्था से बेटे की तरह पाला, जिसके लिए उसने न जाने क्या-क्या कष्ट सहे, वह अंत समय आकर उससे अपने हिस्से का दावा कर रहा था! आँखों से आँसू निकल आये। बोला—बेटा, मेरी भूल थी कि तुमसे किरिया-करम करने को कहा। तुम कुछ मत करना। चाहे मैं पिंडदान और

जल के बिना रह जाऊँ, पर यह उससे कहीं अच्छा है कि तुम साहब से अपना मुआवज़ा माँगो।

मिठुआ—मैं अपने मुआवज़े का दावा ज़रूर करूँगा। चाहे साहब दें, चाहे सरकार दे; चाहे काला चोर दे, मुझे तो अपने रुपये से काम है।

सूरदास—हाँ सरकार भले ही दे दे; साहब से कोई मतलब नहीं।

मिठुआ—मैं तो साहब से लूँगा, वह चाहे जिससे दिलाएँ। न दिलाएँगे, तो जो कुछ मुझसे हो सकेगा, करूँगा। लगा दूँगा आग, सारा गोदाम जलकर राख हो जायेगा। (धीरे से) बम-गोले बनाना जानता हूँ। एक गोला रख दूँगा, तो पुतलीघर में आग लग जायेगी। मेरा कोई क्या कर लेगा!

सूरदास—तो फिर मैं साहब से कह दूँगा कि इससे होशियार रहें।

मिठुआ—तुमको गऊ मारने की हत्या लगे, अगर तुम साहब या किसी और से इस बात की चरचा तक करो। जीते-जी मेरा बुरा चेता, मरने के बाद काँटे बोना चाहते हो?

यह कहकर मिठुआ क्रोध से भरा हुआ चला गया! भैरो रोकता ही रहा, पर उसने न माना। सूरदास आध घंटे तक मूर्च्छावस्था में पड़ा रहा। इस आघात का घाव गोली से भी घातक था कि मिस्टर जॉन सेवक आये। सोफ़िया भी उनके साथ फाटक से चली। सोफ़ी ने दूर ही से कहा—सूरदास, पापा तुमसे मिलने आये हैं। वास्तव में मिस्टर सेवक सूरदास से मिलने नहीं आये थे, सोफ़ी से सम्वेदना प्रकट करने का शिष्टाचार करना था। सोफ़िया रानी जाह्नवी की गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे ध्यान भी न था कि पापा आते होंगे। उन्हें देखकर रोने लगी। पापा को मुझसे प्रेम है, इसका उसे हमेशा विश्वास रहा, और यह बात यथार्थ थी। सोफ़ी को रोते देखकर दयार्द्र हो गये, गले से लगा लिया और तस्कीन देने लगे। उन्हें बार-बार यह कारखाना खोलने पर अफ़सोस होता था, जो असाध्य रोग की भाँति उनके गले पड़ गया था। इसके कारण पारिवारिक शांति में विघ्न पड़ा, सारा कुनबा तीन-तेरह हो गया, शहर में बदनामी हुई, सारा सम्मान मिट्टी में मिल गया, घर के हज़ारों रुपये खर्च हो गये और अभी तक नफे की कोई आशा नहीं। प्रभुसेवक का गृहत्याग दीपक की भाँति हृदय को जलाता रहता था।

मिस्टर सेवक कोई आध घंटे तक सोफ़िया से अपनी विपत्ति कथा कहते रहे। अंत में बोले—सोफ़ी, तुम्हारी मामा को यह सम्बंध पसंद न था, पर मुझे कोई आपत्ति न थी। कुँवर विनयसिंह जैसा पुत्र या दामाद पाकर ऐसा कौन है, जो अपने को भाग्यवान् न समझता। धर्म-विरुद्ध होने की मुझे ज़रा भी परवा न थी। धर्म हमारी रक्षा और कल्याण के लिए है। अगर वह हमारी आत्मा को शांति और देह को सुख नहीं प्रदान कर सकता, तो मैं उसे पुराने कोट की भाँति उतार फेंकना पसंद करूँगा। अगर मुझे ज़रा भी मालूम होता कि यह विवाद इतना भयंकर हो जायेगा और इसका इतना भीषण परिणाम होगा, तो मैं उस गाँव पर कब्ज़ा करने का नाम भी न लेता। सोफ़ी, विनयसिंह की अकाल मृत्यु पर किसे दुःख न होगा; पर उनके आत्मसमर्पण ने सैकड़ों जानें बचा लीं, नहीं तो जनता आग में कूदने को तैयार थी। वीरात्मा पुरुष था, बड़ा ही दिलेर!

सोफ़िया को परितोष देने के बाद मि. सेवक ने उससे घर चलने के लिए आग्रह किया। सोफ़िया ने टालकर कहा—पापा, इस समय मुझे क्षमा कीजिए, सूरदास की हालत बहुत नाज़ुक है। मेरे रहने से डॉक्टर और अन्य कर्मचारी विशेष ध्यान देते हैं। मैं न रहूँगी, तो कोई उसे पूछेगा भी नहीं। मुझे तो वह मानव-देह में कोई फरिश्ता मालूम होता है।

सेवक—मेरे जाने से उसे रंज तो न होगा?

सोफ़िया—कदापि नहीं, पापा, इसका विचार ही मन में न लाइए। उसके हृदय में द्वेष और मालिन्य की गंध तक नहीं है।

दोनों प्राणी सूरदास के पास गये, तो वह मनस्ताप से विकल हो रहा था। मि. सेवक बोले—सूरदास, कैसी तबीयत है?

सूरदास—बहुत अच्छा हूँ। धन्य भाग। मैं मरते-मरते बड़ा आदमी हो जाऊँगा।

सेवक—नहीं-नहीं सूरदास, ऐसी बातें न करो, तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे।

सूरदास—(हँसकर) अब जीकर क्या करूँगा? इस समय मरूँगा, तो बैकुंठ पाऊँगा, फिर न जाने क्या हो।

सेवक—मेरे हाथों तुम्हारा बड़ा अहित हुआ। इसके लिए मुझे क्षमा करना।

सूरदास—मेरा तो आपने कोई अहित नहीं किया। हम और आप आमने-सामने की पालियों में खेले। आपने भरसक ज़ोर लगाया, मैंने भी भरसक ज़ोर लगाया। जिसको जीतना था, जीता; जिसको हारना था, हारा। खिलाड़ियों में बैर नहीं होता। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है।

सेवक—जीवन के इस रहस्य को, मैं भी तुम्हारी भाँति समझ सकता, तो आज यह नौबत न आती। तुम इस संग्राम में निपुण हो सूरदास, मैं तुम्हारे आगे निरा बालक हूँ। लोकमत के अनुसार मैं जीता और तुम हारे, पर मैं जीतकर भी दुखी हूँ, तुम हारकर भी सुखी हो।

सूरदास ने उदार भाव से कहा—नहीं साहब, आपने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया। धूर्तता तो निर्बलों का हथियार है। बलवान कभी नीच नहीं होता।

सेवक—हाँ सूरदास, होना वही चाहिए, जो तुम कहते हो; पर ऐसा होता नहीं। मैंने नीति का कभी पालन नहीं किया।

सूरदास ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह सोच रहा था कि मिठुआ की बात साहब से कह दूँ या नहीं। कह देना ही उचित है। लौंडा हठी और कुचाली है, उस पर घीसू का साथ, कोई-न-कोई अनीति अवश्य करेगा। बोला—साहब, आपसे एक बात कहना चाहता हूँ।

सेवक—कहो, शौक से कहो।

सूरदास ने संक्षिप्त रूप से मिठुआ की अनर्गल बातें मि. सेवक से कह सुनाई और अंत में बोला—मेरी आपसे इतनी ही बिनती है कि उस पर कड़ी निगाह रखिएगा। अगर अवसर पा गया तो चूकनेवाला नहीं है।

सेवक अन्य धनी पुरुषों की भाँति बदमाशों से बहुत डरते थे, सशंक होकर बोले—सूरदास, तुमने मुझे होशियार कर दिया, इसके लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। (सोफ़िया से अँगरेज़ी

में) कदाचित् संसार ऐसे आदमियों के रहने का स्थान नहीं है।

सोफ़िया—मुझे अब विश्वास होता है कि शिक्षा धूर्तों की स्रष्टा है, प्रकृति सत्पुरुषों की।

जॉन सेवक को यह बात कुछ रुचिकर न लगी। शिक्षा की इतनी निंदा उन्हें असह्य थी। बोले—सूरदास, मेरे योग्य कोई और सेवा हो तो बताओ।

सूरदास—कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

सेवक—नहीं-नहीं, जो कुछ कहना चाहते हो, निस्संकोच होकर कहो।

सूरदास—ताहिरअली को नौकर रख लीजिएगा। उनके बाल-बच्चे कष्ट में हैं।

सेवक—सूरदास, मुझे अत्यंत खेद है कि मैं तुम्हारे आदेश का पालन न कर सकूँगा। किसी नीयत के बुरे आदमी को आश्रय देना मेरे नियम के विरुद्ध है।

सूरदास—दया कभी नियम-विरुद्ध नहीं होती।

सेवक—मैं इतना कर सकता हूँ कि ताहिरअली के बाल-बच्चों का पालन-पोषण करता रहूँ। लेकिन उसे नौकर न रखूँगा।

सूरदास—जैसी आपकी इच्छा। किसी तरह उन ग़रीबों की परवस्ती होनी चाहिए।

अभी ये बातें हो रही थीं कि रानी जाह्नवी की मोटर आ पहुँची। रानी उतरकर सोफ़िया के पास आयीं और बोलीं—बेटी, क्षमा करना, मुझे बड़ी देर हो गयी। कुँवर साहब आ गये थे। बातों-बातों में उनसे झड़प हो गयी। बुढ़ापे में मनुष्य क्यों इतना मायांध हो जाता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। क्यों मि. सेवक, आपका क्या अनुभव है?

सेवक—मैंने दोनों ही प्रकार के चरित्र देखे हैं। अगर प्रभु धन को तृण समझता है, तो पिताजी को फीकी चाय, सादी चपातियाँ और धुँधली रोशनी पसंद है। इसके प्रतिकूल डॉ. गांगुली हैं कि जिनकी आमदनी खर्च के लिए काफ़ी नहीं होती।

यों बातें करते हुए लोग मोटरों की तरफ़ चले। मि. सेवक तो अपने बँगले पर गये; सोफ़िया रानी के साथ सेवा-भवन गयी।

45

पाँड़ेपुर में गोरखे अभी तक पड़ाव डाले हुए थे। उनके उपलों के जलने से चारों तरफ़ धुआँ छाया हुआ था। उस श्यामावरण में बस्ती के खँडहर भयानक मालूम होते थे। यहाँ अब भी दिन में दर्शकों की भीड़ रहती थी। नगर में शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा, जो इन दो-तीन दिनों में यहाँ एक बार न आया हो। यह स्थान अब मुसलमानों का शहीदगाह और हिंदुओं की तपोभूमि के सदृश हो गया था। बजरंगी, ठाकुरदीन, नायकराम, जगधर आदि अब भी अपना अधिकांश समय यहीं विचरने में व्यतीत करते थे। घर की याद भूलते-भूलते ही भूलती है।

संध्या हो गयी थी। नायकराम, बजरंगी और उनके अन्य मित्र आकर एक पेड़ के नीचे बैठ गये।

नायकराम—कहो बजरंगी, कहीं कोई घर मिला?

बजरंगी—घर नहीं, पत्थर मिला। सहर में रहूँ, तो इतना किराया कहाँ से लाऊँ, घास-चारा कहाँ मिले? हाँ, औरों की भाँति दूध में पानी मिलाने लगूँ, तो गुजर हो सकती है; लेकिन यह करम उम्र-भर नहीं किया, तो अब क्या करूँगा। दिहात में रहता हूँ, तो घर बनवाना पड़ता है; ज़मींदार को नज़र-नज़राना न दो, तो ज़मीन न मिले। मैं तो सोचता हूँ, जानवरों को बेच डालूँ और यहीं पुतलीघर में मजूरी करूँ। सब झगड़ा ही मिट जाये।

जगधर—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ, बना-बनाया मकान रहने को मिल जायेगा, पड़े रहेंगे। दिन-भर खोंचा लिए न फिरे, यहीं मजूरी की।

ठाकुरदीन—तुम लोगों से मजूरी हो सकती है, करो; मैं तो चाहे भूखों मर जाऊँ, पर मजूरी नहीं कर सकता। यहाँ तो अब कोई मुझे सेंत-मेंत रहने को कहे, तो न रहूँ।

नायकराम—मुझे क्या सलाह देते हो बजरंगी, दिहात में रहूँ कि सहर में?

बजरंगी—भैया, तुम्हारा दिहात में निबाह न होगा। रोज सहर का आना-जाना ठहरा, कितनी जहमत होगी।

नायकराम—तुम्हारी सलाह क्या है जगधर?

जगमर—भैया, मैं तो सहर में रहने को न कहूँगा। खरच कितना बढ़ जायेगा, मिट्टी भी मोल मिले, पानी के भी दाम दो। चालीस-पचास का तो एक छोटा-सा मकान मिलेगा।

नायकराम—बोलो भाई बजरंगी, साल के 1200 रुपये किराये के कहाँ से आयेंगे? क्या सारी कमाई किराए ही में खरच कर दूँगा?

बजरंगी—ज़मीन तो दिहात में भी मोल लेनी पड़ेगी, सेंत तो मिलेगी नहीं। फिर कौन जाने, किस गाँव में जगह मिले। फिर मिल गयी, तो मकान बनवाने के लिए सारा सामान सहर से ले आना पड़ेगा। उसमें कितना खरच पड़ेगा? मैं तो यही कहूँगा कि दिहात के एक की जगह सहर में दो खरच पड़ें, तब भी तुम सहर ही में रहो। वहाँ हम लोगों से भी भेंट-मुलाकात हो जाया करेगी। आखिर दूध-दही लेकर सहर तो रोज जाना ही पड़ेगा।

नायकराम—का बहादुर, वाह! तुम्हारी बात मेरे मन में बैठ गयी। सौ रुपये किराया देना मंजूर, यह झंझट कौन सिर पर लेगा!

जगधर—भैया, तुम्हारी मरजी है, तो सहर ही में चले जाओ, मैं बजरंगी से लड़ाई थोड़े ही करता हूँ। पर दिहात दिहात ही है, सहर सहर ही!

ठाकुरदीन—अंधा आगमजानी था। जानता था कि एक दिन यह पुतलीघर हम लोगों को बनवास देगा, जान तक गँवाई, पर अपनी ज़मीन नहीं दी। हम लोग इस किरंटे के चकमों में आकर उसका साथ न छोड़ते, तो साहब सिर पटककर मर जाते, एक न चलती।

नायकराम—अब उसके बचने की कोई आसा नहीं मालूम होती। आज मैं गया था। बुरा हाल था। कहते हैं, रात को होस में था। जॉन सेवक साहब और राजा साहब से देर तक बातें कीं, मिठुआ से भी बातें कीं। सिविलसारजंट ने मुझसे खुद कहा, अंधे की जान का कोई खटका नहीं है। आज बोल-चाल बंद है। मिठुआ बड़ा कपूत निकल गया। उसी की कपूती ने अंधे की जान ली। आदमी नहीं था, देवता था।

बजरंगी—सच कहते हो भैया, आदमी नहीं था, देवता था। ऐसा सेर आदमी कहीं नहीं देखा। सच्चाई के सामने किसी की परवा नहीं की, चाहे कोई अपने घर का लाट ही क्यों न हो।

जगधर—चौधरी, घर-गाँव में इतनी सच्चाई नहीं बरती जाती। अगर सच्चाई से किसी का नुकसान होता हो, तो उस पर परदा डाल दिया जाता है। सूरे में और सब बातें अच्छी थीं, बस इतनी ही बुरी थी।

ठाकुरदीन—देखो जगधर, सूरदास यहाँ नहीं है, किसी के पीठ-पीछे निंदा नहीं करनी चाहिए। निंदा करनेवाले की तो बात ही क्या, सुननेवालों को भी पाप लगता है।

बजरंगी—हाँ, जगधर, यह बात अच्छी नहीं। मेरे ऊपर भी तो वही पड़ी है, जो तुम्हारे ऊपर पड़ी; लेकिन सूरदास की बदगोई नहीं सुन सकता।

नायकराम—यह आदत बहुत खराब है।

बजरंगी—चाँद पर थूकने से थूक अपने ही मुँह पर पड़ता है।

जगधर—अरे, तो मैं सूरे की निंदा थोड़े ही कर रहा हूँ। दिल दुखता है, तो बात मुँह से निकल ही आती है। तुम्हीं सोचो, विद्याधर अब किस काम का रहा?

नायकराम—हाँ, इतना मैं भी मानता हूँ कि उसकी जिंदगानी खराब हो गयी। जिस

सच्चाई में किसी का अनभल होता हो, उसका मुँह से न निकालना ही अच्छा। लेकिन सूरदास को सब कुछ माफ है।

ठाकुरदीन—सूरदास ने इलम तो नहीं छीन लिया?

जगधर—यह इलम किस काम का, जब नौकरी-चाकरी न कर सके।

नायकराम—अच्छा, यह बताओ कि सूरदास मर गये, तो गंगा नहाने चलोगे?

जगधर—गंगा नहाने क्यों नहीं चलूँगा! सबके पहले चलूँगा। कंधा तो आदमी बैरी को भी दे देता है, सूरदास हमारे बैरी नहीं थे। जब उन्होंने मिठुआ को नहीं छोड़ा, जिसे बेटे की तरह पाला, तो दूसरों की बात ही क्या।

नायकराम—चलो, देख आयें।

चारों आदमी सूरदास को देखने चले।

46

चारों आदमी शफ़ाख़ाने पहुँचे, तो नौ बज चुके थे। आकाश निद्रा में मग्न, आँखें बंद किये पड़ा हुआ था, पर पृथ्वी जाग रही थी। भैरो खड़ा सूरदास को पंखा झल रहा था। लोगों को देखते ही उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। सिरहाने की ओर कुर्सी पर बैठी हुई सोफ़िया चिंताकुल नेत्रों से सूरदास को देख रही थी। सुभागी अँगीठी में आग बना रही थी कि थोड़ा-सा दूध गर्म करके सूरदास को पिलाये। चारों ओर वह निःस्तब्धता छाई हुई थी, जो मृत्यु का पूर्वाभास है।

सोफ़ी ने कातर स्वर में कहा—पण्डाजी, आज शोक की रात है। इनकी नाड़ी का कई-कई मिनटों तक पता नहीं चलता। शायद आज की रात मुश्किल से कटे।

भैरो—दोपहर से यही हाल है; न कुछ बोलते हैं, न किसी को पहचानते हैं।

सोफ़ी—डॉक्टर गांगुली आते होंगे। उनका तार आया था कि मैं आ रहा हूँ। यों तो मौत की दवा किसी के पास नहीं; लेकिन संभव है, डॉक्टर गांगुली के हाथों कुछ यश लिखा हो।

सुभागी—मैंने शाम को पुकारा था, तो आँखें खोली थीं; पर बोले कुछ नहीं।

ठाकुरदीन—बड़ा प्रतापी जीव था।

यही बातें हो रही थीं एक मोटर आयी और कुँवर भरतसिंह, डॉक्टर गांगुली और रानी जाह्नवी उतर पड़ीं। गांगुली ने सूरदास के मुख की ओर देखा और निराशा की मुस्कराहट के साथ बोले—हमको दस मिनट का भी देर होता, तो इनका दर्शन भी न पाते। विमान आ चुका है।

सोफ़िया ने सरल भाव से कहा—क्या अब कुछ नहीं हो सकता डॉक्टर साहब?

गांगुली—बहुत कुछ हो सकता है मिस सोफ़िया! ऐसे प्राणियों का यथार्थ जीवन तो मृत्यु के पीछे ही होता है, जब वह पंचभूतों के संस्कार से रहित हो जाता है। सूरदास अभी नहीं मरेगा, बहुत दिनों तक नहीं मरेगा। हम सब मर जायेगा, कोई कल, कोई परसों; पर सूरदास तो अमर हो गया, उसने तो काल को जीत लिया। यह सूरदास की मृत्यु नहीं है सोफ़ी, यह उसकी जीवन-ज्योति का विकास है।

यह कहकर डॉक्टर गांगुली ने जेब से एक शीशी निकाली और उसमें से कई बूँदें सूरदास

का मुँह खोलकर पिला दीं। तत्काल उसका असर दिखायी दिया। उसने आँखें खोल दीं, इधर-उधर अनिमेष दृष्टि से देखकर हँसा और नीरस आवाज़ से बोला—बस-बस, अब मुझे क्यों मारते हो? तुम जीते, मैं हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नहीं बना। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस, इतना ही फरक है। हम हारे, तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, ज़रा दम ले लेने दो, एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी, ज़रूर होगी।

डॉक्टर गांगुली इस अनर्गल कथन को आँखें बंद किये इस भाव से तन्मय होकर सुनते रहे, मानो ब्रह्म-वाक्य सुन रहे हों। तब भक्तिपूर्ण भाव से बोले—बड़ी विशाल आत्मा है। हमारे सारे पारस्परिक, सामाजिक-राजनीतिक जीवन की अत्यंत सुंदर विवेचना कर दी और थोड़े-से शब्दों में।

सोफ़ी ने सूरदास से कहा—सूरदास, कुँवर साहब और रानीजी आये हुए हैं। कुछ कहना चाहते हो?

सूरदास ने उन्मादपूर्ण उत्सुकता से कहा—हाँ-हाँ-हाँ, बहुत कुछ कहना है, कहाँ हैं? उनके चरणों की धूल मेरे माथे पर लगा दो, तर जाऊँ; नहीं-नहीं, मुझे उठाकर बैठा दो, खोल दो यह पट्टी, मैं खेल चुका, अब मुझे मरहम-पट्टी नहीं चाहिए। रानी कौन, विनयसिंह की माता न? कुँवर साहब उनके पिता न? मुझे बैठा दो, उनके पैरों पर आँखें मलूँगा। मेरी आँखें खुल जायेंगी। मेरे सिर पर हाथ रखकर असीस दो, माता, अब मेरी जीत होगी। वह सामने विनयसिंह और इंद्रदत्त सिंहासन पर बैठे हुए मुझे बुला रहे हैं। माता-पिता, भाई-बंद, सबको सूरदास का राम-राम, अब जाता हूँ। जो कुछ बना-बिगड़ा हो, छमा करना।

रानी जाह्नवी ने आगे बढ़कर, भक्ति-विह्वल दशा में, सूरदास के पैरों पर सिर रख दिया और फूट-फूटकर रोने लगीं। कुँवर साहब ने आँखों पर रूमाल डाल लिया और खड़े-खड़े रोने लगे।

सूरदास की मुखश्री फिर मलिन हो गयी। औषधि का असर मिट गया। ओठ नीले पड़ गये। हाथ-पाँव ठंडे हो गये।

नायकराम गंगाजल लाने दौड़े। जगधर ने सूरदास के समीप जाकर कहा—सूरदास, मैं हूँ जगधर, मेरा अपराध क्षमा। यह कहते-कहते आवेग से उसका कंठ रुँध गया।

सूरदास मुँह से कुछ न बोला, दोनों हाथ जोड़े, आँसू की दो बूँदें गालों पर बह आयीं, और खिलाड़ी मैदान से चला गया।

क्षण-मात्र में चारों तरफ़ खबर फैल गयी। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष, बूढ़े-जवान, हज़ारों की संख्या में निकल पड़े। सब नंगे सिर, नंगे पैर, गले में अँगोछियाँ डाले शफाखाने के मैदान में एकत्र हुए। जिसका कोई नहीं होता, उसके सब होते हैं। सारा शहर उमड़ा चला आता था। सब-के-सब इस खिलाड़ी को एक आँख देखना चाहते थे, जिसकी हार में भी जीत का गौरव था। कोई कहता था, सिद्ध था; कोई कहता था, वली था; कोई देवता कहता था; पर वह यथार्थ में खिलाड़ी था—वह खिलाड़ी; जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी क़दम पीछे नहीं हटाए। जीता, तो

प्रसन्नचित्त रहा; हारा, तो प्रसन्नचित्त रहा; हारा तो जीतनेवाले से कीना नहीं रखा; जीता तो हारनेवाले पर तालियाँ नहीं बजाईं। जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धाँधली नहीं की, कभी द्वंद्वी पर छिपकर चोट नहीं की। भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भर-पेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला; पर हृदय धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था।

हाँ, वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था। एक क्षुद्र, शक्तिहीन प्राणी था, चिंताओं और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमें अवगुण भी थे, और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी दुर्गुण उस पर गुण के सम्पर्क से, नमक की खान में जाकर नमक हो जानेवाली वस्तुओं की भाँति, देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे—क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदानुराग, मोह सदुत्साह के रूप में प्रकट होता था और अहंकार आत्माभिमान के वेष में! और वह गुण क्या था? न्याय-प्रेम, सत्य-भक्ति, परोपकार, दर्द या उसका जो नाम चाहे, रख लीजिए। अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असह्य थी।

मृत देह कितनी धूमधाम से निकली, इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। बाजे-गाजे न थे, हाथी-घोड़े न थे, पर आँसू बहानेवाली आँखों और कीर्ति-गान करनेवाले मुखों की कमी न थी। बड़ा समारोह था। सूरदास की सबसे बड़ी जीत यह थी कि शत्रुओं को भी उससे शत्रुता न थी। अगर शोक-समाज में सोफ़िया, गांगुली, जाह्नवी, भरतसिंह, नायकराम, भैरो आदि थे, तो महेन्द्रकुमार सिंह, जॉन सेवक, जगधर यहाँ तक कि मि. क्लार्क भी थे। चंदन की चिता बनाई गयी थी, उस पर विजय-पताका लहरा रही थी। दाहिक्रया कौन करता? मिठुआ ठीक उसी अवसर पर रोता हुआ आ पहुँचा। सूरदास जीते-जी जो न कर पाया था, मरकर किया!

इसी स्थान पर कई दिन पहले यही शोक-दृश्य दिखायी दिया था। अन्तर केवल इतना था कि उस दिन लोगों के हृदय शोक से व्यथित थे, आज विजय-गर्व से परिपूर्ण। वह एक वीरात्मा की वीर मृत्यु थी, यह एक खिलाड़ी की अंतिम लीला।

लौटते समय मि. क्लार्क ने राजा महेन्द्रकुमार से कहा—मुझे इसका अफ़सोस है कि मेरे हाथों से ऐसे अच्छे आदमी की हत्या हुई।

राजा साहब ने कुतूहल से कहा—सौभाग्य कहिए, दुर्भाग्य क्यों?

क्लार्क—नहीं राजा साहब, दुर्भाग्य ही है। हमें आप-जैसे मनुष्य से भय नहीं, भय ऐसे ही मनुष्यों से है, जो जनता के हृदय पर शासन कर सकते हैं। यह राज्य करने का प्रायश्चित्त है कि इस देश में हम ऐसे आदमियों का वध करते हैं, जिन्हें इंग्लैंड में हम देव-तुल्य समझते।

सोफ़िया इसी समय उनके पास से होकर निकली। यह वाक्य उसके कान में पड़ा, बोली—काश, ये शब्द आपके अंतःकरण से निकले होते!

यह कहकर वह आगे बढ़ गयी। मि. क्लार्क यह व्यंग्य सुनकर बौखला गये, जब्त न कर सके। बोले—यह तुम्हारे उस अन्याय का फल है, जो तुमने मेरे साथ किया है।

सोफ़ी आगे बढ़ गयी थी। ये शब्द उसके कान में न पड़े।

47

संध्या हो गयी थी। मिल के मज़दूर छुट्टी पा गये थे। आजकल दूनी मज़दूरी देने पर भी बहुत थोड़े मज़दूर काम करने आते थे। पाँड़ेपुर में सन्नाटा छाया हुआ था। वहाँ अब मकानों के भग्नावशेष के सिवा कुछ नज़र न आता था। वह छोटा-सा नीम का वृक्ष अब सूरदास की झोंपड़ी का निशान बतलाता था, फूस लोग बटोर ले गये थे। कुल्सूम का घर है, जिसे अपने वचनानुसार, सूरदास की खातिर से मि. जॉन सेवक ने गिराने नहीं दिया है। द्वार पर नसीमा और साबिर खेल रहे हैं और ताहिर अली एक टूटी हुई खाट पर सिर झुकाए बैठे हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि महीनों से उनके बाल नहीं बने। शरीर दुर्बल है, चेहरा मुरझाया हुआ, आँखें बाहर को निकल आयी हैं। कारावास के कष्टों और घर की चिंताओं ने कमर तोड़ दी है। प्रातःकाल वह नैनी जेल से आये हैं और अपने घर की दुर्दशा ने उन्हें इतना क्षुब्ध कर रखा है कि बाल बनवाने तक की इच्छा नहीं होती। इस समय भी उनकी आँखों में आँसू भरे हुए हैं। उन्हें रह-रहकर माहिर अली पर क्रोध आता है और वह एक लम्बी साँस खींचकर रह जाते हैं। वे कष्ट याद आ रहे हैं, जो उन्होंने खानदान के लिए सहर्ष झेले थे—वे सारी तकलीफें, सारी कुरबानियाँ, सारी तपस्याएँ बेकार हो गईं। अब्बा ने मेरे सिर जो बोझ रख दिया था, वही मेरी तबाही का सबब हुआ। इस सारी तपस्या का यह नतीजा! और वह भी मेरी गैरहाज़िरी में। उन सबों से तो जॉन सेवक ही अच्छे, जिन्होंने रहने का मकान तो न गिरवाया, मदद करने के लिए आये तो।

कुल्सूम ने ये विपत्ति के दिन सिलाई करके काटे थे। देहात की स्त्रियाँ उसके यहाँ अपने कुरतियाँ, बच्चों के लिए टोप और कुरते सिलातीं। कोई पैसे दे जातीं, कोई अनाज। उसे भोजन-वस्त्र का कष्ट न था। ताहिरअली अपनी समृद्धि के दिनों में भी इससे ज़्यादा सुख न दे सके थे। अन्तर यह था कि तब सिर पर अपना पति था, अब सिर पर कोई न था।

ताहिर अली शोक-मग्न बैठे थे कि कुल्सूम ने द्वार पर आकर कहा—शाम हो गयी और अभी तक कुछ नहीं खाया। चलो, खाना ठंडा हुआ जाता है।

ताहिर अली ने सामने के खँडहरों की ओर ताकते हुए कहा—माहिर थाने ही में रहते हैं या कहीं और मकान लिया है?

कुल्सूम—मुझे क्या खबर, यहाँ तब से झूठों भी तो नहीं आये। जब ये मकान खाली

करवाए जा रहे थे, तब एक दिन सिपाहियों को लेकर आये थे। नसीमा और साबिर चचा-चचा कह के दौड़े, पर दोनों को दुतकार दिया। चलो, दो लुकमे खा लो।

ताहिर—माहिर मियाँ से मिले बगैर मुझे दाना-पानी हराम है।

कुल्सूम—मिल लेना, कहीं भागे जाते हैं।

ताहिर—जब तक जी-भर उनसे बात न कर लूँगा, दिल को तस्कीन न होगी।

कुल्सूम—खुदा उन्हें खुश रखे, हमारी भी तो किसी तरह कट ही गयी। खुदा ने किसी-न-किसी हीले से रोजी पहुँचा तो दी। तुम सलामत रहोगे, तो हमारी फिर आराम से गुजरेगी, और पहले से ज़्यादा अच्छी तरह।

ताहिर—खुदा ही इंसाफ करता, तो हमारी यह हालत क्यों होती?

इतने में एक बुढ़िया सिर पर टोकरी रखे आकर खड़ी हो गयी और बोली—बहू, लड़कों के लिए भुट्टे लायी हूँ, क्या तुम्हारे मियाँ आ गये?

कुल्सूम बुढ़िया के साथ कोठरी में चली गयी। उसके कुछ कपड़े सिए थे। दोनों में बातें होने लगीं। नसीमा और साबिर, दोनों आकर ताहिरअली की गोद में बैठ गये।

नसीमा ने पूछा—अब्बा, अब तो हमें छोड़कर न जाओगे?

साबिर—अब जायेंगे, तो मैं इन्हें पकड़ लूँगा। देखें, कैसे चले जाते हैं।

बच्चे तो बाप की गोद में बैठकर चहक रहे थे; किन्तु पिता का ध्यान उनकी ओर न था। वह माहिर अली से मिलने के लिए विकल हो रहे थे, अब अवसर पाया, तो बच्चों से मिठाई लाने का बहाना करके चल खड़े हुए! थाने पर पहुँचकर पूछा, तो मालूम हुआ कि दारोग़ाजी अपने मित्रों के साथ बँगले में विराजमान हैं। ताहिरअली बँगले की तरफ़ चले! ताहिरअली ने जाकर देखा, तो कई भद्र पुरुष मसनद लगाए बैठे हुए थे। बीच में पीकदान रखा हुआ था। खमीरा तम्बाकू धुआँधार उड़ रहा था। एक तश्तरी में पान-इलायची रखे हुए थे। इस वक़्त ताश की बाजी हो रही थी। ताहिरअली की छाती पर साँप लोटने लगा। बेधड़क मित्र-समाज में घुस गये और क्रोध तथा ग्लानि से उन्मत्त होकर बोले—माहिर! मुझे पहचानते हो, कौन हूँ? गौर से देख लो। बढ़े हुए बालों और फटे हुए कपड़ों ने मेरी सूरत इतनी नहीं बदल डाली है कि पहचाना न जा सकूँ। दोस्तो, आप लोग शायद न जानते होंगे, मैं इस बेवफा, दगाबाज, कमीने आदमी का भाई हूँ। इसके लिए मैंने क्या-क्या तकलीफें उठाईं, यह मेरा खुदा जानता है। मैंने अपने बच्चों को, अपने कुनबे को, अपनी जात को इसके लिए मिटा दिया, इसकी माँ और इसके भाइयों के लिए मैंने वह सब कुछ सहा, जो कोई इंसान कह सकता है। इसी की ज़रूरतें पूरी करने के लिए, इसके शौक और तालीम का खर्च पूरा करने के लिए मैंने कर्ज लिए, अपने आका की अमानत में खयानत की और जेल की सजा काटी। इन तमाम नेकियों का यह इनाम है कि इस भले आदमी ने मेरे बाल-बच्चों की बात भी न पूछी। आप लोग इस जालिम से पूछिए कि क्या मैं इसी सूलूक और बेदरदी के लायक था, क्या इसी दिन के लिए मैंने फकीरों की-सी ज़िन्दगी बसर की थी? इसको शरमिंदा कीजिए, इसके मुँह में कालिख लगाइए, इसके मुँह पर थूकिये।

ताहिर अली ने जलप्रवाह के वेग से अपने मनोद्गार प्रकट किये और इसके पहले कि

माहिर अली कुछ जवाब दें, या सोच सकें कि क्या जवाब दूँ, या ताहिरअली को रोकने की चेष्टा करें, उन्होंने झपटकर कलमदान उठा लिया, उसकी स्याही निकाल ली और माहिर अली की गरदन ज़ोर से पकड़कर स्याही मुँह पर पोत दी, तब तीन बार उन्हें झुक-झुककर सलाम किया और अंत में यह कहकर वहीं बैठ गये—मेरे अरमान निकल गये, मैंने आज से समझ लिया कि तुम मर गये और तुमने तो मुझे पहले ही से मरा हुआ समझ लिया है। बस, हमारे दरमियान इतना ही नाता था। आज यह भी टूट गया। अब तुम्हें अख्तियार है, मुझे गिरफ्तार करो, मारो-पीटो, जलील करो।

माहिर अली स्तम्भित-से बैठे रहे। पर उनके एक मित्र ने कहा—मान लीजिए, इन्होंने बेवफाई की...

ताहिर अली—मान क्या लूँ साहब, भुगत रहा हूँ, रो रहा हूँ, मानने की बात नहीं है।

मित्र ने कहा—मुझसे ग़लती हुई, इन्होंने ज़रूर बेवफाई की; लेकिन आप बुज़ुर्ग हैं, यह हरकत शराफत से बईद है कि किसी को सरे मजलिस बुरा-भला कहा जाये और उसके मुँह में कालिख लगा दी जाये।

दूसरे मित्र बोले—शराफत से बईद ही नहीं है, पागलपन है, ऐसे आदमी को पागलखाने में बंद कर देना चाहिए।

ताहिर—जानता हूँ, शराफत से बईद है; लेकिन मैं शरीफ नहीं हूँ, पागल हूँ, दीवाना हूँ, शराफत आँसू बनकर आँखों से बह गयी। जिसके बच्चे गलियों में, दूकानों पर भीख माँगते हों, जिसकी बीवी पड़ोसियों का आटा पीसकर अपना गुजर करे, जिसकी कोई खबर लेनेवाला न हो, वह शरीफ नहीं हो सकता, और न वही आदमी शरीफ हो सकता है, जिसकी बेरहमी के हाथों मेरी यह दुर्गत हुई। अपने जेल से लौटनेवाले भाई को देखकर मुँह फेर लेना अगर शराफत है, तो यह भी शराफत है। क्यों मियाँ माहिर, बोलते क्यों नहीं? याद है, ज़रा मेरी तरफ़ देखो तुम्हारे तम्बाकू का खर्च मेरे बाल-बच्चों के लिए काफ़ी हो सकता था। नहीं, तुम सब कुछ भूल गये। अच्छी बात है, भूल जाओ, न मैं तुम्हारा भाई हूँ, न तुम मेरे भाई हो।

यह कहकर ताहिर अली उठ खड़े हुए और उसी अँधेरे में जिधर से आये थे, उधर चले गये, जैसे हवा का एक झोंका आये और निकल जाये। माहिर अली ने बड़ी देर बाद सिर उठाया और फौरन साबुन से मुँह धोकर तौलिए से साफ किया। तब आईने में मुँह देखकर बोले—आप लोग गवाह रहें, मैं इनको इस हरकत का मज़ा चखाऊँगा।

एक मित्र—अजी, जाने भी दीजिए, मुझे तो दीवाने-से मालूम होते हैं।

दूसरे मित्र—दीवाने नहीं, तो और क्या हैं, यह भी कोई समझदारों का काम है भला!

माहिर अली—हमेशा से बीवी के गुलाम रहे; जिस तरफ़ चाहती है, नाक पकड़कर घुमा देती है। आप लोगों से खानगी दुखड़े क्या रोऊँ, मेरे भाइयों की और माँ की मेरी भावज के हाथों जो दुर्गत हुई है, वह किसी दुश्मन की भी न हो। कभी बिला रोये दाना न नसीब होता था। मेरी अलबत्ता यह ज़रा खातिर करते थे। आप समझते रहे होंगे कि इसके साथ ज़रा जाहिरदारी कर दो, बस, ज़िन्दगी-भर के लिए मेरा गुलाम हो जायेगा। यह हजरत तो जेल में थे, वहाँ उसने हम लोगों को फाके कराने शुरू किये। मैं खाली हाथ, बड़ी मुसीबत में पड़ा।

वह तो कहिए, दवा-दविश करने से यह जगह मिल गयी, नहीं तो खुदा ही जानता है, हम लोगों की क्या हालत होती? आप लोगों ने देखा, मैंने इतनी ज़िल्लत गवारा की; पर सिर तक नहीं उठाया, ज़बान नहीं खोली, नहीं, एक धक्का देता, तो बीसों लुढ़कनियाँ खाते।

एक मित्र—जाने भी दो मियाँ, घरों में ऐसे झगड़े होते ही रहते हैं। लाओ, ताश उठाओ, अब तक तो एक बाजी हो गयी होती।

माहिर अली—क़सम कलामेशरीफ की, अम्माँजान ने अपने पास के दो हज़ार रुपये इन लोगों को खिला दिये, नहीं तो 25 रुपये में यह बेचारे क्या खाकर सारे कुनबे का खर्च सँभालते।

एक कांस्टेबिल—हुज़ूर, घर-गिरस्ती में ऐसा हुआ ही करता है। जाने दीजिए जो हुआ, सो हुआ।

एक मित्र—कैसा शेर-सा लपका हुआ आया, और कलमदान से स्याही निकालकर मल ही तो दी। मानता हूँ।

माहिर—हज़रत, इस वक़्त दिल न जलाइए, क़सम खुदा की, बड़ा मलाल है।

ताहिरअली यहाँ से चले, तो उनकी गति में वह व्यग्रता न थी। दिल में पछता रहे थे कि नाहक अपनी शराफत में बट्टा लगाया। घर आये, तो कुल्सूम ने पूछा—कहाँ गायब हो गये थे? बच्चे रोकर सो गये कि अब्बा फिर चले गये।

ताहिर अली—जऱा माहिर अली से मिलने गया था।

कुल्सूम—इसकी ऐसी क्या जल्दी थी! कल मिल लेते।

ताहिर अली—मैंने उसे वह लताड़ सुनाई कि उम्र-भर न भूलेगा। जबान तक न खुली। उसी गुस्से में मैंने उसके मुँह में कालिख भी लगा दी।

कुल्सूम का मुख मलिन हो गया। बोली—तुमने बड़ी नादानी का काम किया। कोई इतना जामे से बाहर हो जाता है! यह कालिख तुमने उनके मुँह में नहीं लगाई, अपने मुँह पर लगाई है, तुम्हारे ज़िन्दगी-भर के किये-धरे पर स्याही फिर गयी। तुमने अपनी सारी नेकियों को मटियामेट कर दिया। आखिर यह तुम्हें सूझी क्या? अभी दुनिया उनको हँसती थी। अब लोग तुम्हें हँसेंगे। अब तक खुदा और रसूल की नज़रों में यह खतावार थे, अब तुम खतावार हो।

ताहिरअली ने लज्जित होकर कहा—मैं तो बिल्कुल पागल हो गया था।

कुल्सूम—भरी महफिल में उन्होंने सिर तक न उठाया, फिर भी तुम्हें गैरत न आयी?

कुल्सूम ने इतना लज्जित किया कि ताहिरअली रो पड़े और देर तक रोते रहे। फिर बहुत मनाने पर खाने उठे और खा-पीकर सोए।

तीन दिन तक तो वे इसी कोठरी में पड़े रहे। कुछ बुद्धि काम न करती थी कि कहाँ जायें, क्या करें, क्योंकर जीवन का निर्वाह हो। चौथे दिन घर से नौकरी तलाश करने निकले, मगर कहीं कोई सूरत न निकली। सहसा उन्हें सूझी कि क्यों न जिल्दबंदी का काम करूँ; जेलखाने में वह यह काम सीख गये थे। इरादा पक्का हो गया। चौथे दिन ताहिरअली ने यह मकान छोड़ दिया और शहर के दूसरे मुहल्ले में एक छोटा-सा मकान लेकर जिल्दबंदी का काम

करने लगे। उनकी बनायी हुई जिल्दें बहुत सुंदर और सुदृढ़ होती हैं। दो-तीन रुपये दिन की मज़दूरी कर लेते हैं। इतने समृद्ध वह कभी न थे।

48

काशी के म्युनिसिपल बोर्ड में भिन्न-भिन्न राजनीतिक संप्रदायों के लोग मौजूद थे। एकवाद से लेकर जनसत्तावाद तक सभी विचारों के कुछ-न-कुछ आदमी थे। अभी तक धन का प्राधान्य नहीं था, महाजनों और रईसों का राज्य था। राजा महेन्द्रकुमार की ऐसी धाक बँधी हुई थी कि कोई उनका विरोध न कर सकता था। पर पाँड़ेपुर के सत्याग्रह ने जनसत्तावादियों में एक नई संगठन-शक्ति पैदा कर दी। उस दुर्घटना का सारा इलज़ाम राजा साहब के सिर मढ़ा जाने लगा। लोकमतवादियों ने निश्चय कर लिया कि वर्तमान व्यवस्था का अंत कर देना चाहिए, जिसके द्वारा जनता को इतनी विपत्ति सहनी पड़ी। राजा साहब के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर था। एक ओर तो अधिकारी लोग उनसे असंतुष्ट थे दूसरी ओर यह विरोधी दल उठ खड़ा हुआ। बड़ी मुश्किल में पड़े। वह अब जनता को साथ लेकर म्युनिसिपैलिटी का शासन करना चाहते थे। किन्तु पाँड़ेपुर के निवासियों का शहर में रोते फिरना उनके सारे यत्नों को विफल कर देता था। लोग पूछते थे, हमें क्योंकर विश्वास हो कि ऐसी ही निरंकुशता का व्यवहार न करेंगे। सूरदास हमारे नगर का रत्न था, कुँवर विनयसिंह और इंद्रदत्त मानव-समाज के रत्न थे। उनका खून किसके सिर पर है?

अंत में यह प्रस्ताव नियमित रूप से बोर्ड में आ ही गया। उस दिन प्रातःकाल से म्युनिसिपल बोर्ड के मैदान में लोगों का जमाव होने लगा। यहाँ तक कि दोपहर होते-होते 10-20 हज़ार आदमी एकत्र हो गये। एक बजे प्रस्ताव पेश हुआ। राजा साहब ने खड़े होकर बड़े करुणोत्पादक शब्दों में अपनी सफाई दी; सिद्ध किया कि मैं विवश था, इसके सिवा अन्य कोई मार्ग न था। उनके अंतिम शब्द ये थे—मैं पद-लोलुप नहीं हूँ, सम्मान-लोलुप नहीं हूँ, केवल आपकी सेवा का लोलुप हूँ, अब और भी ज़्यादा, इसलिए कि मुझे प्रायश्चित्त करना है, जो इस पद से अलग होकर मैं न कर सकूँगा, वह साधन ही मेरे हाथ से निकल जायेगा। आप लोग जानते हैं, मैंने आपकी सेवा में अपना कितना समय लगाया है, कितना परिश्रम, कितना अनवरत उद्योग किया है! मैं रिआयत नहीं चाहता, केवल न्याय चाहता हूँ।

वक्तृता बड़ी प्रभावशाली थी, पर जनवादियों को अपने निश्चय से न डिगा सकी। पंद्रह मिनट में बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और राजा साहब ने भी तत्क्षण पद-त्याग की सूचना दे दी।

जब वह सभा-भवन से बाहर निकले, तो जनता ने, जिन्हें उनका व्याख्यान सुनने का अवसर न मिला था, उन पर इतनी फब्तियाँ उड़ाईं, इतनी तालियाँ बजाईं कि बेचारे बड़ी मुश्किल से अपनी मोटर तक पहुँच सके। पुलिस ने चौकसी न की होती, तो अवश्य दंगा हो जाता। राजा साहब ने एक बार पीछे फिरकर सभा-भवन को सजल नेत्रों से देखा और चले गये।

राजा साहब वहाँ से जले हुए घर आये, तो देखा कि इंदु और सोफ़िया दोनों बैठी बातें कर रही हैं। उन्हें देखते ही इंदु बोली—मिस सोफ़िया सूरदास की प्रतिमा के लिए चंदा जमा कर रही हैं। आप भी तो उसकी वीरता पर मुग्ध हो गये थे, कितना दीजिएगा?

सोफ़ी—इंदुरानी ने 1000 रुपया दिया है, इसके दुगने से कम देना आपको शोभा न देगा।

महेन्द्रकुमार ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—मैं इसका जवाब सोचकर दूँगा।

सोफ़ी—फिर कब आऊँ?

महेन्द्रकुमार ने कहा—आपके आने की ज़रूरत नहीं है, मैं स्वयं भेज दूँगा।

सोफ़िया ने उनके मुख की ओर देखा, तो त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं। उठकर चली गयी। तब राजा साहब इंदु से बोले—तुम मुझसे बिना पूछे क्यों ऐसा काम करती हो, जिससे मेरा सरासर अपमान होता है? आज उसी अंधे की बदौलत मुझे मुँह की खानी पड़ी, बोर्ड ने मुझ पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया, और उसी की प्रतिमा के लिए तुमने चंदा दिया और मुझे भी देने को कह रही हो!

इंदु—मुझे क्या खबर थी कि बोर्ड में क्या हो रहा है। आप सूरदास का गुण-गान कर रहे थे। मैंने समझा, चंदे में कोई हरज नहीं है। आखिर वह प्रस्ताव पास क्योंकर हो गया?

राजा—अब मैं यह क्या जानूँ, क्योंकर पास हो गया। इतना जानता हूँ कि पास हो गया। सदैव सभी काम अपनी इच्छा या आशा के अनुकूल ही तो नहीं हुआ करते। मैं इतना सहिष्णु नहीं हूँ कि जिसके कारण मेरा अपमान हो, उसी की पूजा करूँ। मैं यथाशक्ति इस प्रतिमा-आंदोलन को सफल न होने दूँगा। तुम भी अपना चंदा वापस कर लो।

इंदु—(विस्मित होकर) दिये हुए रुपये वापस कर लूँ?

राजा—हाँ, इसमें कोई हरज नहीं।

इंदु—आपको कोई हरज न मालूम होता हो, मेरी तो इसमें सरासर हेठी है।

बात-पर-बात निकलने लगी, विवाद की नौबत पहुँची, फिर व्यंग्य की बारी आयी, और एक क्षण में दुर्वचनों का प्रहार होने लगा।

राजा साहब ने कहा—न जाने वह कौन दिन होगा कि तुमसे मेरा गला छूटेगा।

इंदु—आपको अपनी कीर्ति और सम्मान मुबारक रहे। कहाँ तक लौंडी बनूँ, अब हद हो गयी।

राजा—तुम मेरी लौंडी बनोगी! तुम्हारा बस चले, तो मुझे विष दे दो, और दे ही रही हो, इससे बढ़कर और क्या होगा!

इंदु—विष क्यों उगलते हो? साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मेरे घर से निकल जा। मैं जानती हूँ, आपको मेरा रहना अखरता है। जितने दिन यहाँ रही, कभी आपने यह न समझने दिया कि यह मेरा घर है। आपके साथ विवाह हुआ है, कुछ आत्मा नहीं बेची है।

महेंद्र ने ओठ चबाकर कहा—भगवान् सब दुःख दे, बुरे का संग न दे। मौत भले ही दे दे। तुम-जैसी स्त्री का गला घोंट देना भी धर्म-विरुद्ध नहीं।

इंदु—अच्छा, अब चुप रहिए, बहुत हो गया। मैं आपकी गालियाँ सुनने नहीं आयी हूँ, यह लीजिए अपना घर, खूब टाँगें फैलाकर सोइए।

राजा—जाओ, किसी तरह अपना पौरा ले जाओ। बिल्ली बख्शे, चूहा अकेला ही भला!

इंदु अपने कमरे में आयी। उन चीज़ों को समेटा, जो उसे मैके में मिली थीं। शोक न था, दुःख न था, एक ज्वाला थी, जो उसके कोमल शरीर में विष की भाँति व्याप्त हो रही थी। अपमान आग्नेय वस्तु है।

अपनी सब चीज़ें सँभालकर इंदु ने अपनी निजी गाड़ी तैयार करने की आज्ञा दी। जब तक गाड़ी तैयार होती रही, वह बरामदे में टहलती रही। ज्यों ही फाटक पर घोड़ों की टाप सुनाई दी, वह आकर गाड़ी में बैठ गयी, पीछे फिरकर भी न देखा। किसी से कुछ न कहा, न किसी की हिम्मत पड़ी कि उससे कुछ पूछे। उसके चले जाने के बाद महाराजिन ने जाकर महेंद्र से कहा—सरकार, रानी बहू जाने कहाँ चली जा रही हैं!

महेंद्र ने उसकी ओर तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—जाने दो।

महाराजिन—सरकार, रूठी मालूम होती हैं। अभी दूर न गयी होंगी, आप मना लें।

महेंद्र—मेरा सिर मत खा।

इंदु सेवा-भवन पहुँची, तो जाह्नवी ने कहा—तुम लड़कर आ रही हो, क्यों?

इंदु—कोई अपने घर में नहीं रहने देता, तो क्या जबरदस्ती है?

जाह्नवी—सोफ़िया ने आते-ही-आते मुझसे कहा था, आज कुशल नहीं है।

इंदु—मैं लौंडी बनकर नहीं रह सकती।

जाह्नवी—तुमने उनसे बिना पूछे चंदा क्यों लिखा?

इंदु—मैंने किसी के हाथों अपनी आत्मा नहीं बेची है।

जाह्नवी—जो स्त्री अपने पुरुष का अपमान करती है, उसे लोक-परलोक कहीं शांति नहीं मिल सकती!

इंदु यहाँ से उठकर सोफ़िया के कमरे में गयी। माता की बातें उसे ज़हर-सी लगीं।

यह विवाद दाम्पत्य क्षेत्र से निकलकर राजनीतिक क्षेत्र में अवतरित हुआ। महेन्द्रकुमार उधर एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर इस आंदोलन का विरोध कर रहे थे। इधर इंदु सोफ़िया के साथ चंदे वसूल करने में तत्पर थी। मि. क्लार्क अभी तक दिल में राजा से द्वेष रखते थे, अपना अपमान भूले न थे, उन्होंने जनता के इस आंदोलन में हस्तक्षेप करने की कोई ज़रूरत न समझी, जिसका फल यह हुआ कि राजा साहब की एक न चली। धड़ाधड़ चंदे वसूल होने लगे। एक महीने में एक लाख से अधिक वसूल हो गया।

छः महीने गुज़र गये। सूरदास की प्रतिमा बनकर आ गयी। पूना के एक प्रसिद्ध मूर्तिकार ने सेवा-भाव से इसे रचा। पाँड़ेपुर में उसे स्थापित करने का प्रस्ताव था। जॉन सेवक ने सहर्ष आज्ञा दे दी। जहाँ सूरदास का झोंपड़ा था, वहीं मूर्ति का स्थापन हुआ।

पाँड़ेपुर में बड़ा समारोह था। नगर-निवासी अपने-अपने काम छोड़कर इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। रानी जाह्नवी ने करुण कंठ और सजल नेत्रों से मूर्ति को प्रतिष्ठित किया। इसके बाद देर तक संकीर्तन होता रहा। संध्या समय प्रीति-भोज हुआ, छूत और अछूत साथ बैठकर एक ही पंक्ति में खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बड़ी विजय थी।

चाँदनी छिटकी हुई थी, और शुभ्र ज्योत्सना में सूरदास की मूर्ति एक हाथ से लाठी टेकती हुई और दूसरा हाथ किसी अदृश्य दाता के सामने फैलाए खड़ी थी—वही दुर्बल शरीर था, हँसलियाँ निकली हुई, कमर टेढ़ी, मुख पर दीनता और सरलता छाई हुई, साक्षात् सूरदास मालूम होता था।

आधी रात बीत चुकी थी। एक आदमी साइकिल पर सवार मूर्ति के समीप आया। उसके हाथ में कोई यंत्र था। उसने क्षण-भर तक मूर्ति को सिर से पाँव तक देखा, और तब उसी यंत्र से मूर्ति पर आघात किया। सड़ाक की आवाज़ सुनाई दी और मूर्ति धमाके के साथ भूमि पर आ गिरी और उसी मनुष्य पर, जिसने उसे तोड़ा था। वह मूर्ति के नीचे दब गया।

प्रातःकाल लोगों ने देखा, तो राजा महेन्द्रकुमार सिंह थे। सारे नगर में खबर फैल गयी कि राजा साहब ने सूरदास की मूर्ति तोड़ डाली और खुद उसी के नीचे दब गये। जब तक जिए, सूरदास के साथ वैर-भाव रखा, मरने के बाद भी द्वेष करना न छोड़ा।

कारीगरों ने फिर मसालों से मूर्ति के पैर जोड़े और उसे खड़ा किया। लेकिन उस आघात के चिह्न अभी तक पैरों पर बने हुए हैं और मुख भी विकृत हो गया है।

49

इधर सूरदास के स्मारक के लिए चंदा जमा किया जा रहा था, उधर कुलियों के टोले में शिलान्यास की तैयारियाँ हो रही थीं। नगर के गण्यमान्य पुरुष निमंत्रित हुए थे। प्रांत के गवर्नर से शिला-स्थापना की प्रार्थना की गयी थी। एक गार्डन पार्टी होनेवाली थी। मिसेज़ सेवक दिलोजान से तैयारियाँ कर रही थीं। बँगले की सफाई और सजावट हो रही थी। मि. क्लार्क ने सरकारी कर्मचारियों को मिसेज़ सेवक की सहायता करने का हुक्म दे दिया था, और स्वयं चारों तरफ़ दौड़ते फिरते थे।

मिसेज़ सेवक के हृदय में अब एक नई आशा अंकुरित हुई थी। कदाचित् विनयसिंह की मृत्यु सोफ़िया को मि. क्लार्क की ओर आकर्षित कर दे, इसलिए वह मि. क्लार्क की और भी खातिर कर रही थीं। सोफ़िया को स्वयं जाकर साथ लाने का निश्चय कर चुकी थीं—जैसे बनेगा, वैसे लाऊँगी, खुशी से न आयेगी, ज़बरदस्ती लाऊँगी, रोऊँगी, पैरों पड़ूँगी और बिना साथ लाये उसका गला न छोड़ूँगी।

मि. जॉन सेवक कम्पनी का वार्षिक विवरण तैयार करने में दत्तचित्त थे। गत साल के नफे की सूचना देने के लिए उन्होंने यही अवसर पसंद किया। यद्यपि यथार्थ लाभ बहुत कम हुआ था, किन्तु आय-व्यय में इच्छापूर्वक उलटफेर करके वह आशातीत लाभ दिखाना चाहते थे, जिससे कम्पनी के हिस्सों की दर चढ़ जाये और लोग हिस्सों पर टूट पड़ें।

किन्तु मि. ईश्वर सेवक को ये तैयारियाँ, जिन्हें वह अपव्यय कहते थे, एक आँख न भाती थीं। वह बार-बार झुँझलाते थे, बेचारे वृद्ध आदमी को सुबह से शाम तक सिर-मगजन करते गुज़रता था। कभी बेटे पर झल्लाते, कभी बहू पर, कभी सेवकों पर—यह पाँच मन बर्फ की क्या ज़रूरत है, क्या लोग इसमें नहाएँगे? इतनी शराब की क्या ज़रूरत? लगा दो घर में आग या मुझी को ज़हर दे दो; न ज़िंदा रहूँगा, न जलन होगी। प्रभु मसीह? मुझे अपने दामन में ले। सारांश यह कि कई दिनों तक निरंतर बक-बक, झक-झक से उनका चित्त कुछ अव्यवस्थित-सा हो रहा था। जब वह बकते-बकते थक जाते, तो उठकर बाग में चले जाते। लेकिन थोड़ी ही देर में फिर घबराकर आ पहुँचते और पूर्ववत् लोगों पर वाक्यप्रहार करने लगते। यहाँ तक कि उत्सव के एक सप्ताह पहले जब मि. जॉन सेवक ने प्रस्ताव किया कि घर के सब नौकरों और कारखाने के चपरासियों को एल्गिन मिल की बनी हुई वर्दियाँ दी जायें, तो मि. ईश्वर

सेवक ने मारे क्रोध के इंजील अपने सिर पर पटक ली और बोले—या खुदा, मुझे इस जंजाल से निकाल। सिर दीवार के समीप था, यह धक्का लगा, तो दीवार से टकरा गया। 90 वर्ष की अवस्था, जर्जर शरीर, वह तो कहो, पुरानी हड्डियाँ थीं कि काम देती जाती थीं, अचेत हो गये। मस्तिष्क इस आघात को सहन न कर सका, आँखें निकल आयीं, ओठ खुल गये और जब तक लोग डॉक्टर को बुलाएँ, उनके प्राण-पखेरू उड़ गये!

सोफ़िया ने यह शोक-समाचार सुना, तो मान जाता रहा। अपने घर में अब अगर किसी को उससे प्रेम था, तो वह ईश्वर सेवक ही थे। उनके प्रति उसे भी श्रह थी। तुरंत मातमी वस्त्र धारण किये और घर गयी। मिसेज़ सेवक दौड़कर उससे गले मिली और माँ-बेटी मृत देह के पास खूब रोईं।

रात को जब मातमी दावत समाप्त हो गयी और लोग अपने-अपने घर गये, तो मिसेज़ सेवक ने सोफ़िया से कहा—बेटी, तुम अपना घर रहते हुए दूसरी जगह रहती हो, क्या यह हमारे लिए लज्जा और दु:ख की बात नहीं? अब तो जो कुछ हो, तुम्हीं हो। अब अपने घर में रहो। मेरी अभिलाषा है कि अबकी तुम्हारा विका हो जाये, और गर्मियों में हम सब दो-तीन महीने के लिए मंसूरी चलें।

सोफ़ी ने कहा—जैसी आपकी इच्छा, कर लूँगी।

माँ—और क्या बेटी, ज़माना सदा एक-सा नहीं रहता, हमारी ज़िन्दगी का क्या भरोसा। तुम्हारे बड़े पापा यह अभिलाषा लिए ही सिधार गये। तो मैं तैयारी करूँ?

सोफ़िया—कह तो रही हूँ।

माँ—तुम्हारे पापा सुनकर फूले न समाएँगे। कुँवर विनयसिंह की मैं निंदा नहीं करती, बड़ा जवाँमर्द आदमी था; पर बेटी, अपनी धर्मवालों में करने की बात ही और है।

सोफ़िया—हाँ, और क्या।

मिसेज़ सेवक खुश-खुश दावत का कमरा साफ कराने गईं।

मि. क्लार्क अभी वहीं थे। उन्हें यह शुभ सूचना दी। सुनकर फड़क उठे। बाँछें खिल गईं। दौड़े हुए सोफ़िया के पास आ गये और बोले—सोफ़ी, तुमने मुझे ज़िंदा कर दिया। अहा! मैं कितना भाग्यवान हूँ!

और भी बहुत-से आदमी मौजूद थे, इसलिए मि. क्लार्क सोफ़िया का आलिंगन न कर सके। मूँछों पर ताव देते, हवाई किले बनाते, मनमोदक खाते घर गये।

प्रात:काल सोफ़िया का अपने कमरे में पता न था! पूछ-ताछ होने लगी। माली ने कहा—मैंने उन्हें जाते तो नहीं देखा, पर जब यहाँ सब लोग सो गये थे, तो एक बार फाटक के खुलने की आवाज़ आयी थी। बड़ी खलबली मची, कहाँ गयी!

जॉन सेवक—तुमने रात को कुछ कहा-सुना तो नहीं था?

मिसेज़ सेवक—रात को तो विका की बातचीत होती रही। मुझसे तैयारियाँ करने के लिए भी कहा। खुश-खुश सोई।

जॉन सेवक—तुम्हारी समझ का फर्क था। उसने तो अपने मन का भाव प्रकट कर दिया।

तुमको जता दिया कि कल मैं न रहूँगी। जानती हो, विका से उसका आशय क्या था? आत्मसमर्पण। अब विनय से उसका विका होगा; यहाँ जो न हो सका, वह स्वर्ग में होगा। अब जितना रोना हो, रो लो; मैं तो पहले ही रो चुका हूँ।

इतने में रानी जा वी आयीं। आँखें रोते-रोते बीरबहूटी हो रही थीं। उन्होंने एक पत्र मिसेवक के हाथ में रख दिया और एक कुर्सी पर बैठकर मुँह ढाँप रोने लगीं।

यह सोफ़िया का पत्र था, अभी डाकिया दे गया था। लिखा था—पूज्य माताजी, आपकी सोफ़िया आज संसार से बिदा होती है। जब विनय न रहे, तो यहाँ मैं किसके लिए रहूँ? इतने दिनों मन को धैर्य देने की चेष्टा करती रही। समझती थी, पुस्तकों में अपनी शोक-स्मृतियों को डूबा दूँगी और अपना जीवन सेवा-धर्म का पालन करने में सार्थक करूँगी। किन्तु मेरा प्यारा विनय मुझे बुला रहा है। मेरे बिना उसे वहाँ एक क्षण चैन नहीं है। उससे मिलने जाती हूँ। यह भौतिक आवरण मेरे मार्ग में बाधक है, इसलिए इसे यहीं छोड़े जाती हूँ। मुझे प्रबल शक्ति खींचे लिए जा रही है और बेड़ियाँ आप-ही-आप टूटी जा रही हैं।

मामा को कह दीजिएगा, सोफ़ी का विका हो गया, अब उसकी चिन्ता न करें।

पत्र समाप्त होते ही मिसेज़ सेवक उन्मादिनी की भाँति कर्कश स्वर से बोलीं—तुम्हीं विष की गाँठ हो, मेरे जीवन का सर्वनाश करनेवाली, मेरी जड़ों में कुल्हाड़ी मारनेवाली, मेरा मान-मर्दन करनेवाली काली नागिन तुम्हीं हो। तुम्हीं ने अपनी मधुर वाणी से, अपने छल-प्रपंच से मेरी सरला सोफ़ी को मोहित कर लिया और अंत को उसका सर्वनाश कर दिया। तुमने मेरे सारे मंसूबे खाक में मिला दिये।

वह उसी क्रोध-प्रका में न जाने और क्या-क्या कहतीं कि मि. जॉन सेवक उनका हाथ पकड़कर वहाँ से खींच ले गये। रानी जा वी ने इस अपमानसूचक, कटु शब्दों का कुछ भी उत्तर न दिया, मिसेज़ सेवक को सम्वेदना-पूर्ण नेत्रें से देखती रहीं और तब बिना कुछ कहे-सुने वहाँ से उठकर चली गईं।

मिसेज़ सेवक की महत्त्वाकांक्षाओं पर तुषार पड़ गया। उस दिन से फिर उन्हें किसी ने गिरजाघर जाते नहीं देखा, वह फिर गाउन और हैट पहने हुए न दिखायी दीं, फिर योरपियन क्लब में नहीं गईं और फिर अँगरेज़ी दावतों में सम्मिलित नहीं हुईं। दूसरे दिन प्रातःकाल पादरी पिम और मि. क्लार्क मातमपुरसी करने आये। मिसेज़ सेवक ने दोनों को वह फटकार सुनाई कि अपना-सा मुँह लेकर चले गये।

रहे मिस्टर जॉन सेवक। वह निराशामय धैर्य के साथ प्रातःकाल से संध्या तक अपने व्यावसायिक धंधों में रत रहते हैं। उन्हें अब संसार में कोई अभिलाषा नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, धन से उन्हें निस्वार्थ प्रेम है, कुछ वही अनुराग, जो भक्तों को अपने उपास्य से होता है, धन उनके लिए किसी लक्ष्य का साधन नहीं है, स्वयं लक्ष्य है।

50

कुँवर विनयसिंह की वीर मृत्यु के पश्चात रानी जा वी का सदुत्साह दुगुना हो गया। वह पहले से कहीं ज़्यादा िक्रयाशील हो गईं। उनके रोम-रोम में असाधारण स्फूर्ति का विकास हुआ। वृहवस्था की आलस्यप्रियता यौवन-काल की कर्मण्यता में परिणत हो गयी। कमर बाँधी और सेवक-दल का संचालन अपने हाथ में लिया। रनिवास छोड़ दिया, कर्म-क्षेत्र में उतर आयीं और इतने जोश से काम करने लगीं कि सेवक-दल को जो उन्नति कभी न प्राप्त हुई थी, वह अब हुई।

डॉक्टर गांगुली का आशावाद भी अंत में अपने नग्न रूप में दिखायी दिया। उन्हें विदित हुआ कि वर्तमान अवस्था में आशावाद आत्मवंचना के सिवाय और कुछ नहीं है। उन्होंने कौंसिल में मि. क्लार्क के विरुद्ध बड़ा शोर मचाया, पर यह अरण्य-रोदन सिद्ध हुआ। महीनों का वाद-विवाद, प्रश्नों का निरंतर प्रका, सब व्यर्थ हुआ। वह गवर्नमेंट को मि. क्लार्क का तिरस्कार करने पर मजबूर न कर सके। इसके प्रतिकूल मि. क्लार्क की पद-वृद्धि हो गयी। इस पर डॉक्टर साहब इतने झल्लाये कि आपे में न रह सके। वहीं भरी सभा में गवर्नर को खूब खरी-खरी सुनाईं, आप पशु-बल से मुझे चुप कराना चाहते हैं, इसलिए कि आपमें धर्म और न्याय का बल नहीं है। आज मेरे दिल से यह विश्वास उठ गया, जो गत चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेंट हमारे ऊपर न्यायबल से शासन करना चाहती है। अब हमें स्पष्ट दिखायी दे रहा है कि केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमारी सभ्यता और हमारे मनुष्यत्व की हत्या करने के लिए हमको अनंत काल तक चक्की का बैल बनाए रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।

वह उसी दिन वहाँ से रवाना हो गये और तीसरे दिन कुँवर भरतसिंह से आ मिले। कुँवर साहब ने कहा—तुम तो इतने गुस्सेवर न थे, यह तुम्हें क्या हो गया?

गांगुली—हो क्या गया! वही हो गया, जो आज से चालीस वर्ष पहले होना चाहिए था। अब हम दोनों सेवक-दल का काम खूब उत्साह से करेगा।

कुँवर—नहीं डॉक्टर साहब, मुझे खेद है कि मैं आपका साथ न दे सकूँगा। मुझमें वह उत्साह नहीं रहा। विनय के साथ सब चला गया। जाह्नवी अलबत्ता आपकी सहायता करेंगी। यदि मैं इससे अलग न रहा तो मुझे अपनी जायदाद से हाथ धोना पड़ेगा।

गांगुली—यह आपको कैसे निश्चय हुआ?

कुँवर—परिस्थितियों को देखकर, और क्या। जब यह निश्चय है कि हम सदैव गुलाम ही रहेंगे, तो मैं अपनी जायदाद क्यों हाथ से खोऊँ? जायदाद बची रहेगी, तो हम इस दीनावस्था में भी अपने दुखी भाइयों के कुछ काम आ सकेंगे।

गांगुली—आह! तो कुँवर विनयसिंह का मृत्यु भी आपकी इस बेड़ी को नहीं तोड़ सका। हम समझा था, आप निर्द्वंद्व हो गया होगा। पर देखता है, तो यह बेड़ी ज्यों-का-त्यों आपके पैरों में पड़ा हुआ है।

यह कहकर डॉक्टर गांगुली विमन हो यहाँ से उठे और जाह्नवी के पास आये, तो देखा कि वह कहीं जाने को तैयार बैठी हैं। इन्हें देखते ही विहसित मुख से इनका अभिवादन करती हुई बोली—अब तो आप भी मेरे सहकारी हो गये। मैं जानती थी कि एक-न-एक दिन हम लोग आपको अवश्य खींच लेंगे। जिनमें आत्मसम्मान का भाव जीवित है, उनके लिए वहाँ स्थान नहीं है। अभी यहाँ दो-एक दिन विश्राम कीजिएगा। मैं तो आज की गाड़ी से पंजाब जा रही हूँ।

गांगुली—विश्राम करने का समय तो अब निकट आ गया है, उसका क्या जल्दी है। अब अनंत विश्राम करेगा। हम भी आपके साथ चलेगा। रानी इंदु तो आराम से है न?

जाह्नवी—वह तो महेन्द्रकुमार से पहले ही रूठकर चली आयी थी। अब यहीं रहती है। वह भी तो मेरे साथ चल रही है।

इतने में इंदु आ गयी और डॉक्टर गांगुली को देखते ही उन्हें प्रणाम करके बोली—आप स्वयं आ गये, मेरा तो विचार था कि पंजाब होते हुए आपकी सेवा में भी जाऊँ।

डॉक्टर गांगुली ने कुछ भोजन किया और संध्या समय तीनों आदमी यहाँ से रवाना हो गये। तीनों के हृदय में एक ही ज्वाला था, एक ही लगन। तीनों का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था।

कुँवर भरतसिंह अब फिर विलासमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, फिर वही सैर और शिकार है, वही अमीरों के चोंचले, वही रईसों के आडम्बर, वही ठाट-बाट। उनके धार्मिक विश्वास की जड़ें उखड़ गयी हैं। इस जीवन से परे अब उनके लिए अनंत शून्य और अनंत आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मरने के पीछे क्या होगा, कौन जानता है। संसार सदा इसी भाँति रहा है और इसी भाँति रहेगा। उसकी सुव्यवस्था न किसी से हुई है न होगी। हम जीव मात्र हैं और हमारा काम केवल जीना है। अब उनके नैराश्य-व्यथित हृदय को इन्हीं विचारों से शांति मिलती है।

उर्दू-हिन्दी शब्दावली

आँजने	काजल लगाना
रब्त-जब्त	मेल-जोल
उम्मत	धर्म-विशेष
नबी	ईश्वर का दूत
नौबत	शहनाई
रुसवत	रिश्वत
आजिज़	परेशान
अज़ाब	पाप
निस्बत	सम्बंध
मुरौवत	लिहाज़
ज़रब	चोट
मुज़ियों	परेशान करने वाले, दुष्ट
तंबीह	नसीहत
ज़ाब्ते	ज़बरदस्ती
मुज़ायका	हानि
आमद-रफ़्त	आना-जाना
हसद	ईर्ष्या
बेशी	ज़्यादा/अधिक
तस्कीन	तसल्ली/ढांढ़स
गोशमाली	कान उमेठना
चरकटा	चारा काटने वाला
हाजिरी	अंग्रेज़ों के दोपहर का भोजन
आजिज़	परेशान
इजलास	न्यायालय
सरकश	विरोधी
हैस-बैस	दुविधा
हरमसरा	जनानखाना

मजाज़	अधिकार
मसूख	रद्द
फ़रो	शान्त
क़यास	अनुमान
इल्मे-ग़ैब	आध्यात्मिक ज्ञान
मिसिल	फ़ाइल
कीना	द्वेष, वैर
सेंत-मेंत	मुफ़्त
हलफ़	शपथ
ज़वाल	आफ़त
जाजम	आसन/चादर
मुज़ायका	आपत्ति
इजलास	न्यायालय
मोतबर	विश्वस्त
मुहर्रिर	लिखने वाला
इस्तग़ासा	फ़रियाद
मज़ीद	अधिक
ज़ेरबारी	बहुत अधिक व्यय
तहवील	कोष
महसूल	मालगुज़ारी
आक़बत	परलोक
कलीसा	गिरजाघर
दादनी	कर्ज़
कबीर	होली के अश्लील गीत
कुमुक	सैनिक सहायता
बईद	दूर
ख़ानगी	घरेलू
पौरा	घर में नए व्यक्ति का आगमन

प्रेमचन्द: उपन्यास-प्रकाशन की समय-रेखा

क्रम	हिन्दी/उर्दू नाम	कहां प्रकाशित (प्रथम संस्करण)	हिन्दी/उर्दू प्रकाशन-समय
1	देवस्थान रहस्य / असरार-ए-मआबिद	‘आवाज़-ए- ख़ल्फ’ उर्दू साप्ताहिक पत्र, बनारस	8 अक्तूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905
2	प्रेमा / हमखुर्मा व हमसवाब	इंडियन-प्रेस, इलाहाबाद / नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	1907 / 1906
3	रूठी रानी	ज़माना, उर्दू मासिक, कानपुर	अप्रैल-अगस्त, 1907
4	सेवासदन / बाज़ार-ए-हुस्न	हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता / कहकशां बुक डिपो, लाहौर	1918 / 1920
5	वरदान / जलवा-ए-ईसार	ग्रंथ भंडार, बम्बई / इंडियन-प्रेस, इलाहाबाद	1921 / 1912
6	प्रेमाश्रम / गोशा-ए-अफीयत	हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता / दारुल इशाअत, लाहौर	1922 / 1920
7	रंगभूमि / चौगान-ए-हस्ती	गंगा पुस्तक माला, लखनऊ / दारुल इशाअत, लाहौर	1925 / 1927
8	कायाकल्प / पर्दा-ए-मजाज़	भार्गव पुस्तकालय, बनारस / लाजपतराय एंड संस, लाहौर	1926 / 1931
9	निर्मला / निर्मला	चांद कार्यालय, इलाहाबाद / इलेक्ट्रिक प्रेस बुक डिपो, लाहौर	1927 / 1929
10	प्रतिज्ञा	सरस्वती प्रेस, बनारस	जन.-नव., 1927-1929
11	ग़बन / ग़बन	सरस्वती प्रेस, बनारस / लाजपतराय एंड संस, लाहौर	1931 / 1933
12	कर्मभूमि / मैदान-ए-अमल	सरस्वती प्रेस, बनारस / मक़तबा जामिया मिलिया, दिल्ली	1932 / 1934
13	गोदान / गऊदान	सरस्वती प्रेस, बनारस एवं हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, मुम्बई / मक़तबा जामिया मिलिया,	1936 / 1939

14	मंगलसूत्र	दिल्ली ‘हंस’	फरवरी, 1948